पद्म पुराण

[द्वितीय खण्ड]

[हिन्दी भाष्य सहित जनोपयोगी संस्करण]

सम्पादक :
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम जी शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षटदर्शन, योग वासिष्ठ,
२० स्मृति, व १८ पुराण के
प्रसिद्ध भाष्यकार।

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान
ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली ‍२४३००१ (उ० प्र०)
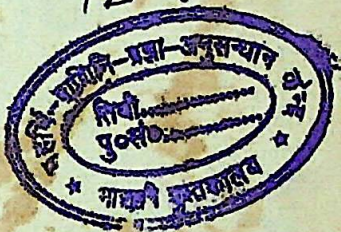
पद्म पुराण

(द्वितीय खण्ड)

[मूल एवं सरल हिन्दी भावार्थ सहित जनोपयोगी संस्करण]

सम्पादक :

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन, २० स्मृतियां
योग वासिष्ठ १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार
और लगभग १५० हिन्दी-ग्रन्थों के
रचियता

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, वेद नगर बरेली - २४३००१ (उ० प्र०)

प्रकाशक :

डॉ० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान,
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली २४३००१ (उ. प्र.)

*

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

*

द्वितीय संशोधित संस्करण
१९७७

*

मुद्रक :
देवदत्त मिश्र
यमुना प्रिन्टिंग प्रेस,
आर्य समाज रोड, मथुरा।

*

मूल्य :

ग्यारह रुपये मात्र

प्राक्कथन

'पद्म पुराण' की विशेषताओं पर प्रथम खण्ड की भूमिका में प्रकाश डाला जा चुका है। इस दूसरे खण्ड की सामग्री भी वैसी ही श्रेष्ठ है। इस पुराण की सिद्धान्त सम्बन्धी बातों में तो अन्य पुराणों से विशेष अन्तर नहीं, पर कथा-भाग में आपको सर्वत्र कुछ न कुछ नवीनता दृष्टिगोचर होगी। ऐसा जान पड़ता है कि रचयिता ने निरन्तर यह ध्यान रखा है कि प्रचलित धार्मिक कथाओं के सम्बन्ध में कुछ ऐसे विशेष तथ्य ढूँढे जाँय या उनको ऐसा मोड़ दिया जाय जिससे श्रोताओं की रुचि उनमें बढ़ती रहे। जहाँ तक अनुमान किया जाता है, उसने अपनी निजी सूझ-बूझ से ही ज्यादा काम लिया है। "पद्म पुराण" से बड़ा एक मात्र स्कन्द पुराण है, पर उसमें अधिकाँश में छोटे-छोटे माहात्म्य ही दिये गये हैं। इतनी लम्बी और गुँथी हुई कथाओं का उसमें कहीं चिन्ह भी नहीं जान पड़ता। अन्य सब पुराण इससे तिहाई या चौथाई परिमाण वाले हैं। इसलिए अगर यह कहा जाय कि 'पद्म-पुराणकार' ने इन कथाओं को कहीं अन्यत्र से लिया है तो ऐसा कोई अन्य स्रोत दिखलाई नहीं पड़ता जिससे इनका सम्बन्ध जोड़ा जा सके। इसलिए यही मानना पड़ता है कि निस्सन्देह 'पद्मपुराणकार' ने इन कथाओं को या तो पुरातन ऋषियों ने सुना, या इस समय अप्राप्य प्राचीन ग्रन्थों में पढ़ा और फिर उनमें अपनी कल्पना का प्रयोग करके एक नये ढङ्ग की चीज प्रस्तुत करदी। इसमें जो पुराकल्पीय रामायण, दी गई है, उसे पढ़ने से पाठक के मन में यही भाव उदित होता है कि 'रामचन्द्रजी के विषय में यह उल्टी-सीधी बातें कहाँ से आगई।' रामचन्द्रजी के अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर रावण के समान ही बलशाली राक्षसों से युद्ध हुये हैं उनका वर्णन अलग कहीं दिखाई नहीं पड़ता। इन बातों पर गहराई के साथ विचार करने से यही स्वीकार करना

पड़ता है कि 'पद्म पुराण' में मौलिकता का अंग सब पुराणों की अपेक्षा अधिक है। हमको यह सब जानकारी हो रही है कि हमने समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं के लेखों तथा अन्य छोटी बड़ी पुस्तकों में जो नई-नई कथाएँ या दृष्टान्त आदि पढ़े थे उनमें से अधिकांश 'पद्म-पुराण' के ही थे।

दूसरी बात यह है कि इस पुराण की कथाएँ बहुत विस्तार के साथ लिखी गई हैं। इसके बहुत से अध्याय तो ३०० से ५०० श्लोकों तक के हैं। इस सुलभ संस्करण में हमको उसमें से छः सात हजार श्लोक ही संकलित करने थे, इसलिए सभी कथाओं को बहुत संक्षेप करके ही प्रकाशित करना पड़ा है। पर वास्तव में यह पुराण ऐसा विशेषता युक्त है कि यदि इसे अच्छी तरह खोज-बीन के साथ पढ़ा जाय और ढूँढ़ा जाय तो इसमें बहुत सी अद्भुत कथाएँ तथा महत्व-पूर्ण तथ्य प्राप्त हो सकते हैं। यदि पाठकों ने इस सुलभ-संस्करण का हार्दिक स्वागत करके हमारा उत्साह बढ़ाया तो समय आने पर इसका पूरा संस्करण भी पाठकों की सेवा में उपस्थित करने का प्रयत्न किया जायगा।

जिस प्रकार कई पुराणों में व्रत, उपवास, पर्व, तीर्थ माहात्म्य दान आदि का ही बहुत अधिक समावेश कर दिया गया है, वैसी बात 'पद्म पुराण के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। यद्यपि इसके कुछ अध्यायों में तीर्थों और व्रतादि का माहात्म्य भी दिया गया है,पर उसका परिमाण समस्त ग्रन्थ के आकार को देखते हुए कम ही है। हमने उसको इस कारण छोड़ दिया है क्योंकि 'भविष्य-पुराण' और 'मत्स्यपुराण' में उनका वर्णन पर्याप्त मात्रा में दे दिया गया। हमारी दृष्टि में 'पद्म-पुराण की महत्ता उसमें दिये गये मौलिक उपाख्यानों व आध्यात्मिक तथा धार्मिक विषयों की विवेचना करने वाले वर्णनों से है जिसका उत्तम संकलन पाठकों को इस खण्ड में मिलेगा, इससे पहले ही अध्याय

'शरीरोत्पत्ति वर्णन' में मानव के गर्भवास और उसके क्रमश: विकास का वर्णन इस प्रकार किया गया है जिससे अनायास ही आध्यात्मिक भाव जागृत हो जाता है। 'भारत वर्ष में पर्वत और नदी' वाला अध्याय प्राचीन भूगोल की दृष्टि से निस्सन्देह बड़ा महत्वपूर्ण है। लेखक का झुकाव किसी कारणवश नर्मदा नदी की तरफ सर्वाधिक है। वह कहता है—'सरस्वती नदी का जल तीन दिन में, यमुनाजी का जल सात दिन में, गङ्गा का जल तुरन्त पवित्र कर देता है किन्तु नर्मदा का जल तो दर्शन मात्र से ही पुनीत करने वाला है।'

'वर्णाश्रम धर्म'' ''गृहस्थ धर्म'' 'विष्णु भक्ति' "भगवान् का नाम माहात्म्द" "प्रतिज्ञा पालन का महाफल' "वैष्णव के लक्षण" आदि अनेक अध्यायों में धर्म-व्यवहार, सदाचरण, आध्यात्मिक-जीवन आदि विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस पुराण की लेखन शैली अधिक स्पष्ट और बुद्धिसङ्गत है, जिससे उसके उपदेशों का प्रभाव शीघ्र हृदयगम होता है। यद्यपि पौराणिक शैली के अनुसार प्रत्येक धर्मक्रिया और सदाचार का महत्व बढ़ा-चढ़ाकर बताया जाता है, जिसकी अनेक व्यक्ति विपरीत आलोचना करते हैं। पर यदि सामान्य जन समुदाय के बहुसख्यक व्यक्ति उससे आकर्षित होकर ही कुछ अन्शों में धर्म मार्ग के अनुगामी बन सकें तो उसे उचित ही कहा जायगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

★

पद्मपुराण

(द्वितीय खण्ड)

※ शरीरोत्पत्ति वर्णन ※

पापत्पतति कायोऽयं धर्माच्चि शृणु मातले ।
विशेषं न च पश्यामि पुण्यस्यापि महीतले ॥१
पुनः प्रजायते कायो यथा हि पतनं पुरा ।
कथमुत्पद्यये देहस्तन्मे विस्तरतो वद ॥२
अथ नाराकिणां पुंसामधर्मादिव केवलात् ।
क्षणमात्रेण भूतेभ्यः शरीरमुपजायते ॥३
तद्वद्धर्मेण चंकेन देवानामौपपादिकम् ।
सद्यः प्रजायते दिव्यं शरीरं भूतसारतः ॥४
कर्मणा व्यतिमिश्रेण यच्छरीरं महात्मनाम् ।
तद्रूप परिणामेन विज्ञेयं हि चतुर्विधम् ॥५
उद्भिज्याः स्थावरा ज्ञेयास्तृणगुल्मादिरूपिणः ।
कृमिकीट पतङ्गाद्याः स्वेदजा नाम देहिनः ॥६
अण्डजाः पक्षिणः सर्वे सर्पा नक्राश्च मूपते ।
जरायुजाश्च विज्ञेया मानुषाश्च चतुष्पदाः ॥७
तत्र सिक्ताजलेर्भूमिरर्कस्योष्मविपाचिता ।
वायुना धम्यमाना च क्षेत्रतां तु प्रपद्यते ॥८

राजा ययाति ने कहा—हे मातले ! यह शरीर पाप से पतित हो जाया करता है । और धर्म से इसका जो होता है उसको तुम अब

श्रवण करो। इस महीतल में किये हुए पुण्य का विशेष फल क्या होता है—यह में नहीं देखता हूँ ।। १ ।। जिस प्रकार पहले इस शरीर का पतन होता है वैसे ही यह कार्य पुनः उत्पन्न हो जाता है। यह देह कैसे समु:पन्न हुआ करता है उसका मेरे सामने आप विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ।२। मातलि ने कहा—इसके अनन्तर जो नारकी पुरुष होते हैं उनका केवल अधर्म से ही क्षण मात्र में भूतों से यह शरीर समुत्पन्न हो जाता है ठीक उसी भाँति देवों का केवल एक धर्म से औपचारिक शरीर तुरन्त ही उत्पन्न हो जाया करता है। यह शरींर भूतों के सार से परम दिव्य होता है ।३-४। महान् आत्मा वाले पुरुषो के प्रति मिश्रित कर्म से जो शरीर होता है उसका रूप परिणाम से चार प्रकार का जान लेना चाहिए ।५। उन चार प्रकार के शरीरों में एक उद्भिज्ज नाम काला शरीर होता है जो कि स्थावरों का हुआ करना है और वे तृण गुल्म आदि के रूप वाले हुआ करते हैं। ये भूमिका उतभेदन करके ही उत्पन्न होते हैं अतएव उनका नाम उभ्रिभज्ज है। जो कृमि-कीट और पतङ्ग आदि शरीरधारी होते हैं वे स्वेध्ज नाम वाले शरीर क धारण करने वाले देही होते हैं। उनकी स्वेद से ही उत्पत्ति होती है अतः इनका नाम स्वदेज होता है ।।६।। हे भूपते ! एक अण्डज शरीरधारी होते हैं अर्थात् अण्ड से ही फिर उनने शरीर की उत्पति हुआ करती हैं। सिर्फ नक्र और सभी पक्षी हुआ करते है। चौथा भेद जरायुज होता है जिसमें मनुष्य और सभी चतुष्पद हुआ करते हैं। इनका शरीर एक जेर से लिपटा हुआ ही उत्पन्न हुआ करता है। इसलिये उन्हें जरायुज कहा जाता है ।७। यह भूमि जल से सिक्त होकर सूर्य की उष्णता विशेष रूप से पाचित हुआ करती है। फिर वायु के द्वारा धम्यमान होकर ही यह क्षेत्रता को प्राप्त किया करती है अर्थात् उत्पादन शक्ति इसमें उत्पन्न हो जाती है ।।८।।

तत्र चोप्तानि बीजानि संसिक्तान्यम्भसा पुनः ।
उपगम्य मृदुत्वं च मूलभावं व्रजिन्ती च ।।९
तन्मूलादङ्कु रोत्पत्तिरङ् कुरात्पर्णसम्भवः ।
पर्णान्नालं ततः काण्ड काण्डाच्च प्रभवः पुनः ।।१०
प्रभावाच्च भवेत्क्षीरं क्षीरात्तण्डलु सम्भवः ।
तण्डुलाच्च ततः पक्वा भवन्त्योषध्यस्तथा ।।११
यत्राद्याः शालीपर्यन्ताः श्रेष्ठ स्सप्तदश स्मृताः ।
ओषध्यः फलासाराढ्या शेषाः क्षुद्राः प्रकीर्तिताः ।।१२
एता लूना मंर्दिताश्च मुनिभिः पूर्वसंस्कृताः ।
शूर्पोलूखल पात्राद्यैः स्थालिकोदक बह्निभिः ।।१३
षड्विधा हि स्वभेदेन परिणामं व्रजन्ति ताः ।
अन्योन्य रससंयोगादनेकस्वादतां गताः ।।१४

जब भूमि में क्षेत्रता की शक्ति हो जाया करती है तो फिर उसमें बीजों का वमन किया जाया करता है। फिर जल से उनका सिंचन किया जाता है। तभी वे बोये हुए मृदुता को प्राप्त होकर मूल भाव को प्राप्त हुआ करते हैं अर्थात् पहिले उनमें मृदुता होती है और फिर जड़ें निकला करती हैं तभी उनसे पौधों की उत्पत्ति हुआ करती है।९। उस मूल से जो बोये हुए बीज के मृदु होने पर उसमें से निकला करता है, जब वह मूल भूमि में अपनी स्थिरता कर लेता है तो उससे फिर एक अंकुर निकाला करता है उस निकले हुए अंकुर से जो कि ऊपर सबकी दृष्टि में आता है छोटे २ लाल पत्ते निकला करते हैं। उन पतों से नालकी उत्पत्ति होती है फिर उससे काण्ड समुत्पन्न हुआ करता है और उस काण्ड से पूर्ण प्रभाव हो जाता है।१०। प्रभाव से क्षीर होता है। फिर उस तंडुल से दवा परिपक्व हुआ करती हैं। यत्रादि से शाली तक श्रेष्ठ सत्रह बतलाई हैं। फल के सार से आढ्य शेष औषधियाँ क्षुद्र बतलाई गई हैं।११-१२।

ये सब काटती हुई और मर्दन की हुई मुनियों के द्वारा पहले संस्कार की गई हैं। इनका संस्कार शूप-उलूखल और पात्र आदि के द्वारा तथा स्थायी-उदक और वह्नि से किया जाता है।१३। छै प्रकार की वे औषधियाँ अपने भेद से परिणाम को प्राप्त होती हैं। वे आपस में एक दूसरे के रस के संयोग से विभिन्न विविध तरह के स्वाद को प्राप्त हो जाया करती हैं।१४।

भक्ष्यं भोज्यं पेयलेह्यं चोष्यं खाद्यं च भूपते ।
तासां भेदाः षडङ्गाश्च मधुराद्याश्च षडगुणाः ।।१५
तदन्नं पिण्कवहैर्ग्रासैर्भुक्तं च दहेभिः ।
अन्तः स्थूलाशये सर्वप्राणान्स्थापयति क्रमात् ।।१६
अपक्व भुक्तमाहारं स वायुः कुरुते द्विधा ।
सम्प्रविश्यान्नमध्ये च पक्वं कृत्वा पृथुग्गुणम् ।।१७
अग्नेरूर्ध्वं जलं स्थाप्य तदन्नं च जलापरि ।
जलस्याधः स्वयं प्राणः स्थित्वाग्नि धमते शनैः ।।१८
वायुना धम्यमानोऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम् ।
तदन्ननुष्णयोगेन समन्तात्पच्यते पुनः ।।१९
द्विधा भवति तत्पक्व पृथक्किट्टं पृथग्रसः ।
मलैर्द्वादशाभिः किट्ट भिन्नं देहाद्बहिर्व्रजेत् ।।२०
कर्णाक्षि नासिक जिह्वा दन्त्योष्ठप्रजन गुदम् ।
मलान्स्रवेदथ स्वेदो विण्मूत्रं द्वादश स्मृतः ।।२१

हे राजन् ! भक्ष्य-भोज्य—पेय—लेह्य—चोष्य और खाद्य में ६ उनके भेद हुआ करते हैं। जो चबाकर खाने वाले पदार्थ होते हैं। वे भक्ष्य हैं। सामान्य तथा खाये जाने वाले भोज्य होते हैं। पीने जाने वाले पदार्थ पेय कहे जाते हैं। चाटने के पदार्थ लेह्य कहे जाते हैं। चूसकर खाने वाले चोष्य हैं और राँथकर खाये जाने वाले पदार्थ खाद्य होते हैं। इसके अङ्ग हैं। मधुर आदि ६ गुण होते हैं, जिनके नाम

मधुर—लवण—कषाय—कटु—तिक्त और अम्ल हैं।१५। वह अन्न पिण्ड के द्वारा देहधारी खाते हैं और वह अन्दर स्थूलाशय में क्रम से समस्त प्राणों को स्थापित किया करता है।१६। जो आहार पका नहीं होता है और ख। लिया जाता है वह वायु के द्वारा दो भागों में कर दिया जाता है। यह अन्न मध्य में प्रवेश करके जो पक्व होता है उसे पृथक गुण वाला कर देता है।१७। अग्नि के ऊपर जल को स्थापित करके उस जल के ऊपर अन्न को स्थापित कर देता है। जल के नीचे प्राण स्वयं स्थित होकर धीरे-धीरे अग्नि का धमन किया करता है।१८। वायू के द्वारा जब यह उस जठराग्नि धमन किया जाता है तो उस जल को अत्यन्त उष्ण कर दिया करता है। वह अन्न उसकी उष्णता के योग से फिर सभी ओर से पचाया है।१९। उस परिपक्व अन्न के भी वहाँ पर दो भाग होते। एक तो रस का भाग है जिसे "रस" इसी नाम से पुकारा जाया करता है। दूसरा भाग उसका किट्ट होता है अर्थात् फोक होता है जिसमें कुछ भी सार नहीं रहता है। वह किट्ट बारह प्रकार के मलों के स्वरूप में होकर इस शरीर से बाहर निकला करता है और भिन्न हो जाता है।२०। बारह मलों के द्वार ये होते हैं—कान—आँख—नासिका—जिह्वा—दाँत—ओष्ठ प्रजननतेन्द्रिय और गुदा-दो आँखें और दो कान होते हैं ऐसे बारह हुआ करते हैं। ये ही मलों को स्रावित किया करते हैं। स्वेद—विष्ठा और मूत्र मल है। इस तरह बारह कहे गये हैं।२१।

हृत्पद्मे प्रतिबद्धाश्च सर्व नाड्यः समन्ततः।
तासां मुखेषु त सूक्ष्मं प्राणः स्थापयते रसम् ॥२२
रसेन तेन ता नाडीः प्राणः पूरयते पुनः।
सन्तर्पयन्ति ता नाड्यः पूर्णा देहं समन्ततः ॥२३
ततः स नाडीमध्यस्थः शारीरेणोष्मणा रसः।
पच्यते पच्यमानश्च भवेत्पाकद्वय पुनः ॥२४

त्वग्मांसांसास्थिमज्जा मेदोरुधिरं च प्रजायते ।
रक्ताल्लोमानि मांसं च केशाःस्नायुश्च मांसत ।।२५
स्नायोर्मज्जा तथास्थीनि निवसामज्जास्थि सम्भवा ।
मज्जाकारेण वैकल्य शुक्रं च प्रसवात्मकम् ।।२६
इति द्वाद्वशश्चान्नस्य परिणामाः प्रकीर्तिताः ।
शुक्रं तस्य परीणामः शुक्रा देहस्य सम्भवः ।।२७
ऋतुकाले यदा शुक्रं निर्दोष योनिसंस्थितम् ।
तदा तद्वायुससृष्टं स्त्रीरक्तेनैकतां व्रजेत् ।।२८

हृदय रूपी पद्म में सभी नाड़ियाँ प्रतिवद्ध होती हैं। यह प्राण वायु उन सम्पूर्ण नाड़ियों के मुख में उस रस को स्थापित किया करता है। समस्त नाड़ियाँ उस रस के प्राण के द्वारा पुनः पूरित की जाती हैं। फिर वे सब नाड़ियाँ सभी ओर से सम्पूर्ण देह को संतृप्त किया करती हैं।२२-२३। इसके अनन्तर वह नाड़ियों के मध्य में स्थित रस शारीरिक ऊष्मा से पकाया जाता है और पकता हुआ वह फिर दो प्रकार का पाक प्राप्त किया जाता है।२४। इसमें ही त्वचा-माँस अस्थि-मज्जा मेद और रुधिर की उत्पत्ति होती है। रक्त लोम और माँस के केश और स्नायु स्नायु से मज्जा तथा अस्थियाँ, वसा और मज्जा अस्थियों से उत्पन्न होती हैं। फिर मज्जा से शुक्र होता है जो प्रसवात्मक होता है।२५-२६। इस प्रकार से ये बारह अन्न के परिणाम कहे गये हैं। उसका मुख परिणाम शुक्र है क्योंकि इस शुक्र से ही देह की समुत्पत्ति हुआ करती है।२७। स्त्री का जब ऋतुकाल उपस्थित होता हैं उस समय में जब यह शुक्र (वीर्य) उसकी योनि में संस्थित होता है तब वह वायु द्वारा ससृष्ट होता हुआ उसके रक्त के साथ यह एकता को प्राप्त हो जाया करता है।२८।

विसर्गकाले शुक्रस्य जीवः कारणसंयुतः ।
नित्य प्रविशते योनिं कर्मभि स्वैर्नियन्त्रितः ।।२९

शुक्रस्य सहरक्तस्य एकाहात्कललं भवेत् ।
पञ्चरात्रेण यललं बुद्बुदत्व ततो भवेत् ॥३०
मांसत्वं मासमात्रण पञ्चधा जायते पुनः ।
ग्रीवा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवंशस्तथोदरम् ॥३१
पाणीपादौ तथा पाश्वौ कटिर्गात्रं तथैव च ।
मासद्वयेन पर्वाणि क्रमशः सम्भवन्ति च ॥३२
मुखं नासा च कर्णौ च मासैर्जायन्ति पञ्चभिः ।
दन्तपंक्तिस्तथा जिह्वा जायते तु नखाः पुनः ॥३३
कर्णयोश्च भवेच्छिद्रं षण्मासाभ्यन्तरे पुनः ।
पायुर्मेढ्रमुपस्थं च शिश्नश्चाप्युपजायते ॥३४

पुरुष के वीर्य का जिस समय में विसर्ग होता है तो कारण संयुक्त जीता है । वह जीवात्मा अपने ही कर्मों से नियन्त्रित होता हुआ नित्य ही स्त्री की योनि में प्रवेश किया करता है ।२६। स्त्री के रक्त के साथ जो शुक्र मिलता है उसका एक दिन में कलल स्वरूप हो जाता है । जव पाँच दिन हो जाते हैं तो वही कलल बुद्बुद हो जाता है ।३०। एक मास में माँस जैसा होकर फिर उसके पाँच अङ्ग बन जाते हैं—ग्रीवा, शिर, स्कन्ध, पृष्ठ बंश और उदर ये हो जाया करते हैं ।३१। दो महीने समाप्त होने पर हाथ-पैर दोनों पसवाड़े, कमर और गात्र एवं पर्व क्रम में उत्पन्न हो जाया करते हैं । इस तरह उसके आकार की रचना होती है ।३२। तीन मास में सैकड़ों अंकुर और सन्धियाँ हो जाया करती हैं । चार महीने समाप्त होने पर क्रमानुसार उस गर्भ में स्थित शरीर की उङ्गली आदि उत्पन्न होती हैं ।३३। पाँच मास में मुख नाक और दोनों कान आदि बन जाते हैं । दाँतों की पंक्ति और नख उत्पन्न हो जाते हैं ।३४।

सन्धयो ये च गात्रेशु मासैर्जायन्ति सप्तभिः ।

अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्ण शिरः केशसमन्वितम् ।३५

विभक्तावयवस्पष्टं पुनर्मासेऽष्टमे भवेत् ।
पञ्चात्मकसमायुक्तः मरिपक्वः स तिष्ठति ।।३६
मातुराहार वीर्येण षड्विधेन रसेन च ।
नाभिसूत्र निवद्धेन बर्द्धते स दिने दिने ।।३७
ततः स्मृतिं लभेज्जीवः सम्पूर्णेऽस्मिञ्छरीरके ।
सुखं दुःखं विजानाति विद्रां स्वप्न पुराकृतम् ।।३८
मृतश्चाह पुनर्जातो जातश्चाह पुनर्मृतः ।
नारायोनिसहस्राणि मया दृष्टान्तनेकधा ।।३९
अधुना जातमात्रोऽह प्राप्तसंस्कार एव च ।
ततः श्रेयः करिष्यामि येन गर्भे न सम्भवः ।।४०

छै मास के अन्दर ही दोनों कानों में छिद्र उत्पन्न हो जाते हैं। इसी अन्तर में गुदा-उपस्थ मेढ़ू शिश्न भी समुत्पन्न हो जाया करते हैं ।३५। सात मास का जब गर्भ हो जाता है तो उसके शरीर में सम्पूर्ण सन्धियाँ हो जाया करती हैं और वह गर्भस्थ प्राणीं के शिर-केश तथा अङ्ग-प्रत्यङ्ग सभी से पूर्णतया समन्वित हो जाता है ।३६। जिसके सभी अवयव विभक्त होकर स्पष्ट दिखलाई देने लगें ऐसी अवस्था अष्टम मास में हो जाया करती हैं। वह फिर पञ्चात्मक समायुक्त होकर पूर्ण परिपक्व होता हुआ स्थित रहता है ।३७। गर्भस्थ प्राणी की माता जो भी आहार लिया करती है उसी की शक्ति से वह जीवित रहा करता है उसमें ६ प्रकार के रस जो भी माता ग्रहण किया करती है उसे प्राप्त होते जो कि नाभि के नाल सूत्र से वद्ध रहता है। इसी प्रकार से वह दिनोंदिन वृद्धि को प्राप्त होता है ।३८। इसके उपरान्त वह जीवात्मा स्मृति को प्राप्त करता है और सम्पूर्ण शरीर में सुख दुःख और पुराकृत निद्रा-स्वप्न को जान जाता है ।३९। उसे उस समय में यह सभी ज्ञान होता है कि मैं अमुक शरीर में अमुक था और इस तरह से मेरी मौत हो गई थी फिर मैंने जन्म ग्रहण किया था और मैं फिर भी मर

गया था। मैंने इस तरह से अनेकों सहस्र योनियाँ अब देखी हैं। बराबर जन्म लेता एवं मरता रहता हूँ—उस गर्भ की दशा में इसका सब स्पष्ट ज्ञान एवं स्मृति बनी रहती है। वहाँ वह सोचता है कि अबकी बार जैसे ही मेरा जन्म होगा वैसे ही संस्कार होने पर अपना श्रेय के कर्म करूँगा जिससे फिर इस गर्भ में न आना पड़े और मेरा छुटकारा ही हो जावे ।४०-४१।

गर्भस्थश्चिन्तयत्येव मह्ं गर्भाद्विनिः सृतः ।
अध्येष्यामि परं ज्ञानं संसार विनिवर्तकम् ।।४२
अवश्यं गर्भदुखेन महता परिपीडितः ।
जीवः कर्मवशादास्ते मोक्षोपायं विचिन्तयेत् ।।४३
यथा गिरिवराक्रान्त-कश्चिद्दुःखेन तिष्ठति
तथा जरायुणा देही दुःखं तिष्ठति दुःखितः ।।४४
पतितः सागरे यद्वद् दुख मास्ते समाकुलः ।
गर्भोदकेन सिक्ताङ्गस्तथास्ते व्याकुलात्मकः ।।४५
लोहकुम्भे यथा न्यस्तः पच्यते कश्चिदग्निना ।
गर्भकुम्भे तथाक्षिप्त पच्यते जठराग्निना ।।४६
सूची भिरग्निवर्णाभिभिन्नगात्रो निरन्तरम् ।
यद् दुखं जायते तस्य तद्गर्भेऽष्टगुणं भवेत् ।।४७
गर्भवासात्परंवासं कष्टं नैवास्ति कुत्रचित् ।
देहिनां दुःखरतुलं सुघोरमपिसङ्कटम् ।।४८
इत्येतद् गर्भदुःखं हि प्राणिनां परिकीर्तितम् ।
चरस्थिराणां सर्वेषामात्मगर्भानुरूपतः ।।४९
गर्भात्कोटिगुणा पींडा योनियन्त्रनिपीडनात् ।
संमूर्च्छि तस्य जायेत जायमानस्य देहिनः ।।५०

जिस समय में यह प्राणी गर्भ में स्थित होता है उस समय में तो यह इसी प्रकार से चिन्तन किया करता है कि मैं ज्यों ही गर्भ से

बाहर निकालूँगा वैसे ही मैं परम ज्ञान का अध्ययन करूँगा जिस ज्ञान के जान लेने पर फिर मेरा इस संसार के आवागमन से छुटकारा होवेगा ।४२। अवश्य ही गर्भ में स्थित जीवात्मा गर्भ दुःख के महान् पीड़ायुक्त होता है । यह जीव तो कर्मों के वशीभूत रहता है । किन्तु फिर भी इसे अपना साँसारिक बन्धन से मुक्ति पाने के उपाय अवश्य ही सोचना चाहिये ।४३। जिस प्रकार से किसी पर्वत के नीचे दवा हुआ बहुत ही दुःख के साथ वहाँ पड़ा रहा करता है क्योंकि उस समय उसका दुःख भोगते रहने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा ही नहीं होता है ठीक उसी भाँति जरायु से जकड़ा हुआ यह देहधारी प्राणी भी अत्यन्त दुःखित होकर गर्भ में पड़ा रहा करता है।४४। जैसे कोई विशाल सागर में गिर जावे और वह जिस तरह अत्यन्त समाकुल (वेचैन) होकर बहुत ही दुःख भोगता है क्योंकि उससे त्राण पाने का कोई भी साधन दिखलाई नहीं देता है उसी भाँति गर्भ के जल से भीगा हुआ यह गर्भस्थ प्राणी भी वहुत अधिक व्याकुल होता रहता है ।४५। लोहे के पात्र में पड़ा हुआ जैसे कोई प्राणी अग्नि के द्वारा पकाया जावे और उस समय उसे जो भी वेदना का अनुभव होता है उसी तरह से गर्भ के कुम्भ में पड़ा हुआ यह प्राणी भी माता की जठराग्नि से पकता रहता है ।४६। अग्नि तपी हुई सुइयों के इसके सभी शरीराङ्ग भेदित होते रहते हैं और निरन्तर वह छिदता रहा करता है । गर्म सुइयों के द्वारा छेदन करने से जो कुछ दुःख होता है वही दुःख गर्भ में प्राणी को अठगुना हुआ करता है ।४७। गर्भ का निवास सबसे अधिक दुःखदाई निवास होता है । इस तरह का कष्ट अन्यत्र कहीं भी इस प्राणी को नहीं होता है गर्भवास भी महान् कष्टप्रद नारकीय वास ही होता है । देहधारियों को अनुपम दुःख उस समय में होता है और बहुत घोर संकट उसमें वह अनुभव किया करता है ।४८। यह दुःख इस तरह का है कि उसका ठीक वर्णन नहीं किया जा सकता है । इस दुःख का जो कि गर्भवास में प्राणियों को होता है हमने वर्णन कर दिया है । यह गर्भवास का कष्ट

और पीड़ा सभी को अपने गर्भ के अनुसार हुआ करती हैं ।४९। गर्भवास में जो पीड़ा होती है उससे अधिक करोड़ गुनी पीड़ा उस समय में हुआ करती है जब प्रसव होता है और योनि रूपी यन्त्र से भिचकर आता है । तन्त्री से खींचे जाने वाले तार की भांति उसके सभी अङ्गों पर पूरा भिचाव पड़ता है । पैदा होने वाले देहधारी को उस समय में बड़ी भारी मूर्छा हो जाया करती है ।५०।

इक्षुवत्पीड्यमानस्य पापमुद्गर पेषणात् ।
गर्भान्निष्क्रनमाणस्य प्रबलैः सूतिवायुभिः ।।५१
जायते सुमहद् दुःखं परित्राणं न विन्दति ।
यन्त्रेण पीड्यनानाः स्युर्निसाराश्च यथेक्षवः ।।५२
तथा शरीरं योनिस्थं पात्यते यन्त्र पीडनात् ।
अस्थिमद्वर्तुलाकार स्नायुबन्धन वेष्टितम् ।।५३
रक्तमांस वसलिप्त विण्मत्रद्रव्य भाजनम् ।
केशलोम नखाच्छन्नं रोगायतनमुत्तमम् ।।५४
वदनैक महाद्वारं गवाक्षाष्ठक भूषितम् ।
ओष्ठद्वयकपाटं तु दन्तजिह्वागलान्वितम् ।।५५
नाडीस्वेद प्रवाहं च कफपित्तपरिप्लुतम् ।
जराशोकसताद्विष्टं कालक्त्रामले स्थितम् ।।५६

ईख के दण्ड की भाँति वह पीड्यमान होता है । जिस समय में ईख के गन्ने का रस निकालने के लिए चरखी में दिया जाता हैं पिचर कर रह जाता हैं उसी भांति पाप के मुद्गर से उसका पेषण होता है । प्रसव काल की वायु बहुत प्रबल होती है जो उसे गर्भ से बरवश बाहिर निकाल कर फेंका करती हैं ।५१। गर्भवास से निष्क्रमण करने वाले प्राणी को उस काल में महान् दुाख होता हैं और वहां किसी प्रकार का भी परित्राण नहीं होता है क्योंकि बाहिर आना परमावश्यक तथा बलात् किया

जाता है जिस तरह रस निकालने के यजन से पीड्यमान ईख का गन्ना निचुड़कर बिना सार वाला हो जाया करता है वैसी ही यह उत्पन्न होने के समय में इस प्राणी की दशा होती है।५२। योनि में जब यही देह धारी स्थित होता है और यन्त्र पीडन से गिराया जाता है। अस्थियों वाला गोल आकार में स्थित स्नायु बन्धन से एक दम वेष्टित हुआ करता है।५३। यह खून-माँस और वसा (चर्बी) से लिपटा होता है तथा मल और मूत्र द्रव्य का पात्र रहा करना है। केश लोभ और नखों से आच्छन्न तथा रोगों का उत्तम घर जैसा इसका रूप उस समय में रहता है।५४। घर का जैसे द्वार होता है वैसे मुख ही इसका दरवाजा होता है जो आठ झरोखों से भूषित होता है दोनों होठ ही इस फाटक के दो किवाड़ हैं जो दाँत, जीव और गने से युक्त होते हैं नाड़ियों से स्वेद का प्रवाह होता है जिसमें कफ पित्त की परिल्पुति हुआ करती है। जरा (बुढ़ापा) और शोक से यह समाविष्ट होता है तथा काल के मुख की अग्नि में सदा स्थित रहा करता है।५६।

कामक्रोधसमाक्रान्तं श्वसनैः श्चोपमर्दितम् ।
भोगतृष्णातुरं गूढ रागद्वेषवशानुगम् ।।५७
सर्वर्णिताङ्गं प्रत्यंगं जरायुपरिवेष्टितम् ।
संघटेनाविविक्तेन योनिमार्गेण निर्गतम् ।।५८
विण्मूत्ररक्तसिक्ताङ्गं षट्कौशिक समुद्गवम् ।
अस्थिपञ्जरसंघातं यज्ञमस्मिन्कलेवरे ।।५९
शतत्रयं षष्टयधिक पञ्च पेशी शतानि च ।
सार्धाभिस्तिसृभिश्छन्नं समन्ताद्रोमकोटिभिः ।।६०
शरीरं स्थूलसूक्ष्माभिर्दृश्याभिरन्ततः ।
एताभिर्मांसनाडीभिः कोटिभिस्तत्सन्वितम् ।।६१
प्रस्वेदमशुचि ताभिरन्तरस्थं च ते नहि ।

द्वात्रिंशद्दशनाः प्रोक्ता विंशतिश्च नखाः स्मृताः ।।६२

पित्तस्य फुडमं ज्ञेयं कफस्यार्धाढकं तथा ।
वसायाश्च पलत्रिंशत्तदर्ध कललस्य वा ।।६३

यह काम तथा क्रोध से अच्छी तरह आक्रान्त होताहै और श्वांसों से उपमर्दित हुआ करता है । भोगों के भोगने की तृष्णा हर समय इसे घेरे रहती है जिसके कारण आदर रहता है । गूढ़ एवं राग तथा द्वेष के वश में होकर उसका ही अनुयायी रहता है ।५७। इसका प्रत्येक अङ्ग मर्वजित एवं जरायु से ढका रहता है । उस समय का संकट विविक्त मार्ग होता है जिस समय में यह योनि के गर्भ से निकल कर बाहर आता है । इसको होने के कष्ट का ध्यान अन्य किसी को लेश मात्र भी नहीं होता है ।५८। विष्ठा और मूत्र से इसके सभी अङ्ग सिद्ध होते हैं और षट् कौशीक से समुद्भव वाला होता है । अस्थि के पञ्जर का संघात की इस कलेवर में यज्ञ होता है । चार सौ साढ़े अड़सठ रोम कोटि तथा पेशियाँ इस में होती है ।५९। स्थूल और सूक्ष्म देखने के योग्य तथा अदृश्य इन माँस की नाड़ियों से जो करोड़ों की संख्या में इस शरीर में होती है यह प्राणी का देह समन्वित होता है ।६। उनसे प्रकृष्ट स्वेद वाला और अशचिय हो अन्दर से शरीर रहा करता है । इस शरीर में बत्तीस दाँत बताये गये हैं और बीस नाखून कहे जाते हैं ।६२। यह शरीर पित्त का कुड़व समझना चाहिये तथा इस शरीर को कफ का आधा ढकन मानना चाहिये । उसमें तीस पल बसा होती है और इसका आधा भाग कलल हुआ करता है ।६३।

वातार्बुदपलं ज्ञेयं पलानि दशमेदसः ।
पलत्रयं महारक्तं मज्जारक्ताश्चतुर्गुणाः ।।६४
शुक्रार्धं कुडवं ज्ञेयं तदर्धं देहिनाः बलम् ।
माँसस्य चैक पिण्डेन पलसाहस्रमुच्यते ।।६५
रक्तं पलशत ज्ञेयं विण्मूत्रं चा प्रमाणतः ।
इति देह गृहे राजन्वासः स्यान्नित्यमात्मनः ।।६६

अशुद्धं च विशुद्धस्य कर्मबन्ध विनिर्मितम् ।
शुक्रशोणित संयोगाद्देहः सञ्जायते क्वचित् ।।६७
नित्यं विण्मूत्रसंयुक्तस्तेनायमशुचिः स्मृतः ।
यथा वै विष्ठया पूर्णः शुचिः सान्तर्बहिर्घटः ।।६८
शौचेन शोध्यमानोऽपि देहोऽयमशुचिर्भवेत् ।
य प्राप्याति पवित्राणि पञ्चगण्य हवींषि च ।।६९
अशुचित्व प्रयान्त्याशु देहोऽमयशुचिस्ततः ।
हृद्यान्यप्यन्नपानानि यं प्राप्य सुरभीणि च ।।७०
अशुचित्वं प्रयान्त्याशु कोऽन्यः स्यादशुचिस्ततः ।
हे जनाः किं न पश्यध्वं यन्निर्याति दिने दिने ।।७१

इसमें अवुर्द परा बात दश पल मेद होता है। तीन पल महा रक्त होता है और उससे चौगुनी मज्जा तथा रक्त होता है ।६४। आधा कुट्टब मुक्र समझना चाहिये । इससे आधा बल इस शरीर में होता है। माँस का एक पिण्ड के साथ सहस्र पल कहा जाता है ।६५। सौ मल रक्त होता है तथा विष्ठा और मूत्र प्रमाण के अनुसार रहा करता है इस प्रकार का यह देहरूपी घर होता है जिसमें हे राजन् ! नित्य ही आत्मा का निवास होता है ।६६। इस परम विशुद्ध आत्मा का यह आवास गृह शरीर महान् अशुद्ध होता है तथा कर्मों के बन्धनों से ही इसका निर्माण हुआ करता है । शुक्र और शोणित (रज) के संयोग होने पर ही किसी समय में इस देह की समुत्पत्ति हुआ करती है ।६७। यह नित्य ही विष्ठा और मूत्र से सयुक्त रहता है इसी कारण से यह अत्यन्त अशुचि कहा गया हैं । जिस प्रकार से कोई घट (घड़ा) भीतर विष्ठा से परिपूर्ण होता है तो वह बाहिर से शुचि मालूम होता है वैसा ही यह शरीर होता है ।६८। चाहे शौच के द्वारा इसे शुद्ध भी किया जावे तो भी यह अशुचि (अपवित्र) ही रहता है । जिस शरीर में अत्यन्त पवित्र पञ्चगव्य और हवियाँ प्राप्त होती हैं वे भी शीघ्र वहाँ पहुँचकर

अशुचिता प्राप्त कर लिया करते हैं। यह देह फिर भी अशुचि ही रहा करता है। परम सुन्दर अन्न-पान और सुरभित पदार्थ भी जिस समय इस शरीर में पहुँचते हैं तो वे सभी तुरन्त ही अशुचिता को प्राप्त कर लिया करते हैं तो फिर बतलाइये ऐसा अशुचि अन्य कौन होगा ? हे मानवो ! क्या आप लोग यह नहीं देखा करते हैं कि जो दिन प्रतिदिन इस शरीर से निकला करता है ।।६८-७१।।

देहानुगो मलः पूतिस्तदाधारः कथं शुचिः ।
देहः संशोध्यमानोऽपि पञ्चगव्य कुशाम्बुभिः ।।७२
घृष्यमाण इवाङ्गारो निर्मलत्वं न गच्छति ।
स्रोतांसि यस्य सततं प्रवहन्ति गिरेरिव ।।७३
कफमूत्राद्यमशुचिः सदेहः शुध्यते कथम् ।
सर्वाशुचि निधानस्य शरीरस्य न विद्यते ।।७४
शुचिरेक प्रदेशोऽपि शुचिर्नस्याद्दतेऽपि वा ।
दिवावा यदि वा रात्री मृत्तोयैः शोध्यते करः ।।७५
यथापि शुचिभांग न स्यान्न विरज्यन्ति ते नराः ।
कायोऽयमग्र्यधूपाद्यैर्यत्नेनापि सुसंस्कृतः ।।७६
न जहाति स्वभावं हि श्वच्छमिव नामितम् ।
तथा जात्यैव कृष्णोर्णा न शुक्लोर्णा तु जायते ।।७७

इस देह का अनुग मल पूति दुर्गन्ध वाला होता है तो मल का आधार स्वरूप यह देह किस तरह से शुचि एवं पवित्र हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता है यह शरीर पञ्चगव्य का और कुशाओं के जल से भली-भांति सशोधित भी किया जावे तो भी यह घिसे हुए अङ्गार की भाँति किस प्रकार से निर्मलता को प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि इस के सभी स्रोत ऐसे हैं जो पर्वत के स्रोतों की तरह बराबर प्रवाहित होते ही रहा करते हैं ।७२-७३। कफ-मूत्र-मल आदि से अशुचि यह होते किस तरह शुद्ध हो सकता है। सभी अशुचि पदार्थों का घर यह देह

पर यह देह है, फिर इसकी शुचिता हो ही नहीं सकती है ।७४। इस सर्वदा अशुचि रहने वाले देह का एक भी कोई सा भाग शुचि नहीं हैं। दिन या रात्रि में मिट्टी और जल से हाथ शुद्ध किया जाता है तो भी वह शुचिता वाला नहीं होता है और वे मनुष्य विराजित नहीं होते हैं। यह शरीर बहुत बढ़िया धूप आदि उत्तम एव परम सुगन्धित पदार्थों के द्वारा अनेक यन्त्रों के अच्छी तरह सस्कार वाला भी किया जावे तो भी यह अपने स्वभाव का त्याग नहीं किया करता है जिस प्रकार से कुत्ते की पूँछ का स्वभाव टेड़ा रहना ही होता है, तो चाहे कितनी ही समय तक किसी से भी उसे दबाकर रख दिया जावे परन्तु इसे छोड़ते ही वह फिर टेढ़ी हो जायगी वैसी दशा इस देह की भी होती है। जो जाति से ही कृष्ण वर्ण वाली ऊन की बकरी या भेड़ होती है वह किसी भी उत्तमोत्तम उपाय से शुक्ल वर्ण की नहीं हो सकती है ।७५-७७।

सशोध्यमानापि तथा भूवेन्मूर्तिर्न निर्मला ।
जिघ्रन्नपि स्वदुर्गन्धं पश्यन्नपि मलं विकम् ।।७८
न विरज्यतिलोकोऽयं पीडयन्नपि नासिकाम् ।
अहो मोहस्यमाहात्म्य येन व्यामोहितं जगत् ।।७९
जिघ्रन्पश्यन्स्वकान्दोषान्कायस्य न विरज्यते ।
स्वदेहस्य गिवन्धेन विरज्येत नयो नरः ।।८०
विरागकारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यते ।
सर्वमेव जगत् पूतं देहमेवाशुचिः परम् ।।८१
यन्मलावयवस्पर्शाच्छुचिरप्यशुचिर्भवेत् ।
चन्धलेपापनोदाय शौच देहस्य कीर्तितम् ।।८२
द्वयस्यपामात्पश्चाद्भावशुचा विशुद्धयति ।
गङ्गातोयेन सर्वेण मृद्भारैर्गात्रलेपनैः ।।८३

भली भाँति से शोधित की हुई भी यह मूर्ति कभी भी निर्मल नहीं होती है। अपनी दुर्गन्ध को सूँघता हुआ भी तथा अपने मल को स्वयं

देखकर भी अपनी नासिका को पीड़ा देता हुआ भी यह लोक विरक्त नहीं होता है और उसी शरीर में इतना अधिक आसक्त बना हुआ रहता है—यही इस मोह की बड़ी महिमा है कि सम्पूर्ण जगत् इसके कारण व्यामोहित हो रहा है ।।७८।७६।। अपने मल दोषों को सूँघते और देखते हुए भी शरीर से वैराग्य नहीं होता है । जो अपनी देह की दूषित गन्ध से भी विरक्त नहीं होता है उसके वैराग्य होने का अन्य क्या कारण उपदिष्ट किया जावे । यह सम्पूर्ण जगत् पवित्र है किन्तु केवल यह शरीर ही परम अशुचि होता है ।। ८० ।। ८१ ।। जिस शरीर के मल के अवयव के स्पर्श से जो शुचि भी होता है वह भी अशुचि हो जाया करता है, गन्ध के लेपन को दूर करने के लिए इस देह का शौच बतलाया गया है ।। ८२ ।। दो के अपगम के पश्चात् भाव की शुद्धि से विशुद्ध होता है । मिट्टी के भार से गात्र पर लेपन से और गङ्गा के जल से शुद्धि करे ।।८३।।

मर्त्यो दुर्गन्धदेहोऽसौ भावदुष्टो न शुध्यति ।
तीर्थस्नानैस्तपोभिश्च दुष्टात्मा न च शुध्यति ।।८४
स्वमूर्तिः क्षालिता तीर्थं न शुद्धिमधिगच्छति ।
अन्तर्भाव प्रदुष्टस्य विशतोऽपि हुताशनम् ।।८५
न स्वर्गो नापवर्गश्च देहनिदहनं परम् ।
भावशुद्धिः परं शौचं प्रमाणं सर्वकर्मसु ।।८६
अन्यथालिङ्ग्यते कान्ता भावेन दुहितान्यथा ।
मनसा भिद्यते वृत्तिरभिन्नेष्वपि वस्तुषु ।।८७
अन्यथैव सती पुत्रं चिन्तयेदन्यथा पतिम् ।
यथा यथा स्वभावस्य महाभाग उदाहृतम् ।।८८
परिष्वक्तोऽपि यद्भार्या भावहीनां न कारयेत् ।
नाद्याद्विविधमन्नाद्यं रस्यानि सुरभीणि च ।।८९
अभावेन नरस्तस्माद्भावं सर्वत्र कारणम् ।

चित्तं शोधय यत्नेन किमन्यैर्वाह्यशोधनैः ।।९०
भावतः शुचि शुद्धात्मा स्वर्गं मोक्षं च विन्दति ।
ज्ञानमात्रम्भसा पुंसः सवैराग्यमृदा पुनः ।।९१

दुर्गन्ध पूर्ण देह वाला यह मानव जो भाव से भी दुष्ट हो तो वह कभी भी विशुद्ध नहीं होता है । जो दुष्ट आत्मा वाला मनुष्य है वह कितने ही तीर्थों को अटन करे और उन में स्नान भी भले ही करे और चाहे वह कितनी ही तपश्चर्या करे किन्तु क्योंकि उसमें दुष्टता भरी हुई है, अतः कभी शुद्ध हो ही नहीं सकता है ।। ४८ ।। तीर्थों के जल में उसने अपनी मूर्ति अर्थात् शरीर को ही तो धो लिया है उसके मलमूत्र के क्षालन करने से शुद्धि नहीं होती है जिस मानव का अन्तर्भाव दूषित होता है वह चाहे अग्नि को भी अन्दर क्यों न जलावे या स्वयं ही अग्नि में प्रवेश कर जावे तो भी उसकी शुद्धि नहीं होती है । इस देह के निर्दहन करने में स्वर्ग और अपवर्ग भी प्रमुखता नहीं रखते हैं । समस्त कर्मों में भाव की शुद्धि ही सब से प्रधान एवं प्रमाण शौच होता है ।।८५-८६।। भाव की महिमा बतलाते हुए कहते हैं कि संसार में पुरुष अपनी स्त्री और पुत्री दोनों से ही छाती मिलाकर आलिङ्गन किया करता है किन्तु दोनों के आलिङ्गन में भाव भिन्न होता है । अभिन्न वस्तुओं में भी मन के द्वारा भेद मान लिया जाता है यह वृत्ति प्रभाव होता है ।।८७।। सती साध्वी स्त्री भी अपने हृदय से लगाती हुई अपने पुत्र को दूसरे स्नेह पूर्ण भाव से आलिङ्गन किया करती हैं और अपने पति को प्रणय पूर्ण भाव से आलिङ्गन किया करती है । हे महाभाग ! यह स्वभाव का ही परम माहात्म्य होता है । जिसके विषय में मैंने उदाहरण किया है ।।८८।। अपनी माया में परिस्त्रक्त होता हुआ भी उसे भाव हीन नहीं करना चाहिए । विविध प्रकार के अन्न आदि पदार्थों को तथा परम सुगन्धित एवं रस युक्त पदार्थों का अशन नहीं करना चाहिए ।।८९।। भाव के बिना मनुष्य की शुद्धि नहीं होती है अतएव सबका निष्कर्ष होता है कि सर्वत्र भाव ही एक परम

प्रमुख कारण होता है। इसी भाव के द्वारा अपने चित्त का यत्न से शोधन करना चाहिये और ये अन्य जो बाहिरी शोधन के प्रकार होते हैं वे सब व्यर्थ हैं उनसे कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। जिस की भावना पूर्णतया विशुद्ध होगी वह शुद्ध आत्मा वाला पुरुष स्वर्ग तथा मोक्ष दोनों की प्राप्ति किया करते हैं। ज्ञान ही उसके लिए जल होता है और वैराग्य ही मिट्टी मौजूद होती है। इन ही वस्तुओं से वह शुद्ध भाव वाला पुरुष अपनी आत्मा को ऐसा शुद्ध कर लिया करता है कि फिर उसे शेष करना ही नहीं रहा करता है ॥९०॥ ॥९१॥

संसारे क्लिश्यते तेन नरो लोभवशानुगः ।
गर्भस्मृतेरभावे च शास्त्रमुक्तं शिवेन च ॥९२
तद्दुःखकथनार्थाय स्वर्गमोक्ष प्रसाधकम् ।
येन तस्मिञ्छिवे ज्ञाते धर्मकामार्थसाधने ॥९३
न कुर्वन्त्यात्मनःश्रेयस्तदत्र महदद्भुतम् ।
अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्ये दुःख महत्पुनः ॥९४
इच्छन्नपि न शक्नोति वक्तुं कर्तुं न सत्कृती ।
दन्तजन्ममहद् दुःखं लौल्येन वायुना तथा ।
बालरोगश्च विविधैः पीडा बालग्रहैरपि ।
तृड्बुभुक्षा परीताङ्गः क्वचित्तिष्ठति गच्छति ॥९५
विण्मूत्र भक्षणाद्यं च मोहाद्बालः समाचरेत् ।
कौमारः कर्णवेधेन मातापित्रोश्च ताडनैः ॥९६
अक्षराध्ययमाद्यैश्च दुःखं गुर्वादि शासनात् ।
प्रमत्तेन्द्रियवृत्तेश्च कामराग प्रपीडिनः ॥९७
रोगार्दितस्य सततं कुतः सौख्यं हि यौवने ।
ईर्ष्यार्थी सुमहद्दुखं मोहाद्दुखं प्रजायते ॥९८
तत्रस्यात्कुपितस्यैव रागो दुःखाय केवलम् ।

रात्रौ न विन्दते निन्द्रा कामाग्निपरिखेदितः ।।६६
द्विवाचापि कुतःसौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया ।
व्यवायाश्रितदेहस्य ये पुंसः शुक्रबिन्दवः ।।१००

इस संसार में मानव लोभ के वश में पड़ कर उसी का अनुयायी सदा रहता है और अहर्निश क्लेश भोगता रहता है । गर्भ की स्मृति का अभाव हो जाया करता है कि उस दशा में कितने घोर कष्ट प्राप्त किये थे और उससे यही उद्धार होने का समय भी है—यही इन तीर्थों का माहात्म्य होता है । भगवान शिव ने यह शास्त्र कहा है ।। ६२ ।। उस दुःख के कथन के लिए ही ये स्वर्ग और मोह प्रसाधक होते हैं जिसके द्वारा उसमें धर्म-अर्थ और काम के साधन स्वरूप शिव का ज्ञान हो जाता है । ऐसा हो जाने पर भी जो प्राणी अपनी आत्माश्रेय का सम्पादन नहीं किया करते हैं--यह ही यहां पर एक बहुत अद्भुत बात है इन्द्रियों की वृत्ति अव्यक्त होने के कारण ही बाल्यकाल में उसे महान् दुःख हुआ करता है ।। ६३ ।। ।। ६४ ।। छोटा बच्चा यदि हृदय से चाहता है तो वह कुछ भी करने में समर्थ नहीं होता है और न वह सत्कृती कुछ बोल ही सकता है । अति चंचल वायु के द्वारा दाँतों के निकलने के समय में उसे महान् पीड़ा का अनुभव होता है ।।६५।। अनेक प्रकार के बाल रोग हुआ करते हैं उनसे भी उसे बहुत भारी पीड़ा होती है । अनेक बालग्रह हैं उन से भी उसे महान् दुःख हुआ करता है । भूख और पिपासा से हरीत अंक वाला वह किसी जगह पर स्थित होता है तो कहीं पर गमन किया करता है । वह बालक मोह से आरम्भ में विट और मूत्र का भक्षण किया करता है । उस दशा में इसका ऐसा ही समाचरण होता है । जिस समय में कुमार होता है तो उसके कान छिदाये जाते हैं उससे भी उसे पीड़ा होती है और माता-पिता की ताड़नायें भी उसे सताती हैं ।।६६।। जब उसे पढ़ने को बिठाया जाता है तो अक्षरों के

अध्ययन करने में कष्ट होता है तथा गुरु वर्ग के शासन से भी पीड़ा का अनुभव हुआ करता है। फिर जब कुछ और बड़ा हो जाता है तो उसकी इन्द्रियों का प्रसाद उसे घेर लेता है और प्रमत्त इन्द्रियों की वृत्ति से मनमानी किया करता है और प्रपीडित होता रहता है ॥९७॥ यौवन में आँखों के सामने अँधेरा-सा छा जाता है। बहुत-से ऊँट पटांग कार्य किया करता है जिनका परिणाम उसे अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाना ही होता है। युवावस्था में भी उसे सुख नहीं मिलता है। ईर्ष्या से और मोह से महान् कष्ट होता है जो कि उस अवस्था में उसे घेरे हुए रहते हैं ॥९८॥ वह अत्यन्त क्रोध में भर जाया करता है जब कि उसके मन के विपरीत कुछ भी होता है क्योंकि उस समय में औचित्य-अनौचित्य का विचार तो बिल्कुल होता ही नहीं है। बहुत से रोगों की उत्पत्ति हो जाने पर दुःख ही दुःख होते हैं क्योंकि रोग तो केवल दुःख ही के कारण हुआ करते हैं। काम वासना की अग्नि धधकती रहा करती है इस कारण यौवन में रात्रि में भी उसे निद्रा नहीं होती है ॥९९॥ दिन के समय में तो चैन मिल ही नहीं सकता है क्योंकि धन के कमाने की चिन्ता में वह सदा व्यस्त रहता है। स्त्री के प्रसङ्ग में ही रात दिन मन को लगाये रखने वाले पुरुष के शरीर से शुक्र की विन्दुओं का जो पात होता है उससे वह आनन्द का अनुभव किया करता है किन्तु उससे वास्तव में कुछ भी सुख नहीं होता प्रत्युत मौत को निकट ही में न्यौता देना ही है ॥१००॥

गर्भवासे महद्दुखं जन्मदुःख तथा नृणाम् ।
सुबाल्यदुःख चाज्ञानं कौमारे गुरुशासनम् ॥१०१
यौवने कामरागाभ्यां दुःखं चैवेर्ष्यया पुनः ।
कृषिवाणिज्य सेवाद्यै र्गोरक्षादिक कर्मभिः ॥१०२
वृद्धभावे च जरया व्याधिभिश्च प्रपीडनात् ।
मरणे च महद्दुखं प्रार्थनाया सतोऽधिकम् ॥१०३

राजाग्नि जलदाघात चौरशत्रु भयं महत् ।
अर्थस्यार्जन रक्षायाँ भय नाशे व्यये पुनः ॥१०४

कार्पण्यं मत्सरो दम्भो धनाधिक्ये क्षयं महत् ।
अकार्ये सम्प्रवृत्तिश्च दुःखानि धनिनां सदा ॥१०५

जिस समय में यह प्राणी गर्भवास करता है तभी से इसको दुःख भोगना पड़ता है और गर्भवास में इसे महान् पीड़ा होती है किन्तु जन्म ग्रहण करने पर एकदम भूल जाता है। फिर जब यह जन्म लेता है तो बाहर निकलने में भी इसको घोर वेदना होती है। बचपन में पूर्ण-तया अशक्त एवं अबोध दशा रहती है उसमें भी इसको दुःख होता है। कुमारावस्था में गुरुओं के शासन में रहने पर बड़ा कष्ट होता है।१०१। जब यौवन की अवस्था आती है तो इसको काम और राग सताते हैं, आँखें चौंधिया जाती हैं और कामवासना में डूब जाता है तथा साँसा-रिंक भोगों से बहुत अधिक आसक्ति होती है और ईर्ष्या भी उत्पन्न हो जाती है इनसे भी इसे दुःख होता है उसे मिथ्या सुख का आभास मात्र होता है। फिर उपार्जन के कर्मों में कृषि-व्यवसाय-सेवा गोपालन आदि में व्यस्तता से कष्टों का अनुभव होता है ॥१०२॥ बुढ़ापा तो दुःखों के भोगों के लिये प्रसिद्ध ही है। जरा से शरीर-इन्द्रियाँ सभी अशक्त होती हैं, पराधीनता भोगनी पड़ती है—बहुत सी व्याधियां घेर लेती हैं ऐसी दशा में दुःख ही दुःख होता है। मौत के समय में जब यह प्राणी इस शरीर को छोड़ता है बड़ा कष्ट उसे होता है। प्रार्थना में उससे भी अधिक दुःख होता है ॥१०३॥ इस मानव जीवन में सुख तो कभी होता ही नहीं है। राजा, अग्नि जलद इनके आघातों का दुःख होता है। चोर-शत्रु आदि का भय बराबर बना रहता है। धन भी सुख का साधन नहीं है जिसे सभी समझा करते हैं। धन के पहिले तो कमाने में ही दुःख होता है क्योंकि कष्ट उठाये बिना धन की कमाई कभी नहीं हुआ

करती है। जब कुछ कमाकर धन सञ्चित कर लिया जाता है फिर उसकी रक्षा करने में बहुत कष्ट उत्पन्न होता है। सर्वदा उसके नष्ट होने का भय मन में लगा रहता है। व्यय करने में भी सञ्चित धन को निकलते देखकर जी टूटता है इससे भी दुःख होता है ॥१०४॥ मनुष्य में धन के एकत्रित हो जाने पर बड़ी कजूसी आ जाती है। कृपणता के साथ उसमें मत्सरता और दम्भ भी भर जाया करते हैं। धन की अधिकता में सुख नहीं बल्कि बड़ा भारी भय उत्पन्न हो जाता है। धनी लोग धन का व्यय करना नहीं जानते हैं। जो काम नहीं करने योग्य होते हैं उनमें ही उनकी प्रवृत्ति हुआ करती है और उन्हीं में धन खर्च किया करते हैं अतएव निर्धन यह समझते हैं कि धनी सुख-सम्पन्न है किन्तु धनियों को सदा दुःख ही दुःख रहा करते हैं।१०५।

भृत्यवृत्तिः कुसीदं च दासत्वं परतन्त्रता।
इष्टानिष्टाभियोगश्च संयोगाश्च सहस्रशः ॥१०६
दुर्भिक्ष दुर्भगत्वं च मूर्खत्व च दरिद्रता।
अधरोत्तरभागश्च नारकं राजविक्रमम् ॥१०७
अन्योन्याभिभवं दुःखमन्योन्यतो भयं महत्।
अन्योन्याच्च प्रकोपश्च राज्ञो दुःखं महीभृताम् ॥१०८
अनित्यताश्च भावानां कृतकाम्बस्य देहिनः
अन्योन्य मर्मभेदाच्च अन्योन्यकरपीडनात् ॥१०९
लुब्धाश्च पापभेदेन अन्योन्यस्य च भक्षणम्।
इत्येवमादिभिर्दुःखैर्यस्माद् भीतं चराचरम् ॥११०
क्रोधेन च जयाँ देवीं योगज्ञाँ शप्तवान्प्रभुः।
कामक्रोधौ स्थितौ यत्र तत्र दोषास्तदात्मकाः ॥१११
दुःखैराकुलितं ज्ञात्वा निर्वेद परमं व्रजेत्।
निर्वेदाच्च विरागः स्याद्विरागाज्ज्ञानसम्भवः ॥११२
ज्ञानेन तत्परं ज्ञानं शिवंमुक्तिमवाप्नुयात्।

समस्तदुःख निर्मुक्तः स्वस्थात्मा स सुखी तदा।
सर्वज्ञः परिपूर्णश्च मुक्त इत्यभिधीयते ।।११३

इस संसार की यात्रा में मानव अनेक प्रकार के कर्मों में व्यस्त रहा करता है कोई भृत्य वृत्ति करता है तो कोई रुपया ऋण रूप में देकर उसका ब्याज खाता है। किसी को दासता से पेट पालन करना होता है तो कोई जीवन भर किसी की पराधीनता में ही पड़ा रहा करता है। यहाँ पर बहुत से कष्ट और हैं जो नहीं अभिष्ट होते हैं ऐसे अनिष्ट योगों का संयोग एवं सम्पर्क भी होता रहता है जो कि सहस्रों ही होते हैं ।।१०६।। कभी अकाल पड़ जाता है, कभी दुर्भाग्य जनित पीड़ा होती है। संसार में मूर्ख रह जाना - गरीबी का आना— कभी एक दम निम्न दशा में पड़ जाना—कभी कुछ अच्छी स्थिति बनाना—नरक और राजा का--साविक्रम होना ये सब अनेक दशाऐं आया करती हैं। इनमें एक दूसरे का तिरस्कार करते हैं तो दुःख होता है और एक दूसरे से भयभीत रहता है—यह भी दुःख है। एक दूसरे पर महान् कोप किया करता है। राजाओं को अन्य राजाओं से पीड़ा होती है ।।१०७-१०८।। यहाँ पर संसार में कृत काम्य इस देहधारी के भावों की भी नित्यता नहीं होती है। ये अन्य अन्य के परस्पर मर्म भेदन करने वाले होते हैं और एक का दूसरे के हाथ से उत्पीड़न भी होता है ।।१०९।। जो लुब्धक होते हैं वे पापों के भेद से अन्योन्य परस्पर में एक दूसरे का भक्षण करने वाले हुआ करते हैं। इस प्रकार के बहुत-से दुःखों का समुदाय है जिनसे यह चराचर जगत् भयभीत रहता है ।।११०।। प्रभु ने क्रोध से ही योग की ज्ञात जया देवी को शाप दे दिया था। जहाँ पर काम और क्रोध स्थित हैं वहाँ पर उसी के स्वरूप वाले दोषी भी हुआ करते हैं ।।१११।। इस प्रकार के बहुत--से दुःखो से अपने आपको व्याकुल समझ करके परम निर्वेद को प्राप्त करना चाहिए। अर्थात् उत्पीड़ित होकर

वैराग्य होना चाहिए। संसार में कुछ भी सार नहीं है—इस प्रकार का ज्ञान ही निर्वेद कहा जाता है। जब ऐसा निर्वेद हो जाता है तो फिर सभी सांसारिक पदार्थों के उपयोग से विरक्तता आ जाया करती है और वैराग्य हो जाने पर पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है ।।११२।। ज्ञान के द्वारा सर्वोपरि तत्व का भी ज्ञान होता है जो कि परम ज्ञान है और शिव स्वरूप है। इसके होने पर मुक्ति की प्राप्ति होती है। जब सब प्रकार के दुःखों से निवृत्ति हो जाती है तो वह स्वस्थात्मा होता है और तभी सुखी भी होती है। वह फिर सर्वज्ञ एवं परिपूर्ण तथा मुक्त कहा जाता है ।।११३।।

३ स्वर्ग खण्डम्

।। महर्षि शौनक की जिज्ञासा ।।

नमामि गोविन्दपदारविन्दं सदेन्दिरावन्दितमुत्तमाढचम् ।
जगज्जानानां हृदि संनिविष्टं महाजनैकायनमुत्तमम् ।।१
एकदा मुनय सर्वे ज्वलज्ज्वलनसन्निभाः ।
हिमवद्वासिनो वेदवेदाङ्गपरिनिष्ठिताः ।।२
त्रिकालज्ञा महात्मानो नानापुण्याश्रमाश्रयाः ।
महेन्द्राद्रिरता ये च ये च विन्ध्यनिवासिनः ।।३
येऽर्बुदारण्यनिरताः पुष्करारण्यवासिनः ।
श्रीशैलनिरता ये च कुरुक्षेत्रनिवासिनः ।।४
धर्म्मारण्यता ये च दण्डकारण्यवासिनः ।
जम्बूमार्गरता ये च ये च सत्यनिवासिनः ।।५
एते चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयोऽमलाः ।
नैमिषं समुपायाताः शौनकं द्रष्टुमुत्सुकाः । ६

सर्व प्रथम द्वितीया खण्ड के आरम्भ में शिष्टाचार के अनुसार मङ्गलाचरण किया जाता है, और जो नमस्कारात्मक है। पुराण का रचयिता मुनि कहता है कि मैं श्री गोविन्द के चरणारविन्दों में अपना प्रणाम समर्पित करता हूँ। प्रभु के चरण कमलों की वन्दना सर्वदा महा लक्ष्मी किया करती हैं। यह चरण उत्तम सुलक्षणों से सुसभ्य नर हैं। जगत् के समस्त जनों में हृदय में सन्निविष्ट रहा करते हैं अर्थात् अन्तर्यामी के स्वरूप से प्रभु सभी के अन्दर विराजमान

रहते हैं । जो महा पुरुष होते हैं उनका हृदय विशुद्ध निर्मल होने के कारण इनका एक मात्र आवास गृह रहता है। प्रभु के चरणारविन्द सर्वोत्तम हैं उन्हीं को मेरा प्रणाम है ॥ १ ॥ एक समय में जलती हुई अग्नि के समान तेजस्वी, वेदों तथा वेदों के समस्त अङ्ग शास्त्रों में पूर्णतया परिनिष्ठित, हिमालय पर्वत में निवास करने वाले समस्त मुनिगण जो कि त्रिकाल की बात के ज्ञाता थे महान् उच्च आत्मा वाले थे और उनके परम पवित्र आश्रयों का आश्रय ग्रहण करने वाले थे नैमिषक्षेत्र में शौनक मुनि के दर्शन प्राप्त करने की उत्सुकता से वहां आये थे। जो महेन्द्र आदि पर्वतों में रहते थे और विन्ध्याचल में निवास किया करते थे वे सब भी नैमिष क्षेत्र में शौनक जी से मिलने को आये थे ॥ २ ॥ ३ ॥ जो अर्बुद पर्वत के अरण्य में निवास किया करते थे, जो पुष्कर वन में आवास बनाये हुये थे, जो श्री शैल पर्वत पर विराजमान रहते थे, जो कुरुक्षेत्र में रहा करते थे, जो धर्मारण्य के निवासी थे जो दण्डकारण्य में अपना आवास किया करते थे और जो जम्बू के रहने वाले थे तथा जो सत्य के निवास करने वाले थे एवं अन्य जो बहुत से विमल मुनिगण अपने शिष्यों के सहित थे वहाँ पर नैमिष क्षेत्र से उपस्थित हुए थे और शौनक ऋषि के दर्शन करने की इच्छा वाले थे ॥४॥५॥६॥

तं पूजयित्वा विधिवत्तेन ते च सुपूजिताः ।
आसनेषु विचित्रेषु वृस्यादिषु यथाक्रतम् ॥७
शौनकेन प्रदत्तेषु आसीनास्ते तपोधनाः ।
कृष्णाश्रिताः कथाः पुण्याः परस्परमथाब्रुवन् ॥८
कथान्ते ततस्तेषां मुनीनां भाविवातात्मनाम् ।
आजगाम महातेजाः सुतस्तत्र महाद्युति ॥६
व्यासशिष्यः पुराणज्ञो रोमहर्षणसंज्ञकः ।
तान्प्रणम्य यथान्यायं स तैश्चैवाऽभिपूजितः ॥१०

उपविष्टं यथायोग्यं शौनकाद्या महर्षयः ।
व्यासशिष्यं सुखासीनं सुतं वै रोमहर्षणम् ।
तं पप्रच्छुर्महाभागाः शौनकाद्यास्तपोधनाः ।।११

उन समस्त मुनिगण ने वहाँ शौनक ऋषि का अर्चन किया था और उन शौनक ने भी विधिपूर्वक उन समागत मुनि का पूजन किया था वृष्यादि विचित्र आसनों पर जो कि शौनक महर्षि के द्वारा दिये गये थे वे मुनिगण सभी स्थित हो गये थे। वहाँ पर बैठकर उन सब ने आपस में भगवान कृष्ण के समाश्रय वाली परम पुण्यमयी कथाऐं बोलना आरम्भ कर दिया था। ७। । ८। जिस समय में उन भावित आत्मा वाले मुनियों की कथा की समाप्ति हुई थी उसी समय में महान् श्रुति वाले और अत्यधिक तेजस्वी सूत जी वहाँ पर आ गये थे। ९। सूत जी वेद व्यास जी के प्रमुख शिष्य थे और समस्त पुण्यों के प्रखर पण्डित थे। इनका शुभ नाम रोमहर्षण था । सूत जी ने वहाँ आकर उन समस्त एकत्रित हुए मुनिगण को प्रणाम किया था और फिर न्यायानुसार उन सब मुनियों ने भी सूत जी का अभिपूजन किया था । १० । जिस समय मैं सभी लोगों के निवेदन पर व्यासजी के शिष्य रोमहर्षण जी सुखपूर्वक वहाँ बैठ गये तो तप के धर्म वाले महान् भाग से सुसम्पन्न शौनक आदि महर्षियों ने सूत जी से पूछा था ।। ११ ।।

पौराणिक ! महाबुद्धे ! रोमहर्षण ! सुव्रत !
त्वत्तः श्रुता महापुण्याः पौराणिक्यः कथाः पुरा ।।१२
साम्प्रतं च प्रवृत्ताः स्म कथायां सक्षणा हरेः ।
स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।।१३

पुनः पुराणमाचक्ष्व हरिवार्तासमन्वितम् ।
हरेरन्या कथा सूत श्मशानसदृशी स्मृता ॥१४
हरिस्तीर्थस्वरूपेण स्वयं तिष्ठति तच्छ्रुतम् ।
तीर्थानां पुण्यदातृणां नामानि किल कीर्तय ॥१५
कुत एतत्समुत्पन्नं केन वा परिपाल्यते ।
कस्मिन्विलयमभ्येति जगदेतच्चराचरम् ॥१६
क्षेत्राणि कानि पुण्यानि के च पूज्याः शिलोच्चयाः ।
नद्यश्च का पराः पुण्या नृणां पापहराः शुभाः ॥१७
एतत्सर्वं महाभाग कथयस्व यथाक्रमम् ॥१८

ऋषियों ने कहा—हे रोमहर्षण जी ! आपके व्रत तो परम सुन्दर हैं, आप पुराणों में महान् मनीषी हैं तथा आप महान् बुद्धि वाले हैं। पहिले आपसे हमने पुराणों की महान् पुण्यमयी कथाऐं सुनी हैं । इस समय में भी हम लोग सब यहाँ पर भगवान् की कथाओं के श्रवण करने के लिये उत्सुक होकर प्रवृत्ति वाले हैं क्योंकि इस संसार में मनुष्यों का वही सबसे श्रेष्ठ धर्म एवं कर्त्तव्य होता है कि जिससे भगवान में उनको भक्ति होवे ॥ १२–१३ ॥ हे भगवन् ! अब आप कृपा करके फिर पुराणों की कथाऐं हम सबको श्रवण कराइये जिसमें भगवान हरि की वार्त्ताऐं होवें । हे सूत जी ! भगवान् हरि की कथा के अतिरिक्त जो भी कथा हैं वे सब तो श्मशान के ही समान हुआ करती हैं। भगवान् हरि तो स्वयं ही तीर्थ के स्वरूप में स्थित होते हैं—ऐसा सुना है। कृपा करके जो पुण्य के प्रदान करने वाले तीर्थ होते हैं उनके भी सुन्दर नामों का श्रवण कराइये ॥१४॥ ॥ १५ ॥ यह कहाँ से सम्पूर्ण चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है ? किसके द्वारा इसका पालन किया जाता है और इसका विलय किसमें होता है ? ॥ १६ ॥ कौन से पुण्य क्षेत्र हैं और कौन

से शिलोच्च (गिरिवर) पूज्य होते हैं ? नदियों में कौन-सी नदियाँ प्रधान होती हैं और पुण्यमयी होती हैं जो कि पापों के हरण करने वाली शुभ मानी गयी हैं ।।१७।। हे महाभाग ! यह सब क्रम के अनुसार आप हमको बतलाइये ।।१८।।

साधु साधु महाभागा साधु पृष्टं तपोधनाः ।
तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि पुराणं पद्मसंज्ञकम् ।।१९
पाराशय परमपुरुषं विश्ववेदैकयोनिं ।
विद्याधारं विपुलमतिदं देदवेदान्तवेद्यम् ।।२०
शश्वच्छान्त स्वसतिविषयं शुद्धतेजो विशालं ।
वेदव्यासं विततयशसं सर्वदाऽहं नमामि ।।२१
तत्राऽऽदौ सृष्टिखण्ड स्याद् भूमिखण्डं ततः परम् ।
तृतीयं स्वर्गखण्डं च चतुर्थं ब्रह्मखण्डकम् ।।२२
पातालं पञ्चमं खण्डं षष्ठमुत्तरमेव च ।
क्रियाखण्ड सप्तम स्यादित्येव खण्डसप्तकम् ।।२३
यस्मात्सर्वप्रयत्नेन पाद्मं श्रृणुत मन्मुखात् ।
तत्रा दिखण्डं वक्ष्यामि पुण्यं पापविनाशनम् ।
श्रृण्वन्तु मुनयः सर्वेसशिष्यास्त्वत्र ये स्थिताः ।।२४

सूत जी ने कहा—हे महा भागो ! आप लोग तो परम तपस्वी हैं आपने यह बहुत ही अच्छा प्रश्न पूछा है । उसको प्रणाम करके अब हम पद्म नाम वाला पुराण आप लोगों को बतलाता हूँ ।। १९ ।। पराशर मुनि के पुत्र, परम पुरुष, विश्व वेद के योनि अर्थात् पत्ति स्थान, विद्या के आधार, विपुल बुद्धि प्रदान करने वाले, वेदों का और वेदान्त के द्वारा जानने के योग्य निरन्तर शान्त स्वरूप वाले अपनी मति के अनुसार विषय वाले, शुद्ध तेज से विशाल, वितत यश वाले श्री वेद व्यास भगवान को मैं सर्वदा प्रणाम करता हूँ ।।१९-२०-२२।। इस पद्म पुराण में सबसे आदि में जो खण्ड है उसका नाम सृष्टि

खण्ड है। इसके पश्चात् दूसरा खण्ड भूमि खण्ड नाम से विख्यात है। तृतीय खण्ड का नाम स्वर्ग खण्ड है तथा चौथा खण्ड ब्रह्म-खण्ड नाम से प्रसिद्ध है ॥ २२ । पञ्चम खण्ड का नाम पाताल खण्ड है। छठा उत्तर खण्ड है सातवें खण्ड का नाम क्रिया खण्ड है। इस प्रकार से कुल सात खण्ड हैं ॥ २३ ॥ इस लिए सब प्रयत्नों से मेरे मुख के द्वारा इस पद्म पुराण का आप सब लोग अब श्रवण करें। अब सब से पूर्व मैं आदि खण्ड को बतलाता हूँ जो परम पुण्यमय तथा सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला है। मुनिगण ! आप सभी लोग जो शिष्यों के सहित यहाँ पर स्थित हैं इस पद्म पुराण को सुनो ॥२४॥

॥ ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति ॥

आदिसर्गमह तावत्कथयामि द्विजोत्तमाः ।
ज्ञायते तेन भगवान्परमात्मा सनातनः ॥१
जगतः प्रलवादूर्ध्वंनासीत्किञ्चिद् द्विजोत्तमाः ।
ब्रह्मसंज्ञमभूदेकं ज्योतिर्वै सर्वकारकम् ।।२
नित्यं निरञ्जन शान्तं निर्मल नित्य निर्मलम् ।
आनन्दसाकरं स्वच्छं यत्कांङ्क्षन्ति मुमुक्षवः ॥३
सर्वज्ञं ज्ञानरूपत्वादनन्वमजमव्ययम् ।
अविनाशि सदास्वच्छमच्युतं व्यापक महत् ॥४
सर्गकाले तु सम्प्राप्ते ज्ञात्वा तज्ज्ञानरूपकम् ।
आत्मलीनं विकारं च तत्सृष्टुमुपचक्रमे ॥५
तस्मात्प्रधानमुद्भूतं ततश्चापि महानभूत् ।
सात्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ॥६

श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजोत्तया ! मैं अब आदि सर्ग का वर्णन करता हूँ, जिसके द्वारा सनातन भगवान् परमात्मा का ज्ञान होता है। ॥१॥ हे श्रेष्ठ द्विजगण ! इस जगत के प्रलय के पूर्व कुछ भी नहीं था। केवल एक ब्रह्म संज्ञा वाली सब कुछ को करने वाली ज्योति ही थी ॥२॥ वह ब्रह्मात्मक ज्योति नित्य थी, निरञ्जन, परम शान्त, निर्मल और सर्वदा निर्मल आनन्द सागर अर्थात् आनन्द से पूर्णतः परिपूर्ण और नितान्त स्वच्छ थी, जिसकी मोक्ष की कामना रखने वाले पुरुष सदा इच्छा क्रिया करते हैं ॥ ३ ॥ उस ब्रह्म नामक ज्योति के स्वरूप को बतलाते हुए कहते हैं कि वे सर्वज्ञ हैं, उनका स्वरूप ज्ञान रूप है, अव्यय है अर्थात न तो उसका जन्म ही हुआ और न उसका नाश का क्षण ही होता है विनाश रहित है। सदा सर्वदा स्वच्छ है और च्युति से शून्य है। सर्व व्यापक है एवं महान है ॥४॥ जिस समय मैं इस विशाल विश्व का सृजन करने का समय उपस्थित होता है अर्थात् जब भी उसकी इच्छा ऐसी होती है कि विश्व जगत् को समुत्पन्न किया जावे तो वही ब्रह्मात्मक ज्योति जिसका कि केवल ज्ञान ही स्वरूप है अपने आप म लीन विकारों को जानकर इस विश्व की रचना करने का उपक्रम किया करती है ॥५॥ उस समय में उस ब्रह्म से प्रधान उत्पन्न होता है, उस अव्यक्त प्रधान से महत् होता है जो महत् तीन प्रकार का होता है— सात्विक, राजस और तामस ये तीन उसके भेद हैं। जिसमें सत्वगुण होता है वह सात्विक, रजोगुण होता है वह राजस और तमोगुण होता है वह तामस कहा जाता है। इसी का नाम त्रिगुणात्मिका प्रकृति कहा जाता है ॥६॥

प्रधानेनावृतो ह्येव त्वचावीजमिवावृतम् ।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ॥७॥

त्रिविधोऽयमहङ्कारो महत्तत्त्वादजायत ।
यथाप्रधानेन महान्महता स तथावृत्तः ॥८
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः ।
ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् ॥९
शब्दमात्रं तथाकाशं भूतादिः समावृणोत् ।
शब्दमात्रं तथाऽऽकाशं स्वर्शमात्रं ससर्ज ह ॥१०
बलवानभवद्वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः ।
आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ॥११
ततोवायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज हे ।
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ॥१२
स्पर्श मात्रस्तु वै वायूरूपमात्रं समावृणोत् ।
ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ॥१३
सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसमात्राणि तानि तु ।
रसमात्राणि चाम्भांसि रूपमात्रं समावृणोत् ॥१४

इस रीति से यह अहंकार तीन प्रकार का है जो उस महत्तत्व से समुत्पन्न होता है । ब्रह्म से प्रधान, प्रधान से महत्, महत् से अहंकार की उत्पत्ति उस सृजन के समय में हुआ करती है । जिस तरह प्रधान से महत् आवृत्त होता है वैसे ही महत् से अहंकार समावृत हुआ करता है ।८। यह फिर भूतादि की बिकृति को करता हुआ सबसे पूर्व शब्द-तन्मात्रा को उत्पन्न किया करता है । शब्दतन्मात्रा से शब्द ही जिसका गुण या लक्षण है उस आकाश का सृजन करता है ।९। भूतादि शब्द तन्मात्रा तथा आकाश को समावृत करता है । शब्दतन्मात्रा तथा आकाश स्पर्श तन्मात्रा का सृजन करते हैं ।१०। वायु बहुत बलवान् है और स्पर्श ही प्रधान गुण होता है—ऐसा माना गया है । आकाश, शब्दत-न्मात्रा को समावृत करता है ।११। फिर विकार को प्राप्त हुआ वायु रूप तन्मात्रा का सृजन किया करता है । उस वायु से ज्योति की समुत्पत्ति होती है जिससे गुण रूप ही होता है ।१२। स्पर्श तन्मात्रा और वायु रूप तन्मात्रा को समावृत किया करता है । फिर ज्योति विकृत

होता हुआ रसतन्मात्रा का सृजन किया करता हैं। इसके अनन्तर जल की समुत्पत्ति होता है। जिसका गुण केवल रस ही होता है। रस तन्मात्रा और जल रूप तन्मात्रा को समावृत्त किया करते हैं।१३-१४।

विकुर्वणानि चाम्भांसि गन्धमात्रं ससर्जिरे ।
तस्माज्जाता मही चेयं सर्वभूतगुणाधिका ॥१५॥
ससंघातोयतस्तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः ।
तस्मिस्तस्मिस्तु तन्मात्रात्तेन तन्मात्रता स्मृता ॥१६॥
तन्मात्राण्यविशेषाणि विशेषाः क्रमशोऽपराः ।
भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्करान्तु तामसात् ॥१७॥
कीर्तितस्तुसमासेन मुनिवर्यास्तपोधनाः ।
तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ॥१८॥
एकादशं मनश्चात्र कीर्तित तत्वचिन्तकैः ।
ज्ञानेन्दियाणिपञ्चाऽत्रपञ्चकर्मेन्द्रिताणि च ॥१९॥
तानि वक्ष्यामि तेषां च कर्माणि कुलपावनाः ।
श्रवणं त्वक्चक्षुजिह्वा नासिक चैव पञ्चमी ॥२०॥

विकार को प्राप्त होता हुआ जल गन्ध तन्मात्रा का सृजन करता है उस गन्धतन्मात्रा से इस पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। वह सब भूतों के गुणों वाली अधिक होती है। जिससे वह संघात होता है उसका गुण गन्ध ही बतलाया गया है। उस-उसमें जो तन्मात्राऐं होती हैं वे उस उसी से समावृत्त हुआ करती है। १५-१६। ये तन्मात्राऐं अविशेष है और विशेष दूसरे क्रम से होते हैं। यह भूत तन्मात्राओं का सर्ग तामस अहंकार से बताया गया है।१७। हे मुनिवरो! आप तो तप के ही धन वाले परम तपस्वीजन हैं मैं संक्षेप में बतलाता हूँ कि ये इन्द्रियाँ तैजस होती हैं और इनके वैकारिक दश अधिष्ठातृ देवता होते हैं।१८। जो तत्वों के चिन्तन करने वाले महा पुरुष विद्वज्जन है वे यहाँ पर दश इन्द्रियों के अतिरिक्त ग्यारहवाँ मन बतलाया गया है। इन दश इन्द्रियों में पाँच इन्द्रियों को ज्ञानेन्द्रियाँ कहा जाता गया है क्योंकि उनके द्वारा भिन्न-भिन्न ज्ञान का अनुभव होता है और पाँच कर्मेन्द्रियाँ

कही जाती हैं क्योंकि उनसे केवल कर्म्म ही किया जाता है।१९। अब हम उन सम्पूर्ण इन्द्रियों को बतलाते हैं तथा उनके हे कुल पावनो! कर्म्मों को भी बतलाया जाता है। श्रवण-त्वचा-चक्षु-और नासिका ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती है।२०।

शव्दादिज्ञानसिद्धचर्थं बुद्धियुक्तानि पञ्च वै।
पायूपस्थं हस्तपादौ कीर्तिता वाक्चपंचमी ॥२१॥
विसर्गानन्दनादानगत्युक्तिकर्म मत्स्मृतम्।
आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथ्वी तथा ॥२२॥
शब्दादिभिगुर्णैर्विप्राः संयुक्ता उत्तरोत्तरैः।
नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहृति विना ॥२३॥
नाशक्नुवन्प्रजाः स्रष्टुमसमागत्य कृत्स्नशः।
ममेत्यान्योऽन्त संयोगपरस्परमथाश्रयात् ॥२४॥
एकसघङास्सलक्ष्याश्च सम्प्राप्यक्यमशेषतः।
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च प्रधानाऽनुग्रहेण च ॥२५॥
महदाद्यो विशेषान्ता शण्डमुत्पादयन्ति ते।
तत्क्रमेव विवृद्ध तु जलबुद्बुदवत्सदा ॥२६॥
भूतेभ्योऽण्डं महाप्रज्ञा वृद्धं तदुदकेशयम्।
प्राकृतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमत्तमम् ॥२७॥
तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ विष्णुर्विश्वेश्वरः प्रभुः।
ब्रह्मरूप समास्थाय स्वयमेव व्यवस्थितः ॥२८॥

शब्द आदि के ज्ञान की सिद्धि के लिए ही ये बुद्धि से युपाँचक्त ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं अव पाँच कर्मेन्द्रियों के नाम बताते हैं—पायु (गुदा) उपस्थ (जननेन्द्रिय)-हाथ पैर और पाँचवीं कर्मेन्द्रिय वाणी हैं।२१। इन पाँचों के भिन्न २ कर्म हैं। वायु का कर्म है मल का त्याग करना उपस्थ का कर्म है आनन्द प्राप्त करना, हाथों का कर्म्म वस्तुओं का आदान करना, पैरों का कर्म गमन करना और वाक् कर्मेन्द्रिय का कर्म बोल कर हृदय के भावनाओं को व्यक्त करना होता है। आकाश, वायु तेज, जल और पृथ्वी ये पाँचों हे विप्रगण! शब्दादि उत्तरोत्तर गुणों

से संयुक्त हुआ करते हैं। जब ये पृथक् स्वरूप वाले होते हैं तो संहति के बिना अनेक प्रकार के वीर्य वाले हुआ करते हैं। पूर्णतया से यहाँ समुत्पन्न होकर भी प्रजा का सृजन करने में समर्थ नहीं होते हैं। सब आपस में मिलाकर एक दूसरे के साथ संयोग प्राप्त करके आश्रय ग्रहण किया करते हैं और एक संघ वाले तथा एक ही लक्ष्य वाले पूर्ण तथा प्राप्त होकर ही पुरुष के अधिष्ठाता होने पर तथा प्रधान के अनुग्रह को प्राप्त कर महत् आदि विशेष पर्यन्त में वे सब अण्ड की उत्पत्ति किया करते हैं, तात्पर्य यह है कि केवल प्रधान, महत्, अहंकार, पाँचतन्मात्रा, पाँच भूत कुछ भी सृजन की सामर्थ्य नहीं रखते हैं जब सब का संघ बन जाता है और पुरुष सब का अधिष्ठाता होता है तभी इस जगत् का सृजन होता है, वह अण्ड जो आरम्भ में उत्पन्न हुआ है वह सदा जल के बुदबुदे के समान विशेष वृद्ध होता है।२१-२६। हे महाप्राज्ञो ! भूतों से वह अण्ड वृद्ध होता है और उदक में उसका आश्रय रहता है। ब्रह्म के स्वरूप वाले भगवान् विष्णु का वह अत्युत्तम प्राकृत स्थान है।२७। वहां पर अव्यक्त स्वरूप वाला यह विष्णु विश्व का स्वामी प्रभु ब्रह्म रूप में समास्थित होकर स्वयं ही उसमें व्यवस्थित होते हैं।२८।

स्वेदजाण्डमभूत्तस्य जरायुश्च महीध्रराः ।
गर्भोदकं समुदाश्च तस्याभून्महदात्मनः ।।२९
साद्रिद्वीपसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसङ्ग्रहः ।
तस्मिन्नण्डेऽभवत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।।३०
अनादिनिधनस्यैव विष्णोर्नाभिः समुत्थितम् ।
यत्पद्मं तद्धैममण्डमभूच्छ्रीकेशवेच्छया ।।३१
रजोगुणधरो देवः स्वयमेव हरिः परः ।
ब्रह्मरूपं समास्थात जगत्स्रष्टुं प्रवर्तते । ३२
सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना ।
नारसिंहादिरूपेण रुद्ररूपेण संहरेत् ।।३३
स ब्रह्मरूपं विसृजन्महात्मा जगत्समस्तं परिपातुमिच्छन् ।
रामादिरूपं स तु गृह्य पाति बभूव रुद्रो जगदेतदत्तुम् ।।३४

उसके स्नेहज अण्ड हुए थे और जरायु महीधर थे । समुद्र गर्भोदक थे इस प्रकार से महत् के स्वरूप वाले उसके ये सब हुए थे ।२९। अद्रि-द्वीप और समुद्र के सहित वह ज्योति लोकों का संग्रह था और उस अण्ड में ही देव-असुर तथा मानव सभी हुए थे ।३०। जिसका न तो कोई आदि अर्थात् आरम्भ काल है और न जिसका कभी निधन अर्थात् अन्त काल ही होता है । तात्पर्य यह हैं कि वह सर्वदा एक रस एवं नित्य है उसी भगवान् विष्णु के नाभि से उसे हुआ जो पद्म है वही भगवान केशव की इच्छा से हैम पिण्ड हो गया था ।३१। रजोगुण धारक परात्पर हरि स्वयं ही ब्रह्म का स्वरूप धारण करके उस समय में समास्थित और सृजन में प्रवृत्त हुए थे ।३२। उन्हीं ने इसका सृजन किया था और जब तक कल्पों की विकल्पना रही युगों के अनुरूप इसका पालन आदि सब किया करते हैं । जब इच्छा होती है तो नरसिंह स्वरूप से या रुद्र रूप से वही इसका संहार भी कर दिया करते हैं ।३३। वही महान् आत्मा वाले प्रभु ब्रह्मरूप का विसर्जन करते हुए इस सम्पूर्ण जगत् का परिपालन करने की इच्छा किया करते हैं तो वही श्रीराम आदि का स्वरूप ग्रहण करके इसका संरक्षण एवं पोषण किया करते हैं । इसको समाप्त करने के लिये वह ही रुद्र रूप वाले हो गये थे ।३४।

॥ द्वीप विभाग वर्णन ॥

नदीनाँ पर्वतानां च नामधेयानि सर्वशः ।
तथा जनपदानां च ये चान्ये भूमिमाश्रिताः ।१।
प्रमाणं च प्रमाणज्ञ पृथिव्याः किल सर्वतः ।
निखिलेन समाचक्ष्व काननानि च सत्तम ।२।
पञ्जेमानि महाप्राज्ञ महाभूतानि सङ्ग्रहात् ।
जगतीस्थानि सर्वाणि समान्याहुर्मनीषिणः ।३।

भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च ।
गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधानतः ॥४॥
शब्दः स्पर्शश्च रूप च रसो गन्धश्च पंचम : ।
भूमेरेते गुणा प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥५॥
चत्वारोऽप्सु गुणा विप्रा गन्धस्तत्र न विद्यते ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः ॥६॥
शब्दः स्पर्शश्च वायोस्तु आकाशे शब्द एव च ।
एते पंच गुणा विप्रा महाभूतेषु पंचसु ॥७॥

ऋषियों ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! आप तो सभी का प्रमाण जानते हैं अतएव नदियों का पर्वतों का सब का नाम तथा जन पदों के नाम और जो भी अन्य इस भूमि पर समाश्रित हैं उनके नाम तथा उन सबका प्रमाण एवं जो भी इस भूमि पर कानन हैं उनके नाम सभी कुछ पूर्ण-तया वर्णन करने की कृपा करें।१-२। श्री सूतजी ने कहा—हे महा-प्राज्ञ ! ये पाँच महाभूत हैं। इनके संग्रह से मनीषीगण जगत् में जो भी कुछ स्थित है उन सभी को समान कहा करते हैं।३। पृथ्वी-जल-वायु-अग्नि और आकाश ये ही पाँच महाभूत हैं। ये सब गुणोत्तर है। उनमें भूमि प्रमुख है।४। तत्वों के वेत्ता ऋषि वृन्द ने शब्द-स्पर्श-रस-रूप और पाँचवाँ गन्ध ये गुण भूमि के बतलाये हैं।५। इन उपर्युक्त गुणों में चार गुण जल में भी होते हैं किन्तु हे विप्रगण ! उस जल में गन्ध (गुण) नहीं होता है। तेज में शब्द, स्पर्श और रूप ये तीन गुण होते हैं। वायु में शब्द और स्पर्श ये दो ही गुण होते हैं रूप-रस और गन्ध ये तीन गुण नहीं होते हैं। आकाश में तो इन पाँच गुणों में से केवल एक ही शब्द गुण हुआ करता है। इस तरह से इन पाँच महाभूतों में ये पाँच गुण हे विप्रवृन्द ! रहा करते हैं।६-७।

वर्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भताः प्रतिष्ठिताः ।
अन्योन्यं नातिवर्वन्ते साम्यं भवित वै तदा ॥८॥
यदा तु विषमीभावमाविशान्ति परस्परम् ।
तदा देहैर्देहवन्तो व्यतिरोहन्ति नान्यथा ॥९॥

आनुपूर्व्या विनिश्यन्ति जायन्ते चानुपूर्वशः ।
सर्वाण्यपरिमेयाणि तदेषा रूपमैश्वरम् ॥१०॥
यत्र यत्र हि दृश्यन्ते धावन्ति पाञ्चभौतिकाः ।
तेषाँमनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥११॥
अचिन्त्याः खलु ये भावास्तान्न तर्केण साधयेत् ।
सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु मुनिपुङ्गवाः ॥ १२॥
परिमण्डलो महाभागा द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः ।
नदीजलपरिच्छिन्नः पर्वतश्चाब्धिसन्निभैः ॥१३॥
पुरैश्चविधाधाकारैरम्यैर्जनपदैस्तथा ।
वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सम्पन्नो धनधान्यवान् ॥१४॥
लवणेन समुद्रेण समन्तात्परिवारितः ।
यथा हि पुरुषः पश्तेदादर्शे मुखमात्मनः ॥१५॥
एवं सुदर्शनो द्वीपो दृश्यते चक्रमण्डलः ।
द्विरंशे पिप्प लस्तस्य द्विरंशे च शशो महान् ॥१६॥
सर्वौषधीः समादाय सर्वतः परिवारितः ।
आपस्ततोऽन्या विज्ञेयाः शेषः संक्षेप उच्यते ॥१७॥

जिन समस्त लोकों में ये महाभूत प्रतिष्ठित रहते हैं जब ये अन्योन्य का अतिवर्त्तन किया करते हैं उस समय में साम्य होता है और जब ये परस्पर में विषयी भाव में आविष्ट होते हैं उस समय में देह वाले देहोंकेद्वारा व्यक्ति रोहण किया करते हैं इससे अन्यथा नहीं किया करते हैं ।८-९।ये आनुपूर्वी से विनष्ट होते हैं और आनु पूर्वशः ही समुत्पन्न हुआ करते हैं । ये सभी अपरिमेय होते हैं सो इनका ईश्वरीय रूप ही होता है।१०। जहाँ-जहाँ पर ये दिखाई दिया करते हैं वहां पर ही पञ्च (भूत) भौतिक दौड़ा करते हैं अतएव मनुष्य उनका तर्क से ही प्रमाण कहा करते हैं ।११। वस्तुतः ये समस्त भाव ऐसे हैं जिनका चिन्तन नहीं किया सकता है अतएव ऐहै अचिन्तनीय भावों को तर्क से कभी भी सिद्ध नहीं करना चाहिए । हे मुनियों में परमश्रेष्ठो! अब मैं आप लोगों से सुदर्शन द्वीप के विषय

मैं बतलाता हूँ। हे महान् भागवालो ! यह द्वीप परिमण्डल स्वरूप होती है और चक्र में संस्थित है। यह नदियों के जल से परिच्छिन्न होता है तथा अब्धि के सदृश पर्वतों एवं विविध भाँति के आकार प्रकार वाले नगरों से और परम सुन्दर जनपदों से, पुरुषों एवं फलों से युक्त वृक्षों से यह द्वीप भली भाँति युक्त होता है एवं धन और धान्य वाला होता है।१२-१४। क्षार समुद्र से चारों ओर से यह द्वीप घिरा हुआ है जिस प्रकार से कोई पुरुष शीशा में अपना मुख देखता है इसी प्रकार का यह सुदर्शन द्वीप चक्रमण्डल दिखाई दिया करता है। इसके दो अंशों में पिप्पल हैं और दो अंशों में महान् अंश होता है। सर्वोषधी को लाकर सभी ओर यह परिवारित रहता है। इससे अन्य जल जानना चाहिए।१५-१७।

888

❋ भारतवर्ष के पर्वत और नदी ❋

यदिदं भारतं वर्ष पुण्यं पुण्यविधायकम् ।
तत्सर्वं न समाजक्ष्व त्वं हि नो बुद्धिमान्मतः ।।१
अत्र वः कीर्त्तयिष्यामि वर्षं भारतमुत्तमम् ।
प्रियमित्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्यच ।।२
पृथोश्च प्राज्ञो वै न्यस्य तक्षेक्ष्वाकोर्महात्मनः ।
ययातेम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च ।।३
तथैव मुचकुन्दस्य कुबेरोशीनरस्य च ।
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा ।।४
कुशिकस्यैव राजर्षेर्गाधेश्चैव महात्मनः ।
सोमस्व चैव राजर्षेर्दिलीपस्व तथैव च ।।५
अन्येषां च महाभागाः क्षत्रियाणां बलीयसाम् ।
सर्वेषामेव भूतानां प्रियं भारतमुत्तमम् ।।६

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप ही हम सब के द्वारा परम बुद्धिमान माने गये हैं। जो यह भारत वर्ष परम पुण्यमय माना गया है

और पुण्य करने वाला भी है तो आप कृपाकर यह सबको बतला देने का कष्ट करें ।१। सूतजी ने कहा—अब मैं इस भारत वर्ष के विषय में आपको सुनाता हूँ । यह भारत परम उत्तम वर्ष है । प्रियमित्र देव-वैवस्त मनु पृथु-इक्ष्वाकु जो महान् आत्मा वाला एवं प्राज्ञ था ययाति अम्बरीष-मान्धाता नहुष—मुचुकुन्द-कुवेर-उशीनर—ऋषभ-ऐल नृग—नृपति राजर्षि कुशिक-गाधि महात्मा-सोम-राजर्षि दिलीप इनके अतिरिक्त,महान् बलशाली अन्य क्षत्रिगण हे महान् भाग्य वालो ! यह वर्ष सभी का परम प्रिय एवं उत्तम है ।२-६।

ततो वर्षं प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतमहो द्विजाः ।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमानृक्षवानपि ॥७
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः
तेषां सहस्रो विप्रा पर्वतास्ते समीपतः ॥८
अविज्ञाताः सारन्वतो विपुलाश्चित्रसानवः ।
अन्ये तु ये परिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वौपजीविनः ॥९
आर्यम्लेच्छसर्धर्माणस्ते मिश्राः पुरुषद्रिजाः ।
नदीं पिबन्ति विमलां गङ्गां सिन्धुं सरस्वतीम् ॥१०
गोदावरीं नर्मदां च बहूदां च महानदीम् ।
शतद्रुं चन्द्रभागां च यमुनाँ च महानदीम् ॥११
दृषद्वतीं वितस्तां च विपाशां स्वच्छबालुकाम् ।
नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णां वेणी च निम्नगाम् ॥१२
इरावतीं वितस्तां च पयोष्णींदेविकामपि ।
वेदस्मृति वेदशिरां त्रिदिवां सिन्धुलाकृमिम् ।
करीषिणीं चित्रवहां त्रिसेनां चैव निम्नगाम् ॥१३
गोमतींधूतपापां च चन्दनां च महानदींम् ॥१४

हे द्विजवृन्द ! इसलिये मैं अब भारत वर्ष के विषय में वर्णन करूंगा और वही वातें इस सम्बन्ध में आप लोगों को बताता हूँ जैसे मैंने श्रवण किया है । महेन्द्र-मलय-सह्य-शक्तिमान्-ऋक्षवान्-विन्ध्य—पारियात्र-ये सात यहाँ पर कुल पर्वत हैं । हे विप्रो ! उन पर्वतों के

समीप में और भी सहस्रों पर्वत हैं।७-८। ऐसे बहुत से पर्वत भी हैं जो ज्ञात नहीं हैं किन्तु सार वाले हैं जिनकी चोटियाँ अद्भुत प्रकार की हैं। और दूसरे जो परिज्ञात भी हैं वे छोटे हैं तथा ह्रस्वोपजीवी हैं।६। आर्य्य,म्लेच्छ सधर्मा वे हैं तथा पुरुष एवं द्विज मिश्र हैं जो विमला गङ्गा का पान किया करते हैं। नदियों के ये शुभ नाम बतलाये जाते हैं—गङ्गा-सिन्धु-सरस्वती-गोदावरी-नर्मदा-ये बहुत प्रदान वाली रहानदी हैं। शतद्रु-चन्द्रभाग-यमुना-ये भी महानदी हैं।१-११। दृषद्वती वितस्ता-विपाशा-इनकी बालुकायें बहुत ही स्वच्छ है। वेत्रवती कृष्ण-वेणी ये नदियां बहुत गहरी बहने वाली हैं।१२। इरावती वितस्ता-पयोष्णी देविका-वेदस्मृति-वेदशरा-त्रिदिवा सिंधुलाकृमि-करीषिणी-चित्रवहा-त्रिसेना-गोमती-धूतपापा सौर चन्दना ये भी महानदियां है।१३-१४।

कौशिकीं त्रिदिवां हृद्यां नाचितां रोहितारणीम्।
रहस्यां शतकुम्भां च सरयूं च द्विजोत्तमाः ।।१५।।
चर्मण्वतीं वेत्रवतीं हस्तिसोमां दिशं तथा।
शरावतीं पयोष्णीं च भीमां भीमरथीमपि ।।१६।।
कावेरीं चुलुकां चापि तापीं शतमलाममि।
नीवारां महितां चापि सुप्रयोगां तथा नदीम् ।।१७।।
पवित्रा कृष्णलां सिन्धु वाजिनीं पुरमालिनीम्।
पूर्वाभिरामां वीरां च भीमां मालवतीं तथा ।।१८
पलाशिनी पापहरा महेन्द्रां पाटलावतीम्।
करिषिणीमसिक्नी च कुशचीरी महानदीम् ।।१९
मरुतां प्रवरां मेना हेमा धृतवतीं तथा।
अनावतीमधृष्णां च सेव्यां कापी च सत्तमाः ।।२०।।
सदावीरामनृष्यां च कुशचीरां महानदीम्।
रथचित्रां ज्योतिरथां विश्वामित्रां कपिञ्जलाम् ।।२१।।

कौशिकी-त्रिदिवा नाचिता हृद्या-रोहितारणी-रहस्या शतकुम्भा-सरयुचर्मण्वती-वेत्रवती-हस्तिसोमादिशा-शरावती-पयोष्णी-भीमा-भीमरथी-कावेरी-चुलुका-तापी-शतमला-नीवारा-महिता सुप्रयोगा-पवित्रा-कृष्णला-

सिन्धु वाजिनी-पुरमालिनी-पूर्वाभिरामा-वीरा-भीमा-मालावती-पलाशिनी-पापहरा महेन्द्रा पाटलावती-करिषिणी-असिक्नी-कुशचीरी-मरुता-महानदी प्रवरा-मेना हेमा-घृतवती-अनावती-अनूष्णा-सेव्या-कापी-सदावीरा-अघृष्या कुशचीरा रथचित्रा-ज्योतिरथा-विश्वामित्रा-कपिञ्जला ये सब नदियाँ हैं ॥१५-२१॥

उपेन्द्रां वहुलाँ चैव कुचीराममम्दुवाहिनीम् ।
वैनन्दीं पिङ्गलाँ वेणाँ तुङ्गवेङ्गा महानदीम् । २२॥
विदिशाँ कृष्णवेणां च ताम्रां च कपिलामपि ।
धेनु सकामां वेदस्वा हविःस्रावां महापथाम् ॥२३
क्षिप्रां च पिच्छलाँ चैव भारद्वाजीं च निम्नगाम् ।
कोर्णिकीं निम्नगा शोणाँ वाहुदामय चन्द्रमाम् ॥२४॥
दुर्गामन्तः शिला चैव ब्रह्ममेद्यां दृषद्वतीम् ।
परोक्षामथरोहीं च तथा जम्बूनदीमपि ॥२५॥
सुनासाँ तमसाँ दासी सामान्याँ वरणामसिम् ।
नीला धृतकरी चैव पर्णाशां च महानदीम् ॥२६॥
मानवीं वृषभां भासां ब्रह्ममेध्या दृषद्वतीम् ।
एताश्चान्याश्च वहुला महानद्यो द्विजर्षभा ॥२७॥
सदा निरामयां कृष्णा मन्दगा मन्दगा मन्दवाहिनीम् ।
ब्राह्मणी च महागौरी दुर्गामपि च सत्तमाः ॥२८॥

उपेन्द्रा-वहुला-कुचीरा-अम्बुवादिनी-वैनन्दी-पिंगला वेणा-तुंगवेगा महानदी-विदिशा-कृष्णवेणा-तोम्रा-कपिला-धेनु सकामा वेदस्वा-हरि-स्रावा-महापथा-क्षिप्रा-पिच्छला-भारद्वाजी--कौणिकी-शोणा वाहुदा--चन्द्रमा-दुर्गा-अन्तःशिला-ब्रह्ममेध्या--दृषद्वती-परोक्षा--अथरोहीऽजम्बूनदी--सुनासातमसा-दासी-सामान्या--वरणामसि--नीला-घृतकरी-पर्णाशा-मानवी-वृषभा-भासा--ब्रह्मामेध्या-दृषद्वती-ये नदियाँ हैं तथा हे द्विजश्रेष्ठो ! इनके अतिरिक्त अन्य भी वहुत सी नदियाँ हैं जो कि वहुत विशाल हैं ।२२-२७। सदा निरामया, कृष्णा-मन्दगा-मन्दवाहिनी-ब्राह्मणी-महागोरी और दुर्गा ये भी नदियाँ हैं ॥२८॥

चित्रोत्पलां चित्ररथामतुलां रोहिणीं तथा ।
मन्दाकिनीं वैतरणीं कोकां चापि महानदीम् ॥२९
शुक्तिमतीमनङ्गां च तथैव वृषसाह्वयाम् ।
लोहित्यां करतोयां च तथैव वृषकाह्वयाम् ॥३०
कुमारीमृषितुल्यां च मारिषाँ च सरस्वतीम् ।
मन्दाकिनीं सुपुण्यां च सर्वा गङ्गां च सत्तमा ॥३१
विश्वस्य मातरः सर्वा सर्वाश्चैव महाफलाः ।
तथा न नद्यः सुप्रकाशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥३२
इत्येतास्सरितो विप्रा समाख्याता यथास्मृति ।
अतऊद्र्ध्वं जनपदान्निबोधत वदाम्यहमः ॥३३
तत्रेमे कुरुपाञ्चलाः शाम्वमात्रेयजाङ्गलाः ।
शूरशेनाः पुलिन्दाश्च बौधा मालास्तथैव च ॥३४
मत्स्याः कुशाट्टः सौगन्ध्याः कुम्सपाः काशिकोशलाः ।
चेदिमत्स्यकरूषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः ॥३५

चित्रोपला-चित्ररथा-अतुला-रोहिणी-मन्दाकिनी–वैतरणी—कोका ये भी महानदियाँ हैं । शुक्तिमत्ती-अनङ्गा-वृषसाह्ववा-लोहित्या-करतोया-वृषका ह्नया-कुमारी-ऋषितुल्या--मारिषा-सरस्वती--मन्दाकिनी--सुपुण्या--सर्वा--गङ्गा हे श्रेष्ठगण ! ये सब नदियाँ इस विश्व की माता हैं और इन समस्त नदियों के महान् फल होते हैं । कुछ ऐसी नदियाँ भी हैं जिनका भली भाँति प्रकाश ही नहीं है । ऐसी एक ही नहीं सैकड़ों और सहस्रों ही नदियाँ हैं ।२९-३२। हे विप्रगण ! ये इतनी नदियाँ जो मैंने आप लोगों के सामने बताई हैं वे सभी जैसा भी मुझे स्मरण हो गया है उसी के अनुसार मैंने बता दिया है । अब इसके उपरान्त मैं जनपदों को बतलाता हूँ उनको आप लोग सभी समझलो ।३६। उन जनपदों में ये नाम हैं — कुरु-पाञ्चाल-शाल्व.आत्रेय-जांगल-शूरसेन-पुलिन्द वौध-माला-मत्स्य-कुसट्ट सौगन्ध्य-कुत्सप-कोशिकोशके-चेदि-मत्स्य-करूष भोज सिंधु पुलिन्दका ये जनपदों के नाम हैं ।३४-३५।

उत्तमाश्च दशार्णाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ।
पञ्चालाः कोशलाश्चैव नैकपृष्ठयुगन्धरा ।।३६
बोधमद्राः कलिंगाश्च काशयोऽपरकाशयः ।
जठराः कुकुराश्चैव सुदशार्णाः सुसत्तमाः ।।३७
कुन्तयोऽवन्तयश्चैव तथैवापरकुन्तयः ।
गोमन्तामल्लका पुण्ड्रा विदर्भा नृपवाहिकाः ।।३८
अश्मकाः सोत्तराश्चैव गोपराष्ट्राः कनीयसः ।
अधिराज्य कुशट्ठश्च मल्लराष्ट्रश्च केरलाः ।।३९
मालवाश्चह्वास्ताश्च चक्रावाक्त्रालयाः शकाः ।
विदेहा मागधाः सद्मा मलजाविजतास्तथा ।।४०
अङ्गा बङ्गाः कलिङ्गाश्च तकल्लोमान एव च ।
मल्लाः सुदेष्णाः प्रह्लादा महिषाः शशकास्तथा ।।४१
बाह्लिकावाटधानाश्च अभीराः कालतोयकाः ।
अपरान्ताः परान्ताश्च पंकलाश्चर्मचण्डिकाः ।।४२

उत्कलके सहित दशाण और मेकल जनपद उत्तम हैं पञ्चाल-कोशल, नैकपृष्ठ-युगन्धर वोधमद्र कलिंग कोशि-अपरकाशी-जठर कुकुर-सुदशार्ण सुसत्तमकुन्ति-अवन्ती अपरकुन्ती गोमन्त-मल्लक-पुण्ड-विदर्भ-नृप वाहिक ये जनपदों के शुभ नाम हैं ।३६-३८। आश्मक-मौत्तर-गोपराष्ट्र-कनीयस- अधिराज्य- कुशट्ट- मल्लराष्ट्र- केरल– मालव– अपवास्य–चक्र-वाक्त्रालय-शक विदेह-मगध-सद्म मलज-विजय-अग वंग कलिंग-यकल्लो-मान्-मल्ल- सुदेष्ण- प्रह्लाद- महिष- शशक- वाह्लिक वारधान- आभीर कालतोयक-अपरान्त-परान्त-पंकल-चर्मचण्डिक-यह सब विभिन्न जनपदों के नाम हैं ।३९-४२।

अटवीशेखाराश्चैव मेरुभूताश्च सत्तमाः ।
उपाबृत्तानुपावृत्ताः सुराष्ट्राः केकयास्तथा ।।४३
कुट्टापरान्ता माहेयाः कक्षा सामुद्रनिष्कुटाः ।
अन्ध्राश्च बहवो [illegible] अन्तर्गिर्यस्तथैव च ।।४४

वहिर्गिर्य्योऽङ्गमलदा मगधामालवार्घटाः ।
सत्वतराः प्रावृषेया भार्गवाश्च द्विजर्षभाः ॥४५॥
पुण्ड्राभार्गाः किराताश्च सुदेष्णा भासुरास्तथा ।
शका निषादा निषधास्तथैवानर्तनैर्ऋताः ॥४६॥
पूर्णलाः पूतिमत्स्याश्च कुन्तलाः कुषकास्तथः ।
तरिग्रसाश्शूरसेना ईजिकाः कल्पकारणाः ॥४७॥
तिलभामसाराश्च मधुमत्ताः ककुन्दकाः ।
काश्मीराः सिन्धुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथाः ॥४८॥
अभीसाराः कुद्रुताश्च सौरिलाबाह्लिकास्था ।
दर्वी च मालवादर्वावातजामरथोरगाः ॥४९॥

अटत्री शेखार--मेरुभूत-उरावृत्त--अनुपावृत्त--सुराष्ट्र--केकय--कुट्टाप--रान्त-माहेय-कक्ष-सामुद्र-निष्कुट यह सभी जनपदों के नाम हैं जो प्राचीनकाल में इन नामों से विख्यात थे। हे विप्रगण ! जो अन्तर्गिरि हैं वे बहुत से अन्धे होते हैं। वहिर्गिरी अङ्गमलद हैं। मागध मालवार्घट हैं। प्रावृषेय और भार्गव सत्वतर होते हैं। अर्थात् अधिक सत्व गुण वाले होते हैं। ४३-५५। पुण्ड्र और भार्ग किरात है। सुदेष्ण भासुर होते हैं। शकलोक निषाद होते हैं। निषर्ष लोग आनर्त नैऋत होते हैं। कुन्तल और कुशक पूर्णल तथा पूतिमत्स्य होते हैं। शूरसेन लोग तरिग्रह ईजिक कल्प कारण है। ककुन्दक तिलभाग--असार और मधुमत्त होते हैं। काश्मीर-सिन्धु सौवीर तथा गन्धार दर्शक आभीसार और कुद्रुत हैं। वाह्लिक सौरिल है, मालव दर्वावातज और रथोरग हैं। ४६-४९।

बलरट्टास्तथा विप्राः सुदामानः सुमल्लिकाः ।
वन्धा करीकषाश्चैव कुलिन्दा गन्धिकत्स्तथा ॥५०
वना यवोदशाः पार्श्वरोमाणः कुशबिन्दवः ।
काच्छा गोपालकच्छाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णका ॥५१॥
किराता वर्बराः सिद्धाः वैदेहास्ताम्रलिप्तिकाः ।
ओड्रम्लेच्छाः ससैरिन्ध्राः पार्वतीयाश्च सत्तमाः ॥५२

अथऽपरे जनपदा दक्षिणा मुनिपुङ्गवाः ।
द्रविडाः केरलाः प्राच्यामूषिकाबालमूविकाः ॥५३॥
कर्णाटका माहिषका विकन्धा मूषि कास्तथा ।
झल्लिकाः कुन्तलाश्चैव सौहृदानलकाननां ॥५४॥
कौक्कुटकास्तथा बोलाः कोकाणा मणिवालकाः ।
समङ्गाः कनकाश्चैव कुकुराङ्गारमारिषाः ॥५५॥
ध्वजिन्युत्सवसंकेतास्त्रिवर्गा माल्यसेनयः ।
व्यूढ़काः कोरकाः प्रोष्टाः सङ्गवेगधरास्तथा ॥५६॥

हे विप्रगण ! ये बलरट्ट, सुदामा, सुमल्लिक, बन्ध करीषक, कुलिन्द तथा गन्धक होते हैं । ५० । वन, यवोदश, पाश्वों में रोमों वाले और कुशविन्दु होते हैं । कच्छ के निवासी काच्छ लोग गोपाल कच्छ होते हैं । जाङ्गल और कुरुवर्णक होते हैं । ५१ । किरात बर्बर होते हैं । सिद्ध और ताम्र लिप्तिक वैदेह होते हैं । ओड्रम्लेच्छ सैरिन्द्र के सहित हैं और पर्वतीय अर्थात् पहाड़ों पर निवास करने वाले होते हैं । ५२ । हे मुनिवर ! अन्य जनपद दक्षिण में हैं जिनके नाम-द्र विड़-केरल, प्राच्य मूषिक, बाल, मूषिक, कर्णाटक, माहिषिक, विकन्ध, मूषिक, झल्लिक, कुन्तल, सौहृद, अनल कानन, कोक्कुट, बोल, कोंकण मणिवालक, समङ्ग, कनक, कुक्कुर अंगार, मारिष हैं । ५३-५५। ध्वजिनी और उत्सवों के संकेत वाले, त्रिवर्ग, माल्यसेनी-व्यूढक-कोरक-प्रोष्ट तथा संग वेगधारी थे ।५६।

तथैव विन्ध्यरुलिकाः पुलिन्दा बल्वलैव सह ।
मालवामलराश्चैव तथैवापरवर्तकाः ॥५७॥
कुलिन्दाः कालदाश्चैव चण्डकाकुरटास्तथा ।
मुशलास्तनवालाश्च सतीर्थाः पूतिसृञ्जयाः ॥५८॥
अगिदायाः शिवटाश्च तपनाः सूतपास्तथा ।
ऋषिकाश्च विदर्भाश्च स्तङ्गनापरतङ्गकाः ॥५६॥
उत्तराश्चपरे म्लेच्छा जना हि मुनिपुङ्गवा ।
जवनाश्च सकाम्बोजा दारुणाम्लेच्छजातयः ॥६०॥

सकृद्गृहाः कुलटचाश्च हूणाः पारिसिकैः सह ।
तथैव रमणाश्चान्यास्तथा च दशमालिकाः ॥६१
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।
शूराभीराश्च दरदाः काश्मीराः पशुभिः सह ॥६२
खाण्डीकाश्चतुषाराश्च पद्मगा गिरिगह्वराः ।
आद्रेयाः सभिरादाजास्तथैव स्मनपोषकाः ॥६३
द्रोषकाश्च कलिङ्गाश्च किरातानां च जातयः ।
तोमराहन्यमाश्च तथैव करभञ्जकाः ॥६४
एते चान्ये जनपदाः प्राच्योदीच्यास्तथैव च ।
उद्देशमात्रेण मया देशाः संकीर्तिता द्विजाः ॥६५
यथागुणबलं चापि त्रिवर्गस्य महाफलम् ॥६६

इस भाँति विन्ध्य कलिक, पुलिन्द, बल्वल, मालव मलर और अपर वर्त्तक थे ।५७। कुलिन्द, कालद, चण्डक, कुरट, मुशल, तनवाल सतीर्थ, पूर्ति सृञ्जय, अनिदाय, शिवाट, तपन, सूतप, ऋषिक, विदर्भ, स्तङ्गन, पर तङ्गक हे मुनिश्रेष्ठो ! ये उत्तर थे और दूसरे म्लेच्छ जन थे। उन म्लेच्छ जातियों के नाम ये हैं जनवन और सकाङ्गोज। ये म्लेच्छ अत्यन्त ही दारुण जातियाँ थीं ।५८-६०। सकृघृह, कूलट्य, हूण, पारिसिक, रमण और दश मालिक थे ।६१। क्षत्रियों के उपनिवेश वाले, वैश्य तथा शूद्र कुल थे। शूर, आभीर, दरद काश्मीर, पशुओं के साथ रहने वाले थे। खाण्डीक तुषार, पद्मग, गिरिगह्वर, आद्रेय, सभिरादाज, स्तन पोषक, द्रोषक, कलिंग और किरातों की जातियों वाले थे। तोमर, हन्यमान, कर भञ्जक ये सब जनपद थे जो प्राच्य (पूर्व में रहने वाले) और उदीच्य (उत्तर दिशा वाले) थे । हे द्विजगण ! मैंने इन देशों तथा उनमें रहने वालों के नाम केवल उद्देश्य रूप से आप लोगों के समक्ष में बतला दिये हैं। गुण और बल के अनुसार त्रिवर्ग का महाफल होता है ।६२-६६।

॥ काल और लोक स्थिति निर्णय ॥

भारतस्यास्य वर्षस्य तथा हैमवतस्य च
प्रमाणमायुषः सूत बल चापि शुभाशुभम् ॥१
अनागतमतिक्रान्तं वर्तमानं च सत्तम ।
आचक्ष्व नो विस्तरेण हरिवर्षं तथैव च ॥२
चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनिपुङ्गवाः ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्च द्विजसत्तमाः ॥३
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेतायुगं द्विजाः ।
तत्पश्चाद्द्वापरं चाथ ततस्तिष्यः प्रवर्तते ॥४
चत्वरि तु सहस्राणि वर्षाणां मुनिपुङ्गवाः ।
आयुः सङ्ख्या कृतयुगे सङ्ख्याता हि तपोधनाः ॥५
तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायामायुषो विदुः ।
द्वे सहस्रे द्वापरे तु भुवि तिष्ठन्ति साम्प्रतम् ॥६
तत्प्रमाणस्थितिर्ह्यस्ति तिष्ये तु मुनिपुङ्गवाः ।
गर्भस्थाश्च म्रियन्तेऽत्र तथा जाता म्रियन्तिच ॥७

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! इस भारत वर्ष का तथा हिमालय का आयु का प्रमाण और बल जो भी शुभ तथा अशुभ हो वह भूत-वर्त्तमान और अनागत हम लोगों को बतलाइये और इसी भाँति हरि वर्ष को भी बतलाइये ।१-२। सूतजी ने कहा—इस भारत वर्ष में हे मुनि-पुंगवो ! चार युग होते हैं । उन चारों युगों के नाम-कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग ये होते हैं । ३। सबसे पहले कृतयुग (सत्युग) होता है । इसके अनन्तर त्रेता होता है । त्रेता की समाप्ति हो जाने पर द्वापर युग आता है फिर इन तीनों के अन्त में यह तिष्य (कलियुग) आया करता है ।४। हे श्रेष्ठ मुनिगण ! कृतयुग में चार सहस्र वर्ष आयु संख्यात की गई है । तीन सहस्र वर्ष त्रेता में आयु होती हैं । द्वापर में दो सहस्र वर्ष की आयु होती है । इस प्रकार से आयु प्राप्त कर इन उपर्युक्त युगों में इस भूमण्डल में स्थिति किया करते हैं । अब आगा

चौथा तिष्य (कलियुग) युग इसमें तो हे मुनिवृन्द ! तत्प्रमाण ही स्थिति होती हैं। इसमें तो गर्भ में ही मृत्यु हो जाया करती है और उत्पन्न होते ही मार जाते हैं।५-७।

महाबला महासत्वाः प्रज्ञागुणसमन्विताः ।
प्रजायन्ते च जाताश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥८
द्विजाः कृतयुगे विप्रा बलिनः प्रियदर्दनाः ।
प्रजायन्ते च जाताश्च मुनियो वै तपोधनाः ॥९
महोत्साहा महात्मानो धार्मिकाः सत्यबादिनः ।
प्रियदर्शा वपुष्मन्तो महावीर्य्या धनुर्द्धराः ॥१०
वीरा हि युधि जायन्ते क्षत्रियः शूरसंमता ।
त्रेतायां क्षत्रियास्तावत्सर्वे वै चक्रवर्तिन ॥११
सर्ववर्णाश्च जायन्ते सदैव द्वापरे युगे ।
महोत्साहा वीर्यवन्तः परस्परवधैषिणः ॥१२
तेजसान्धेन संयुक्ताः क्रोधनाः पुरुषाः किलः ।
लुब्धाश्चानृतकाश्चैव तिष्ये जायान्ति भो द्विजाः ! ॥१३
ईर्ष्या मानस्तथा क्रोधो मायाऽसूया तथैव च ।
तिष्ये भवन्ति भूतानां रागोलोभश्च सत्तमाः ॥१४
संक्षेपो वर्त्तते विप्रा द्वापरे युगमध्यगे ।
गुणोत्तरं हैमवतं हरिवर्ष ततः परम् । १५

महान् बल शाली—विशाल सत्व से सम्पन्न, प्रज्ञा और अ– गुणों से युक्त सैकड़ों और सहस्रों द्विज कृतयुग में उत्पन्न हुए और है, न- युग में विप्र बली, परम प्रिय तथा तप को ही सर्वोत्तम धन मानने वा मुनिगण उत्पन्न हुए थे तथा समुत्पन्न हुआ करते हैं।८-९।यह तो विप्रगण एवं मुनि लोगों की उत्पत्ति होती थी इसी भाँति जो क्षत्रिय उत्पन्न होते हैं वे भी महान् उत्साह से सम्पन्न, महान् उच्च आत्मा वाले, परम धर्म के मानने वाले, सर्वदा सत्य भाषण करने वाले, देखने में प्रिय लगने वाले, विशाल वपुधारी, महान् वीर्य पराक्रम से समन्वित, धनुपाधरी, शूरों में माने हुए और युद्ध में परमवीर थे। त्रेतायुग में जो क्षत्रिय राजा हुए

थे वे सभी चक्रवर्ती राजा थे ।१०-११। द्वापर युग में सर्वदा ही सब वर्ण वाले समुत्पन्न हुआ करते हैं इनमें बड़ा भारी उत्साह होता है और ये वीर्य पराक्रम वाले भी हुआ करते हैं किन्तु इनकी मनोवृत्ति ऐसी होती है कि ये परस्पर से एक दूसरे के वध कर डालने की इच्छा रखा करते हैं ।१२। हे द्विजगण ! इस तिष्य (कलियुग) में जो पुरुष समुत्पन्न होते हैं वे अन्धे तेज से युक्त होते हैं और बहुत ही अधिक क्रोध वाले होते हैं। ये लोग बहुत अधिक लोभी, मिथ्याभाषी हुआ करते हैं ।१३। ईर्ष्या मान क्रोध माया असूया राग और लोभ ये अवगुण प्राणियों में बहुधा कलियुग में हुआ करते हैं। हे विप्रगण ! युगमध्य में रहने वाले वापर में संक्षेप होता है। गुणोत्तर हैमवत और इसके आगे हरिवर्ष होता है ।१४-१५।

।। पुष्कर तीर्थ माहात्म्य ।।

अनेन तव धर्मज्ञ ! प्रश्रयेण दमेन च ।
सत्येन च महाभाग ! तुष्टोऽस्मि तव सर्वशः ।।१
यस्येदृशस्ते धर्मोऽयं पितरस्तारितास्त्वया ।
तेन पश्यसि मां पुत्र याज्यश्चासि ममानघ ।।२
प्रीतिम वर्द्धते तेऽद्य ब्रूहि किं करवाणि ते ।
यद्वक्ष्यासि नरश्रेष्ठ ! तस्य दाताऽस्मि तेऽनघ ।।३
वेदवेदाङ्गतत्वज्ञ सर्वलोकाभिपूजित ।
कृतमित्येव मन्ये हि यदहं दृष्टवाग्प्रभुम् ।।४
यदित्वहमनुग्राह्यस्तव धर्मभृतां वर ।
प्रक्ष्यामि हृत्स्थं सन्देहं तन्मे त्वं वक्तु महंति ।।५
अस्ति मे भगवन्कश्चित्तीर्थे यो धर्मसंशयः ।
तदहं श्रोतुमिच्छासि पृथक्सङ्कीर्तनं त्वया ।।६
प्रदक्षिणां यः पृथिवीं करोति द्विजसत्तम ! ।
किं फलं तस्य विप्रर्षे ! तन्मे ब्रूहि तपोधन ।।७

वसिष्ठ महर्षि ने कहा—हे धर्म के ज्ञाता ! हे महान् भाग्य वाले ! आपके इस प्रकार के प्रश्रय-दम और सत्य से मैं सभी तरह से अत्यन्त ही सन्तुष्ट हो गया हूँ ।१। जैसा तुम्हारा यह इस तरह का धर्म है तभी तो आपने अपने पितृगण का उद्धार कर दिया है । हे पुत्र ! इसी से तुम मुझे देख रहे हो । तुम तो बिल्कुल ही निष्पाप हो और मेरे भी याज्य हो ।२। तुम मेरी प्रीति को बढ़ा रहे हो अर्थात् मुझे तुम से अत्यधिक प्रेम हो रहा है । अब तुम बोलो कि मैं तुम्हारे लिये क्या करूं ? हे नरों में श्रेष्ठ ! तुम जो भी इस समय में बोलोगे अर्थात् मुझ से चाहोगे उसे ही मैं तुमको दूंगा क्योंकि तुम इस समय में पापों से रहित और शुद्धात्मा हो ।३। राजा दिलीप ने कहा—हे मुनिवर ! आप तो समस्त वेदों और वेदों के अंग शास्त्रों के तत्वों के पूर्ण ज्ञाता हैं । समस्त लोक आपकी अर्चना किया करते हैं । मैंने आपके दर्शन प्राप्त कर लिये हैं-इसी से मैं तो समझता हूँ कि मैंने सभी कुछ प्राप्त कर लिया है ।४। हे धर्म धारियों में परमश्रेष्ठ ! यदि आप मेरे ऊपर अनुग्रह ही करना चाहते हैं तो मैं आपसे एक मेरे हृदय में रहने वाले सन्देह के विषय में आपके पूछता हूँ । उसे आप मुझे बता देने की कृपा करें क्योंकि आप परम योग्य हैं ।५। हे भगवान् ! मुझे किसी एक तीर्थ के विषय में धर्म संशय है उसी के सम्बन्ध में मैं श्रवण करना चाहता हूँ सो आप कृपया पृथक् सकीर्त्तन करिये । हे द्विजसत्तम ! जो इस पृथ्वी की परिक्रमा करता है उसका क्या फल होता है ? हे विप्रर्षे ! आपका तो तपश्चर्या ही धन है । कृपा कर यह मुझे बतलाइये ।६-७।

कथयिष्यामि तदहमृषीणां मत्परायणम् ।
तदेकाग्रमनास्तात शृणु तीर्थेषु यत्फलम् ।।८
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयुतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ।।९
प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टो नियतः शुचिः ।
अहङ्कारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ।।१०

अकल्किको निराहारोऽलब्धाहारो जितेन्द्रयः।
विमुक्तः सर्वदोषैर्यः स तीर्थफलमश्नुते ॥११
अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥१२
ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवेष्वपि यथाक्रमम्।
फलं चैव यथातत्त्वं प्रेत्य चेह च सर्वशः ॥१३
न ते शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं महीपते।
बहुपकरणा यज्ञा नानासम्भरविस्तराः ॥१४

महर्षि वसिष्ठ जी ने कहा-समस्त ऋषियों में मेरी ही सेवा-शुश्रूषा में तत्पर रहने वाले आपसे मैं इसको अभी बतलाता हूँ आप अपने चित्त को एकाग्र करके यह श्रवण करो कि तीर्थों में क्या-क्या फल प्राप्त होता है ।८। सबसे प्रथम बात तो समझ लेने की यह है कि जिसके हाथ-पैर और मन सुसंयत होते हैं तथा जिसमें विद्या-कीर्ति और तपश्चर्या होते हैं वही मनुष्य तीर्थों के फल को प्राप्त करने का अधिकारी होता है। इनके अभाव में किसी को भी तीर्थ का फल नहीं मिला करता है ।९। जो व्यक्ति तीर्थों का फल प्राप्त करना चाहता है उसे किसी का भी प्रतिग्रह ग्रहण नहीं करना चाहिए। जो भी कुछ प्राप्त हो उसी में परम सन्तोष धारण करे, नियतात्मा होकर रहे, पवित्र रहे तथा अहंकार से सर्वदा एवं सर्वथा निवृत्त रहना चाहिए। इस तरह की वृत्ति वाला पुरुष ही तीर्थ का फल प्राप्त किया करता है ।१०। जो कलह से रहित हो बिना आहार वाला हो-आहार को प्राप्त न करने वाला ही-इन्द्रियों को जीत कर वश में रखने वाला हो और सभी दुर्गुण तथा दोषों से जो विमुक्त होता है वही पुरुष तीर्थों के फल को पाता है ।११। हे राजेन्द्र ! जो क्रोध से रहित होता है और सत्य भाषण एवं व्यवहार करने वाला होता है तथा अपने ग्रहण किये हुए व्रतों से सुदृढ़ होता है एवं समस्त प्राणियों में अपने ही समान भावना रखने वाला होता है वही पुरुष तीर्थों के फल को प्राप्त करने का अधिकारी हुआ करता है ।१२। ऋषियों ने बहुत से यज्ञ बताये हैं। और देवों के विषय में भी क्रमानु-

सार बहुत कुछ बतलाया है। उन सबका फलतस्था तत्व मरने के पश्चात् मिलता है एवं यहाँ पर भी कुछ मिलता है किन्तु उन यज्ञादि करने की शक्ति तो हर एक में नहीं होती है। जो दरिद्र है वह इनको कदापि कर ही नहीं सकता है। हे राजन्! यज्ञों का करना कोई आसन कार्य नहीं है। इनके करने में तो बहुत से उपकारण हुआ करते हैं जो बिना विपुल धन के हो ही नहीं सकते हैं। यज्ञों में तो अनेक प्रकार के सामान की आवश्यकता होती है जिनका बहुत अधिक विस्तार होता है धनहीन साधारण श्रेणी के मनुष्य यज्ञादि का कर्म किसी भी प्रकार से कर ही नहीं सकते हैं ।१३-१४।

प्राप्यन्ते पार्थिवैरेते समृद्धैर्वा नरैक्वचित् ।
न निर्धनैर्नरगणैरेकात्मभिरसाधनैः ॥१५
यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं जनेश्वर ?
तुल्यो यज्ञफलैः पुण्यैस्तं निबोध महीपते ? ॥१६
ऋषीणाँ परमं गुह्यमिदं धर्म्मभृतां वरः !
तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते ॥१७
अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थाभिगमनेन च ।
अदत्वा काञ्जनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते ॥१८
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ।
न तत्फलमवाप्नोति तीर्थभिगमनेन यत् ॥१९
नृलोके देवलोकस्य तीर्थं त्रैयोक्यविश्रुतम्।
पुष्करं तीर्थमासाद्य देवदेवसमो भवेत् ॥२०
दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां वै महीपते ?
सान्निध्यं पुष्करे येषां त्रिसन्ध्यं सूर्यवंशज ! ॥२१

इन यज्ञ कर्म्मों को तो करके उनके महान् फलों को जो सम्पत्ति से समृद्ध मनुष्य होते हैं वे या राजा लोग जो भूमि के अधिपति होते हैं वे ही प्राप्त कर सकते हैं। उनमें भी कोई कभी इन को किया करते हैं। जो विचारे निर्धन और साधनहीन मनुष्य हैं वे अकेले इनको किसी प्रकार भी नहीं कर पाते हैं और इनके फल से वञ्चित ही रहते हैं

।१५। हे जनेश्वर ! जिस विधि-विधान को धनहीन दरिद्र लोग भी प्राप्त कर सकें और उसका पुण्य फल यज्ञों के पुण्य-फल के ही समान हो हे महीपते ! आप उसे ही अब जान कर भली भाँति समझलो ।१६। हे राजन् ! आप तो धार्मिक मनुष्यों में परम श्रेष्ठ हैं । तीर्थों की यात्रा का जो पुण्य होता है वह यज्ञों से समुत्पन्न पुण्य से भी विशेष होता है और ऋषियों के यहाँ यह बहुत ही गोपनीय होता है ।१७। तीन रात्रि तक उपवास न करके जो तीर्थों का अभिगमन किया करते हैं और सुवर्ण तथा गौओं का दान न करके जो तीर्थाटन करता है वह मनुष्य दरिद्र हो जाता है ।१८। वैसे तीर्थाभिगमन का ऐसा विशाल पुण्य फल होता है कि बहुत बड़ी दक्षिणा वाले अग्नि होम आदि यज्ञों के द्वारा यजन करके भी उतना फल नहीं प्राप्त किया जा सकता है ।१९। इस मनुष्य लोक में तीनों लोकों में विख्यात देवलोक का तीर्थ पुष्कर है जिसे प्राप्त करके मनुष्य देवों के देव के समान ही हो जाया करता है ।२०। हे मही के स्वामिन् ! दश सहस्र करोड़ तीर्थों का सान्निध्य पुष्कर तीर्थ में होता है । पुष्कर तीर्थ का सान्निध्य तीनों सन्ध्याओं के सहित होना चाहिए तभी समस्त तीर्थों के निवास उसमें प्राप्त होने का पुण्य फल मनुष्यों को मिला करता है ।२१।

आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्च समरुद्गणाः ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव तत्र सन्निहिताः प्रभो ! ।।२२
यत्र देवास्तपस्तप्त्वा दैत्य ब्रह्मर्षयस्तथा ।
दिव्ययोगा महाराजा पुण्येन महता द्विजाः ।।२३
मनसाऽप्यभिकामस्य पुष्कराणि मनीषिणः ।
पूयन्ते सर्वपापानि नाकपृष्ठेच पूज्यते ।।२४
अस्मिंस्तीर्थे महाभाग ! नित्यमेव पितामहः ।
उवास परमप्रीतो देवदानवसंमतः ।।२५
पुष्करे महाभाग ! देवाःसर्षिपुरोगमाः ।

सिद्धिं परमिकां प्राप्ताः पुण्येन महताऽन्विताः ।।२६

तत्राभिषेकं यः कुर्यात्पितृदेवार्चने रतः ।
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२७
अप्येकं भोजयेद्विप्रं पुष्करारण्यमाश्रितः ।
तेनैति पूजितांल्लोकान्ब्रह्मणः सदने स्थितान् ॥२८

हे प्रभो ! आदित्य-वसुगण-रुद्र साध्य मरुत् समस्त गन्धर्वअप्सराएँ ये सब वहाँ पुष्कर तीर्थ में निवास किया करते हैं । ।२२। हे महाराज ! जिस परम पुण्य तीर्थ पर देवगण—दैत्य वर्ग और ब्रह्मर्षि तपश्चर्या करके महान् पुण्य के द्वारा दिव्य योग वाले हो जाया करते हैं ।२३। पुष्कर तीर्थ की ऐसी महान् महिमा है कि यदि मव से भी कोई पाप सोचा जावे तो मनीषी पुरुष के उस मानसिक पापों को भी दूर कर देता है और केवल पापों से ही छुटकारा नहीं देता बल्कि स्वर्गलोक में भी उसकी पूजा की जाती है ।२४। हे महाभाग ! इस तीर्थ में भगवान् पितामह देवगण और दानवों से संपत होकर नित्य ही परम सन्न होते हुए निवास किया करते थे ।२५। हे महाभाग ! पुष्कार तीर्थों में ऋषिवृन्द के सहित और ऋषियों को अपने आगे लेकर देवगणों ने परम सिद्धि को प्राप्त किया है और महान् पुण्य से सम्पन्न हुए हैं ।२६। पुष्कर तीर्थों में जो कोई भी पुरुष अभिषेक किया करता है और पितृगण तथा देववृन्द के अर्चना में रति रखने वाला होता है उनका जो महान् पुण्य होता है उसे महा मनीषी लोग अश्वमेध यज्ञ से दशगुना बतलाया करते हैं ।२७। जो पुष्कर तीर्थ के समीपस्थ अरण्य में निवास करने वाला श्रेष्ठ ब्राह्मण हो और वहाँ पर स्थित रह कर ही तपश्चर्या करता हो उसे यदि एक को भी भोजन तृप्ति पूर्वक कोई करता है तो उसका महान् पुण्य होता है यों समझिये कि उससे ब्रह्मलोक में स्थित लोकों को पूजित कर लिया है ।२८।

सयं प्राप्तः स्मरेद्यस्तु पुष्करणिकृताञ्ज लिः ।
उपस्पृष्टं भवेत्त न सर्वतीर्थेषु पार्थिव॥ २९
जन्मप्रभृति यत्पापं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ।
पुष्करे गतमात्रस्य सर्वमेव प्रणश्यति ॥३०

यथा सुराणां सर्वेषामादिस्तु मधुसूदनः ।
तथैव पुष्करो राजंस्तीर्थानामादिरुच्यते ।।३१
ऊष्ट्वा द्वादशवर्षाणि पुष्करे नियतः शुचिः ।
क्रतून्सर्वानवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति ।।३२
यस्तु वर्षशतं पूर्णमग्निमहोत्रमुपाचरेत् ।
कार्तिकीं वा वसेदेका पुष्करे सममेव तत् ।।३३
दुष्करं पुष्करे गन्तु दुष्करं पुष्करे तपः ।
पुष्करं पुष्करे दानं वस्तु चैव सुदुष्करम् ।।३४
त्रीणि शृङ्गाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्रवणानि च ।
पुष्कराण्यादितीर्थानि न विघ्नस्तत्र कारकम् ।।३५
उष्ट्वा द्वादशवर्षाणि नियतो नियताशनः ।
ससुक्तः सर्वपायेभ्यः सर्वक्रतुफलं लभेत् ।।३६

सायंकाला और प्रातःकाल में दोनों समय में जो भी कोई पुरुष दोनों हाथ जोड़कर पुष्कर तीर्थों का स्मरण किया करता है जैसे उसने सम्पूर्ण तीर्थों में उपस्पर्शन कर लिया हो ।२९। कोई स्त्री हो या पुरुष हो जन्म से लेकर उसने जो भी कुछ पापकर्म किये हैं वे समस्त पाप पुष्कर तीर्थ में केवल पहुँच जाने से ही नष्ट हो जाया करते हैं ।३०। जैसे समस्त देवगणों में भगवान् मधुसूदन सर्वोपरि विराजमान और सर्व शिरोमणि आदि देव है उसी भाँति हे राजन् ! समस्त तीर्थों में पुष्कर सब से आदि एवं सब में परम प्रधान तथा महान् तीर्थ है ऐसा कहा जाता है ।३१। पुष्कर तीर्थ में जो परम नियत होकर एवं अति शुचिता के साथ निरन्तर बारह वर्ष पर्यन्त निवास कर लेता है वह समस्त प्रकार के ऋतुओं के करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लेता है और अन्त में उस पुरुष का ब्रह्मलोक में नित्य निवास हुआ करता है ।३२। जो कोई पुरुष सौ वर्ष तक पूर्ण अग्निहोत्र किया करता है और एक रात्रि कार्तिकी पूर्णिमा के दिन में पुष्कर तीर्थ में निवास किया करता है इन दोनों का समान ही पुण्य-फल होना है ।३३। पुष्कर राज तीर्थ में गमन करना ही बहुत कठिन है अर्थात् किसी महान् पुण्योदय होने से ही

यह प्राप्त हुआ करता है फिर पुष्कर तीर्थ में तपश्चर्या करना यह उससे भी अत्यन्त कठिन है तथा पुष्कर तीर्थ में दान करना और वहाँ निवास करना ये सब बड़े भाग्य से प्राप्त ही नहीं हो सकता है ।३४। वहाँ पर तीन तो शुभ्र शृंग है और तीन ही प्रस्रवण हैं । ये पुष्कर आदि तीर्थ हैं । इनके करने वाला कौन है—यह नहीं जानते हैं ।३५। बारह वर्ष पर्यन्त वहाँ नियत और नियत आहार वाला होकर जो निवास करता है वह अपने किये हुए समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है और उसे सभी ऋतुओं के संग सम्पन्न करने का पुण्य फल प्राप्त हो जाता है ।३६।

।। तीर्थाश्रम माहात्म्य ।।

प्रदक्षिणमुपावृत्तो जम्बूमार्गे समाविशेत् ।
जम्बूमार्गं समाविश्व पितृदेवर्षिपूजितम् ।।१
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति ।
तत्रोष्य रजनी पञ्च यष्ठे कालेऽश्नुवन्नरः ।।२
न दुर्गतिमवाप्नोति सिद्धिचाऽऽप्नोत्यनुत्तमाम् ।
जम्बूमार्गादुपावृत्तो गच्छेत्तु दुलिकाश्रमम् ।।३
न दुर्गतिमवाप्नोति स्वर्गलोके च पूज्यते ।
अगस्त्याश्रममासाद्य पितृदेतार्चने रतः ।।४
त्रिरात्रोपोषितो राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ।
शाकावृत्तिः फलैर्वापि कौमारं विन्दते परम् ।।५
कन्यान्नमं समासाद्य श्रीपुष्टं लोकपूजितम् ।
धर्मारण्यं हि तत्पुण्यमाद्यं च पार्थिवर्षभ ।।६

वसिष्ठ महर्षि ने कहा—प्रदक्षिण से उपावृत्त होकर जम्बूमार्ग में समाविष्ट होकर वहाँ पर अपने पितृगण तथा देवगण की अर्चना करे । ऐसा पुरुष जो किया करता है वह अश्वमेध यज्ञ के करने का पुण्य प्राप्त किया करता है और विष्णुलोक में नित्य निवास प्राप्त करता है । वहां पर पाँच रात्रि तक उपवास करे और छठवें दिन जो आहार करता है उसकी अति महान् पुण्य होता है ।१-२। ऐसी रीति से उपवास

करने वाले पुरुष की कभी की कोई दुर्गति नहीं होती है और वह परमोत्तम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। जम्बूमार्ग से उपावृत्त होकर फिर जो दुलिकाश्रम को जाता है वह पुरुष भी दुर्गति को नहीं पाता है और स्वर्गलोक में निवास प्राप्त कर पूजित होता है। इसके अनन्तर अगस्त्य मुनि का आश्रम है। वहाँ पहुँच कर जो पितृ देवों के यजनार्चन में रत रहता है और तीन रात्रि तक उपवास किया करता है उसे अग्निष्टोम के करने का पुण्य-फल प्राप्त होता है। शाक से अपनी वृत्ति करने वाला अर्थात् शाकाहार करके रहने वाला अथवा फलों का ही आहार करके जीवन यापन करने वाला पुरुष जो इस रीति से वहाँ निवास किया करता है वह कौमार पद को प्राप्त कर लेता है। ३-५। जो कोई पुरुष कन्याश्रम में पहुँच कर निवास किया करता है वह श्री से पुष्ट होता है और लोकों के द्वारा पूजित होता है। हे पार्थिवों में परम श्रेष्ठतम! वह धर्मारण्य है, महान् पवित्र स्थल है और सबसे अग्रस्थान है।६।

यत्र प्रवष्टिमात्रो वै पापेभ्यो विप्र ! मुच्यते ।
अर्चयित्वापि तन्देवान्प्रयतो नियताशनः ॥७
सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ।
प्रादक्षिण्यं ततः कृत्वा ययातिपतनं व्रजेत् ॥८
हयमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति तत्र वैः ।
महाकालमतो गच्छेन्नियतो नियताशनः ॥९
कोटितीर्थमुपस्पृश्य हयमेधफलं लभेत् ।
ततो गच्छेत् धर्मज्ञ स्थानं तीर्थमुमापते ॥१०
नाम्ना भद्रवटं नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्राभिगम्य चेषान गौसहस्रफल लभेत् ॥११
महादेवप्रसादाच्च गाणापत्यमवाप्नुयात् ।
समृद्धमसपत्नं तु श्रियायुक्तं नरोत्तम ॥१२
नर्मदां तु समासाद्य नदीं त्रैलोक्यविश्रुताम् ।
तर्पयित्वा पितॄन्देवानग्निष्टोमफलं लभेत् ॥१३

हे विप्र ! इस कन्याश्रम की ऐसी महिमा है कि उस आश्रम में केवल प्रवेश ही कर लेवे तो उसका इतना अद्भुत पुण्य फल होता है कि वह प्राणी समस्त पापों में मुक्ति पा जाया करता है। यदि वहाँ पर स्थित होकर देव गण का अर्चन करे और नियत होकर नियताहार वाला रहे तो वह सभी प्रकार की कामनाओं से समृद्ध हो जाया करता है तथा यज्ञ करने का फल प्राप्त किया करता है। इसके उपरान्त प्राशिक्षिणा की पूर्ण करके फिर ययाति पतन नामक आश्रय में जाना चाहिए। वहाँ पहुंचने से हयमेध यज्ञ के फल का लाभ किया करता है इसके अनन्तर महाकाल नामक स्थात में जाना चाहिए वहाँ पर भी नियत रहे तथा अपना आहार भी नियत ही रक्खे ।७-९। तो करोड़ों तीर्थों के उपस्पर्शत करने का तथा अश्वमेध यज्ञ करने का जो पुण्य-फल होता है वह उसे मिल जाया करता है। हे धर्म के ज्ञाता ! इसके अनन्तर फिर भगवान् उमापति के तीर्थ स्थान पर जाना चाहिए।१९। वहाँ पर एक भद्रवट नाम वाला वट है जो कि तीनों लोकों में परम विख्यात है। वहाँ पर भगवान् ईशान का दर्शन तथा भजन करने से एक सहस्र गोदान करने का फल प्राप्त होता है ।११। भगवान् महादेव के प्रसाद से गाणपत्य पद की प्राप्ति किया करता है जोकि परम समृद्धि सम्पन्न है, श्री से समन्दित है और जिसका कोई भी सपत्नक चाहने वाला शत्रु नहीं है। हे नरों में अत्युत्तम ! तीनों लोकों में परम प्रसिद्ध नर्वदा नाम वाली नदी पर पहुंचकर जो पुरुष अपने पितरों का तर्पण किया करता है और अपने अभीष्ट उपास्य देवों का समर्चन करता है वह मनुष्य अग्निष्टोम याग करने का पुण्य फल प्राप्त किया करता है ।१२-१३।

।। नर्मदा माहात्म्य वर्णन ।।

वसिष्ठेन दिलीपाय कथितं तीर्थमुत्ततम् ।
नर्मदेदि च विख्यातं पापपर्वतदारणम् ।।१
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि तन्मे कथय नारद ।

नर्मदायाश्च माहात्म्यं वसिष्ठोद्य द्विजोत्तम ।।२

कथमेषा महापुण्या नदी सर्वत्र विश्रुता ।
नर्मदा नाम विख्याता तन्मम ब्रूहि नारद ॥३
नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी ।
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥४
नर्मदायास्तु माहात्म्यं वसिष्ठोक्तं मया श्रुतम् ।
तदेतद्धि महाराजा ! सव हि कथयामि ते ॥५
पुण्या कनखले गङ्गाकुरुक्षेत्रे सरस्वती ।
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्म्मदा ॥६
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेनयामुनम् ।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नामदम् ॥७

राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे देवर्षिवर ! महर्षि वसिष्ठ ने राजा दिलीप को उत्तम तीर्थ बतलाया था। नर्मदा—इस नाम से जो परम प्रसिद्ध है और पापों के पहाड़ों को तोड़ने वाली है। हे नारदजी ! मैं उसे पुनः श्रवण करना चाहता हूँ सो आप उसे मुझे बतलाइये ! हे द्विजोत्तम ! नर्मदा नदी का माहात्म्य वसिष्ठ मुनि के द्वारा कथित है ।१-२। यह नर्मदा महान् पुण्यों वाली किस लिये है और किस कारण से इस नदी की सर्वत्र प्रसिद्धि भी है ? हे नारदजी ! 'नर्मदा'-यह नाम कैसे प्रसिद्ध हुआ-आप कृपा कर मुझे यह सब विस्तार सहित बतलाइये ।३। नारदजी से कहा—यह नर्मदा नदी समस्त नदियों में परम श्रेष्ठ नदी है और यह सब पापों के नाश करने वाली है। यह सब स्थावर और चर प्राणियों को तार दिया करती है ।४। नर्मदा नदी का माहात्म्य जोकि महर्षि वसिष्ठ जी ने कहा था, मैंने श्रवण किया है। हे महाराज ! वह सब मैं अब तुमको बतलाता हूँ ॥५॥ भागीरथी गंगा कनखल में परम पुण्यमयीं होती है, कुरुक्षेत्र में सरस्वती पुण्य पूर्णा होती है किन्तु नर्मदा नदी तो चाहे ग्राम हो या अरण्य हो सर्वत्र पुण्यः मयी होती है ।६। सरस्वती नदी का जल तीन दिन में, यमुना नदी

का जल सात दिन में, गङ्गा का जल तुरन्त पवित्र कर देता है, किन्तु नर्मदा का जल तो दर्शन मात्र से ही पुनीत कर देता है। ७।

कलिङ्गदेशे पश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके ।
पुण्या च त्रिषुलोकेषु रमणीया मनोरमा ।।८
सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
तपस्तप्त्वा महाराज सिद्धिं च परमां गताः ।।९
तत्र स्नात्वा महाराज नियमस्थो जितेन्द्रियः ।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ।।१०
जनेश्वरे नरः स्नात्वा पिण्डं दत्वा यथाविधि ।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ।।११
पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता ।
स्नानं यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनम् ।।१२
प्रीता तस्य भवेत्सर्वा रुद्रकोटिर्न संशयः ।
पर्वत पश्चिमस्यान्तेस्वयं देवो महेश्वरः ।।१३
तत्र स्नात्वा शुचिर्भुत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
पितृकार्यं तु कुर्वीत विधिदृष्टेन भर्मणा ।।१४

कलिंग देश में, पाश्चार्द्ध में और अमर कण्टक पर्वत में और तीनों लोकों में यह नर्मदा पुण्यमयी है अत्यन्त रमणीय और मनोरम है।८। हे महाराज! देव-असुर गन्धर्व और तप को ही परम धन समझने वाले ऋषिगण यहाँ पर तपस्या करके परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं।९। हे महाराज! उस नर्मदा नदी में स्नान करके जो कोई मनुष्य नियमों में स्थित रहता है और अपनी इन्द्रियों को वश में कर जीत लेता है वह एक रात्रि उपवास करके अपने सौ कुलों का उद्धार कर दिया करता है।१०। मनुष्य जनेश्वर में स्नान करके विधि पूर्वक जो पिण्ड दान किया करता है उसके सब पितृगण तृप्त हो जाया करते हैं जब तक भूत सम्प्लव होता है अर्थात् महाप्रलय पर्यन्त पितरों की तृप्ति रहा करती

है।११। पर्वत के चारों ओर रुद्र कोटि प्रतिष्ठित है। वहाँ पर जो भी कोई स्नान किया करता है और गन्धमाल्य का अनलेपन करता है उस पर समस्त रुद्र कोटि परम प्रसन्न हो जाती है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं हैं। उस पर्वत के पश्चिम भाग के अन्त में स्वयं महेश्वर देव स्थित हैं।१२-१३। वहाँ पर स्नान करके और परम पवित्र होकर ब्रह्मचर्य पूर्वक रहने वाला जितेन्द्रिय (इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखने वाला) पुरुष विधि-विधानिपूर्वक कर्म्म से पितृ-कार्य करता है उसके पितरों को उद्धार हो जाता है और करने वाला भी विमुक्त हो जाता है।१४।

—※—

।। वर्णाश्रम का सामान्य धर्म ।।

कर्म योगः कथं सूत ! येन चाराधितो हरिः ।
प्रसीदति महाभाग ! वद नो वदतांवर ! ।।१
येनासौ भगवानीशः समाराध्यो मुमुक्षुभिः ।
तद्वदाखिललोकानां रक्षणं धर्मसङ्गतम् ।।२
तं कर्म योगं वद नः सूतमूर्तिमयस्तु यः ।
इति शुश्रूषवो विप्रा मवदग्रे व्यवस्थिताः ।।३
एवमेव पुरा पृष्टो व्यासः सत्यवती मुतः ।
ऋषिभिरग्निसङ्काशैर्व्यासस्तानाह तच्छृणु ।।४
शृणुध्वमृषयः सर्वे वक्ष्यमाणं सनातनम् ।
कर्म योगं ब्राह्मणानामात्यन्तिकफलप्रदम् ।।५
आम्नायसिद्धमखिलं ब्राह्मणार्थे प्रदर्शितम ।
ऋषिणां शृण्वतां पूर्वं मनुराह प्रजापतिः ।।६
सर्वव्याधिहरं पुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम् ।
समाहितधियो यूय शृणुध्वं गदतो मम ।।७

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप बोलने वालों में परम श्रेष्ठ हैं। हे महान् भाग्य वाले कृपा कर हमको बतलाइये कि वह कर्मयोग किस प्रकार का होता है जिसके द्वारा आराधना करने पर

भगवान् हरि प्रसन्न हो जाया करते हैं ? यह भी वताइये कि जिसके द्वारा मुक्ति के इच्छुक लोग भगवान् ईश्वर की समाराधना किया करते हैं यह सभी कुछ हमको वतलाइये । यह धर्म के संगत है और समस्त लोकों की रक्षा करने वाला भी है ।१-२। हे सूतजी ! अब उसी कर्म योग का वर्णन कीजिए जो मूर्तिमय हो । ये सब श्रवण करने की उत्कट अभिलाषा लेकर विप्र वृन्द आपके समक्ष में उपस्थित हैं ।।३।। सूतजी ने कहा पहिले वहुत पुराने समय में एक बार ऐसा ही प्रश्न अग्नि के सदृश धरम तेजस्वी ऋषियों ने सत्यावती के पुत्र व्यास देवजी से किया था अर्थात् इसी प्रकार से यही बात पूछी थी उस समय में जो वेद व्यास कृष्ण द्वैपायन ने जो उनको उत्तर दिया था वहीं मैं आप लोगों को वताता हूँ उसका आप लोग श्रवण करें ।४। व्यासजी ने कहा था हे ऋषिगण आप लोग सुनियें, जो मैं परम सनातन कर्मयोग अभी आपको बतलाता हूँ । यह कर्मयोग ब्राह्मणों के लिये आत्यन्तिक फल प्रदान करने वाला होता है ।५। यह सम्पूर्ण आम्नाय से सिद्ध एवं प्रमाणित है और ब्रह्मणों के लिये ही प्रदर्शित किया गया है । सुनते हुए ऋषियों के समक्ष में पहले प्रजापति मुनि ने कहा था ।६। यह कर्म योग ऐसा है जो सव प्रकार की व्याधियों को हरण करने वाला है तथा अति पुण्यमय पवित्र है और ऋषियों के समुदायों के द्वारा सेवित किया हुआ है । जव मैं आपको वताता हूँ । मुझसे आप लोग सावधान बुद्धि वाले होकर अच्छी तरह से श्रवण कीजिये ।७।

कृतोपनयनो वेदानधीयीत द्विजोत्तमः ।
गर्भाष्टमेऽष्टमेवाऽब्दे स्वसूत्रोक्तविधानतः ।।८
दण्डी च मेखली सूत्री कृष्णाजिनधरो मुनिः ।
भिक्षा हरो गुरुहितो वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ।।९
कार्पासमुपवीतार्थं निर्मित ब्रह्मणा पुरा ।
ब्राह्मणानां त्रिवृत्सूत्रं कौशं वा वस्त्रमेव वा ।।१०
सदोपवीती चैव स्यात्सदावद्धशिखो द्विजः ।
अन्यथा यत्कृतं कर्म तद्भवत्ययथाकृतम् ।।११

वसीताविकृतं वासः कर्पासं वा कषायकम् ।
तदेव परिधानीय शुक्लं तान्तवमुत्तमम् ॥१२
उत्तरं तु समाम्नातं वासः कृष्णाजिनं शुभम् ।
अभावे गावयमपि रोरवं वा विधीयते ॥१३
उद्धृत्य दक्षिणबाहुं सव्यबाहौ समर्पितम् ।
उपवीतं भवेन्नित्यं निवीतं कण्ठसज्जते ॥१४

जिस ब्राह्मण का उपनयन संस्कार हो गया हो और द्विजत्व की प्राप्ति जिसने करली हो उसे सर्व प्रथम वेदों का अध्ययन करना चाहिए । उपनयन संस्कार करने का समुचित शास्त्रोक्त समय गर्भ धारण करने से आठवां वर्ष होता है जोकि अपने सूत्र में कथित विधान से अनुकूल है ॥८॥ जिसका उपनयन संस्कार हो गया है उसे दण्ड धारण करने वाला-मेखलाधारी, सूत्र (यज्ञोपवीत) पहिनने वाला तथा कृष्ण वर्ण के मृग का चर्म रख कर मुनि के स्वरूप में रहना चाहिए । भिक्षाटन के द्वारा अपना आहार करे, सर्वदा अपने दीक्षा देने वाले और वेदाध्यापन करने वाले गुरु की भलाई करे अर्थात् सुश्रुषा करता रहे और गुरु के मुख को ही सदा देखना रहे अर्थात् जो भी गुरु के मुख से आदेश प्राप्त हो उसका पूर्ण पालन सदा करे ॥९॥ ब्रह्माजी ने पहिले समय में उपवीत के लिये कपास से बने हुए सूत का ही निर्माण बताया था । ब्राह्मणों का सूत्र त्रिवृत अर्थात् तीन लड़ों वाला होता है । कौश अथवा वस्त्र स्वरूप होता है ॥ १० ॥ द्विज को सदा ही उपवीत धारण करके ही रहना चाहिये । द्विज की चोटी में भी सर्वदा ग्रन्थि लगी रहनी चाहिये । विना उपवीत धारण किये और चोटी में गाँठ लगाये हुए द्विज जो भी कर्म किया करता है वह अथवा कृत अर्थात् फलशून्य व्यर्थ ही हो जाया करता है ॥११॥ वस्त्र भी द्विज ब्रह्मचारी को विकार से रहित ही पहिनना चाहिए । वह वस्त्र चाहे कपास का सूती हो या कषायक हो । ऐसा ही वस्त्र धारण करना चाहिए जिसका वर्ण शुक्ल हो और उत्तम तन्तुओं से निर्मित किया हुआ हो ॥१२॥

उत्तरीय वस्त्र के स्थान में तो ब्रह्मचारी के लिये कृष्णाजिन (काला

मृग चर्म) ही परम शुभ वस्त्र बताया गया है। अर्थात् वेद ने ऐसी ही आज्ञा दी है । यदि कृष्णाजिन न प्राप्त हो सके तो उसके अभाव में गायव एवं रौरव चर्म का भी विधान है।१३। दक्षिण बाहु को उद्धृत कर के सव्य (बाँये) बाहु में उसे (उपवीत को) समर्पित करे। नित्य ही द्विज ब्रह्मचारी को उपवीत धारण करने वाला रहना चाहिए जिस समय में उपवीत को कण्ठ में सज्जित किया जाता है तो उसे निवीत कहा जाता है।१४।

सव्यबाहुं समुद्धृत्य दक्षिणे तु धृतं द्विजाः।
प्राचीनावीतमित्युक्तं पित्र्ये कर्मणि योजयेत् ॥१५
अग्न्यगारे गवां गोष्ठे होमे तर्प्ये तथैव च।
स्वाध्याये भोजने नित्यं ब्राह्मणानां च सन्निधौ ॥१६
देवताभ्यर्चनं कुर्यात्पुष्पैः पत्रैर्यवाम्बुभिः।
अभिवादनशीलः स्यान्नित्य वृद्धेषु धर्मतः ॥१७
असावहं भोनामेति सम्यक्प्रणतिपूर्वकम्।
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं तन्द्रादिपरिवर्जितः ॥१८
आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने।
आकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरं प्लुतः ॥१९
यो नवेत्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम्।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥२०
व्यत्यस्तपाणिना कार्यं पादसङ्ग्रसणं गुरोः।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणे न तु दक्षिणः ॥२१

सव्य बाहु को समुद्धृत करके हे द्विजगण ! जब दक्षिण बाहु में इसे धारण किया जाता है तो उसे प्राचीनावीत, ऐसा कहा गया है जोकि पितृगण के श्राद्ध-तर्पण आदि कृत्यों में योजित करना चाहिए।१५। अग्नि गृह में, गौओं के गोष्ठ में, होम करने के अवसर पर, तर्पण के समय में, वेदों का स्वाध्याय करने के अवसर पर, भोजन करते के समय में और ब्राह्मणों की सन्निधि में उपस्थित रहने पर सदा उपवीती रहना चाहिए।१६। ब्रह्मचारी को सदा देवगण का अभ्यर्चन करना चाहिए

और पुष्पों के द्वारा पत्रों से तथा यवाम्बु से करे। ब्रह्मचारी द्विज को सदा अभिवादन करने के स्वभाव वाला होना चाहिए। जो वृद्ध पुरुष है अर्थात् अपने से बड़े हैं उनको नित्य ही धर्मानुसार प्रणाम करना चाहिए।१७। प्रणाम करने की विधि यह है कि जब अपने से किसी बड़े को प्रणाम करे तो पहिले इस तरह कहते हुए प्रणाम करे—'भो गुरु चरण। मैं अमुक गोत्र में समुत्पन्न, अमुक नाम वाला आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ। चरणस्पर्श करना हो तो अपने हाथों को ऊपर नीचे कर दक्षिण हाथ से दाहिनी चरण और बाँये हाथ से वाम चरण छुये। आयु और आरोग्य की सिद्धि के लिये तन्द्रा-आलस्य आदि दोषों से रहित होकर ही प्रणाम करे।१८। जब कोई अभिवादन (प्रणाम) करता है तो विप्र का कर्त्तव्य है कि उसे-"भो सौम्य! आयुष्मान् होओ कहकर आशीर्वाद अवश्य ही अभिवादन का देना चाहिए इसके नाम के अन्त में आकर अवश्य बोलना चाहिए और पूर्वाक्षर लुप्त होना चाहिए।१९। जो विप्र अभिवादन का कुछ भी ज्ञान नहीं करता है तथा प्रत्यभिवादन नहीं करना चाहिए। क्योंकि जो प्रणाम का कोई आशीर्वाद ही देता है और न प्रत्यभिवादन ही करता है वह तो शूद्र जैसा ही होता है।२०। गुरु के चरणों को व्यत्यस्त पाणि होकर ही पद संग्रहण (चरण स्पर्श) करना चाहिए। दाहिने से दाहिना चरण और बाँया चरण स्पर्श करे।२१।

लौकिकं वैदिकं वाऽपि तथाऽऽध्यात्मिकमेव वा।
अवाप्य प्रयतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादतेत्॥२२
नोदकं धारयेद्भैक्ष्यं पुष्पाणि समिधस्तथा।
एवं विधानि चान्यानि नदेवार्थेषु कर्मसु॥२३
ब्राह्मणं कुशल पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम्।
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च॥२४
उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता त्राता च भीतितः।
मातुलः श्वशुरश्चैव मातामहपितामहौ॥२५

वर्णश्रेष्ठः पितृव्यश्च पुंसोऽत्र गुरवः स्मृताः ।
माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुश्च सोदराः ।।२६
श्वश्रु पितामहीं ज्येष्ठा धात्री च गुरवः स्त्रियः ।
ज्ञेयस्तु गुरुवर्गोऽय मातृतः पितृतो द्विजाः ।।२७
तेषामद्यास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषां माता सुपूजिता ।
यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते ।।२८
ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पञ्चेते गुरुवः स्मृताः ।
आत्मनः सर्व यत्नेन प्राणात्यागेन वा पुनः ।।२९

जिस किसी से लौकिक-वैदिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति करे उसको परम प्रयत होकर पहिले स्वयं प्रणाम करे ।।२२।। इस प्रकार के कर्मों में तथा ऐसे ही अन्य कर्मों के समय में उदक-भैक्ष्य पुष्प और समिधाऐं धारण न करे । जो देवार्थं कर्म्म हों उनमें भी इन उपर्युक्त वस्तुओं को धारण न करे ।।२३।। ब्राह्मण से भेंट हो तो उनसे कुशल पूछना चाहिये अर्थात् 'कुशल' इस शब्द का प्रयोग ही करना चाहिए । क्षत्रिय से भेंट हो तो उससे 'अनामय'—इस शब्दों का प्रयोग कर नीरोगता पूछनी चाहिये । वैश्य से भेंट हो तो और जब अभिवादन आदि की क्रिया समाप्त हो जावे तो उससे (क्षेम) इस शब्द का प्रयोग करके पूछना चाहिए । शूद्र से भेंट हो तो उससे 'आरोग्य'—इस शब्द का प्रयोग कर उसकी स्वस्थता पूछनी चाहिए । यद्यपि सभी शब्दों का तात्पर्य कुशल पूछना ही होता है किन्तु भिन्न-भिन्न वर्णों के लिए भिन्न शब्दों के प्रयोग करने का शास्त्रीय विधान है ।।२४।। अब यह बताया जाता है कि गुरु वर्ग में कौन से व्यक्ति आते हैं—उपाध्याय जो कि विद्या पढ़ाता है—पिता जिसने जन्म ग्रहण कराया है-ज्येष्ठ भाई जो कि पिता के ही तुल्य मान्य होता है—भय से रक्षा करने वाला जिसने प्राणों का त्राण किया है । मातुल जो माता का भाई है—श्वशुर जिसने अपनी कन्या प्रदान करदी है—मातामह (नाना) और पितामह (पिता के भी पिता-वर्ग में जो श्रेष्ठ अर्थात् बड़े एवं पूज्य होवे पितृव्य को पिता

का भाई हो ये सब लोग गुरु वर्ग में बताये गये हैं। इसी प्रकार से स्त्रियों में भी गुरु वर्ग का कथन है--माता जिसने उदर में धारण कर जन्म दिया है सर्व प्रथम है मातामही माता की माता (नानी) गुरु पत्नी-पिता की तथा माता की (भूआ-मौसी) सगी बहिन-श्वश्रू (सास) पिता की माता-ज्येष्ठा अर्थात् बड़ी बहिन और जो अवस्था में बड़ी हो, धात्री जो स्तन का दूध पिलाकर बाल्यावस्था में पोषण किया करती है ये सब स्त्रियाँ गुरुवर्ग में मानी जाती हैं ॥२५-२७॥ इन स्त्रियों में जिनको ऊपर गुरु वर्ग में बताया गया है पहिली तीन श्रेष्ठ मानी गयी हैं। उन तीनों में भी माता सबसे अधिक पूजित मानी गयी है जो सच्चा हार्दिक प्रेम करती है जन्म देती है और जिसके द्वारा ज्ञान का उपदेश दिया जाता है ॥२८॥ तीनों ये स्त्रियाँ और ज्येष्ठ भाई तथा भर्त्ता भरण करने वाला ये पाँच प्रमुख गुरु बताये गये हैं। इन की पूजा अपने सर्व भाव से और सभी प्रयत्नों के द्वारा तथा प्राणपन से इनकी पूजा अवश्य ही करना चाहिए ॥२९॥

भोभवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् ।
अभिवाद्यैश्च पूज्यश्च शिरसा नम्य एव च ॥३०

ब्राह्मणक्षत्रियाद्यैश्च श्रीकामैः सादरं सदा ।
नाभिवाद्याश्च विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथंचन ॥३१

ज्ञानकर्मगुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः ।
ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति श्रुतिः ॥३२

सवर्णेन सवर्णानां कार्यमेवाभिवादनम् ।
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥३३

पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वत्राभ्यागतो गुरुः ।
विद्याकर्मवयोबन्धुर्वित्तं भवति पञ्चमम् ॥३४

मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वं पूर्वं गुरूत्तरात् !
पञ्चानां त्रिषुवर्णेषु भूयांसि बलवन्ति च ॥३५

जो धर्म का ज्ञान रखने वाला पुरुष है उसे चाहिए कि उक्त गुरुजनों से सर्वदा भोभवत्पूर्वक भाषण करना चाहिए। अर्थात् भवत् शब्द का

(आपका) प्रयोग ही सदा करे। ये सभी अभिवादन करने के योग्य होते हैं—पूजा करने के योग्य होते हैं और शिर चरणों में टेककर ही प्रणाम करने के योग्य होते हैं।३०। जो श्री प्राप्त करने की कामना रखते हैं ऐसे ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि के द्वारा आदर के सहित सदा अभिवादन करना चाहिए विशेष रूप से क्षत्रिय वैश्यादि को तो किसी प्रकार से भी अभिवादन नहीं करना चाहिए।३१। यद्यपि वे लोग ज्ञान—कर्म्म और गुणों से सम्पन्न भी हों और बहुश्रुत भी हों अर्थात् विविध विषयों एवं शास्त्रों का बहुत कुछ भाग जिन्होंने सुन रक्खा हो तो भी ब्राह्मण को प्रणाम न करके 'स्वस्ति'—ऐसा ही कहना चाहिए-यही श्रुति का आदेश है।३२। जो समान वर्ण वाले हों उनको अपने सवर्णों को अवश्य ही प्रणाम करना चाहिए। द्विजातियों के अग्नि-गुरु और ब्राह्मण सभी वर्गों के गुरु होते हैं।३३। स्त्रियों का गुरु एक मात्र उसका पति ही होता है। जो अभ्यागतः (अतिथि) होता है वह सर्वत्र सब का गुरु माना जाता है। अब मान्य स्थान कितने होते हैं—यह बताया जाता है। विद्य-कर्म्म-वय-बन्धु और पाँचवाँ धन ये मान्य स्थान हुआ करते हैं किन्तु इनमें भी जो पूर्व-पूर्व होता है वह उत्तर-उत्तर से अधिक मान्य माना जाता है। इन पाँचों की तीनों वर्णों में बहुत सी बलवत्तरा-हुआ करती हैं।३४-३५।

यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः।
पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे विचक्षुषे ॥३६
वृद्धाय भारभाग्नाय रोगिणे दुर्बलाय च।
भिक्षामाहृत्य शिष्टानां गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥३७
निवेद्य गुरवेऽश्नीयाद्वाग्यतस्तदनुज्ञया।
भवत्पूर्वंचरेद्भैक्ष्यमुपवीती द्विजोत्तमः ॥३८
भवन्मध्य तु राजन्यो वश्यस्तु भवदुत्तरम्।
मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ॥३९
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत्।
सजातायगृहेष्वेव सार्ववर्णिकमेव वा ॥४०

भक्ष्यस्याचरणं प्रोक्तं पतितादिविवर्जितम् ।
वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु ।।४१
ब्रह्मचार्य्याहरेद्भैक्ष्यं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ।
गुरोः कुलेन भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु ।।४२

जहाँ पर ये पाँचों ही हों वह मान करने के योग्य होता है । और दशमी को गया हुआ शूद्र भी मान्तर्ह होता है । मार्ग में जाते हुए यदि कोई ब्राह्मण आ जावे तो उसके लिए स्वयं अलग हटकर मार्ग खुला छोड़ देना चाहिए । इसी भाँति स्त्री के लिए-राजा के लिए और अन्धे पुरुष के लिए भी मार्ग खाली कर उन्हें पहिले जाने देना चाहिए ।३६। कोई वृद्ध पुरुष हो-किसी के शिर पर भार रक्खा हुआ हो—कोई रोग ग्रस्त हो और कोई दुर्बल हो तो इन सबके लिए मार्ग पहिले दे देना चाहिए और स्वयं हटकर स्थित हो जाना चाहिए । ब्रह्मचारी द्विज का कर्त्तव्य है कि शिष्टों के यहाँ घरों से भिक्षा लाकर प्रयत होता हुआ प्रतिदिन सर्व अपने गुरु की सेवा में समर्पित करे । जब गुरु की आज्ञा प्राप्त हो जावे तो मौन व्रत धारण कर उसका अशन करे जो उपवीत धारण करने वाला ब्रह्मचारी है वह जब भिक्षा ग्रहण करने के लिए जावे तो द्विजोत्तम को ब्राह्मण के लिए भवत् शब्द का प्रयोग प्रथम करना चाहिए अर्थात् भवती भिक्षां देहि—ऐसा कहना चाहिए ।३७-३८। राजन्य अर्थात् क्षत्रिय के लिए भवत् शब्द का प्रयोग मध्य में करना चाहिए और वैश्य को अन्त में भवत् शब्द का प्रयोग करना चाहिए सबसे प्रथम अपनी माता से, माता की बहिन से अथवा अपनी भगिनी से भिक्षा की याचना करनी चाहिए क्योंकि इनमें से कोई भी ब्रह्मचारी की भिक्षा-याचना करने पर उसे विमानित नहीं करेगी । फिर सजातीय गृहों में ही भिक्षा की याचना करे अथवा सभी वर्णों के घरों में करे ।३९-४०। पतित आदि से रहित ही भक्ष्य का समाचरण बताया गया है । जो पुरुष वेदों से और यज्ञादि से हीन न हों तथा जो पुरुष अपने कर्त्तव्य कर्मों में परम श्रेष्ठ हों उन्हीं के घरों से ब्रह्मचारी को भिक्षा का आपहरण करना चाहिए और प्रतिदिन प्रयत होकर भिक्षाटन करे ।

गुरु का जो कुल हो वहाँ से भिक्षा का उदाहरण करे किन्तु ज्ञाति-कुल और बन्धुओं के यहाँ से कभी अपहरण न करे ॥४१-४२॥

भैक्ष्येण वर्त्तिनो वृत्तिरुपवास समास्मृता ।
पूज्येदशनं नित्यं मदाच्चैनमकुत्सयन ॥४३
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ।
अनारोग्यमानायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ॥४४
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।
प्राङ् मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुखमेव वा ॥४५
नाद्यादुदङ् मुखो नित्यं विधिरेष सनातनः ।
प्रक्षाल्य पाणिपादौ च भुञ्जानो द्विरुपस्पृशेत ।
शुद्धे देशे समासीनो भुक्त्वा च दिरुपस्पृशेत् ॥४६

भैक्ष्य द्वारा जो अपनी जीवन वृत्ति चलाता है वह वृत्ति एक प्रकार से उपवास के ही समान बताई गई है। जो भी भिक्षा में भोज्य पदार्थ प्राप्त हो उसका नित्य पूजन करे और मद से कभी भी उसकी बुराई नहीं करना चाहिए। भोज्य पदार्थ को देखकर परम प्रसन्नता करनी चाहिये। और अत्यन्त हर्षित होवे और सब प्रकार से उसकी प्रशंसा करे। अति भोजन जो होता है यह आरोग्य देने वाला नहीं होता है—आयुष्य व स्वर्ग प्रदान करने वाला भी नहीं होता है। तात्पर्य सुखकर नहीं है,जो अपुण्य और लोक विद्विष्ट होता है उस भोजन का त्याग कर देना चाहिए पूर्व की ओर मुख करके अन्न का उपभोग करे अथवा सूर्य की ओर मुख करके भोजन करना चाहिए ।४३-४५। उत्तर दिशा की ओर मुख करके नित्य भोजन नहीं करे—यही सदा से चली आई भोजन की विधि है। अपने दोनों हाथों और दोनों पैरों को धोकर ही भोजन करे तथा दो बार आचमन करे। भोजन करने का स्थान भी परम विशुद्ध होना चाहिये ऐसे अति शुद्ध स्थान में स्थित होकर मौनी हो भोजन करे और भोजन करने के पश्चात् भी दो बार आचमन करना चाहिए ।४६।

॥ निषिद्ध कर्म कथन ॥

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्वा रथ्योपसर्पणे ।
ओष्ठावलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च ॥१
रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गेऽनृतभाषणे ।
ष्ठीवित्वाऽध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा ॥२
चत्वरं वा श्मशानं समाक्रम्य द्विजोत्तमः ।
सन्ध्ययोरुभयास्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत्पुनः ॥३
चाण्डालम्लेच्छसम्भाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे ।
उच्छिष्टं पुरुषं दृष्ट्वा भोज्यं चापि तथाविधम् ॥४
आचामेदश्रुपाते वालोहितस्य तथैव च ।
भोजने सन्ध्ययोः स्नात्वा पीत्वा मूत्रपुरीषयोः ॥५
आगतो वाऽऽचमेत्सुप्त्वा सकृत्सकृदथान्यतः ।
अग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव व ॥६
स्त्रीणामथात्मनः स्पर्शे नीलीं वा परिधाय च ।
उपस्पृशेच्चलं वार्ततृणं वा भूमिमेव च ॥७

कृष्ण द्वैपायन महर्षि व्यास देवजी ने कहा - भोजन करके-पेय पदार्थ दूध आदि का पान करके-शयन करके अर्थात् निद्रा लेकर-स्नान करके-रथ्या अर्थात् गली से उपसर्पण करके—लोभ वाले ओष्ठों का स्पर्श करके-वस्त्र का परिधान करके-रेत (वीर्य), मूत्र और पुरीष का उत्सर्ग करके-अनृतभाषण करके-थूककर-अध्ययन के आरम्भ में खाँसी और श्वास के आगम होने पर-चत्वर अथवा श्मशान भूमि का समाक्रमण करके द्विज श्रेष्ठ को दोनों सन्ध्याओं की भाँति आचान्त होते हुए भी पुनः आचमन करना चाहिए ।१-३। किस चाण्डाल जाति वाले पुरुष से तथा म्लेच्छ से सम्भाषण करने पर, स्त्री तथा शूद्र के साथ भाषण करने पर एवं उच्छिष्ट पुरुष का दर्शन करके तथा उसी प्रकार का उच्छिष्ट भोज्य पदार्थ को देखकर आचमन करना चाहिए । अश्रुपात करने पर तथा लोहित का पात करने पर-भोजन करने पर

दोनों सन्ध्याओं में स्नान-पान करके एवं मूत्र-मल का त्याग करके-कहीं से आकर आचमन करना चाहिए। सोकर एक-एकबार आचमन करे। अग्नि का स्पर्श करके, गौओं के आलम्भन और स्त्रियों का स्पर्श करके आत्मा का स्पर्श करने पर, नीले वस्त्र का परिधान करके जल का उपस्पर्शन करे, तृण अथवा भूमि का उपस्पर्श न करे ।४-७।

केशानां चात्मनः स्पर्शे वाससःस्खलितस्य च ।
अनुष्णाभिरकेशाभिरदुष्टाभिश्च धर्मतः ॥८
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदासीनः प्रागुदङ् मुखः ।
शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकेशशिखोऽपि वा ॥९
अकृत्व पादयोः शौचं मार्गतो न शुचिर्भवेत् ।
सोपानत्को जलस्थो वा नोष्णीषी चाचमेद् बुधः ॥१०
न चैव वर्ष धाराभिर्नतिष्ठन्नुद्धृतोदकैः ।
नैकहस्तार्पितजलैर्विना सूत्रेण वा पुनः ॥११
न पादुकासनस्थो वा बहिर्जानुरथापि वा ।
न जल्हन्नहसन्प्रेक्षञ्छयानस्तल्प एव च ॥१२
नाविक्षिताभिः फेनाद्यैरुपेताभिरथापि वा ।
शूद्राचिकरोन्मुक्तैर्नक्षाराभिस्तथैव च ॥१३
न चैवाङ्गुलिभिः शब्दं न कुर्यान्नान्यमानसः ।
न वर्णरस दुष्टाभिर्नचै प्रदरोदकैः ॥१४

अपने ही केशों के स्पर्श करने पर तथा स्खलित वस्त्र का स्पर्श करने पर, अनुष्णाओं से अकेशाओं से और धर्म से अदुष्टाओं से सम्पर्क करके शौच की ही इच्छा वाले पुरुष को सर्वदा आचमन करना चाहिए और पूर्व दिशा की ओर मुख करके अथवा उत्तर की ओर मुख करके बैठ जावे और फिर आचमन करे। सिर को ढककर अथवा कण्ठ को ढककर, केशों को तथा शिखा को खोल करके, दोनों पैरों की शुद्धि न करके भाग से कभी शुचि नहीं होता है। बुध पुरुष को जूते पहिने हुए जल में स्थित होकर, उष्णीय (पाग) पहिने हुए कभी भी आचमन नहीं करना चाहिये ।८-१०। वर्षा की धारा से आचमन नहीं

करे। उद्धृत उदक से खड़े हुए-एक हाथ से अर्पित किये हुये जल से और बिना सूत्र के आचमन नहीं करना चाहिए ।१०। पादुकासन पर स्थित होकर अथवा जानुओं के बाहर हाथ करके, बातचीत करते हुए, हँसते हुए और तल्प कर शयन करते हुए कभी आचमन नहीं करना चाहिए ।१२। अविक्षित, फेनादि से युक्त, शूद्रा के अशुचि हाथों से मुक्त तथा क्षार जल से कभी आचमन नहीं करना चाहिए। अंगुलियों से शब्द न करे और अन्यत्र मन को लगाकर भी आचमन नहीं करें। वर्ण-रस से दुष्ट अर्थात् दूषित जल से तथा प्रदरोदक से आचमन नहीं करना चाहिए ।१३-१४।

न पाणिक्षुभिताभिर्वा न बहिर्गन्ध एव वा।
हृदगाभिः पूज्यते विप्रः कण्ठचाभिः क्षत्रियः शुचिः ॥१५
प्रासिताभिस्तथा वैश्यः स्त्रीशूद्रौ स्पर्शतोऽन्ततः।
अङ्गुष्ठमूलान्तरतो रेखायां ब्राह्ममुच्यते ॥१६
त्रिःप्राश्नीयाद्यदम्भस्तु प्रोतास्तेनास्य देवताः।
ब्रह्माविष्णुर्महेशश्च भवन्तीत्युनुशुश्रुम ॥१७
गङ्गा च यमुना चैव प्रीयेते परिमार्जनात्।
संस्पृष्टयोर्लोचनयोः प्रीयेते शशिभास्करौ ॥१८
नासत्यदस्रौ प्रीयेते स्पृशेन्नासापुटद्वयम्।
कर्णयोः स्पृष्टयोस्तद्वत्प्रीयेते चानिलानलौ ॥१९
संस्पृष्टे हृदये चास्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः।
मूर्ध्नि संस्पर्शनादेकः प्रीतः स पुरुषो भगत् ॥२०
नोच्छिष्टं कुर्वते वक्त्रे विप्रुषोऽङ्गेलगन्ति याः।
दन्तवद्दन्तलग्नेषु चिह्वास्पर्शेऽशुचिर्भवेत् ॥२१
स्पृशन्ति बिन्दवः पाद य आचामयतः परान्।
भूमिपांसुसमा ज्ञेया न तैरस्पृश्यता भवेत् ॥२२

जो जल हाथों से क्षुभित किया गया हो उससे आचमन न करे तथा जिस जल में गन्ध हो उस से भी कभी आचमन नहीं करना चाहिए।

विप्र हृदयगत जल से शुचि होता है, क्षत्रिय कण्ठ गत से पवित्र होता है, वैश्य प्राशित किये हुए जल से शुचि होता है और शूद्र तथा स्त्री केवल अन्ततः स्पर्श करने ही में शुचि हो जाया करते हैं। हाथ के अंगुष्ठ के मूल में मध्य में जो रेखा होती है उसमें ब्राह्म स्थान बताया जाता है।१५-१६। जल का तीन बार आचमन करे इसके करने से देवगण प्रसन्न होते हैं। ऐसा करने से ब्रह्मा-विष्णु और महेश सभी प्रसन्न होते हैं ऐसा अनुश्रवण किया जाता है।१७। भागीरथी गङ्गा और यमुना ये दोनों पुण्यमयी नदियाँ परिमार्जन करने से प्रसन्न होता है, शशि और भुवन भास्कर सूर्यदेव तो लोचनों से संस्पर्श वाले होते ही प्रसन्नता प्रदान करते हैं—हृदय में संस्पर्श होने पर सभी देवता प्रसन्नता दिया करते हैं–मस्तक में–संस्पर्श होने से एक प्रसन्न होता है वह पुरुष होता है।१८-२०। जो जलकण अङ्ग में लग जाया करते हैं वे उच्छिष्ट नहीं बनाते हैं। दन्तों की भाँति दन्त लग्नों में जिह्व का स्पर्श हो जाने पर अशुचि हो जाता है।२१। दूसरों के आचमन करते हुए जो जल बिन्दु पैरों का स्पर्श किया करती है वे भूमि के रजकण के ही समान समझनी चाहिए और उनके स्पर्श करने से अस्पृश्यता होती है।२२।

मधुपर्के च सोमं च ताम्बूलस्य च भक्षणे।
फलमूले चेक्षु दण्डे न दोषं प्राह वै मनुः ॥२३
प्रचरश्चान्नपानेषु द्रव्यहस्तो भवेन्नरः।
भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचभ्याभ्युक्षयेत्तु तत् ॥२४
तैजसं व समादाय यद्यु च्चिष्टो भभेद्द्विजः।
भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत्तु तत ॥२५
यद्यद्द्रव्य समादाय भवेदुच्छेषणान्वितः।
वस्त्रादिषु विकल्पः स्यात्तत्संस्पृश्याचमेदिह।
अरण्ये निर्जने रात्रौ चौरव्याघ्राकुले पथि ॥२७

कृत्वा मूत्रं पुरीष वा द्रव्यहस्तो न दुष्यति ।
विधाय दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्मुखः ।।२८

महाराज मनु ने मधुपर्क में—सोमपान में और ताम्बूल के चर्वण में फल तथा मूल के भक्षण में एवं ईख के दण्डे के चूँसने में कोई भी दोष नहीं बतलाया है ।२३। अन्न पानों में प्रचरण करता हुआ मनुष्य यदि द्रव्य हाथ में लिये हुए हो तो उसे भूमिपर रखकर आचमन करके अभ्युक्षण करना चाहिए ।२४। कोई तैजस पदार्थ लेकर यदि द्विज उच्छिष्ट हो जावे तो उस नियुक्त पदार्थ को भूमि पर निक्षिप्त करके आचमन करे और अभ्युक्षण करनी चाहिए ।२५। जो जो भी द्रव लेकर उच्छेषण से युक्त होवे तो उस उस द्रव को भूमि में न रख कर ही अशुचिता को प्राप्त हुआ करता है—ऐसा ही नियम है ।२६। वस्त्र आदि में विकल्प होता है, उसका संस्पर्श करके आचमन करना चाहिए । अरण्य में जहाँ कोई भी प्राणी न हो, रात्रि में और चोर तथा व्याघ्र से समाकुलित मार्ग में मूत्र एवं मल का त्याग करके भी यदि कोई द्रव्य हाथ में भी हो तो वह दूषित नहीं हुआ करता है । दक्षिण कर्ण में ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) को रख कर उत्तर की ओर मुख वाला होकर त्याग करना चाहिए ऐसा मल-मूत्र के त्याग करने का विधान है ।२७-२८।

अह्नि कुर्याच्छकृन्मत्रं रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ।
अन्तर्धाय महीं काष्ठैः पत्रैर्लोष्टतृणेन वा ।।२९
प्रावृत्य च शिरः कुर्याद्विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ।
छायाकूपनदीगोष्ठचैत्याम्भः पथि भस्मसु ।।३०
अग्नौ चैव श्मशाने च विण्मूत्रं न समाचरेत् ।
न गोमये न काष्ठेवा महावृक्षेऽथ शाद्वले ।।३१
न तिष्ठन्नच निर्वासा न च पर्वतमण्डले ।
न जीर्णदेवायतने वल्मीके न कदाचन ।।३२
न ससत्वेषु गर्तेषु न गच्छन्न समाचरेत् ।
तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च ।।३३

न क्षेत्रे न विले वापि न तीर्थे न चतुष्पथे ।
नोद्यानेऽपां समीपे नोषरे नगराशये ।। ३४
न सोपानत्पादुको वा छत्री वानान्तरिक्षके ।
न चैवाभिमुखः स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्गवाम् ।।३५

दिन में मल-मूत्र का त्याग उदङ्मुख होकर ही करे और रात्रि में यदि इनका त्याग करना हो तो दक्षिण दिशा की ओर मुख करके करना चाहिए । भूमि को काष्ठ-पत्र लोष्ठ अथवा तृण से अन्तर्धान करके और शिर को ढककर विष्ठा एवं मूत्र का विसर्जन करना चाहिए । वृक्षादि की छाया में-कूप में नदी-गोष्ठ में-चैत्य में-जल-मार्ग में और भस्म में अग्नि तथा श्मशान में कभी भी भूलकर मल-मूत्र का त्याग न करना चाहिए । इसी भांति गोमय-काष्ठ-महान् वृक्ष-शाद्वल (हरी घास) में भी मल मूत्र का विसर्जन नहीं करना चाहिए ।२६-३१। खड़े होकर नग्न होकर-पर्वत मण्डल में-जीर्ण देवी के आयतन (स्थान) में—सर्प की वांत्री में कभी भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए ।३२। ऐसे गर्त्तों में जिनमें जन्तु निवास करते हों तथा गमन करते हुए भी मल-मूत्र का विसर्जन नहीं करना चाहिए । तुष-अंगार-कपाल में राजमार्ग में-क्षेत्र में-बिल में-तीर्थ में-चौराहे में-उद्यान में-जल के समीप में-ऊसर भूमि में-नगराशय में मल मूत्र का त्याग नहीं करने की विधि है ।३३-३४। जूतों के सहित तथा पादुका के सहित छत्र धारण किये हुए अनान्तरिक्ष में-स्त्रियों के समक्ष में-गुरु, ब्राह्मण और गौओं के बिल्कुल सामने में भी स्थित होकर कभी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए ।३५।

।। गृहस्थ धर्म कथन ।।

वेदं वेदौ तथा वेदान्वेदाङ्गानि तथा द्विजाः ।
अधीत्य चाधिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तमः ।।१

गुरवे तु धनं दत्वा स्नायीत तदनुज्ञया ।
तीर्णव्रतोऽथ युक्तात्मा शक्तो वा स्नातुमर्हति ॥२
वैष्णवीं धारयेद्यष्टिमन्तर्वासस्मथोत्तरम् ।
यज्ञोपवीतद्वितीयं सोदकं च कमण्डलम् ॥३
छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ ।
रौक्मे च कुण्डले धार्ये कृत्तकेशनखः शुचिः ॥४
अन्यत्र काञ्चनाद्विप्रो न रक्तां विभृयात्स्रजम् ।
शुक्लाम्बरधरो नित्यं सुगन्धः प्रियदर्शनः ॥५
न जीर्णमलवद्वासा भवेद्वै विभवे सति ।
न रक्तमुल्बणं चान्यधृतं वासो न कुण्डलम् ॥६
नोपानहौ स्रजं चाथ पादुके च प्रयोजयेत् ।
उपवीतमलङ्कारं दर्भान्कृष्णाजिनं तथा ॥७

महर्षि व्यास देव ने कहा—हे द्विजगण ! एक वेद, अथवा कोई से दो वेद तथा सभी वेदों का एवं वेदों के अङ्ग शास्त्रों का अध्ययन करके और उनके ठीक २ अर्थों का अधिगमन करके फिर द्विजोत्तम को स्नान करना चाहिये । यह आश्रम की समाप्ति का विशेष प्रकार का स्नान है ।१। जिस गुरु के पास ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर अध्ययन किया था उसको दक्षिणा के रूप में धन जो भी अपनी शक्ति के अनुसार हो सके देवे और गुरु का आदेश प्राप्त करके ही पूर्वाश्रम का त्याग का स्नान करना चाहिए । तीर्थों के व्रत वाला युक्तात्मा यदि शक्तिमान् हो तो स्नान कर सकता है ।२। वैष्णवी यष्टि को धारण करे, अन्तर्वास और उत्तरीय वस्त्र धारण करना चाहिये । यज्ञोपवीत उत्तरीय व रुज के अतिरिक्त दूसरा भी धारण करे । जल से भरा हुआ एक कमण्डलु होवे ।३। छत्र ग्रहण करे वहुत स्वच्छ उष्णीष पहिने, पादुकाऐं हों या उपानह (जूता) धारण करे । सुवर्ण निर्मित सुन्दर कुण्डल कानों में पहिने । केश और नाखून कटवा कर परम पवित्र होना चाहिए । नित्य ही शुक्ल वर्ण के वस्त्रों को धारण करे सुगन्धित पदार्थों को ग्रहण

करे और सब प्रकार देखने में प्रिय होना चाहिए । ऐश्वर्य होते हुए कभी भी पुराना फटा हुआ और मैला कुचैला वस्त्र धारण करने वाला नहीं होना चाहिए । रक्त वर्ण का, उल्वण और दूसरे किसी के द्वारा पहिना वस्त्र एवं कुण्डल नहीं धारण करना चाहिए ।६। दूसरे के उपानह-माला-पादुकाओं का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए अन्य के द्वारा पहिना हुआ उपवीत-अलंकार-दर्भ-और कृष्ण वर्ण का मृग चर्म (मृग छाला) भी धारण नहीं करे ।७।

नापसव्यं परीदध्याद्वासोन विकृतं वसेत् ।
आहेरेद्विधिवद्दारान्सदृशानात्मनःशुभान् ।।८
रूपलक्षणसंयुक्तान्योनिदोषविवर्जितान् ।
असपिण्डां च वै मातुरसमानार्षगोत्रजाम् ।।९
आहरेद् ब्राह्मणो भार्या शीलशौचसमन्विताम् ।
ऋतुकालाभिगामी स्याद्यावत्पुत्रोऽभिजायते ।।१०
वर्जयेत्प्रतिषिद्धानि प्रयत्नेन दिनानि त ।
षष्ठ्यष्टमीं पञ्चादशीद्वादशीं च चातुदशीम ।।११
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं तद्वज्जमत्रयाहनि ।
आदधीत विवाग्नि जुहुयाज्जातवेदसम् ।।१२
एतानि स्नातको नित्य पावनानि च पावयेत् ।
वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।।१३
अकुर्वाणः पतत्याशु नरकानतिभीषणात् ।
अभ्यसेत्प्रयतो वेदं महायज्ञान्न हापयेत् ।।१४
कुर्याद् गृह्याणि कार्याणि सन्ध्योपासनमेव च ।
सख्यं सदाधिकैः कुर्यादुपेयादीश्वरं सदा ।।१५

वस्त्र को कभी अपसव्य नहीं रखना चाहिए और जो वस्त्र विकृत दशा में हो उसे भी नहीं पहिने, ब्रह्मचर्याश्रम की अवस्था को समाप्तकर पत्नी का ग्रहण कर गार्हस्थ्य आश्रम में प्रवेश करना चाहिए किन्तु पत्नी ऐसी होनी चाहिए जो अपने ही अनुकूल समानता रखने वाली हो और परम शुभ हो अर्थात् सुलक्षण हो । ऐसी पत्नी का ग्रहण शास्त्रोक्त

विधि के साथ ही करने का विधान है ।८। पत्नी रूप-लावण्य से संयुक्त होनी चाहिए और ऐसी हो कि जिसमें कोई योनि—दोष न हो। जो पत्नी हो वह असपिण्ड होनी चाहिए। अपने गोत्र में सात पीढ़ी तक सपिण्डता शास्त्र में मानी गई है। पत्नी माता के गोत्र अर्थात् आर्ष गोत्र के समान नहीं होनी चाहिए ।९। ब्राह्मण को ऐसी भार्या का ग्रहण करना चाहिए जो शील और शौच से समन्वित हो अर्थात् भार्या का विशेष गुण यही है कि उसके स्वभाव में शान्ति शालीनता हो और शुचिता भी होवे। तात्पर्य यह है कि ऐसी भार्या ही गार्हस्थ्य को सुख-मय बना सकती है। जिस समय तक पुत्र की समुत्पत्ति न हो तब तक भार्या का अभिगमन ऋतुकाल में ही करना चाहिए ।१०। अभिगमन करने के लिए शास्त्र में जो दिन निषिद्ध माने गये हैं उन दिनों को प्रयत्न पूर्वक त्याग देना चाहिए। प्रतिपिद्ध तिथियों में षष्ठी—अष्टमी पञ्चदशी—द्वादशी और चतुर्दशी ये तिथियाँ होती हैं ।११। उसी भाँति जन्मत्रय के दिन में नित्य ही ब्रह्मचारी होना चाहिए। वैवाहिक अग्नि को धारण करे और अग्नि में हवन करना चाहिए ।१२। जो स्नातक है अर्थात् जिसने ब्रह्मचर्य धारण कर नियम पूर्वक वेदाध्ययन का कार्य समाप्त कर लिया है वह स्नातक कहा जाता है, उसे नित्य ही इन पावन कर्मों को पवित्र करना चाहिए। जो कर्म्म वेदों में बतलाया गया है उसे अपने कर्म को निरालस्य होकर नित्य ही करना चाहिए ।१३। यदि वेदोक्त कर्म कोई गृहस्थ नित्य नहीं किया करता है तो वह शीघ्र ही अत्यन्त भीषण नरकों में पड़ता है। अतएव प्रयत होकर नित्य ही वेदों का अभ्यास करना चाहिए और जो महान् यज्ञ हैं उनका कभी भी त्याग नहीं करे ।१४। जो काय्य गृह्य हैं उन्हें करता रहे और सन्ध्योपासन नित्य नियम से उचित समय पर करना चाहिए। अपने से जो शील-गुण-विद्या आदि में अधिक हों उन्हीं के साथ सख्य भाव या मैत्री-सम्बन्ध करना चाहिए और सर्वदा भगवान् का ध्यान एवं भजन करते रहना चाहिए ।१५।

देवतान्यभिगच्छेत कुर्याद्भार्याभिपोषणाम् ।
न धर्मं ख्यापयेद्विद्वान्न पापं गूहयेदपि ॥१६
कुर्वीतात्महितं नित्यं सर्वभूतानुकम्पकः ।
वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ॥१७
देशवाग्बुद्धिसारूप्यंमाचरन्विचरेत्सदा ।
श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक्साधुमिर्यश्च सेवितः ॥१८
तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित् ।
येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ॥१९
तेन यायात्सतां मार्गं येन गच्छन्न दुष्यति ।
नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान् ॥२०
सत्यवादीजितक्रोधोलोभमोहविवर्जितः ।
सावित्रीजापनिरतः श्राद्धकृन्मुच्यतेगृही ॥२१
मातापित्रोर्हितेयुक्तो ब्राह्मणास्यहिते रतः ।
दाता यज्वा देवभक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥२२

गृहस्थ का कर्त्तव्य है कि देवों की उपासना करे और अपनी भार्य्या का अभिपोषण भी भली भाँति गृहस्थाश्रमी पुरुष को करना ही चाहिए । विद्वान् पुरुष जो भी धर्म-कृत्य करे उनका ख्यापन न करे और जो भी कुछ पाप कर्म बन जावे उसे कभी छिपाना नहीं चाहिए । पाप कर्म को छिपा कर रखना अत्यधिक उग्र हो जाता है ।१६। अपनी आत्मा का हित का कार्य विद्वान् गृहस्थ को नित्य ही करना चाहिए और समस्त प्राणियों पर हार्दिक दया रखने की भावना वाला होवे । सर्वदा इस प्रकार का आचरण करना चाहिए जो अपनी उम्र--अपना कर्म—अर्थ श्रुत-अभिजन-देश-वाणी और बुद्धि के सदृश अर्थात् अनुरूप हो—ऐसा समाचरण करते हुए ही सदा विचरण करना चाहिये । इनके विपरीत अथवा प्रतिकूल आचरण करने से अयश तथा पाप ही होता है । जो श्रुति और स्मृति ने प्रतिपादित किया है या आदेश दिया है और जिसे साधु पुरुषों के द्वारा भले प्रकार से सेवन किया है वही आचार सेवन करने के योग्य होता है अतः उसी आचार के अनुसार चलना चाहिए ।

अन्य किसी भी आचार को देखा देखी किसी भी समय में, कदापि भी और किसी भी स्थान पर नहीं करना चाहिए । जिस सदाचार का पालन करते हुए हम सब के पिता-पितामह और पूर्व पुरुष गये हैं उसी सत्पुरूषों के मार्ग से जाना ही हमारा भी कर्तव्य है। उसी मार्ग से चलने पर कोई दोप नहीं होता है । गृहस्थाश्रमी पुरुष को भी नित्य स्वाध्याय करने के स्वभाव वाला होना चाहिए और सर्वदा यज्ञोपवीत के धारण करने वाला रहना चाहिए । १६-२० । सत्य बोलने वाला, क्रोध को जीत कर रखने वाला, लोभ और मोह से रहित, सावित्री के जप करने में निरत रहने वाला और श्राद्ध करने वाला जो गृही (गृहस्थाश्रमी) होता है वह मुक्त हो जाया करता है ।२१। जो गृहस्थाश्रमी अपने माता-पिता के हितकर कार्यों में रति रखता है और ब्राह्मण के हित में प्रेम रखता है, दान शील, यजन करने वाला और देववृन्द का भक्त होता है वह ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ।२२।

त्रिवर्गसेवी सततं देवानां च समर्चनम् ।
कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत्प्रयतः सुरान् ।।२३
विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः ।
गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृहो भवेत् ।।२४
क्षमा दया च विज्ञानं सत्य चैव दमः शमः ।
अध्यात्मनित्यता ज्ञानमेतद्ब्राह्मणालक्षणम् ।।२५
एतस्मान्न प्रमाद्येत विशेषेण द्विजोत्तमः ।
यथाशक्ति चरन्धर्मं निन्दितानि विवर्जयेत् ।।२६
विधूय मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम् ।
गृहस्थो मुच्यते बन्धान्नात्र कार्याविचारणा ।।२७

धर्म—अर्थ और काम तीनों के वर्ग का सेवन करने वाला और निरन्तर देवगण की अर्चना करने वाला होना चाहिए । गृहस्थ पुरुष प्रयत होकर सुरों को प्रणाम किया करता है ।२३। विभाजन करके

सुखोपभोग के स्वभाव वाला एक गृहाश्रमी हो। क्षमा को सदा धारण करके रहने वाला हो अर्थात् अपराधों को क्षमा कर देने के स्वभाव रखता हो तथा दयालु हो—ऐसा ही सच्चा ग्रहस्थ कहा गया है केवल गृह में रहता है 'इसीसे गृहस्थ नहीं हो जाता है।२४। क्षमा-दया-विज्ञान-सत्य-दम-शम-अध्यात्म नित्यता अर्थात् नित्य ही आत्मा के उत्थान का अभ्यास और ज्ञान-ये ही ब्राह्मण का लक्षण है अर्थात् जो सही अर्थ में ब्राह्मण होता है उसमें ये उपर्युक्त सभी सद्गुण विद्यमान रहा करते हैं।२५। ये सद्गुण ऐसे हैं जो मनुष्य मात्र में ही होने चाहिए जिससे कि वह सच्ची मानवता प्राप्त कर सके किन्तु विशेष करके ब्राह्मण को तो इन सद्गुणों से कभी भी प्रसाद नहीं करना चाहिए। अर्थात् उसे इनको कभी त्याग नहीं देना चाहिए,भरसक, इन उक्त गुणों में जितना भी अधिक से अधिक धर्म का आचरण बन सके उसका पालन करे और बुरे कर्मों का त्याग कर देना चाहिए।२६। मोह के कलिल को हटाकर उत्तमयोग को प्राप्त करना चाहिए। ऐसा करने ही से गार्हस्थ्य आश्रम में रहने वाला मनुष्य मुक्त होता है--इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है। जब तक मोह में फँसा रहेगा उद्धार होना कठिन होता है। गृहस्थ को मोह ही का बड़ा वन्धन होता है।२७।

विगर्हितजक्षेयर्हिंसाबन्धदवधात्मनाम।
अन्यमन्युसमुत्थानां दोषाणां मर्षणं क्षमा ॥२८
स्वदुःखेष्वेव कारुण्यं परदुःखेषु सौहृदम्।
दयेति मुनयः प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य साधनम् ॥२९
चतुर्दशान' विद्यानां धारणा हि परार्थतः।
विज्ञानमिति तद्विद्याद्यान धर्मो विवर्धते ॥३०
अधीत्य विधिवद्विद्यामर्थं चैवोपलभ्यते।
धर्मकार्याणि कुर्वीत ह्येतद्विज्ञानमुच्यते ॥३१
सत्येन लोक जयति सत्यं तत्परम पदम्।
यथाभूताप्रमादं तु सत्यमाहुर्मनीषिणः ॥३२

दमः शरीरोपरतिः शमः प्रज्ञाप्रसादतः ।
अध्यात्ममक्षरं विद्या यत्र गत्वा नशोचति ॥३३
यया स देवो भगवान्विद्यया विद्यते परः ।
साक्षादेव हृषाकेशस्तज्ज्ञानमितिकीर्तितम् ॥३४
तन्निष्ठस्तत्परा विद्वान्निमक्रोधनः शुचिः ।
महायज्ञपरो विप्रो लभते तदनुत्तमम् ॥३५

अब क्षमा आदि के स्वरूप को वतलाया जाता है जिससे मनुष्य सावधानी पूर्वक इनका परिपालन कर सके । निन्दित जय क्षेप हिंसा वन्ध और वध के स्वरूप वाले तथा अन्य क्रोध से समुत्पन्न दोषों का भर्षण करने को ही क्षमा कहते हैं ।२८। अपने ही दुःखों में करुण और परायों के दुःखों में सौहार्द्र को ही मुनिगण दया कहते हैं यह धर्म का साक्षात् लक्षण है ।२६। पदार्थ से चौदह विद्याओं की धारण ही को विज्ञान कहते हैं । अतएव इसको जानना ही चाहिए जिससे धर्म की वृद्धि होती है ।३०। विधि पूर्वक विद्या का अध्ययन करके जो अर्थ की उपलब्धि की जाती है और धर्म्म के कार्य भी करें—यही विज्ञान कहा जाता है ।३१। सत्य से लोक की जय होती है। सत्य ही परम पद है । यथा भूत अप्रमाद ही को मनीषी लोग सत्य करते हैं ।३२। शरीर की उपरति ही दम कहलाता है और प्रज्ञा के प्रसाद से शम होता है । जो अक्षर विद्या है उसे ही अध्यात्म कहते हैं जहाँ पर पहुँचकर किसी प्रकार का शोक नहीं होता है ।३३। जिस विद्या के द्वारा वह परात्पर भगवान् देव जाना जाता है अर्थात् भगवान् का पूर्णज्ञान प्राप्त हो जाता है जो कि साक्षात् हृषिकेश हैं वही ज्ञान कहा गया है ।३४। उसी भगवान् में निष्ठा रखने वाला और उसी में तत्पर विद्वान् नित्य ही क्रोध रहित एवं शुचि होता है । इस प्रकार से महान् यज्ञ में परायण विप्र उस उत्तम को प्राप्त किया करता है ।३५।

धर्मस्यायतनं यत्नाच्छरीरं परिपालयेत् ।
नहि देहं विना विष्णुः पुरुषैर्विद्यते परः ॥३६

नित्यं धर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः ।
न धर्मवर्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत् ॥३७
सीदन्नपि धर्मेण नत्वधर्मं समाचरेत् ।
धर्मो हि भगवान्देवो गतिः सर्वेषु जन्तुषु ॥३८
भूतानां प्रियकारो स्यान्न परद्रोहकर्मधीः ।
न वेददेवतानिन्दां कुर्यात्तैश्च न सवसेत् ॥३९
यास्त्वमं नियतो मर्त्यो धर्माध्यायं पठेच्छुचिः ।
अध्यापयेच्छ्रावयेद्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥४०

धर्म के कर्म करने का घर यह मानव का शरीर ही होता है क्योंकि शरीर के ही द्वारा समस्त धार्मिक कर्म किये जाते हैं। अतएव इस शरीर का परिपालन पूर्णयत्न के साथ करना चाहिए। इस देह के बिना वह परम पुरुष भगवान् विष्णु मनुष्यों के द्वारा नहीं जाना जा सकता ।३६। अतएव द्विज को नित्य ही तियत होकर धर्म-अर्थ और काम में युक्त होना चाहिए। जो काम और अर्थ धर्म्म से रहित है उनका मन से भी कभी स्मरण नहीं करना चाहिए ।३७। धर्म का कार्य करते हुए यदि दुःख भी भोगने पड़ें तो उन्हें भोग लेवे परन्तु दुःखों से घबरा कर कभी भी अधर्म का आचरण न करे। यह धर्म ही साक्षात् भगवान् देव है और इसीसे समस्त जन्तुओं का उद्धार हुआ करता है ।३८। सभी प्राणियों का प्रिय करने वाला होवे और दूसरे के साथ द्रोह करने के कर्मों की वुद्धि कभी नहीं रखनी चाहिए वेदों की और देवताओं की निन्दा कभी न करे और जो भी कोई पुरुष इनकी बुराई किया करते हैं उनके साथ निवास भी नहीं करना चाहिए ।३९। इस धर्म्म के अध्याय का जो पुरुष शुचि होकर नियत रूप से पठन किया करता है अथवा इस अध्याय का अध्ययन किया करता है अथवा इस अध्याय का अध्यापन किया करता है या श्रवण कराता है वह मनुष्य ब्रह्मलोक में पहुँचकर परम प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ।४०।

।। विष्णुभक्ति की महिमा ।।

एवमुक्तं पुरा विप्रा व्यासेनामिततेजसा ।
एतावदुक्त्वा भगवान्व्यासः सत्यवतीसुतः ।।१
समाश्वास्य मुनिन्सर्वाञ्जगाम च यथागतम् ।
भवद्भ्यस्तु मया प्रोक्तं वर्णाश्रमविधानम् ।।२
एवं कृत्वा प्रियोविष्णोर्भवत्येव नचान्यथा ।
रहस्यं तत्र वक्ष्यामि शृणुतु द्विजसत्तमाः ।।३
ये चात्र कथिता धर्मा वर्णाश्रमनिबन्धनाः ।
हरिभक्तिकलांशांससमाना नहिते द्विजाः ।।४
पुंसामेकेहवै साध्या हरिभक्तिः कलौ युगे ।
युगान्तरेण धर्मा हि से वितव्या नरेण हि । ५
कलौ नारायणं देवं यजते यः स धर्मभाक् ।
दामोदर हृषिकेशं पुरूहुतं सनातनम् ।।६
हृदि कृत्वा परं शान्तं जितमेव जगत्त्रयम् ।
कलिकालोरगादंशात्किल्बिपात्कालकूटतः ।।७
हरिभक्तिसुधां पीत्वा उल्लंघ्यो भवति द्विजः ।
किजपैः श्रीहरेर्नाम गृहीतं यदि मानुषैः ।।८

सूतजी ने कहा हे विप्रवृन्द ! अपरिमिति तेज के धारण करने वाले महर्षि व्यासजी ने पहिले इस प्रकार से कहा था । सत्यवती के पुत्र भगवान् व्यास देवजी ने इतना कहकर समस्त मुनियों को समाश्वासन देकर जिस तरह आये थे वैसे ही चले गये थे । आप लोगों को मैंने वर्णों और आश्रमों का विधान कह दिया है ।१-२। इस प्रकार का आचरण करके ही भगवान् विष्णु का यह मान व प्रिय पात्र बन जाता है । अन्यथा विष्णु की प्रीति का पात्र नहीं हो सकता है । हे द्विजों में श्रेष्ठो ! इस में भी एक रहस्य है उसे मैं आप लोगों को बतलाता हूँ उसका आप सब श्रवण कीजिए ।३। जो भी वहाँ पर वर्णों और आश्रमों के निबन्धन वाले धर्मों का वर्णन किया गया है हे द्विजगण !

वे सब भगवान् हरि की भक्ति की कला के अंशों के अंश के भी समान नहीं होते हैं। हरि भक्ति ही सर्वोपरि होती है।४। अतएव इस संसार में पुरुषों को केवल एक श्री हरि की भक्ति ही साधनी चाहिए क्योंकि इस कलियुग में यही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मानवों का उद्धार हो सकता है। दूसरे द्वापरादि युगों में मनुष्यों को धर्म के कर्मों का सेवन करना कल्याण कर होता है।५। इस महान् घोर कलियुग में जो पुरुष भगवान् नारायण का यजन किया करता है वही परम धार्मिक पुरुष है। भगवान् दामोदर हृषीकेश पुरूहूत और सनातन श्रीहरि को जिसने अपने हृदय में स्थित कर लिया है वह परम शान्ति को प्राप्न कर लेता है और उसने मानों तीनों जगतों को ही जीत लिया यह कलिकाल रूपी महाविषैला सर्प है इसके दर्शन से जो किल्विष होता है वह महा कालकूट ही होता है। इसके निवारण करने के लिए श्रीहरि की भक्ति रूपिणी सुधा ही है जिसका पान कर मनुष्य उल्लंघन करने के योग्य हो जाता है अर्थात् फिर उस पर इसके महाविष का कुछ भी प्रभाव नहीं होता है। यदि मनुष्यों ने श्रीहरि के पवित्र शुभ कल्या।। मय नाम का ग्रहण कर लिया है अर्थात् हरि नाम का जाप करना आरम्भ कर दिया है तो फिर अन्य मन्त्रों के जप एवं धार्मिक कर्मानुष्ठान आदि की उसे कोई आवश्यकता ही नहीं होती है। उसके लिए अन्य जाप सब व्यर्थ ही होते हैं।६८।

किंस्नानैर्वष्णुपादाम्बुमस्तके येन धार्यते।
कियज्ञन हरेः पादपद्मं येन धृतं हृदि ।।९
किंदानेन हरेः कर्म सभायां वै प्रकाशितम्।
हरेर्गुणगणाञ्छुत्वा यः प्रहृष्येत्पुनः पुनः ।।१०
समाधिनाप्रहृष्टस्य सा गतिः कृष्णचेतसः।
तत्र विघ्नकराःप्रोक्ताः पाखण्डालापपेशलाः ।।११
नार्यस्तत्सङ्गिनश्चापि हरिभक्तिविघातकाः।
नारीणां नयादेशः सुराणामपि दुर्जयः ।।१२

स येन विजितो लोके हरिभक्तिः स उच्यते ।
माद्यन्ति मुनयोऽप्यत्र नारीचरितलोलुपाः ।।१३
हरिभक्तिः कुतः पुसां नारीभक्तिजुषां द्विजाः ।
राक्षस्यः कामिनीवेषाश्चरन्ति जगति द्विजाः ।।१४

जिसने भगवान् के चरणारविन्द का चरणामृत अपने मस्तक पर धारण कर लिया है या जो धारण किया करते हैं अन्य उन्हें बड़े २ तीर्थों के स्नान आदि करने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती है। जिस पुरुष ने श्रीहरि के चरण कमलों का ध्यान अपने हृदय में किया है उसके लिये यज्ञ—जपादि करना सब व्यर्थ ही है ।दै। जिसने श्री हरि के मन्दिर में उनकी सेवा के हित कर्म किये हैं उसे दान करने की आवश्यकता नहीं है । सभा में प्रकाशित भगवान् श्रीहरि के गुण गणों का श्रवण कर जो मनुष्य बारम्बार प्रहर्षित होता है । और हर्षोद्‌ग से पुलकायमान हो जाया करता है उस पुरुष की वही गति हुआ करती है जो समाधि लगाकर एक योगाभ्यासी की हर्षातिरेक से होती है । कृष्ण चित्त लगा देने वाले पुरुष को समाधि में स्थित पुरुष के समान ही आनन्दानुभव होता है । उसमें विघ्न करने वाले पाषण्डालाप पेशल हुआ करते हैं अर्थात् जो ढोंग करके आलाप किया करते हैं और मीठी २ बातें बनाते हैं वे ही विघ्न डालने वाले लोग होते हैं ।१०-११। उनके संग करने वाली नारियाँ भी हरिभक्ति की विघात करने वाली हुआ करती हैं । नारियों का नयनादेश देवों को भी दुर्जय होता है ।१२। जिस ने इनका जीत लिया है वही इस लोक में हरि का भक्त है ऐसा कहा जाता है । नदियों का चरित्र ही ऐसा अद्‌भुत है कि इसके लालची मुनिगण भी मत्त हो जाया करते हैं और उनका ध्यान-ज्ञान सब छूट जाता है ।१३। हे द्विजगण ! जो पुरुष नारियों की भक्ति का सेवन करने वाले होते हैं उनको श्री हरि के चरणारविन्द की भक्ति कैसे हो सकती है अर्थात् कदापि नहीं हुआ करती है । हे द्विजवरो ! ये नारियाँ जो इस समय संसार कामिनियों के वेष—भूषा या स्वरूप में विद्यमान हैं वे साक्षात् राक्षसी ही हैं ।१४।

नराणां बुद्धिकवल कुर्वन्ति सततं हिताः ।
तावद्विद्या प्रभवति तावज्ज्ञानं प्रवर्त्तते ।।१५
तावत्सुनिर्मला मेधा सर्वशास्त्रविधारिणी ।
तावज्जपस्तपस्तावत्तावत्तीर्थनिषेवणम् ।।१६
तावच्च गुरुशुश्रूषा तावद्वियरणे मतिः ।
तावत्प्रबोधो भवति विवेकस्तावदेव हि ।।१७
तावत्सतां सङ्गरुचिस्तावत्पौराणलालसा ।
यावत्सीमन्तिनीलोलनयनान्दोलन महि ।।१८
जनोपरि पतेद्विप्राः सर्वधर्मविलोपनम् ।
तत्र ये हरिपादाब्जमधुलेशप्रसादिताः ।।१९
तेषां न नारीलोलाक्षिक्षेपणं हि प्रभुर्भवेत् ।
जन्मजन्महृषीकेशसेवनं यैः कृतं द्विजाः ।।२०
नारीणां किल किंनाम सौन्दर्यं परिचक्षते ।।२१

ये नारियों इस लोक में निरन्तर हितैषिणी बन कर पुरुषों की बुद्धि को ग्राम बना कर खा जाया करती हैं । पुरुषों का ज्ञान—विद्या तभी तक स्थिर रहती है और उसी समय तक इनकी बुद्धि भी निर्मल रहा करती है जोकि सम्पूर्ण शास्त्रों को धारण करने वाली होती है, तभी तक जप-तप और तीर्थों का निषेवण स्थिर रहता है, उसी समय तक गुरुचरण की शुश्रूषा और वितरण करने की बुद्धि रहती है, तब तक ही-प्रवोध और विवेक कायम रहता है और उसी समय तक सत्पुरुषों के साथ संगति करने की रुचि रहती है एवं पौराणिक कथाओं के श्रवण करने की लालसा भी उसी समय पर्यन्त रहा करती है जब तक पुरुष सीमन्तिनियों के चंचल नयनों के कटाक्ष पातों का शिकार नहीं बनता है ।१५-१८। हे विप्रगण ! नारियों के नेत्रों के व्यामोहक कटाक्षों के शिकार होने पर मनुष्यों पर समस्त धर्म्मों का विलोपन जाकर पड़ जाता है फिर वह किसी भी धर्म में आस्था नहीं रखता है । वहां पर जो श्रीहरि के पद कमल के माधुर्य के लेश से प्रसादित पुरुष हैं अर्थात्

जिनको भगवान् के चरणों के रस का आस्वाद भगवत्कृपा से ही प्राप्त हो गया है उन भक्तों पर नारियों के चञ्चल नेत्रों के कटाक्षपात अपना प्रभाव नहीं कर सकते हैं। हे द्विजो ! जिन्होंने जन्म-जन्म में भगवान् हृषीकेश के चरणों का सेवन किया है उन्होंने द्विजों को दान भी दे दिया, अग्नि में हवन भी कर लिया है और वहां-वहाँ पर ही उन्हें विरति होती है। नारियों का सौन्दर्य ही क्या होता है। वाह्य बनावट से ही मनुष्य उनके सौन्दर्य में फँस जाते हैं।१९-२१।

भूषणानां च वस्त्राणां चाकचक्यं तदुच्यते।
स्नेहात्मज्ञानरहितं नारीरूपं कुतः स्मृतम् ।।२२
पूयमूत्रपुरीषासृक्त्वङ्मेदोस्थिवसान्वितम्।
कलेवरं हि तन्नाम कुतः सौन्दर्य्यमत्र हि ।।२३
तदेवं पृथगाचिन्त्य स्पृष्ट्वा वा स्नात्वा शुचिर्भवेत्।
तैः संहितं शरीरं हि दृश्यते सुन्दर जनैः ।।२४
अहोऽतिदुर्दशा नृणां दुर्दैवघटिता द्विजाः।
कुचावृतेऽङ्गे पुरुषो नारीवृद्ध्या प्रवर्त्तते ।।२५
का नारी वा पुमान्को वा विचारे सति किञ्चन।
तस्मात्सर्वात्मना साधुर्नारीसङ्गं विवर्जयेत् ।।२६
कोनाम नारीमासाद्य सिद्धिं प्राप्नोति भूतले।
कामिनीकामिनोसङ्गसङ्गमित्यपि सन्त्यजेत् ।।२७
तत्सङ्गाद्रौरवमिति साक्षादेव प्रतीयते।
अज्ञानाल्लोलुपा लोकास्तत्र दैवेन वञ्चिताः ।।२८

वस्तुतः नारियों में कुछ भी सौन्दर्य नहीं होता है पुरुषों की काम वासना ने ही उसमें एक अद्भुत रूप—सुन्दरता की कल्पना कर रक्खी है। नारी में भूषण और वस्त्रों का चाकचिक्य होता है उसी को रूप-सौन्दर्य कहा करते हैं। वसन-भूषण विहीन नारी के देखने का ध्यान मात्र ही करिये साक्षात् चुड़ैल जैसी प्रतीत वह होगी। जिसके हृदय में न तो सच्चा स्नेह ही है और न ज्ञान है अर्थात् आत्मबोध है वह नारी का रूप कैसे कहा गया है।२२। मवाद-मूत्र-मल-रक्त-त्वचा-चर्बी-अस्थि

और वसा से युक्त जो नारी का शरीर है उसमें सौन्दर्य नाम वाली वस्तु कहाँ और क्या है ? अर्थात् है ही नहीं ।२३। तो इस प्रकार से उसका पृथक् चिन्तन करके—स्पर्श करके स्नान करने पर ही शुद्धता होती है उनके सहित ही उसका शरीर मनुष्यों को सुन्दर दिखलाई दिया करता है ।२४। हे द्विजगण ! बड़ा ही आश्चर्य होता है कि मनुष्यों की कैसी बुरी दशा दुर्दैव के द्वारा घटित हो रही है कि कुत्सावृत्त अंग में पुरुष नारी की बुद्धि से प्रवृत्त किया करता है ।२५। क्या तो नारी है और कौन पुरुष है विचार करने पर कुछ भी नहीं है । इससे साधु पुरुष को सर्वात्मा से नारी का संग ही त्याग देना चाहिए ।२६। इस भूमण्डल में ऐसा कौन है जो नारी का सङ्ग करके सिद्धि को प्राप्त हो जाता है । तात्पर्य यही है कि नारी के साथ से कभी भी सिद्धि हो ही नहीं सकती है अतः कामिनी और कामिनी का संग का भी त्याग कर ही देना चाहिए । नारी का संग ही साक्षात् रौरव नरक है—ऐसा प्रतीत होता है । जो पुरुष अज्ञान वश लालची हो जाते हैं उन्हें ही दैव वहाँ पर भेजकर वञ्चित रक्खा करता है ।२७-२८।

साक्षान्नरककुण्डेऽस्मिन्नारीयोनौ पचेन्नरः ।
यत एवागतः पृथ्व्यां तस्मिन्नेव पुनारमेत् ।।२६
यतः प्रसरते नित्य मूत्रं रेतोमलोत्थितम् ।
तत्रैव रमते लोकः कस्तस्मादशुचिर्भवेत् ।।३०
तत्रातिकष्टलोकेऽस्मिन्नहोदेवेविडम्बना ।
पुनः पुना रमेत्तत्र अहो निस्त्रपता नृणाम् ।।३१
तस्माद्विचारयेद्धीमान्नारीदोषगणान्बहून् ।
मैथुनाद्‌बलहानिः स्यान्निद्रातितरुणायते ।।३२
निद्रयाऽपहृतज्ञानः स्वल्पायुर्जायते नरः ।
तस्मात्प्रयत्नतो धीमान्नारीं मृत्युमिवात्मनः ।।३३
पश्येद्‌गोविन्दपादाब्जे मनो वै रमयेद्‌बुधः ।
इहामुत्र सुखं तद्धि गोविन्दपदसेवनम् ।।३४

विहाय को महामूढो नारीपादं हि सेवते ।
जनार्दनाङ्घ्रिसेवा हि ह्यपुनर्भवदायिनी ॥३५

नारी योनि साक्षात् नरक का ही कुण्ड होता है जिसमें रमण करने के लिए मनुष्य प्रयत्न शील रहा है । जिस योनियों के द्वार से बहुत कष्ट भोग करता हुआ बाहिर निकल कर आया है उसी द्वार में पुनः रमण किया करता है ।२९। वह भी योनि द्वार किस प्रकार का है जरा विचार कीजिये जिसमें अहर्निश मूत्र प्रसृत रहता है और रेतस मल उठा करता है । उसी में मनुष्य रमणानन्द लिया करता है । उससे कौन अशुचि नहीं होगा ? ।३०। इस अत्यन्त कष्ट मय इस लोक में यह कैसी दैव की विडम्बना है कि पुरुष उस नारी की योनि में बार-म्बार रमण किया करता है । बहुत ही अचरज है कि पुरुषों में कैसी निर्लज्जता भर गई है कि वही काम अशुचिता और वेदना का किया करते हैं और उसमें ग्लानि के स्थान में आनन्द समझते हैं ।३१। इस लिए एक बुद्धिमान पुरुष को नारी के बहुत-से दोषों के गणी का विचार करना चाहिए । नारी के साथ मैथुन करने से बल की हानि हुआ ही करती है और अत्यन्त निद्रा का काफी जोर रहा करता है ।३२। जब अत्यधिक पुरुष निद्रा लेता है तो उसका सम्पूर्ण ज्ञान अपहृत हो जाया करता है और फिर मनुष्य स्वल्प आयु वाला हो जाया करता है । इस लिये बुद्धिमान् पुरुष को तो नारी को ऐसा ही समझ लेना चाहिए कि यह अपनी आत्मा के लिये साक्षात् मौत ही है ।३३। मनुष्य को सदा श्री गोविन्द के चरणारविन्द का मन में दर्शन करते रहना चाहिए और उसी आनन्द में बुध पुरुष रमण किया करे । श्री गोविन्द के चरणार-विन्द के सेवन से इस लोक और परलोक में दोनों ही जगह सुख ही सुख प्राप्त होता है ।३४। ऐसे उभयलोक में कल्याणकारी श्री भगवान् के चरणों का ध्यान न कर कोई महान् मूढ़ पुरुष ही नारी के चरणों का सेवन किया करता है । भगवान् जनार्दन के चरण कमल का सेवन तो पुनर्भव को मिटा देने वाला होता है अर्थात् इससे फिर इस संसार में आवागमन होता ही नहीं है ।३५।

नारीणां योनिसेवा हि योनिसङ्कटकारिणी ।
पुनः पुनः पतेद्योनौ यन्त्रनिष्पाचितो यथा ।।३६
पुनस्तामेवाभिलषेद्विद्यादस्य विडम्बनम् ।
ऊर्ध्ववाहुरहं वच्मि शृणु मे परमं वचः ।।३७
गोविन्दे धेहि हृदयं न योनौ यातनाजुषि ।
नारीसङ्ग परित्यज्य यश्चापि परिवर्त्तते ।।३८
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ।
कुलाङ्गना दैवयोगादूढा यदि नृणां सती ।।३९
पुत्रमुत्पाद्य यस्तत्र तत्सङ्ग परिवर्जयेत् ।
तस्य तुष्टो जगन्नाथो भवत्येव न संशयः ।।४०
नारीसङ्गो हि धर्मज्ञै रसत्सङ्गः प्रकीर्त्यते ।
तस्मिन्सति हरौ भक्तिः सुदृढा नैव जायते ।।४१
सर्वसङ्ग परित्यज्य हरौ भक्ति समाचरेत् ।
हरिभक्तिश्च लोकेऽत्र दुर्ल्लभा हि मताामम ।।४२

जो पुरुष यह दुर्लभ मानव देह प्राप्त करके भी केवल नारी की योनि के सेवन को सुखानन्द मान कर उसी में लिपटा रहता है इसका परिणाम यही है कि फिर जन्म ग्रहण करने के लिए योनिद्वार से निष्क्रमण करने के संकट को भोगना पड़ता है यह मानव वारम्वार यन्त्र द्वारा निष्पाचित किये हुए की भाँति उसी योनि में पड़ता रहा करता है ।३६। फिर भी अनेक बार ऐसे महान् संकट को भोग कर भी उसी योनि में रमण करने की अभिलाषा किया करता है । इस पुरुष की विड-म्बना समझनी चाहिए । मैं ऊपर को वाहुओं को उठा कर घोषणा करता हूँ और आप लोग मेरे वचनों का श्रवण करें, जोकि परम सार से परिपूर्ण हैं ।३७। श्रीगोविन्द के चरणारविन्दु में अपने चित्त को लगाओ तथा यातनाऐं देने वाली नारी को योनि से चित्त को एकदम हटाओ । नारी का संगति का परित्याग करके जो भी कोई पुरुष इस जगत् में परिवर्त्तन किया करता है वह मानव अपने एक-एक कदम पर अश्वमेध

के फल को प्राप्त किया करता है। यदि सौभाग्य से कोई अच्छे कुल की नारी दैवयोग से पत्नी के रूप में प्राप्त हो जावे और जो परम सती-साध्वी हो तो उसका संग उतना ही ऋतु काल में करे जिससे पुत्र समुत्पन्न हो जावे। यह नारी का अभिगमन केवल पुत्रोत्पत्ति के लिये ही करना चाहिए न कि विषयानन्द प्राप्न करने को इसे करे। जब पुत्र का उत्पादन हो जावे तो पुरुष का कर्त्तव्य है कि फिर उस नारी का संग त्याग देना चाहिए। ऐसा जो भी किया करता है उस प्राणी पर भगवान् परम प्रसन्न होते हैं—इसमें लेशमात्र भी सशय नहीं है।३८-४०। जो पुरुष धर्म का ज्ञान रखने वाले हैं वे नारी की संगति को असत् संग ही कहा करते हैं। जब तक नारी का संग रहेगा तब तक भगवान् हरि के चरणों सुदृढ़ भक्ति किसी प्रकार भी नहीं हो सकती है।४१। अत-एव इस लोक में आत्म कल्याण के लिए मनुष्य को सब का सङ्ग त्याग कर श्रीहरि में भक्ति करनी चाहिए। इस लोक में श्रीहरि की भक्ति परम दुर्लभ होती है—मैं तो यही मानता हूँ ॥४२॥

हरौ यस्य भवेद्भक्तिः स कृतार्थो न संशयः।
तत्तदेवाचरेत्कर्म हरिः प्रीणाति येन हि ॥४३
तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणितं जगत्।
हरौ भक्ति विना नृणा बृथा जन्म प्रकीर्तितम् ॥४४
ब्रह्मेशादि सुरा यस्य यजन्ते प्रातिहेतवे।
नारायणमनाव्यक्तं न तं सेवेत को जनः ॥४५
तस्य माता महाभागा पिता तस्य महाकृति।
जनार्द्दनपदद्वन्द्वं हृदये येन धार्यते ॥४६
जनार्दन जगद्वन्द्य शरणागतवत्सल।
इतीरयन्ति ये मर्त्या न तेषां विरये गतिः ॥४७
ब्राह्मणं च पुरस्कृत्य ब्राह्मणेनानुकीर्तितम्।
पुराणं शृणुयान्नित्यं महापापदवालनम् ॥४८
पुराणं सर्वतीर्थेषु तीर्थं चाधिकमुच्यते।
यस्यैकपादश्रवणाद्धरिरेव प्रसीदति ॥४९

सौभाग्य से जिस पुरुष की भक्ति श्री हरि के चरणारविन्द में हो गई है वह वास्तव में सफल जीवन वाला हो गया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । अतएव यहाँ लोक में वही-वही कर्म करना चाहिए जिसके करने से श्रीहरि की प्रसन्नता प्राप्त होवे ।४३। जब भगवान् ही इस जीवात्मा पर पूर्ण सन्तुष्ट हो जाते हैं तो इस सम्पूर्ण जगत् को तुष्ट हुआ समझ लो । वह प्रभु प्रसन्न हैं तो त्रैलोक्य ही प्रसन्न हो जाया करता है । मनुष्य में यदि श्री हरि की भक्ति का अभाव है तो समझ लेना चाहिए कि उनका जन्म ग्रहण करना ही व्यर्थ है—ऐसा बताया है ।४४। मानव जीवन की सफलता आत्मकल्याण कर विमुक्ति प्राप्त करने ही से होती है । जो कि हरिभक्ति से ही सम्भव है । उसके बिना जीवन लेना ही व्यर्थ है । ब्रह्मा आदि देवगण उसी हरि को प्रीति प्राप्त करने के लिये यजन किया करते हैं । उस परमाव्यक्त भगवान् नारायण की सेवा करना कौन पुरुष नहीं चाहेगा ? अर्थात् सभी चाहते हैं ।४५। उस पुरुष की माता महान् अच्छे भाग्य वाली है और उसका पिता भी महान् पुण्यात्मा है जिस पुरुष ने यहाँ भगवान् जनार्दन के चरण कमलों को अपने हृदय में भक्ति भाव पूर्वक धारण कर लिया है ।४६। हे जनार्दन अर्थात् जनों की पीड़ा का अर्दन कर उसको विमुक्त करने वाले प्रभो ! आप सम्पूर्ण जगत् के द्वारा वन्दना करने के योग्य हैं और जो सबका परित्याग कर आपकी शरणागति में प्राप्त हो जाता है उस पर पूर्ण कृपा किया करते हैं । इस प्रकार से जो मनुष्य प्रार्थना किया करते हैं उनको कभी भी नरक में गमन नहीं करना पड़ता है ।४७। ब्राह्मण आये करके ब्राह्मण के द्वारा ही अनुकीर्त्तन किया गया पुराण का नित्य प्रति श्रवण करना चाहिए । यह पुराण नित्य श्रवण करना महान् पापों के भस्म कर देने के लिए दावानल के समान होता है ।४८। पुराण श्रवण समस्त तीर्थों में भी अधिक तीर्थ कहा जाता है जिसके एक पाद के श्रवण मात्र से ही भगवान् श्री हरि परम प्रसन्न हो जाया करते हैं ।४९।

यथा सूर्यवतुर्भूत्वा प्रकाश चरेद्धरिः ।
सर्वेषां जगतामेव हपिरालोकहेतवे ॥५०
तथैवान्तः प्रकाशाय पुराणावयवो हरिः ।
विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम् ॥५१
तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः ।
श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराण कृष्णरूपिणः ॥५२
विष्णुभक्तेन शान्तेन श्रोतव्यमपि दुर्लभम् ।
पुराणाख्यानममलममलीकरणं परम् ॥५३
यस्मिन्वेदार्थं माहृत्य हरिणा व्यासरूपिणा ।
पुराणं निर्मितं विप्र तस्मात्तत्परमोभवेत् ॥५४
पुराणे निश्चितो धर्मों धर्मश्च केशवः स्वयम् ।
तस्मात्कृते पुराणे हि श्रुते विष्णुर्भवेदिति ॥५५

जिस प्रकार से भगवान श्री हरि सब को प्रकाश प्रदान करने के लिये सूर्य का शरीर धारण किया करते हैं और अहर्निश सञ्चारण करते रहते हैं क्योंकि समस्त जगतों को आलोक प्रदान करना ही उनके संचरण का हेतु होता है।५०। उसी प्रकार के हृदय के अन्दर अज्ञानान्धकार का विनाश कर प्रकाश देने के लिये अर्थात् ज्ञानोदय करने के वास्ते पुराण का स्वरूप भी एक श्री हरि का ही रूप और वह यहाँ लोक में प्राणियों में परम पावन पुराण विचरण किया करता है।५१। इसलिये यदि मानव की मति भगवान श्री हरि की प्रीति उत्पादन करने के लिये होता है तो उसे श्री कृष्ण के स्वरूप वाले पुराण का श्रवण नित्य ही करना चाहिए।५२। विष्णु के चरणों में भक्ति रखने वाले पुरुष को परमशान्ति के भाव से जो कुछ श्रवण करने को होता है वह भी दुर्लभ वस्तु है । यह पुराणों का आख्यान बहुत ही निर्मल है और अन्तःकरण को निर्मल करने का परम एवं सर्वोत्तम साधन होता है।५३। महर्षि व्यास के रूप धारी साक्षात श्रीहरि ने इस पुराण में वेदों के ही अर्थ का आहरण किया है और फिर इस पुराण का निर्म्माण किया है। हे प्रिय ! इसलिये इस पुराण के श्रवण

करने में परायण हो जाना चाहिये ।५४। पुराण से धर्म निश्चित रूप से विद्यमान रहा करता है और जो धर्म है वही साक्षात भगवान केशव का स्वरूप है । इसलिये पुराण के श्रवण करने पर साक्षात भगवान् विष्णु के स्वरूप का ही श्रवण हो जाया करता है ।५५।

साक्षात्स्वयं हरिर्विप्रः पुराणं च तथाविधम् ।
एतयोः सङ्गमासाद्य हरिरेवभवेन्नरः ॥५६
तथा गङ्गम्बुसेकेन नाशयेत्किल्बिषं स्वकम् ।
केशवो द्रवरूपेण पापात्तारयते महीम् ॥५७
वैष्णवो विष्णुभजनस्याकाङ्क्षी यदि वर्तते ।
गङ्गाम्बुसेकममलममलीकरणं चरेत ॥५८
विष्णुभक्तिप्रदा देवी गङ्गा भुवि चं गीयते ।
विष्णुरूपा हि सा गंगा लोकनिस्तारकारिणी ॥५९
ब्रह्मणेषु पराणेषु गंगायां गोषु पिप्पले ।
नारायणधिया पुम्भिर्भक्तिः कार्या ह्यहैतुकी ॥६०
प्रत्यक्षविष्णु रूपा हि तत्वज्ञै र्निश्चिता अमी ।
तस्मात्स ततमभ्यर्च्या विष्णुभक्त्यभिलाषिणा ॥६१
विष्णौ भक्ति विना नृणां निष्फलं जन्म उच्चते ।
कलिकालपयोराशिं पापग्राहसमाकुलम् ॥६२

विप्र का जो स्वरूप है वह भी साक्षात श्री हरि का ही स्वरूप होता है और जो पुराण है वह भी वैसा ही होता है । इन दोनों संग को प्राप्त करके अर्थात विप्र विद्वान के मुख से पुराण का श्रवण करके वह श्रोता मनुष्य भी हरि के स्वरूप वाला हो जाया करता है ।५६। जिस तरह भागीरथी गङ्गा के जल के अभिषेक से मनुष्य अपने सम्पूर्ण किल्विषों का विनाश करके विमुक्त हो जाता है क्योंकि वह गंगा का जल भी तो द्रव रूप धारी साक्षात भगवान केशव ही है जो इस भूमिगत प्राणियों का उद्धार किया करता है और पापों का विनाश कर देता है ।५७। विष्णु का भक्त कोई वैष्णव यदि भगवान विष्णु के भजन की आकाँक्षा रखता है तो उसे श्रीगंगा के जल में स्नान करना चाहिये क्योंकि

यह मानव के मन को धोकर उसे बिल्कुल निर्मल कर देने का सर्वोत्तम साधन है ।५८। गङ्गा देवी इस भूमण्डल में विष्णु की भक्ति को प्रदान कर देने वाली गायी जाती है क्योंकि वह साक्षात विष्णु के ही स्वरूप वाली और लोगों के निस्तार कर देने वाली होती हैं ।५९। ब्राह्मणों में पुराणों में-भागीरथी गंगा में गौओं में-पीपल वृक्ष में साक्षात भगवान नरायण की ही बुद्धि रख कर मनुष्यों को बिना किसी हेतु वाली भक्ति अवश्य ही करनी चाहिए ।६०। जो तत्वों के ज्ञाता पुरुष हैं उनके द्वारा ये सब प्रत्यक्ष में विष्णु के स्वरूप वाले निश्चित किये गये हैं इसलिये जो भी भगवान विष्णु की भक्ति करने की अभिलाषा रखते हैं उन्हें इन सब का निरन्तर अभ्यर्चन करना ही चाहिये ।६१। इन संसार में मानव देह प्राप्त कर यदि भगवान विष्णु की भक्ति नहीं की तो इसके बिना मनुष्यों का जन्म ग्रहण करना ही निष्फल हो जाया करता है। यह घोर कलिकाल का महासागर है और इसमें पाप रूपी बड़े २ ग्राह भरे हुए हैं। इससे सन्तरण प्राप्त करने के लिये विष्णु भक्ति ही एक अमोघ नौका है ।६२।

विषयामज्जनावर्त्तंदुर्वोधफेनिसंपरम् ।
महादुष्टजनव्यालमहाभीमं भयानकम् ।।६३
दुस्तरं च तरन्त्येव हरिभक्तितरि स्थिता: ।
तस्काद्यतेत वै लोको विष्णुभक्तिप्रसाधने ।।६४
किं सुखं लभते जन्तुरसद्वार्ताविधारणे ।
हरेरद्भुतलीलस्य लीलाख्याने न सज्जते ।।६५
तद्विचित्रकथा लोके नानाविषयमिश्रिता: ।
श्रोतव्या यदि वै नृणां विषये सज्जते मन: ।।६६
निर्वाणे तदि वा चित्तं श्रोतव्या तदपि द्विजा: ।
हेलया श्रवणाच्चापि तस्य तुष्टो भवेद्धरि: ।।६७
निष्कलोऽपि हृषीकेशो नानाकार्यं बभार स: ।
शुश्रूषणां हितार्थाय भक्तानां भक्तवत्सल: ।।५८

न लभ्यते कर्मणाऽपि वाजपेयशतादिना ।
राजसूयायुतेनापि यथा भक्त्या स लभ्यते ।।६९
यत्पदं चेतसा सेव्यं सद्भिराचरितं मुहुः ।
भवाब्धितरणे सःरमाश्रयध्वंहरो पदम् ।।७०

इस सागर में विविध प्रकार के विषयों में जो डुबकियाँ लगती रहा करती हैं ये ही इस समुद्र से आवर्त्त (भौंरे) हैं और दुर्बोध ही इसमें फेन रहा करता है जिससे प्राणी का मन घिरा रहता है । अत्यन्त दुष्ट प्रकृति वाले मनुष्य ही इस संसार सागर में व्याल हैं जिनसे यह महान भीम और अत्यन्त भयानक है ।६३। इस दुस्तर सागर को वे ही परम भक्तजन तैर कर पार चले जाया करते हैं जो श्री हरि के चरण कमल की भक्ति रूपिणी नौका में स्थित रहा करते हैं । इसलिये सब लोगों को भगवान् विष्णु की भक्ति के प्रसाधन में पूर्णतया प्रयत्न करना चाहिये ।६४। लोग यों ही अपना सारा समय इधर-उधर व्यर्थ की बात चीत करने में गँवा दिया करते हैं । ऐसी असद बातों के करने में क्या सुख प्राप्त होता है कि यह जन्तु उन्हें किया करता है । भगवान की अत्यन्त अद्भुत लीलाएँ हैं उनके कथन करने और उनको श्रवण दोनों में ही अत्यन्त आनन्द आता है ।६५। नाना विषयों से मिली-जुली उनकी विचित्र कथाएँ लोक में प्रचलित हैं । यदि मनुष्यों का मन विषयों के आस्वादन में ही सञ्चित होता रहता है । तो उन मनुष्यों को हरि की ऐसी कथाएँ सुननी चाहिए ।६६। यदि निर्वाण में चित्त है तो भी हे द्विज गण ! तो भी हरि की कथाओं का श्रवण करना ही चाहिये । यदि कोई यों ही हेला से अर्थात दिल बहलाव की क्रीड़ा से भी हरि की कथा का श्रवण किया करता है तो इससे भी हरि भगवान बहुत तुष्ट एवं प्रसन्न हो जाते हैं ।६७। यद्यपि हृषीकेश भगवान क्रिया से रहित हैं तो भी अनेक प्रकार के कर्मों के करने वाले हुए हैं । भगवान अपने भक्तों पर प्यार किया करते हैं इसीलिए उन्होंने निष्क्रिय होते हुए भी अनेक कर्म किये हैं कि भक्तजन उनके

कर्मों की लीलाओं का श्रवण करके अपना हित-सम्पादन करने के इच्छुक हैं। भक्तों के हित के लिये ही उन्होंने ये लीलाएं की हैं।६८। जो किसी भी धार्मिक कर्म के करने से भी प्राप्त नहीं हो सकता है यह केवल श्री हरि के चरण कमल की भक्ति के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।६९। जिस पद को चित्त के द्वारा ही सेवन करना चाहिये और सत्पुरुषों ने जिसका सेवन वारम्वार किया है। वही इस संसार रूपी सागर के तरण करने में सारभूत है। उसी हरि के पद का आश्रय संग्रहण करो।७०।

रेरेविषय संलुब्धाः पामरा निष्ठुराः नराः।
रौरवे हि किमात्मानमात्मना पातयिष्यथ ॥७१
विना गोविन्दसौम्याङ्घ्रिसेवनं मा गमिष्यथ।
अनायासेन दुःखानां तरणं यदिवाञ्छथ ॥७२
भजध्वं कृष्णचरणावपुनर्भवकारणे।
कुत एवागतो मर्त्यः कुत एव पुनर्व्रजेत् ॥७३
एतद्विचार्यं मतिमानाश्रयेद्धर्मसङ्ग्रहम्।
नानानरकसम्पातादुत्थितो यदि पूरुषः ॥७४
स्थावरादि तनुं लब्ध्वा यदि भाग्यवशात्पुनः।
मानुष्यं लभते तत्र गर्भवासोऽतिदुःखदः ॥७५
ततः कर्मवशाज्जन्तुर्यदि वा जायते भुवि।
बाल्यादिबहुदोषेण पीडितो भवति द्विजाः ॥७६
पुनर्यौवनमासाद्य दारिद्र्येण प्रपीड्यते।
रोगेण गुरुणा वापि अनावृष्ट्यादिना तथा ॥७७

रे-रे विषयों के भोगने में लालच रखने वाले परम पामर एवं निष्ठुर मनुष्यो ! तुम लोग अपने आप ही क्यों अपनी आत्मा को रौरव नरक में गिराने को प्रस्तुत हो रहे हो और क्यों कर रहे ? विषयों में ही मान रहने से तो निश्चय रौरव नरक में लोग जाकर यातनाऐं भोगोगे।७१। श्रीगोविन्द के परम सौम्य चरण कमल की सेवा के बिना अना-

वास से ही दुःखों से तरण नहीं होगा। यदि तुम लोग इनसे छुटकारा चाहते हो तो भगवान के चरणों का ही सेवन करो।७२। भगवान श्रीकृष्ण के चरणों का भजन ही पुनर्जन्म न पाने के लिए एक मात्र साधन है उसी को ग्रहण करो। तुम मनुष्य जन्म पाकर क्यों आये हो ? और पुनः यों ही कुछ भी कल्याण प्राप्त करने का साधन न करके क्यों यहाँ से जा रहे हो ? मनुष्य देह तो उद्धार के करने के लिये भगवान का भजन करने को ही प्राप्त हुआ है। इसे व्यर्थ ही क्यों गँवा रहे हो ? ।७३। यह भली भाँति विचार करके मतिमान पुरुषों को धर्म का संग्रह अवश्य ही इस मनुष्य देह से करना चाहिये। अब तक न मालुम कितने ही नरकों में गिर कर तुमने उत्थान किया है कि यह दुर्लभ मानुष देह तुम्हें मिल गया है।७४। स्थावर आदि जड़ योनियों में शरीर प्राप्त कर सौभाग्य वश फिर यदि यह मनुष्य शरीर प्राप्त भी होता है तो सर्व प्रथम तो माता के उदर में गर्भ वास करना ही अत्यन्त पीड़ा देने वाला होता है।७५। यदि कर्म वश वह जन्तु जन्म ग्रहण कर इस भूमि पर भी आ जाता है तो फिर भी हे द्विजगण ! बाल्यकाल के बहुत से दोषों से यह पीड़ित हुआ करता है।७६। बाल्य काल समाप्त होने पर इस मनुष्य देह धारी प्राणी की अवस्था आती है जिसमें दरिद्रता से पीड़ित रहा करता है—या कोई बड़ा भारी रोग इसके शरीर को ग्रस्त लेता है उससे इसको महान दुःख होता है किम्बा अनावृष्टि आदि अनेक पीड़ाऐं इसे उस अवस्था में सताया करती हैं।७७।

वार्द्धकेन लभेत्पीडामनिर्वाच्यातितस्ततः ।
मनसश्चलनाद्व्याधेस्ततो मरणमाप्नुयात् ॥७८
न तस्मादधिकं दुःखं संसारेऽप्यनुभूयते ।
ततः कर्मवशाज्जन्तुर्यमलोश प्रपीडचते ॥७९
तत्रातियातनां भुक्त्वा पनरेव प्रजायते ।
जायते म्रियते जन्तुर्म्रियते जायते पुनः ॥८०

अनाराधितगोविन्दचरणस्येदृशी दशा ।
अनायासेन मरणं विनियासेन जीवनम् ।।८१
अनाराधितगोविन्दचरणस्य न जायते ।
धनं यदि भवेद्गेहे रक्षणात्तस्य किं फलम् ।।८२
यदाऽसौ कृष्यते याम्यैर्दूतः किं धनमन्वियात् ।
तस्माद् द्विजातिसत्कार्यं द्रविणं सर्वसौख्यदम् ।।८३
दानं स्वर्गस्य सोपानं किल्बिषनाशनम् ।
गोविन्दभक्तिभजनं महापुण्यविवर्द्धनम् ।।८४

इसके अनन्तर बुढ़ापा आ जाता है और इस वार्धक्य से अनिर्वचनीय पीड़ा का अनुभव हुआ करता है । इसका मन इधर-उधर चला करता है शरीर और समस्त इन्द्रियाँ शिथिल एवं अशक्त हो जाती है । बहुत सी व्याधियाँ आकर वृद्धावस्था में घेर लिया करती हैं और फिर मृत्यु आ जाती है । समस्त जीवन यों ही कष्ट भोगते व्यतीत हो जाया करता है ।७८। इस संसार में भी इससे अधिक दुःख का अनुभव नहीं होता है । इसके पश्चात कर्मों के वशीभूत होकर यह जन्तु यमलोक में पहुँच जाता है और वहाँ पर जो भी यहाँ पाप कर्म किये हैं उनका दण्ड भोगने में वहाँ उसे खूब पीड़ाऐं दी जाया करती हैं ।७९। वहाँ पर घोराति घोर यातनाऐं भोग कर फिर इस संसार में यह जन्तु जन्म ग्रहण किया करता है । इसी प्रकार से यह जीवात्मा बराबर जन्म ग्रहण करता है—मरता है और फिर जन्माता है और मौत के मुख में चला जाया करता है । यही क्रम बराबर चलता रहता है और इसी आवागमन के चक्र में निरन्तर घूमता पीड़ाऐं भोगता रहता है ।८०। जिसने भगवान गोविंद के चरण कमल की कभी आराधना नहीं की है उस जीव की ऐसी दयनीय बुरी दशा हुआ करती है । अनायास ही उसका जीवन होता है और बिना आयास के ही मौत हो जाया करती है ।८१। अनाराधित गोविन्द के चरण वाले पुरुष को अनायास जीवन एवं मृत्यु नहीं होते हैं। उसे तो जन्म-जीवन मृत्यु नरक और गर्भवास का सभी कष्ट भोगना पड़ता है । यदि घर में धन हो तो उसकी रक्षा करने का क्या फल है ?

जीवन भर न्यायालय से कमाकर संग्रह करते हैं और उसकी प्राणायाम से हिफाजत भी किया करते हैं किन्तु उससे लाभ कुछ भी नहीं होता है।८२। जिस समय में यमराज के दूतों के द्वारा यमपुरी ले जाने के लिए इस प्राणी को खींचा जाता है तो क्या वह एकत्रित किया हुआ धन जिसको बड़ी कठिनाई से जोड़ा था और रक्षा की थी उसके साथ चला जाता है ? अर्थात साथ न जाकर यहीं रह जाया करता है। इसी लिये जो धन द्विजातियों के सत्कार करने में काम आता है वही धन सब प्रकार का सुख देने वाला होता है।८३। दान देना अर्थात धन का दान करना ही स्वर्ग प्राप्त करने का सोपान (सीढ़ी) है और दान ही पापों का नाश करने वाला है। श्री गोविन्द का भजन करना महान पुण्य का विशेष रूप से बढ़ाने वाला है।८४।

बलं यदि भवेन्मर्त्ये न वृथा तद्व्यं चरेत्।
हरेरग्रे नृत्यगीतं कुर्यादिवमतन्द्रितः ॥८५
यत्किञ्चिद्विद्यते पुसां तच्च कृष्णे समर्पयेत्।
कृष्णार्पितंकुशलदमन्यार्पितमसौख्यदम् ॥८६
चक्षुर्भ्यां श्रीहरेरेव प्रतिमादिनिरूपणम्।
श्रोत्राज्यांकलयेत्कृष्णगुणनामान्यहर्निशम्।.८७
जिह्वया हरिपादाम्बु स्वादितव्यं विचक्षणैः।
घ्राणेनाघ्राय गोविन्दपादाब्जतुलसीदलम् ॥८८
त्वचा स्पृष्ट्वा हरेर्भक्तं मनसाध्याय तत्पदम्।
कृतार्थो जायते जन्तुर्नात्र कार्या विचारणा ॥८९
तन्मनाहि भवेत्प्राज्ञस्तथा स्यात्तद्गताशयः।
तमेवान्तेभ्येति लोको नात्र कार्या विचारणा ॥९०
चेतसा चाप्यनुध्यातः स्वपदं यः प्रयच्छति।
नारायणमनाद्यन्तं न तं सेवते को जनः ॥९१
सततनियतचित्तो विष्णुपादारविन्दे।
वितरणमनुशक्तिप्रीतये तस्य कुर्यात् ॥९२

नतिमतिरतिमस्य ङ्घ्रिद्वये संविदध्याय् ।
स हि खलु नरलोके पूज्यतामाप्नुयाच्च ।।८३

यदि किसी मनुष्य में सौभाग्य वश वल हो तो उसका वृथा व्यय नहीं करना चाहिये । भगवान के श्री विग्रह के समक्ष में तन्द्रा से रहित होकर नृत्य और गान करना चाहिये ।८५। मनुष्यों के जो भी कुछ हो वह सभी कुछ कृष्ण को अर्पण कर देना चाहिये । संसार में सभी कुछ भगवत्कृपा से प्राप्त होता है अतः सब भगवदीय वस्तुऐं हैं इसलिये उनको ही समर्पण कर देना मनुष्य–कर्त्तव्य है । श्रीकृष्ण की सेवा में समर्पित किए हुए धन से ही संसार में कुशल होता है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य कार्य में व्यय किया हुआ धन है वह सुख प्रदान करने वाला नहीं होता है प्रत्युत उससे उल्टा दुःख ही होता है ।८६। भगवान ने मनुष्य को जितनी भी इन्द्रियाँ दी हैं उन सबको भगवत्सम्बन्धी विषयों में निरन्तर लगाने से मानव कल्याण होता है । जो चक्षुऐं हैं उनसे श्री हरि ही की प्रतिमा आदि का निरूपण करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि अन्य संसारिक पदार्थों के देखने में नेत्रों का उपयोग नहीं करे । श्रोत्रेन्द्रिय से भगवान श्रीकृष्ण के गुणानुवाद तथा भगवान के नाम का कीर्त्तन सुनना चाहिये । दुनियाँ के दूसरे तान-टप्पे तथा व्यर्थ की बातों का श्रवण कभी न करे ।८७। जिह्वा से श्री हरि के चरणामृत का आस्वादन में कभी आसक्ति न रक्खे । घ्राणेन्द्रिय से श्रीगोविन्द के चरण कमल में समर्पित तुलसीदल का आघ्राण करे ।८८। त्वगिन्द्रिय के द्वारा श्रीहरि के परम भक्त के चरणों का स्पर्श करे और मन से हरि के चरणों का ध्यान करना चाहिये । ऐसा करने ही से वह जन्तु कृतार्थ होता है—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।८९। जो प्राज्ञ पुरुष है उसे श्रीहरि ही के चरणों में मन लगाने वाला रहना चाहिए और अपने मन में पूर्ण आश्रय भगवान का सर्वदा रहना चाहिये । जो इस प्रकार से अपना पूरा जीवन यापन किया करता है वह पुरुष अन्तसमय में भगवान की ही सन्निधि में प्राप्त

जाता है–इसमें भी विचार एवं संशय करने की आवश्यकता नहीं है ।९०। जिसका कोई चित्त से भी अनुध्यान किया करता है उसे भी भगवान् प्रसन्न एवं इतने मात्र से सन्तुष्ट होकर अपना पद प्रदान कर दिया करते हैं ऐसे आदि–अन्त से रहित भगवान नारायण को जो कोई मनुष्य सेवन न करे वह कैसा मनुष्य है अर्थात महामूढ़ है ।९१। निरन्तर नियत चित्त वाला होकर भगवान विष्णु के पादारविंद में अपनी शक्ति के अनुसार जो उनकी प्रीति के लिये वितरण किया करता है । नति-मति और रति भगवान के चरण कमल में सर्वदा रखता है । प्रणाम करता है, बुद्धि लगाये रहता है और प्रीति रखता है ऐसा मनुष्य निश्चय ही इस नर लोक में पूज्यनाद को प्राप्त होता है । भगवद्भक्ति की ऐसी ही महिमा है ।९२-९३।

।। कलियुग से उद्धार कैसे हो ? ।।

कलौ समावते सूत प्राणिन केन कर्मणा ।
उद्धारो वै भवेत्तत्दं कथयस्व ममाग्रतः ।।१
साधु साधु मुनिश्रेष्ठ ! पुण्यात्मप्रवरो भवान् ।
सर्वेषां च जनानां त्वं शुभवाञ्छो निरन्तरम् ।।२
एतद्व्यासः पुरा विप्रःसर्वज्ञःसर्वपूजितः ।
पृष्टो जैमिनिना तं स यदाह श्रुणु वैष्णव ! ।।३
दण्डवत्प्राणिपत्यासो व्यासं सर्वार्थपारगम् ।
गुरुं सत्यवतीसूनुं पप्रच्छ मुनिपुङ्गवः ।।४
कलौ नृणां भवेत्केन मोक्षो वै कथयस्व मे ।
अल्पेनापि च पुण्येन मर्त्याश्चाल्पायुषो यतः ।।५
साधुसङ्गाभ्दवेद्विप्र शास्त्राणां श्रवणं प्रभो ! ।
हरिभक्तिर्भवेत्तस्मात्ततो ज्ञानं ततो गतिः ।।६
न रोचते कथा भूमौ पापिष्ठाय जनाय वै ।
वैष्णवी स तु विज्ञयः पापिष्ठप्रवरौ द्विजः ।।७

श्री शौनकजी ने कहा—हे सूतजी ! इस महान घोर कलिकाल में प्राणियों का किस कर्म द्वारा उद्धार हो सकता है। इस विषय में आप कृपा करके मेरे समक्ष में तात्विक रूप से वर्णन कीजिएगा ।१। सूत जी ने कहा—हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! बहुत अच्छा आप तो पुण्यात्माओं में परम श्रेष्ठ पुरुष हैं। क्योंकि आप सर्वदा समस्त प्राणियों की शुभेच्छा किया करते हो ।२। प्राचीन समय में पहले सर्वज्ञ तथा सबके द्वारा वन्द्यमान विप्रवर वेद व्यास कृष्ण द्वैपायन से जैमिनी मुनि ने पूछा था। हे वैष्णव ! व्यास जी ने जैमिनी से जो कुछ भी कहा था उसे ही मैं आपको सुनाता हूँ। उसका आप श्रवण कीजिये ।३। मुनियों में परम श्रेष्ठ जैमिनि ने दण्ड की भाँति भूमि पर पड़ कर प्रणाम किया था और फिर सत्यवती के पुत्र सब प्रकार से अर्थों के पारगामी गुरुदेव कृष्ण द्वैपायन व्यास जी उन्होंने पूछा था ।४। जैमिनी ने कहा—हे मुनिवर ! इस महान घोर कलिकाल में मनुष्यों का मोक्ष किस उपाय या साधन से होगा—इसे आप मुझे बतलाइये क्योंकि कलियुग में मनुष्यों की आयु भी बहुत अल्प होगी इसलिए ऐसा ही कोई साधन या पुण्य बतलाइये जो स्वल्प ही हो और जिसे लोग कर सकें ।५। व्यासजी ने कहा है—हे विप्र ! शास्त्रों का श्रवण का अवसर साधु पुरुषों के सङ्गति से ही हुआ करता है। संग से शास्त्र श्रवण और उस शास्त्र श्रवण से श्री हरि की भक्ति होती है। उसी भक्ति से ज्ञान की उत्पत्ति होती है और ज्ञान से गति हुआ करती हैं ।६। जो पापिष्ठ मनुष्य होते हैं उनको इस भूमण्डल में हरि की कथा में रुचि ही नहीं होती है वह पापिष्ठ प्रवर वैष्णव जानना चाहिये ।७।

श्रीकृष्णस्य कथां श्रुत्वाऽऽनन्दी भवति वैष्णवः ।
असत्यां तां तु यो ब्रूयाज्ज्ञेयः स पापिनां गुरुः ॥८
यस्मिन्यस्मिन्थले विप्र ! कृष्णस्य वर्तते कथा ।
तस्मात्तस्माज्जगन्नाथो याति त्यक्त्वा न कर्हिचित् ॥९
कृष्णस्य यः कथारम्भे कुर्याद्विघ्नं नराधमः ।
नरकान्निष्कृतिर्नास्ति मन्वन्तरशतावधि ॥१०

ये पुराणकथां श्रुत्वा निन्दन्त्युपहसन्ति वै ।
तेषां करस्था नरका बहुक्लेशकराः सदा ।।११
जन्मान्तरार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।
श्रीकृष्णचरितं यो वै श्रोतुमिच्छां करोत्यपि ।।१२
भक्त्या यो वै नरःकुर्याच्छ्रीकृष्णचरितं तथा ।
न जाने श्रवणे तस्य का गतिर्वा भविष्यति ।।१३
श्रीकृष्णचरितं विप्र ! तिष्ठेद्वै पुस्तकं गृहे ।
तस्य गृहसमीपं हि नायान्ति यमकिङ्कराः ।।१४

भगवान् श्रीकृष्ण की कथा का श्रवण करके वैष्णवजन आनन्द से युक्त हो जाता है। जो उस कथा को असत्य कहता है। उसे पापियों का गुरु ही समझना चाहिये ।८। हे विप्र ! जिस-जिस स्थल में श्रीकृष्ण की कथा होती है। उस-उस स्थल से भगवान जगन्नाथ उसका त्याग करके कभी भी नहीं जाया करते हैं।९। जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण की कथा के आरम्भ काल में विजय-बाधा किया करता है उस मनुष्य को नरों में महान अधम नर ही समझना चाहिये ऐसे पुरुष को नरक में जाकर पड़ना पड़ता है और उसकी फिर उस नरक से निष्कृति सैकड़ों मन्वन्तर तक भी नहीं हुआ करती ।१०। जो पुरुष पुराणों की कथा का श्रवण करके उस कथा की निन्दा किया करते हैं या उसका उपहास करते हैं उनके हाथों में ही नरक का निवास रहा करता है जोकि सदा बहुत ही अधिक क्लेशों का करने वाला होता है। ११। जो भगवान श्रीकृष्ण की कथा के श्रवण करने की इच्छा मात्र किया करता है उसी क्षण में जन्मान्तरों के किए हुए संचित पाप नष्ट हो जाते हैं।१२। भक्ति की भावना से जो मनुष्य श्रीकृष्ण के चरित को किया करता है उसका भी उद्धार हो जाता है। उस चरित के श्रवण करने में उसकी क्या गति होंगी—यह मैं नहीं जानता हूँ।१३। हे विप्र ! श्रीकृष्ण के चरित से युक्त-पुस्तक यदि घर में रहती हैं तो उस घर की तो बात ही क्या है ! उस घर के समीप में भी यमराज के किंकर कभी नहीं आया करते हैं।१४।

वदन्ति वैष्णवान्कांश्च वाञ्छा ब्रूहि गुरो ! मम ।
इदानीं तान्समाज्ञातुं तेषां माहात्म्यमुत्तमम् ॥१५
यो नरो मस्तके भक्त्या वैष्णवाङ्घ्र्यम्भसो द्विज ! ।
करोति सेचनं पापी तीर्थस्नानेन तस्य किम् ॥१६
साधुसङ्गं तु यःकुर्यात्क्षणं वाऽर्द्धं क्षणं द्विज ।
तस्य नश्यन्ति पापानि ब्रह्महत्यामुखानिच ॥१७
यत्र यत्र केलेचैव एको भवति वैष्णवः ।
कुलं तस्य तदापपैर्युक्तं तन्मोक्षगामिवैं ॥१८
हिंसादम्भकामक्रोधैर्वर्जिताश्चैव ये नराः ।
लोभमोहपरित्यक्ता ज्ञेयास्ते वैष्णवा द्विज ! ॥१९
पितृभक्ता दयायुक्ताः सर्वप्राणिहितेरताः ।
अमत्सरा वैष्णवा ये विज्ञेयाः सत्यभाषिणः ॥२०
विप्रभक्तरता ये च परस्त्रीषु नपुंसकाः ।
एकादशीव्रतरता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥२१

जैमिनि मुनि ने कहा—गुरुवर ! मेरी यह इच्छा है कि मुझे इसका ज्ञान प्राप्त हो जावे कि वैष्णव जन किनको कहा करते हैं । अब उनके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिये आप उनका उत्तम माहात्म्य श्रवण कराईये ।१५। व्यास जी ने कहा—जो मनुष्य भक्ति भाव से हे द्विज ! वैष्णवों के चरणों का जल अपने मस्तक पर धारण करता है और फिर उसी चरणामृत के द्वारा अपने मस्तक का सेवन किया करता है उस पापी की तीर्थों के स्नान करने से कहा लाभ है अर्थात् फिर तीर्थ स्नान की कोई भी आवश्यकता नहीं रह जाती है ।१६। हे द्विज ! जो पुरुष एक ही क्षणमात्र या आधे क्षण के लिये भी साधु पुरुषों का संग किया करता है उसके समस्त ब्रह्महत्या जैसे भी महापाप भी समूल नष्ट हो जाया करते हैं ।१७। जिस-जिस में कोई भी एक पुरुष भी वैष्णव हो जाता है उसका पूरा कुल जो कि महापापों से भी युक्त होता है तो भी पापों से छुटकारा पाकर मोक्ष गामी हो जाया करता है ।१८।

जो पुरुष हिंसा, दम्भ, काम, और क्रोध से रहित होते हैं और तोम-मोह से वर्जित होते हैं हे द्विज ! उनको वैष्णव ही समझना चाहिये ।१६। जो अपने पिता के परम भक्त होते हैं तथा दया से युक्त हुआ करते हैं और समस्त प्राणियों के हित करने में रति रखते हैं एवं जिनके हृदय में मत्सरता की भावना नहीं होती है और सर्वदा सत्य का भाषण किया करते हैं उनकी वैष्णवजन समझना चाहिए ।२०। जो सदा विप्रों के प्रति भक्ति का भाव रखते हैं और विप्रों के चरणों में प्रेम और जो पराई स्त्रियों के प्रति नपुंसकता रखते हैं । तथा एकादशी का सर्वदा व्रत करने में रति रखते हैं उन सबको परम वैष्णव ही मानना चाहिये ।२१।

गायन्ति हरिनामानि तुलसीमाल्यधारकाः ।
हर्यङ्घ्रिसलिलैः सिक्ता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ।।२२
श्रोत्रयोर्स्मतकेयेषांतुलस्याः पर्णमुत्तमम् ।
कर्हिचिद्दृश्यते विप्र ! विज्ञ यास्ते च वैष्णवाः ।।२३
पाखण्डसङ्गरहिता विप्रद्वेषविवर्चिताः ।
सिञ्चेयुस्तुलसीं ये च ज्ञातव्या वैष्णवा नराः ।।२४
पूजयन्ति हरिं ये च तुलस्या चार्चयन्ति ये ।
कन्यादानरता ये च ये वैह्यतिथि पूजकाः ।।२५
शृण्वन्ति विष्णु चरित विज्ञेया वैष्णवा नराः ।
यस्त गृहे सुप्रतिष्टेच्छालग्रामशिलाऽपि च ।।२६
मार्जयन्ति हरेःस्थानं पितृयज्ञ प्रवर्त्तकाः ।
जने दीने दलायुक्ता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ।।२७
परस्वं ब्राह्मणद्रव्यं पश्यन्ति विषवच्च ये ।
हरिनैवेद्य येऽश्मन्ति विज्ञेया वैष्णवा जनाः ।।२८

जो श्रीहरि के शुभ नामों का संकीर्त्तन किया करते हैं और तुलसी की माला (कण्ठी) को धारण किया करते हैं । जो श्रीहरि के चरणामृत से अपने आपको सिक्त किया करते हैं । उन सब को वैष्णव जन ही समझना चाहिये ।२२। जिनके कानों में और मस्तक में तुलसी का उत्तम

पत्र किसी भी समय में दिखलाई देता है तो हे विप्र ! उनको परम वैष्णव जन ही जानना चाहिए ।२३। पाखण्डियों की संगति से जो रहित होते हैं तथा विप्रो के द्वेष से जो शून्य होते हैं और जो तुलसी के पौधे का सिंचन किया करते हैं उन्हें वैष्णव जन ही समझना चाहिये ।२४। जो लोग श्रीहरि का अर्चन किया करते हैं और जो तुलसी की पूजा किया करते हैं तथा जो कन्या के दान करने में रत रहा करते हैं और जो अतिथियों का समर्थन करते हैं, जो विष्णु भगवान के चरित्र का श्रवण करते हैं वे मनुष्य परम वैष्णव जाने जाते हैं । जिनके घर में शालग्राम शिला की सुप्रतिष्ठा हो, जो दीन मनुष्यों पर दया किया करते हैं तथा पितृयज्ञ के प्रवर्त्तक होते हैं, जो दीन मनुष्यों पर दया किया करते हैं उनको वैष्णवजन समझना चाहिए ।२५-२७। जो पराये धन को तथा ब्राह्मणों के धन को विष की भाँति देखते हैं और जो हरि को समर्पित किया हुआ नैवेद्य प्रसाद खाते हैं उनकी वैष्णवजन ही जानना चाहिये ।२८।

वेदशास्त्रानुरक्ता ये तुलसीवनपालका: ।
राधाष्टमीव्रतरता विज्ञेयास्ते च वैष्णवा: ।।२९
श्रीकृष्णपुरतो येच दीपं यच्छत्ति श्रद्धया ।
परनिन्दां न कुर्वन्ति विज्ञेयास्ते च वैष्णवा: ।।३०
पृष्टो जैमिनिना व्यास इत्युवाच यथाक्रमम् ।
मयेदं कथ्यते ब्रश्वन्यत्प्रसङ्गाद्गुरो: श्रुतम् ।।३१
अध्यायं श्रद्धया युक्ता ये शृण्वन्ति नरोत्तमा: ।
सर्व पापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णु: परंपदम् ।।३२

जो वेदों के और शास्त्रों के अन्दर अनुराग रखने वाले हैं तथा तुलसी के वन को पालित किया करते हैं । जो श्री राधाष्टमी के दिन उपवास करने में रति रखते हैं उन्हें वैष्णव जन ही जानना चाहिये ।२९। जो श्रीकृष्ण भगवान के आगे श्रद्धा के भाव से दीपक का दान किया करते हैं और दूसरों की जो कभी भी निन्दा नहीं किया करते हैं । उन्हें ही परम वैष्णवजन समझना चाहिये ।३०। सूतजी ने

कहा—इस प्रकार से जैमिन के द्वारा व्यास जी से पूछा गया था तब व्यास जी ने क्रमानुसार यह कहा था—हे ब्रह्मन् ! मैंने जो प्रसङ्गवश अपने गुरुजी से श्रवण किया है उसे ही मैं कहता हूँ ।३१। जो नरों में श्रेष्ठ इस अध्याय का श्रवण श्रद्धा के साथ किया करते हैं वे सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर श्री विष्णु भगवान के परम पद को अन्त में प्राप्त किया करते है ।३२।

।। कार्तिक मास महात्म्य ।।

कार्त्तिकस्य च माहात्म्यं ब्रूहि सूत ! समाग्रतः ।
तद्व्रतस्य फलं किं वा दोपं किं तदकुर्वतः ।।१
पुरैकदा मुनिश्रेष्ठ ! व्यासं सत्यवतीसुतम् ।
जैमिनिः पृष्ठवानेतदारेभे कथितुं मुनिः ।।२
तिलतैलं मैथुनं यः शुभदेकार्त्तिके त्यजेत् ।
बहुजन्मकृतैःपापमुंक्तोयाति हरेर्गृहन् ।।३
मत्स्यं च मैथुनंयो वै कार्तिके न परित्यजेम् ।
प्रतिजन्मानि संमूढः शूकरश्च भवेद्ध्रुवम् ।।४
कार्त्तिके तुलसीपत्रैः पूजयेद्वै जनार्दनम् ।
पत्रे पत्रेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।५
कार्तिके मुनिपुष्पैर्यः पूजयेन्मधुसूदनम् ।
देवानां दुर्लभं मोक्षं प्राप्नोति कृपया हरेः ।।६
कार्तिके मुनिशाकं वै योऽश्नानि चं नरोत्तमः ।
संवत्सरकृतंपापं शाकेनैकेन नश्यति ।।७
फलं तस्य नरोऽश्नाति चोर्जे यो वै हरिप्रिये ।
प्रदाय तु हरेर्ब्रह्मन्वृजिनं कोटिजन्मजम् ।।८

शौनकजी ने कहा—हे सूतजी ! अब आप कृपा करके मेरे आगे कार्तिक मास के माहात्म्य का वर्णन कीजिये । इस व्रत के करने से क्या फल प्राप्त होता है ? और यदि कोई इस व्रत को नहीं किया करता है तो उसे क्या दोष लगता है ? ।१। श्री सूतजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ !

सत्यवती के पुत्र व्यास देवजी से जैमिन मुनि ने यह पूछा था। उस समय मुनिवर ने यही कहना आरम्भ किया था—व्यासजी ने कहा था परम शुभ के प्रदान करने वाले कार्तिक मास में जो पुरुष तिलों का तैल और मैथुन का त्याग कर देता है वह पुरुष बहुत से जन्मों के लिए पापों से मुक्त होकर श्री हरि के पद की प्राप्ति किया करता है ॥२-३॥ जो पुरुष कार्तिक मास में मत्स्यों का आहार और मैथुन का त्याग नहीं किया करते हैं वह प्रत्येक जन्म संमूढ निश्चय ही शूकर की योनि में जन्म ग्रहण किया करता है।४। कार्त्तिक में तुलसी के दलों से जनार्दन भगवान् का अर्चन करना चाहिए। एक-एक तुलसी के पत्र के समर्पित करने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त किया करता है।५। कार्तिक में मुनि (अगस्य) पुष्पों से जो मधुसूदन भगवान का पूजन किया करता है वह मनुष्य देवों का भी महा दुर्लभ जो मोक्ष होता है उसे श्रीहरि की कृपा से प्राप्त कर लेता है ॥६॥ कार्तिक में जो नरों में परम श्रेष्ठ पुरुष मुनि शाक का अशन करता है वह एक वर्ष भर में किए हुए पापों को एक ही शाक के अशन मात्र से नष्ट कर दिया करता है।७। श्रीहरि का परम प्रिय ऊर्जमास में जो उसके फल का अशन करता है वह हे ब्रह्मन् ! करोड़ों जन्म से पापों को हरि की कृपा से नष्ट कर देता है।८।

सुरसं सर्पिषा युक्तं दद्याद्यो हरयेऽपिच।
सर्वं पापैर्विनिर्मुक्तः सगच्छेद्धरिमन्दिरम् ।९।
कार्तिके यो नरो दद्यादेकपद्म हरावपि।
अन्ते विष्णुपदं गच्छेत्सर्वपापविवर्जितः ।१०।
प्रातः स्नान नरो योवै कार्तिके श्रीहरिप्रिये।
करोति सर्वतीर्थेषु यत्स्नात्वातत्फललभेत् ।११।
कार्तिके यो नरोदद्यात्प्रदीपं नभसि द्विजः।
विप्रहत्यादिभिः पापैर्मुक्तोगच्छेद्धरेर्गृहम् ।१२।
मुहूर्तमपि य दद्यात्कार्तिके प्रीतये हरेः।
दीपं नभसि विप्रेन्द्र ! तस्मिस्तुष्टः सदाहरिः ।१३।

यो दद्याच्च गृहे दीपं कृष्णस्य सघृतं द्विजः।
कार्तिके चाश्वमेधस्य फलंस्याद्वै दिते दिने ॥१४

जो पुरुष सर्पि (घृत) से युक्त सुरस पदार्थ को हरि की सेवा में समर्पित करता है वह समस्त पापों से विमुक्त होकर श्री हरि के मन्दिर में गमन किया करता है ॥६॥ कार्तिक में जो मनुष्य एक भी पद्म का पुण्य श्री हरि को समर्पित किया करता है वह अन्त में समस्त पापों से छुटकारा पाकर विष्णु के पद की प्राप्ति किया करता है ॥१०॥ भगवान् के परमप्रिय कार्त्तिक मास में जो कोई भी मानव प्रातः काल में सूर्योदय से भी पूर्व नित्य स्नान किया करता है वह इतना पुण्य का भागी हो जाता है जैसा कोई सम्पूर्ण तीर्थ स्थानों में स्नान करने वाला हुआ करता है ॥११॥ जो द्विज कार्त्तिक में आकाश द्वीप का दान किया करता है वह विप्रहत्या आदि के महान् पातकों से विमुक्त होकर श्रीहरि के मन्दिर में अन्त में प्राप्त हो जाया करता है ॥१२॥ हे विप्रेन्द्र ! जो व्यक्ति एक मुहुर्त्त मात्र (ढाई घड़ी) के लिये भी कार्त्तिक मास में हरि की प्रीति के लिए दीपक का दान किया करता है अर्थात् आकाश दीप देता है उससे श्रीहरि भगवान् परम सन्तुष्ट हुआ करते हैं और सदा ही प्रसन्न रहते हैं ॥१३॥ जो द्विज घृत का दीप घर में ही श्री कृष्ण भगवान के लिए दान किया करता है और कार्त्तिक मास में ऐसा करे तो प्रतिदिन के अश्वमेध यज्ञ के फल का भागी होता है ॥१४॥

-※-

॥ श्रीराधा जन्माष्टमी माहात्म्य ॥

कथयस्व महाप्राज्ञ ! गोलोकं याति कर्मना।
सुमते दुस्तरात्केन जनः संसारसागरात्।
राधायाश्चाष्टमी सूत तस्या माहात्म्यमुत्तमम् ॥१
ब्रह्माणं नारदोऽपृच्छत्पुरा चैतन्महामुने।
तच्छृणुष्वसमासेन पृष्टवान्सा यथा द्विज ! ॥२

पितामह ! महाप्राज्ञ ! सर्वशास्त्रविदांवर ! ।
राधाजन्माष्टमी तात कथयस्व ममाग्रत ।।३
तस्याःपुण्यफलं किं वा कृत केन पुरा विभो ! ।
अकुर्वतां जनानां हि किल्विष किं भवेद्विभो ! ।।४
केनैव तु विधानेन कर्तव्यं तद्व्रतं कदा ।
कस्माज्जाता च सा राधातन्मे कथयमूलतः ।।५

श्री शौनक मुनि ने कहा—हे महान् प्रजा वाले ! वह कर्म्म वर्णन करने की कृपा कीजिए जिसके द्वारा इस अति दुस्तर संसार रूपी सागर से पार होकर मनुष्य गोलोक की प्राप्ति किया करता है । आप तो महान सुन्दर मति वाले हैं और सभी कुछ जानते भी हैं हे सूतजी ! ऐसा सुना जाता है कि राधा जी के जन्म दिवस की जो भाद्रपद्र मास में अष्टमी है उसका अत्यन्त उत्तम माहात्म्य होता है ।।१।। सूतजी ने कहा—हे महा-मुने ! पहिले एक बार देवर्षि श्रीनारदजी ने ब्रह्मा जी से यही पूछा था वही मैं बतलाता हूँ उसका आप संक्षेप से श्रवण कीजिए ।।२।। नारद जी ने कहा था हे पितामह ! हे महाप्राज्ञ ! आप तो समस्त शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाताओं में भी परम श्रेष्ठ हैं । हे तात ! मेरे सामने इस समय में श्रीराधा अष्टमी की जयन्ती के दिन का माहात्म्य वर्णन कीजिए ।।३।। उसका क्या तो पुण्य-फल हुआ करता है और हे विभो ! सर्व प्रथम इसको किसने किया था ? जो मनुष्य इसका उपवास आदि नहीं किया करते हैं उनको क्या पाप-दोष लगता है-यह भी स्पष्ट बतलाइये ।।४।। इस व्रत के करने का क्या विधान है और इसे किस समय में करना चाहिए । यह राधा किससे समुत्पन्न हुई हैं ? यह सभी मूल सहित वर्णन करने की कृपा करें ।।५।।

राधाजन्माष्टमी वत्स ! शृणुष्व सुसमाहितः ।
कथयामि समासेन समग्रं हरिणा विना ।।६
कथितुं तत्फलं पुण्यं न शक्नोत्यपि नारद ।
कोटिजन्मार्जितं पाप ब्रह्महत्यादिकमहत् ।।७

कुर्वन्ति ये सकृद्भक्त्या तेषां नश्यति तत्क्षणात् ।
एकादश्याः सहस्रेण यत्फलं लभतेनरः ।८।
राधाजन्माष्टमी पुण्यं तस्माच्छतगुणाधिकम् ।
मेरुतुल्यसुवर्णानि दत्वा यत्फलमाप्यते ।९।
सकृद्राधाष्टमीं कृत्वा तस्माच्छतगुणाधिकम् ।
कन्यादानसहस्रेण यत्पुण्यं प्राप्यते जनैः ।१०।
वृषभानुसुताष्टम्या तत्फलं प्राप्यते जनैः ।
गङ्गादिषु च तीर्थेषु स्नात्वा तु यत्फललभेत् ।११।
कृष्णप्राणप्रियाष्टम्या भलं प्राप्नोति मानवः ।
एतद्व्रतं तु यः पापी हेलया श्रद्धयाऽपि वा ।१२।

श्रीब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स ! श्रीराधा जन्माष्टमी से व्रतोत्सव का पूर्ण हाल तुम सावधान चित्त होकर मुझ से श्रवण करो । मैं हरि के बिना इसका पूरा हाल अति संक्षेप में तुमको वतलाता हूँ ।६। हे नारद ! इसका पुण्य और जो फल होता है उसको कहने की सामर्थ्य भी नहीं है । करोड़ों जन्मों में किये हुए पाप और ब्रह्महत्या आदि जो महान् पातक होता हैं वे सभी इसको जो भी एक बार भक्ति भाव से करते हैं वे सब तत्क्षण में ही नष्ट हो जाया करते हैं । सहस्र एकादशी के व्रतों का जो फल मनुष्य प्राप्त करता है उससे सौगुना अधिक पुण्य श्रीराधाष्टमी के व्रत करने से प्राप्त होता है । मेरु पर्वत से तुल्य सुवर्ण का दान करने से जो पुण्य फल प्राप्त किया जाता है वह एक बार राधा अष्टमी के करने से उससे भी शत गुण अधिक फल होता है । कन्या के सहस्र दान करने जो पुण्य-फल मनुष्यों के द्वारा प्राप्त किया जाता है वृषभानु सुता श्री राधा के जन्म की अष्टमी के दिन उपवास करने से वही फल प्राप्त होता है । गंगा आदि तीर्थों में स्नान करके जो फल उपलब्ध होता है उसी फल को श्रीकृष्ण की प्रिया श्रीराधा की अष्टमी के उपवास से मनुष्य प्राप्त किया करता है । इस व्रत को जो पापी हो या श्रद्धा किसी प्रकार से करता है उसे महान् पुण्य की प्राप्ति होती है ।७-१२।

।। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी माहात्म्य ।।

कृष्णजन्माष्टमी सूत ! तस्या माहात्म्यमुत्तमम् ।
कथयस्व महाप्राज्ञ चोद्धरस्व भवार्णवात् ।१।
कृष्णजन्माष्टमीं ब्रह्मन्भक्त्या करोति यो नरः ।
अन्ते विष्णुपुरंयाति कुलकोटियुतोद्विजो ! ।२।
अष्टमीबुधवारे च सोमेचैव द्विजोत्तम !
रोहिणीऋक्षसंयुक्ता कुलकोटिविमुक्तिदा ।३।
महापातकसयुक्तः करोति व्रतमुत्तमम् ।
सर्वपापनिविमुक्तश्चन्ते याति हरे गृहम् ।४।
कृष्णजन्माष्टमीं ब्रह्मन्न करोति नराधमः ।
इह दुःखमवाप्नोति स प्रेत्य नरकं व्रजेत ।५।
न करोति च था नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।
वर्षे वर्षं तु सा मूढा नरक याति दारुणम् ।६।
जन्माष्टमीदिने यो वै नरोऽश्नाति विमूढधीः ।
महानरकमश्नाति सत्यंसत्यं वदाम्यहम् ।७।
दिलीपेन पुरापृष्टो वसिष्ठोमुनिसत्तमः ।
तच्छ्रणुष्व महाप्राज्ञ ! सर्वपातकनाशनम् ।८।

शौनक मुनि ने कहा—हे सूत जी ! आप तो महान् प्रज्ञा सम्पन्न हैं । अब कृष्णजन्माष्टमी का जो उत्तम माहात्म्य है उसका वर्णन कीजिए और हम सब लोगों को उसका माहात्म्य श्रवण करा कर इस भव रूपी सागर से हमारा उद्धार करियेगा ।१। सूतजी ने कहा हे ब्रह्मन् ! जो मनुष्य श्रीकृष्ण के जन्म की अष्टमी का व्रतोपवास आदि किया करता है और भक्ति भाव से जो इसको पूर्णरूप से करता है वह अन्त में विष्णु के पुर में करोड़ों कुलों से युक्त होकर निवास प्राप्त किया करता है ।२। यदि वह कृष्ण जन्माष्टमी बुधवार से युक्त हो अथवा हे द्विजोत्तम ! सोमवार से युक्त हो उसी दिन रोहिणी नक्षत्र भी हो तो करोड़ों कुलों को विमुक्ति प्रदान करने वाली होती है ।३। जो कोई पुरुष

महान् पातकों से युक्त भी हो और इस महान् उत्तम व्रत को कर लेता है तो वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाकर अन्त में हरि के निवास स्थान में जाकर स्थान प्राप्त किया करता है।।४।।हे ब्रह्मन् ! जो कृष्णजन्माष्टमी का व्रत नहीं करता है वह नरों में महान् अधम नर होता है। वह यहाँ संसार में तो महान् घोर दुःखों को प्राप्ति किया ही करता है और अन्त में भी मर कर नरक में निवास किया करता है जहाँ उसे घोर नारकीय यातनाऐं सहन करनी पड़ती हैं ।।५।। जो नारी कृष्णाष्टमी का व्रत नहीं करती है वह वर्ष–वर्ष में मूढ़ा नारी दारुण नरक की प्राप्ति किया करती है ।।६।। जन्माष्टमी के दिन में जो विमूढ़ बुद्धि वाला मनुष्य भोजन किया करता है वह महान् नरक का ही अशन करता है–यह मैं सर्वथा सत्य और पूर्ण सत्य ही बता रहा हूँ ।।७।। बहुत पहले समय में एक बार महाराज दिलीप ने महर्षि वसिष्ठ से पूछा था। हे महा— प्राज्ञ ! उसको आप भले प्रकार सुनो यह समस्त पातकों को नाश करता है ।।८।।

भाद्रे मास्यसिताष्टम्यां यस्यां जातो जनार्द्दनः ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महामुने ।।९
कथं वा भगवाञ्जातः शङ्खचक्रगदाधरः ।
देवकीजठरे विष्णुः किं कर्तुं केन हेतुना ।।१०
शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि कस्माज्जातोजनार्द्दनः ।
पृथिव्यां त्रिदिवंत्यक्त्वाभवते कथयाम्यहम् ।।११
पुरा वसुन्धरा ह्यासीत्कंसादिनृपपीडिता ।
स्वाधिकारप्रमत्तेन कंसदूतेन ताडिता ।।१२
क्रन्दती क्रन्दती सा तु ययौ घूर्णितलोचना ।
यत्र तिष्ठति देवेश उमाकान्तो वृषध्वजः ।।१३
कंनेन ताडिता नाथ इति तस्मै निवेदितुम् ।
बाष्पवारीणि वर्षन्ती विवर्णां सा विमानिता ।।१४

राजा दिलीप ने कहा भद्र पद मास में सित पक्ष की अष्टमी तिथि में जिसमें भगवान् जनार्दन ने जन्म ग्रहण किया था, मैं उसके विषय

श्रवण करना चाहता हूँ। हे महामुने ! आप कृपा करके उसका वर्णन कीजिएगा ॥९॥ शंख चक्र गदा के धारण करने वाले भगवान् कैसे क्यों उत्पन्न हुए थे ? देवकी के जठर में किस हेतु से और क्या करने के लिए भगवान् विष्णु ने जन्म ग्रहण किया था ? ॥१०॥ वसिष्ठ मुनि ने कहा-हे राजन् ! आप सुनिये, मैं आपको बतलाता हूँ कि जनार्दन भगवान क्यों उत्पन्न हुए थे और जिन्होंने त्रिदिव का त्याग करके इस भूमण्डल में क्यों अवतरण किया था। यह सभी मैं आपको बतलाता हूँ ॥११॥ पहिले समय में यह भूमि कंस आदि दुष्ट नृपों से अत्यन्त उत्पीड़ित हो रही थी। स्वाधिकार का बड़ा भारी प्रमाद कंस को हो गया था। उसने इस भूमि को अत्यन्त ताड़ित किया था ॥१२॥ यह विचारी भूमि रोती-बिलखती हुई देवों के स्वामी उमादेवी के पति वृषभध्वजा जहाँ पर विराजमान थे वहाँ गयी थी। विचारी भूमि के रोने से लाल नेत्र हो रहे थे। कंस के द्वारा प्रताड़ित होकर अपना घोर कष्ट शिव से निवेदन करने की यह वहाँ पहुँची थी ॥१३॥ यह पृथ्वी अपने नेत्रों से अविरल आँसुओं की धाराऐं गिरा रही थी और इसकी कान्ति क्षीण हो गई थी तथा यह अत्यन्त अपमानित होकर वहाँ गयी थी ॥१४॥

क्रन्दतीं तां समालोक्य कोपेन स्फुरिताधरः।
उमया सहितः सर्वेर्दैववृन्दैरनुद्रुतः ॥१५
आ गाम महादेवो त्रिधातृभवनं रुषा।
गत्वा चोवाच ब्रह्माणं कंसध्वंसनहेतवे ॥१६
उपायः सृज्यतां ब्रह्मन्भवता विष्णुना सह।
ऐश्वरं तद्वचःश्रुत्वा देववृन्दैर्हरादिभिः ॥१७
क्षीरोदे यत्र वैकुण्ठः सुप्तोऽस्ति भुजगोपरि।
हंसपृष्ठं समारुह्य हरेरन्तिकमाययौ ॥१८
तत्र गत्वा च तं धाता देववृन्दैरादिभिः।
संयुक्तःप्रास्तवीद्वाग्भिः कामलं वाग्विदांवरः ॥१९
नमः कमलनेत्राय हरये परमात्मने।

जगतः पालयित्रे च लक्ष्मीकान्त नमोऽस्तुते ॥२०

इति तेभ्यः स्तुतिं श्रुत्वा प्रत्युवाच जनार्द्दनः ।
देवान्क्लिष्टमुखान्सर्वान्भवभिरागतं कथम् ।२१।

उस भूमि को रुदन करती हुई देखकर भगवान् शिव को महान् क्रोध आ गया था और कोप से उनके होठ फड़क रहे थे। उसी समय उमादेवी के सहित समस्त देवताओं के समुदाय के साथ महादेव रोष से युक्त विधाता के भवन में आ गये थे। वहाँ जाकर दुष्ट कंस राजा के ध्वंस करने के लिए महादेवजी ने ब्रह्माजी से कहा था ।१५-१६। शिवजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप भगवान् विष्णु के साथ मिल कर कोई उपाय करिए। शिव के इस वचन को सुन करके समस्त देवों के वृन्द और शिव आदि भगवान् हरि के समीप में गये थे जहां पर क्षीरसागर में भगवान् विष्णु शेष की शय्या पर शयन कर रहे थे,ब्रह्माजी भी हंस कर समारूढ़ होकर वहां पहुँचे थे ।।१७-१८।। वहां पर जाकर देववृन्द और हर प्रभृति सबके साथ ब्रह्माजी ने संयुक्त होकर अपनी मधुर वाणी से विष्णु की स्तुति की थी। ब्रह्माजी तो स्वयं बोलने वाले विद्वानों में परमश्रेष्ठ थे ।।१९।। ब्रह्माजी ने स्तवन किया था—कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले परमात्मा हरि के चरणों में हम सबका प्रमाग है। हे लक्ष्मी के कान्त ! आप तो इस सम्पूर्ण जगत् के पालन-पोषण करने वाले हैं आपके लिए हमारा नमस्कार समर्पित है ।२०। इस प्रकार से उन सब की स्तुति को सुनकर भगवान् जनार्दन ने उनसे कहा था-आज इस समय में आप सब का किस कारण से यहाँ आगमन हुआ है ? मैं देख रहा हूं कि आप समस्त देवों के मुख पर कलेश की म्लानता छायी हुई है ।।२१।।

शृणु देवजगन्नाथ यस्मादस्माकमागतम् ।
कथयामि सुरश्रेष्ठ ! तदह लोकभावन ! २२।
शूलिदत्तवरोन्मत्तः कंसोराजा दुरासदः ।
वसुधा ताडिवा तेन करघातेन पीडिता ।२३।
वरं दत्वा पुराष्यग्रे मायया तु प्रवञ्चितः
भागिनेय विनाशम्भो मरणं भविता न मे ।२४।

तस्माद् गच्छ स्वयं देव ! कंस हन्तं दुरासदम् ।
देवकीजठरे जन्म लब्ध्वा गत्वा च गोकुलम् ॥२५
ब्रह्मणा प्रेरितो देवः प्रत्युवाच च शूलिनम् ।
पार्वतीं देहि देवेंश अब्दं स्थित्वाऽऽगमिष्यति ॥२६
उमया रक्षयासार्द्धं शंखचक्रगदाधरः ।
उद्दिश्य मथुरांचक्रे प्रयाणं कमलासनः ॥२७
देवकीजठरे जन्म लेभे तत्र गदाधरः ।
यशोदा कुक्षिमध्यास्ते शर्वाणी मृगलोचना ॥२८
नवमासांश्च विश्रम्य कुक्षौ नवदिनान्तकान् ।
भाद्रे मास्यसितेपक्षे चाष्टमी संज्ञका तिथिः ॥२६

ब्रह्माजी ने कहा हे देव ! आप तो इस सम्पूर्ण जगत् के नाथ हैं । हम लोग सब जिस कारण से विवश होकर इस समय में आपकी सन्निधि में उपस्थित हुए हैं उसको आप अब सुन लीजिए हे सुर—श्रेष्ठ ! मैं उसे आपको बतलाता हूँ । आप तो स्वयं ही लोकों पर पूर्ण कृपा करने वाले हैं ।२२। भगवान शूली के द्वारा वरदान प्राप्त कर राजा कंस बहुत ही उन्मादी हो गया है और अत्यन्त दुर्धंप हो रहा है । यह विचारी वसुन्धरा उससे अपने ही करों के घातों से इतनी बुरी तरह ताड़ित की है कि यह इस समय अत्यन्त उत्पीड़ित हो रही है ॥२३॥ आगे पहले उसे वरदान दे दिया था और माया से प्रवञ्चित हो रहा है । यह भागिनेय है मुझ से इसका मरण नहीं होगा ।२४। इस लिए हे देव ! आप ही स्वयं इस दुरासद दुष्ट कंसका निहनन करने के लिए यत्न कीजिए । देवकी के जठर में जन्म ग्रहण करके गोकुल में पधारिये ।२५। इस प्रकार से ब्रह्मा के द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके भगवान विष्णु ने शिव से कहा था-हे देवेश ! आप अपनी पार्वती को दे दीजिएगा । एक वर्ष ठहर कर यह आजायगी ।२६। रक्षा करने वाली उमा के साथ शंख चक्र और गदा के धारण करने वाले प्रभु कमलायन मथुरा का उद्देश्य लेकर प्रयाण कर गये थे ।२७। गदाधर ने फिर देवकी के उदर में जन्म ग्रहण किया था और यशोदा की कुक्षि में मृग-

लोचना शर्वाणी ने अपनी स्थिति की थी ॥२८॥ नौमा सतक विश्राम करके कुक्षि में नौ मास के अन्त तक रह कर भाद्र पद मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में जन्म ग्रहण किया था ॥२६॥

श्रुत्वा पापानि नश्यन्ति कुर्यात्किं वा भविष्यति।
य इद कुरुते मर्त्यो या च नारो हरेर्व्रतम् ॥३०
ऐश्वर्यमतुलं प्राप्य जन्मन्यत्र यथेप्सितम् ।
पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या तृतीया षष्ठिरेव च ॥३१
अष्टम्येकादशीभूता धर्मकामार्थवाञ्छभिः ।
वर्जयित्वा प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमीम् ॥३२
विना ऋक्षेऽपि कर्तव्या नवमी संयुताष्टमी ।
उदये चाष्टमी किञ्चित्सकल नवमीयदि ॥३३
मुहूर्तरोहिणीयुक्ता सम्पूर्ण चाष्टमी भवेत् ।
अष्टमी बुध्रवारेण रोहिणी सहिता यदि ॥३४
सोमेनैव भवेद्राजन्किं कृतैर्व्रतकोटिभिः ।
नवम्यामुदयात्किञ्चत्सोमेसापि वुधेऽपि च ॥३५

यह इस प्रकार से श्रीकृष्ण के जन्म का कारण है। इस जन्म वृत को जो कोई भी सुनता है उसके समस्त पाप नष्ट हो जाया करते हैं। जो इसका व्रत किया करता है उसको तो क्या–क्या फल नहीं होगा अर्थात् उसे तो सभी कुछ होगा। जो भी कोई मनुष्य या नारी इस व्रत को करता है वह यहाँ पद अतुल ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है और इस जन्म में जो भी उसका अभीष्ट होता है उसे भी वह प्राप्त कर लेता है। यह व्रत पूर्व तिथि अर्थात् सप्तमी से विद्ध यदि अष्टमी हो तो उसे नहीं करना चाहिए। इसी तरह तृतीया और षष्ठी भी नहीं करनी चाहिए ॥३०-३१॥ यह अष्टमी भी एकादशी के ही समान है। जो मनुष्य धर्म-काम और अर्थ की इच्छा रखने वाले पुरुष हैं उन्हें सप्तमी से संयुत अर्थात् विद्धा अष्टमी के व्रत का वर्जन कर देना ही चाहिए ॥३२॥ विना रोहिणी नक्षत्र के भी नवमी से संयुत अष्टमी का व्रत करना चाहिए। केवल सूर्योदय काल में थोड़ी सी तिथि हो और

पीछे पूरी नवमी तिथि हो तो उस दिन ही व्रत करे। मुहूर्त्त मात्र (दो घड़ी) भी यदि रोहिणी नक्षत्र से युक्त सम्पूर्ण अष्टमी तिथि हो और वह अष्टमी तिथि बुधबार से युक्त हो यदि रोहिणी से भी सहित हो तो व्रत करना चाहिए ।।३३-३४।। हे राजन् ! यदि सोमवार से भी युक्त हो फिर उस का महान् पुण्य होता है। यह एक ही व्रत बड़ा महत्व रखता है अन्य करोड़ों व्रतों की कोई भी फिर आवश्यकता नहीं है। नवमी तिथि मे उदय से कुछ थोड़ी से सोम में या बुध मे भी हो तो उसका व्रत श्रेष्ठतम माना जाता है ।।३५।।

अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वा न लभ्यते ।
विना ऋक्षं कर्त्तव्या नवमीसंयुताष्टमी ।।३६
कार्या विद्धापि सप्तम्याँ रोहिणी सयुताष्टमी ।
कला काष्ठा महूतऽपि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः ।।३७
नवम्यां सैव वा ग्राह्या सप्तमीसंयुता न हि ।
किंपुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः ।।३८
किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोटयास्तु मुक्तिदा ।
पलवेधेन राजेन्द्र सप्तम्या अष्टमीं त्यजेत् ।
सुराया बिन्दुना स्पृष्टं गङ्गाम्भःकलशं यथा ।।३९

इस प्रकार के योगों से समन्वित अष्टमी तिथि सौ वर्ष में भी प्राप्त हो अथवा न भी प्राप्त हो किन्तु विना नक्षत्र के नवमी तिथि से संयुत अष्टमी तिथि का व्रत नहीं करना चाहिए ।।३६।। यदि रोहिणी से संयुक्त अष्टमी हो तो सप्तमी से विद्धा होने पर भी कर लेना चाहिए। कला काष्ठा और मुहूर्त्त में भी जब कि कृष्णाष्टमी तिथि वर्त्तमान हो ।।३७।। वह भी नवमी तिथि में ही ग्रहण करने के योग्य होती है। सप्तमी से संयुत तो कभी भी ग्रहण नहीं करनी चाहिए। फिर बुधवार से क्या है, विशेष करके सोमवार से भी युक्त ग्राह्य है ।।४८।। जो नवमी से युक्त जो अष्टमी होती है उस के विषय में क्या बतलावें वह तो इसका अधिक महत्व रखती है कि करोड़ कुलों को मुक्ति देने वाली

होती है। हे राजेन्द्र ! एक पल मात्र के वेध होने से जोकि अष्टमी तिथि में सप्तमी का होता है उस अष्टमी के व्रत का त्याग कर देना चाहिए अर्थात् उस दिन का व्रत न करे। वह त्याग भी इस तरह का हो जैसे गंगा जल से पूर्ण कलश का एक बूँद भी सुरा का स्पर्श हो जाने से वह परम पवित्र होते हुए भी त्याज्य हो जाता है ॥३९॥

॥ एकादशी माहात्म्य ॥

कथयस्व महाभाग ! माहात्म्यं पापनाशनम्।
एकादश्याःफल किंवा किल्विषंस्यादकुर्वतः ॥१
एकादश्यास्तु माहात्मयं किमह वच्मि साम्प्रतम्।
श्रुत्वा चैकादशी नाम यमदूताश्च शङ्किताः ॥२
भवन्ति नात्रसन्देहः सर्वप्राणिभयङ्कराः।
व्रतानां चैव सर्वेषाँ श्रेष्ठां चैकादशीं शुभाम् ॥३
उपोष्य जागृय द्विष्णोः कुर्याच्च मण्डनं महत्।
तुलसीदलैस्तु यो मर्त्यो हरिपूजां करोति वै ॥४
दलेनैकेन लभते कोटियज्ञफलं द्विज !
अगम्यागमने चैव यत्पापं समुदाहृतम् ॥५
तत्पापं याति तिलयं चैकादश्यामपोषणात्।
घृतपूर्ण प्रदीपं थो दद्याद्विष्णुदिने द्विज ! ॥६
अन्ते विष्णुपरं याति तमो हत्वा स्वतजसा।
धन्या जनपदास्ते वै धन्यः स च महीपतिः ॥७
हरेर्दिने यस्य राज्ये चैकादश्या महोत्सवः।
नारायणस्य शयने पार्श्वस्य परिवर्त्तने ॥८
विशेषेण प्रवोधिन्याँ निराहारा भवन्ति ये।
मदन्तिक नानयध्वंद्राणिनःपुण्यभागिनः ॥९
अहर्निशं पितृपति समादिशति दतकान्।
एकादशी जगन्नाथ वल्लभा पुण्यर्वाधनी ॥१०

श्री शौनक महर्षि ने कहा—हे महाभाग ! अब आप एकादशी तिथि के व्रत का माहात्म्य वर्णन कीजिये जोकि पापों का नाश कर देने वाला होता है। एकादशी तिथि का क्या फल होता है और जो एकादशी का व्रत नहीं किया करता है उसको कौनसा महान् पाप हुआ करता है ।१। सूत जी ने कहा—एकादशी तिथि का माहात्म्य मैं इस समय आप लोगों को क्या बतलाऊँ। एकादशी तिथि का नाम श्रवण करके ही यम के दूत शकित हो जाया करते हैं। जो यम के दूत समस्त प्राणियों के लिए महान् भयंकर हुआ करते हैं उन्हें भी एकादशी के नाम मात्र से भयभीत हो जाना पड़ता है·इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जितने भी अन्य व्रतोपवास हैं उन सब मे एकादशी व्रत सर्वश्रेष्ठ व्रत होता है और एकादशी तिथि परम शुभ तिथि मानी गयी है ।२-३। एकादशी तिथि के दिन सविधि एवं पूर्ण नियमों से युक्त होकर उसका उपवास करे और रात्रि में जागरण करे तथा भगवान विष्णु का बहुत ही भली भाँति मण्डल करना चाहिए। जो मनुष्य तुलसी के दलों से उस दिनश्री हरिका अर्चन किया करता है उस देव-यजन का अत्यधिक महत्व होता है ।४। हे द्विज ! शास्त्रकारों ने ऐसा बतलाया है कि एक ही दल से पूजन करने का करोड़ यज्ञ करने के समान फल होता है। जो नारी गमन करने के योग्य नहीं है उसका गमन करने से जो महान् पाप बत-लाया गया है वह महा पातक भी एकादशी तिथि में उपवास करने से विलीन हो जाया करता है। हे द्विज ! विष्णु का वह दिन कहलाता है उस दिन में जो भी कोई घृत से पूर्ण एक दीपक को विष्णु की सेवा में समर्पित किया करता है उसका इतना अधिक महत्व होता है कि वह पुरुष अपने प्रवृद्ध तेज से सम्पूर्ण तम का हनन करके अन्य में श्रीविष्णु के पुर का निवास प्राप्त किया करता है। वे जनपद परम धन्य हैं और वहां का महीपति भी महान् भाग्य शाली है जिसके राज्य में श्री हरि के दिन में एकादशी तिथि का महान् उत्सव सम्पन्न हुआ करता है। नारायण के शयन में अर्थात् देवशयनी एकादशी के दिन में और पार्श्व परिवर्तन के दिन में एवं विशेष करके देव प्रबोधिनी एकादशी के दिन

में जो मनुष्य निराहार रह कर उपवास किया करते हैं उन मनुष्यों को यमराज कहते हैं कि हे दूतगण ! मेरे पास कभी भी मत लाना-ऐसा आदेश पितृपति यमराज अहर्निश अपने दूतों को दिया करते हैं । क्योंकि यह एकादशी तिथि तो जगत् के स्वामी प्रभु भी परम वल्लभा होती है और पुण्यों के वर्ध करने वाली तिथि है ।।५-१०।।

विष्णर्देहं दहत्येव तस्यामन्नस्य भक्षणे ।
तेषां धिग्जीवनं सम्पद्धिक्सौन्दर्यं च वर्तनम् ।।११
येऽन्नमश्नन्ति पापिष्ठाश्वैकादश्यां हि विड्भुजः ।
एकादश्यां द्विजश्रेष्ठ ! भुक्तिमाश्रित्य केवलम् ।।१२
बहूनि विविधान्येव तिष्ठन्ति दुरितानि च ।
दशकाले यथा स्त्रीणां सङ्गमे कलुष महत् ।।१३
एकादश्यां तथैवान्नभक्षणे वृजिनं भवेत् ।
रोगिणश्च तथा खञ्जकाससोदरकुष्ठकाः ।।१४

यदि कोई भी मनुष्य एकादशी तिथि के दिन अन्न का भक्षण किया करता है तो भगवान विष्णु उसके देह का दहन किया करते हैं । ऐसे अन्न खाने वालों का जीवन धिक्कार युक्त है । उनके सौन्दर्य को भी धिक्कार है । तथा उनके सम्पूर्ण व्यवहार धिक्कृत होते हैं ।।११।। जो एकादशी तिथि के उपवास वाले दिन में अन्न का भक्षण किया करते हैं वे महान् पापिष्ठ होते हैं और विड् का ही अशन किया करते हैं । हे द्विजों में परमश्रेष्ठ ! एकादशी के दिन जो भक्ति का केवल आश्रय ग्रहण करते हैं उनको बहुत प्रकार के दुरिता हुआ करते हैं जिस तरह दर्श काल में स्त्रियों के सगम करने में महान् कलुष होना है वैसा ही महान् पाप एकादशी के दिन अशन करने से हुआ करता है ।।१२-१३।। एकादशी के दिन में अन्न के भक्षण का पूर्णतया निषेध शास्त्रों ने बत-लाया है । उस दिन अन्न के भक्षण से महान् पाप होता है । उस दिन अन्न खाने से रोग-खञ्ज-कास-उदर रोग और कुष्ठ रोगी वाले हो जाते ।।१४।।

भवन्ति प्राणिनस्ते वै तस्यामन्नस्य भक्षणे।
ग्रामसूकरतां यान्ति दरिद्रथं च प्रयान्ति वै ।।१५
राजवद्धा द्विजश्रेष्ठ ! तस्यमन्नस्य भक्षणे।
संसारे यानि पापानि ताकि विप्र हरेर्दिने ।।१६
भुक्तिमाश्रित्य तिष्ठन्ति जलभक्षणमाज्ञया।
कुर्वतां सर्वपापानि नरकान्निष्कृतिर्भवेत् ।।१७
न निष्कृतिर्भवेन्नृण भुञ्चतां च हरेर्दिने।
नरा यावन्ति चान्नानि भुञ्जते च हरेर्दिने ।।१८
प्रत्यन्नं च ब्रह्महत्या कोटिज वृजिनं भवेत्।
पुनर्वच्मि श्रूयतां श्रूयतां नराः ।।१९
न भोक्तव्यं न भोक्तव्य न भोक्तव्यं हरेर्दिने।
गङ्गदिषु च तीर्थेषु स्नात्वा यत्फलमाप्यते ।।२०

एकादशी तिथि के दिन अन्न के भक्षण करने से प्राणियों का अनेक रोगों की उत्पत्ति हो जाया करती है। ऐसे अन्न खाने वाले प्राणी ग्राम शूकर की योनि मे जन्म ग्रहण किया करते हैं। और उनको दरिद्र जीवन भी बिताना पड़ता है ।।१५।। हे द्विज श्रेष्ठ ! एकादशी में अन्न के भक्षण करने से राजा के द्वारा वद्ध हो जाया करते हैं। हे विप्र ! हरि के दिन में अन्न के भक्षण करने से संसार में जितने भी महापातक हुआ करते हैं वे सभी उनको लगा करते हैं ।।१६।। केवल जलमात्र की मुक्ति करके जो मनुष्य रहा करते हैं उनकी नरक से सब पापों को करते हुए निष्कृति हो जाया करती है ।।१७।। जो भगवान् श्री हरि के दिन में लर्थात् एकादशी के दिन भोजन किया करते हैं उनकी नरकों ने निष्कृति नहीं होती है। जितना भी अन्न हरि के दिन में खाया करते हैं उतने ही दिन तक उनका नरक में निवास होता है।।१८।। प्रत्येक अन्न के दाने से ब्रह्महत्या के करोड़ पाप उत्पन्न होने वाला महापाप उनको होता है। मैं इस तथ्य को पुनः पुनः बललाता हूँ। हे मनुष्यो ! इस को भली भाँति आप लोग श्रवण कर लेवें और अच्छी तरह सुन लेवें ।।१९।। हरि के दिन में अर्थात् एकादशी तिथि के ब्रतोपवास के दिन नहीं खाना

चाहिए नहीं खाना चाहिए कभी भी भोजन नहीं करना चाहिए। इसका वैसा ही पुण्य फल होता है जोकि गंगा आदि तीर्थों में स्नान करने से हुआ करता है ॥२०।

॥ भगवान् का नाम-माहात्म्य ॥

श्रीप्रद विष्णुचरितं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
सर्वपापक्षयकरं दुष्टग्रहनिवारणम् ॥१
विष्णुसान्निध्यदं चैव चतुर्वर्ग फलप्रदम् ।
यः शृणोति नरो भक्त्या चान्ते याति हरेर्गृहम् ॥२
नामोच्चारणमाहात्म्यं श्रूयते महदभुतम् ।
यदुच्चारणमात्रेण नरो यायात्परंपदम् ॥३
तद्वदस्वाधुना सूत ! विधानं नाम कीर्तने ॥४
शृणु शौनक ! वक्ष्यामि संवादं मोक्षसाधनम् ।
नारदः पृष्ठवान्पूर्वं कुमारं तद्वदामिते ॥५
एकदा यमुनातीर निविष्ठं शान्तमानसम् ।
सनत्मारं प्रपच्छ नारदो रचिताञ्जलिः ।
श्रुत्वा नानाविन्धमाँन्धर्मव्यतिकरांस्तथा ॥६
योऽसौ भगवता प्रोक्तो धर्मव्यतिकरो नृणाम् ।
कथं तस्य विनाशःस्यादुच्यताँ भगवत्प्रिय ! ॥७

श्री शौनक मुनि ने कहा—भगवान् विष्णु का चरित्र श्री के प्रदान करने वाला है और सम्पूर्ण उपद्रवों के नाश करने वाला तथा समस्त पापों के क्षय को करने वाला एवं दुष्ट ग्रहों के निवारण करने वाला होता है।१। यह विष्णु का चरित भगवान् विष्णु के सन्निध्य को प्रदान करता है एवं चारों वर्गों का (धर्म अर्थ काम मोक्ष) फल प्रदायक होता है। जो कोई भी मनुष्य इसका श्रवण किया करता है और भक्ति की भावना से इसे सुनता है वह मनुष्य हरि के गृह को अन्त में प्राप्त किया करता है।२। हे भगवान् ! भगवान के शुभ नामों के मुख से

उच्चारण कर बहुत अधिक माहात्म्य सुना जाता है जिसका एक महान् अद्भुत फल होता है जिससे केवल मुख से उच्चारण करने ही से मनुष्य परम पद को प्राप्त हो जाया करता है ।३। हे सूतजी ! अब आप कृपा करके भगवान् के शुभ नाम-कीर्त्तन के विषय में कुछ वर्णन कीजिए कि उसका क्या विधान है ।४। सूतजी ने कहा—हे शौनक ! आप सुनिये, मैं मोक्ष के साधन करने वाला एक सम्वाद आप को बतलाता हूँ । पुराने समय में एक बार देवर्षि नारद जी ने कुमार से पूछा था । वही मैं इस समय में आपको बतलाता हूँ ।५। एक समय में यमुना के तट पर आसन जमाकर बैठे हुए और परम शान्त मन वाले सनत्कुमार जी से नारदजी ने अपने दोनों हाथों को जोड़कर बहुत ही विनम्र भाव से पूछा था । इसके पूर्व वे अनेक प्रकार के धर्म्मों के व्यतिकरों का श्रवण कर चुके थे ।६। श्रीनारदजी ने कहा—आपने जो मनुष्यों के लिए धर्म्म का व्यतिकर वर्णन किया है हे भगवान् के परम प्रिय ! उसका विनाश किस प्रकार से होता है इसे अब आप अनुग्रह करके बताइये ।७।

शृणु नारद ! गोविन्दप्रिय ! गोविन्दधर्मवित् ! ।
यत्पृष्टं लोकनिर्मुक्तिकारण तमसःपरम् ।।८
सर्वाचारविवर्जिताः शठधियो व्रात्य जगद्वञ्चका ।
दम्भाहङ्कृतिपानपैशुनपराः पापाश्च ये निष्ठुराः ।।९
ये चान्ये धनदारपुत्रनिरताः सर्वेऽधमास्तेऽपि हि ।
श्रीगोविन्दपदारविन्दशरणाः शुद्धा भवन्ति द्विज ।।१०
तमपि देवकरं करुणाकरं स्थविरजंगमुक्तिकरं परम् ।
अतिचरन्त्यपराधपराजनाय इह तान्हरिनाम पुनातिहि ।।११
नामाश्रयः कदाचित्स्यात्तरत्येव स नामतः ।
नाम्नो हि सर्व सुहृदो ह्यपराधात्पतत्यधः ।।१२
के तेऽपराधा विप्रेन्द्र ! नाम्नो भगवतः कृता ।
विनिघ्नन्ति नृणां कृत्यं प्राकृतं ह्यानयन्ति च ।।१३

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—हे नारद ! तुम श्रवण करो । आप तो स्वयं सदा भगवान् श्रीगोविन्द के परम प्रिय भक्त हो और गोविन्द के

धर्म के पूर्ण ज्ञाता भी हो। आपने इस समय में जो भी कुछ मुझसे पूछा है वह लोगों के निर्मुक्त होने के कारण से ही अन्धकार के नाश करने वाला हीं प्रश्न किया है।८। हे द्विज ! जो मनुष्य सभी प्रकार के सदाचारों से रहित होते हैं और जिनकी बुद्धि में शठता कूट-कूट कर भरी होती है तथा महान् व्रात्य एवं जगत के वञ्चक हुआ करते हैं। जिनमें दम्भ--अहंकार--मदिरा पान--पिशुनता भरी होती है और अहिर्निश इन्हीं दुर्गुण--दोषों में परायण रहा करते हैं। जो महान् घोर पापाचरण करने वाले एवं निर्दयी निष्ठुर हुआ करते हैं और दूसरे भी लोग जो रात दिन अपने हीं धन-द्वारा और पुत्रादि में निरत रहा करते हैं वे सभी महान् अधम पुरुष ही होते हैं। यदि ऐसे भी पुरुष गोविन्द के चरणों की शरण में आ जाते हैं तो परम विशुद्ध हो जाया करते हैं।६-१०। ऐसे भी घोर पापी को भगवान् श्री हरि का नाम पवित्र कर दिया करता है। परम अपराधी में तत्पर रहने वाले लोग भी देव बना देने वाले---करुण के आकर और स्थावर तथा जंगम सब को मुक्ति देने वाले भगवान् के नाम का आश्रय ग्रहण करके उद्धार को प्राप्त हो जाया करते हैं।११। भगवान् के शुभ नाम का आश्रय यदि किसी भी प्रकार से किसी भी समय में हो जाता है तो वह केवल हरि नाम से ही तर जाया करता है। सबका कल्याण करने वाले नाम का यदि कोई अपराध किया करता है तो उसका अधः पतन हो जाता है।१२। श्रीनारद जी ने कहा---हे विप्रेन्द्र ! कृपा कर सर्व प्रथम यही बतलाइये वे नामापराध कौन से होते हैं। भगवान् के नाम के भी हुआ करते हैं और जिनका ऐसा प्रभाव होता है कि मनुष्यों के कृत्यों का निहनन हो जाता है और उन्हें एक प्राकृत जैसा बना दिया करते हैं।१३।

सतां निंदा नाम्नः परममपराधं बुधजना।
वदन्त्येनां कर्तुं न खलुमनुजः कोऽपि यतने ॥

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि सकलं।
धिया भिन्नं पश्येत्स खलु हरिनामाहितकरः ॥१४

गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्रनिन्दनं तथाऽर्थवादो हरिनाम्निकल्पनं ।
नाम्नापराधस्य हि पापबुद्धेर्न विद्यते तस्य यमैर्हिशुद्धिः ॥१५
धर्मव्रतत्यागहुतादि सर्वं शुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः ।
अश्रद्दधानोविमुखोऽप्यश्रृण्वन्यश्चोपदेशः शिवनाम्नापराधः।१६
श्रुत्वाऽपि नाम माहात्म्यं य प्रीतिरहितोऽधमः ।
अहं ममादि परमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृत् ॥१७
एव नारद शंकरेण कृपया मह्यं मुनीनां परं ।
प्रोक्तं नाम सुखावहं भगवतो वर्ज्यं सदा यत्नतः ।
ये ज्ञात्वापि न वर्जयति सहसा नाम्नोऽपराधान्दश ।
क्रुद्धा मातरमप्यभोजनपराः खिद्यन्ति ते बालवत् ॥१८
अपराधविमुक्तो हि नाम्नि जप्ते सदाचर ! ।
नाम्नैव तव देवर्षे ! सर्वसेत्स्यति नान्यतः ॥१९

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—हे बुधजनों ! सब से प्रथम तो नामोच्चारण करने वाले पुरुष के द्वारा यही अपराध बतलाया गया है कि सत्पुरुषों की निन्दा करना महान् नाम का एक अपराध होता है । नाम लेने वाले भी पुरुष इसको किया करते हैं और कोई भी मनुष्य इसके त्याग करने का यत्न नहीं करता है । इसके करने से नाम का बड़ा भारी अपराध होता है । दूसरा अपराध यह है कि भगवान् शिव तथा भगवान् विष्णु के गुण नाम आदि सब भेद बुद्धि रख कर देखा करते हैं एवं भगवान् के नामों में भी भेदभाव रखते हैं । यह नाम का बड़ा अहित करने वाला अपराध होता है । इसका भी नाम लेने वाले पुरुष को त्याग देना चाहिए ।१४। तीसरा अपराध अपने गुरु की किसी भी रूप में अवज्ञा कर देना होता है । चौथा अपराध श्रुति एवं शास्त्रों की निन्दा करना होता है । पाँचवाँ अपराध यही होता कि जो श्रीहरि के नाम का माहात्म्य बतलाया जाता है उसे अर्थवाद की कल्पना का समझना या कथन करना । जो पाप बुद्धि वाला मनुष्य होता है उसके द्वारा किये हुए नामापराध की शुद्धि यमराज के द्वारा भी नहीं होती है ।१५। धर्म--व्रत--त्याग--होम आदि समस्त शुभ क्रियाओं की समता

भी प्रसाद ही होता है जो श्रद्धा नहीं रखने वाला एवं विमुख है वह भी यदि नहीं सुनता है तो यह शिव नाम का अपराध होता है ॥१६॥ नाम के माहात्म्य को सुन कर भी जो पुरुष प्रीति से रहित होता है वह महान् अधम पुरुष होता है। मैं और मेरा—इसी में जो रात दिन भरा रहता है वह भी नाम में अपराध करने वाला ही होता है ॥१७॥ हे नारद ! इसी प्रकार से भगवान् शंकर ने मुनियों का भी परम यह नामापराध मुझ को बतलाया था और महती कृपा की थी। नामापराध का त्याग भगवान को सुख प्रदान करने वाला है। अतएव इसे सदा यत्न से वर्जित कर ही देना चाहिए। जो जानकर भी इन दश नामापराधों को नहीं त्यागते हैं वे सर्वदा मात से भी क्रुद्ध होकर भोजन न करने वाले बालकों की भाँति दुःखित रहा करते हैं ।१८। इन अपराधों से विनिर्मुक्त होकर ही नाम का जाप करने पर हे देवर्षे ! केवल इस एकमात्र नाम से ही तुम्हारा सम्पूर्ण कल्याण हो जायगा। अतः इसी का सदा समाचरण करो ।१६।

सनत्कुमार ! प्रियसाहसानां विवेकवैराग्यविवर्जितानाम् ।
देवप्रियार्थास्मिपरायणांमुक्तापराधाः प्रभवन्ति नः कथम् ॥२०

जाते नामापराधे तु प्रमादेन कथञ्चन् ।
सदा सङ्कीर्तयन्नाम तदेकशणो भवेत् ॥२१

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम् ।
अविश्रान्ति प्रयुक्तानि तान्येवार्थंकराणि यत् ॥२२

नामैकं यस्य चिह्नं स्मरणपथगतं श्रोत्रमूलं गतं वा ।
शुद्धं वाऽशुद्धवर्णं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यम् ॥२३

तच्चेद्देहद्रविणवनितालोभपाखण्डमध्ये ।
निक्षिप्तंस्यान्नफलजनकं शीघ्रमेवात्र विप्र ! ।

इदं रहस्यं परमं पुरा नारद ! शङ्करात् ।
श्रुतं सर्वाशुभहरमपराधनिपातेकम् ॥२४

विदुर्विज्ञानविभवं ये ह्यपराधपरा नराः ।

तेषामपि भवेन्मुक्तिः पठनादेव नारद ! ॥२५

नाम्नो माहात्म्यमखिलं पुराणे परिगीयते ।
ततः पुराणमखिलं श्रौतिमर्हसि मानद ॥२६
पूराणश्रवणे श्रद्धा यस्य स्याद् भ्रातरन्वहम् ।
तस्य साक्षात्प्रसन्नःस्याच्छिवो विष्णुश्च सानुगः ॥२७

श्री नारदजी ने कहा—हे सनत्कुमार जी ! जिनको साहस प्रिय है और जो विवेक तथा वैराग्य से रहित हैं, जिनको अपना ही देह, अर्थ और सब कुछ प्रिय होता है वे मुक्तापराध क्यों नहीं होते हैं ।२०। सनत्कुमार जी ने कहा—किसी भी प्रकार से प्रमादवश नाम का अपराध हो जाने पर उससे छुटकारा पाने के लिए सदा नाम का संकीर्त्तन करते हुए वार ही अशन करने वाला होना चाहिए ।२१। जो पुरुष नामापराध किया करते हैं उनके इस अघ का विनाश भी नाम के द्वारा ही होता है । निरन्तर बिना क्षणमात्र को भी विश्राम लिये नामोच्चारण करते रहने से ही भगवान् के शुभ नाम लाभदायक हुआ करते हैं ।२२। केवल एक ही भगवान् का नाम जिसका चिह्न स्मृति के मार्ग में प्राप्त हो गया हो अथवा श्रोत्रों में के मेल में पड़ जावे, चाहे वह शुद्ध हो या अशुद्ध ही हो अर्थात् जिसके वर्णों में पूर्ण शुद्धि न हो किन्तु व्यवधान से रहित हो वह सत्य रूप में तार दिया करता है ।२३। हे विप्र ! उस भगवान् के शुभ नाम का ऐसा महान् महत्व है कि वह देह द्रविण-वनिता-लोभ और पाषण्ड के मध्य में भी लिया जाता है तो यहाँ शीघ्र ही फल प्रदान करने वाला होता है । हे नारद ! यह परम रहस्य पहिले मैंने भगवान शंकर से श्रवण किया था । यह परम रहस्य समस्त अशुभों का हरण करने वाला तथा अपराधों का निवारण करने वाला है ।२४। जो केवल भगवान् विष्णु के ही नाम में तत्पर होते हैं वे भी अपराध परायण मनुष्य हुआ करते हैं । हे नारद ! उन पुरुषों की भी पठन करने ही से मुक्त हो जाती है ।२५। भगवान् के नामों का पूर्ण माहहात्म्य पुराणों में गाया जाता है । अतएव पुराणों में सभी का श्रवण करना ही चाहिए ।२६। हे भ्रात ! जिसकी पुराण के श्रवण करने में श्रद्धा होती है और प्रतिदिन जो

श्रवण किया करता है उस व्यक्ति पर भगवान् शिव तथा विष्णु अपने अनुगों के सहित पूर्ण प्रसन्न हुआ करते हैं ।२७।

यत्स्नात्वा पुष्करे तीर्थे यागे सिन्धुसङ्गमे ।
तत्फलद्विगुणं तस्य श्रद्धाय वै शृणोति यः ।।२८
ये पठन्ति पुराणानि शृण्वन्ति च समाहिताः ।
प्रत्यक्षरं लभन्त्येते कपिलादानजंफलम् ।।२९
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ।।३०
ये शृण्वन्ति पुराणानि कोटिजन्मार्जितं खलु ।
पापजलं तु थे हित्वा गच्छान्ति हरिमन्दिरम् ।।३१
पुराणवाचकं विप्रं पूलयेश्भक्तिभावतः ।
गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च गन्धपुष्पादिभिर्मुने ।।३२
दद्याद्यो पुस्तक भक्त्या स गच्छेद्धरिमन्दिरम् ।
कुर्वन्ति विधिनाऽनेन सम्पूर्णं पुस्तकं च ये ।।३३
तेषां नामानि लिम्पेत चित्रगुप्तोऽर्चनाद् द्विज ।।३४

जो पुष्कर तीर्थ में स्नान करके, प्रयाग तथा सिन्धुओं के संगम में स्नान करके पुण्य-फल प्राप्त होता है उस पुण्य--फल से भी दुगुना पुण्य-फल उसे प्राप्त होता है जो श्रद्धा एवं भक्ति भाव से इसका श्रवण किया करता है ।२८। जो मनुष्य पुराणों का पाठ किया करते हैं अथवा अत्यन्त समाहित होकर पुराणों को श्रवण किया करते हैं उनको प्रत्येक अक्षर के पठन एवं श्रवण में एक-एक कपिला गौ के दान से समुत्पन्न होने वाला पुण्य-फल हुआ करता है ।२९। जिसके पुत्र नहीं होता है वह पुत्र की प्राप्ति किया करता है और धन की इच्छा वाला पुरुष धन का लाभ प्राप्त करता है । विद्या का अभिलाषी विद्या पाता है और जो सांसारिक जन्म-मरण रूपी आगमन से छुटकारा प्राप्त करने की लालसा वाला अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ।३०। जो मनुष्य पुराणों का श्रवण किया करते हैं वे करोड़ों जन्मों में संचित किया हुआ पाप निश्चय ही त्याग करके हरि के मन्दिर में गमन किया करते

है ।३१। जो पुराणों का बाँचने वाला ब्राह्मण हो उसका पूजन बहुत ही भक्ति की भावना से करना चाहिए। हे मुने! उस ब्राह्मण को गौ-भूमि-सुवर्ण और वस्त्र तथा गन्धाक्षत पुष्पादि से भली भाँति पूजन करे ।३२। जो पुरुष पुराण की पुस्तक का दान किया करते हैं और भक्ति पूर्वक विद्वान ब्राह्मण को दिया करते हैं वे श्रीहरि का निवास लाभ करते हैं इस विधि विधान से जो सम्पूर्ण पुस्तकों का यजन-पठन-श्रवण तथा दान करते हैं उनके शुभ नामों को अर्चन से चित्र गुप्त लिम्पित कर दिया करते हैं ।३३-३४।

।। प्रतिज्ञा पालन का महाफल ।।

श्रोतुमिच्छामि ते प्राज्ञ ! कथयस्व समूलकम् ।
प्रतिज्ञापालनेपुण्य खण्डेन किं च किल्विषम् ।।१
अनृते शपथे किं वा सत्ये किञ्चिद्भवेन्मुने ! ।
दक्षिणं किं करं दत्वा कृपां कृत्वा कृपाणत ।।२
शृणुष्व मुनिशार्दूल ! कथयामि समूलतः ।
वैष्णावानां त्वमग्योमि सर्वलोकहितेरत ।।३
धेतूनां तु शतं दत्वा यत्फल लभते नरः ।
तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं प्रतिज्ञा पालनेद्विज ।।४
प्रतिज्ञाखण्डनान्मूढ़ो निरभं याति दारुणम् ।
शतमन्वन्तरं यावत्पच्यते नात्र संशयः ।
ततोऽत्र जन्म चासाद्य निर्धनस्य निकेतने ।।५
अन्नवस्त्र विहीनः स्यात्क्लेशी चापि स्वकर्मणा ।।६
सत्येन शपथं कुर्याद्द वाग्निगुरुसन्निधौ ।
तावद्दहति व गात्रं विष्णोर्वंशो न लुप्यते ।।७
मिथ्यायां शपथे विप्र किमह्र बच्मि साम्प्रतम् ।
शतमन्वन्तरं विप्र निरयं मिथ्या किमु ।।८

शौनिक मुनि ने कहा—हे प्राज्ञ! हम लोगों की अत्यन्त उत्कट इच्छा है मूल सहित श्रवण करने की, आप कृपा करके वर्णन करें तो

बड़ा ही कल्याण होगा—की हुई प्रतिज्ञा वचनों के पालन करने में क्या पुण्य होता है और की हुई प्रतिज्ञा के खण्डन कर देने में क्या पाप हुआ करता है ? ।१। हे मुने ! जो झूठी शपथ किया करते हैं तथा सत्य बात की शपथ लिया करते हैं—इनका क्या गुण–दोष होता है ? दक्षिण कर देकर क्या फल होता है—इसे आप कृपा कर बतलाइये । आप तो कृपा के परिपूर्ण सागर हैं ।२। सूतजी ने कहा– हे मुनियों में शार्दूल सदृश मैं मूल सहित विषय का वर्णन करता हूँ, आप श्रवण करिये । आप तो विष्णु के उपासक भक्तों में सर्व शिरोमणि वैष्णव हैं और आपको सदा समस्त लोगों के हित-सम्पादन करने में रति रहा रहती है ।३। सैकड़ों धेनुओं के दान करने जो पुण्य--फल मनुष्य प्राप्त किया करता है उससे भी करोड़ों गुना अधिक पुण्य की हुई प्रतिज्ञा के पालन करने में हुआ करता है ।४। जो मूढ़ अपनी प्रतिज्ञा का खण्डन कर देता है अर्थात् की हुई प्रतिज्ञा का पालन नहीं करके मुकुर जाया करता है वह परम दारुण नरक में जाया करता है और जब तक एक सौ मन्वन्तर अपना समय व्यतीत किया करते हैं उतने समय तक वह प्रतिज्ञा को तोड़ देने वाला पुरुष वहाँ पर ही नरक में पड़ा हुआ यातनाऐं भोगा करता है–इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है । इसके पश्चात् उसको जो जन्म प्राप्त होता है वह एक किसी निर्धन पुरुष के घर में ही हुआ करता है ।५। वह सदा अन्न और वस्त्र से रहित ही रहा करता है और अपने ही कर्म्म के कारण क्लेशों से समन्वित रहता है ।६। सत्यता पूर्वक भी जो किसी देवता–गुरु और अग्नि की सन्निधि में शपथ किया करता है उसका गात्र तब तक दग्ध हुआ करता है जब तक विष्णु का वंश लुप्त नहीं होता है ।७। हे विप्र ! मिथ्या जो शपथ लोग खा लिया करते हैं उसके दोष के विषय में इस समय मैं आपको क्या बतलाऊँ—शत मन्वन्तर तक मिथ्या शपथ लेने वाला मनुष्य नरक गामी रहा करता है–इससे अधिक क्या कहूँ ।८।

निर्माल्यं श्रीहरेःस्पृष्टवा सत्येन मुनिपुङ्गव ।
गृहीत्वा पुरुषान्सप्त पच्यते निरये चिरम् ।।९

कदाचिज्जन्म सम्प्राप्य कुष्ठी च प्रति जन्मनि ।
सत्येनैवं भवेद्विप्र अनृते वै किमुच्यते ।।१०
यो मर्त्यो दक्षिणं दत्वा करं तत्प्रतिपालयेत् ।
तस्य प्राप्तो भवेत्कृष्ण: सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।११
करं दत्वा तु यो मर्त्यो वचनस्य च पालनम् ।
तावन्न कुर्यात्पितरः प्राप्नुवन्ति च यातनाम् ।।१२
स्वयं तु मुनिशार्दूल ! निरयं याति दारुणम् ।
उद्धार कोटिपुरुषैर्मृतो याति न सशयः ।।१३
कृष्णप्राप्तिः पुराः कस्य करस्य प्रतिपालनात् ।
दक्षिणस्य मुने ब्रूहि श्रोतुमच्छिामि सादरात ।।१४

हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! सत्य से हरि के निर्माल्य का स्पर्श करके जो शपथ लेता है वह पुरुष अपने सात पूर्व पुरुषों (पीढ़ियों) को भी साथ में लेकर नरक में जाया कहता है और चिर काल तक वहाँ निवास करता है ।९। फिर कदाचित् उसे जन्म भी प्राप्त होता है तो प्रत्येक जन्म में वह कुष्ठी होता है । हे विप्र ! यह तो सत्य विषय पर सत्यता पूर्वक शपथ लेने पर ही कुफल मिला करता है । जो मिथ्या शपथ खाया करते हैं उनके विषय में तो कहा ही क्या जावे कि कितना कुशल उन्हें मिलता होगा ।१०। जो मनुष्य अपना दक्षिण कर देकर उसका प्रतिपालन किया करता है उसे कृष्ण ही प्राप्त हो गये समझो यह मैं सर्वथा सत्य ही बतला रहा हूँ ।११। जो मनुष्य कर देकर अपने वचन का प्रतिपालन नहीं करता है उसके पितर उस समय तक नारकीय यातनायें भोगा करते हैं ।१२। फिर स्वयं भी परम दारुण नरक में गमन किया करता है । उसका उद्धार करोड़ों पुरुषों के मृत होने पर भी नहीं हुआ करता है—इसमें संशय नहीं है ।१३। शौनकजी ने कहा—पहिले कर के प्रतिपालन करने से किसको साक्षात् श्रीकृष्ण की प्राप्ति हुई है ? हे मुनिवर ! इस दक्षिण कर के पालन के विषय में आप वर्णन कीजिए । हमारी बड़ी ही अभिलाषा इसके श्रवण करने की उत्पन्न हो रही है । हम बड़े ही आदर के सहित इसे सुनाना चाहते हैं । १४।।

पुरा किञ्चित्पुरे शूद्रो नाम्नाऽऽसीद्वीरविक्रमः ।
वह्वन्नाशी पृथुलाङ्गश्च वहुवक्ताऽतिसुन्दरः ॥१५
धनवान्पुत्रवान्सभ्यो विद्वान्सर्वजनप्रियः ।
विप्राणामतिथीनां च पूजकःसर्वदैव तु ॥१६
पितृभक्तो द्विजश्रेष्ठ ! प्रतिज्ञापालकः सदा ।
वाचां गुरुजनानां च पालको हरिसेवकः ॥१७
एकदा सुन्दरो गेहं श्वपचस्तस्य छद्मना ।
प्राप्तो घृत्वा ब्राह्मणस्य रूपं वै तरुणः सुधीः ॥१८
श्रृणु मे वचनं धीर ! मम जाया मृता शुभा ।
किं करोमि क्व गच्छामि कथयाद्यानुकम्पया ॥१९
विवाहं योजनःकुर्याद्ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
किमुदानैः किं च तीर्थैः किं यज्ञैर्व्रतकोटिभिः ॥२०
इति श्रुत्वा त्वसौ विप्रं चोक्तवान्वीरविक्रमः ।
श्रृणु मे वचनं ब्रह्मन्बालाऽस्तिममकन्यका ॥२१

सूतजी ने कहा—बहुत पहिले प्राचीन समय में किञ्जित्पुर में एक शूद्र नाम वाला वीर विक्रम हुआ था। बहुत अशन करने वाला—पृथुल अङ्गों वाला अत्यधिक बोलने वाला और परम सुन्दर था।१५। वह धन से भी सम्पन्न था तथा पुत्र वाला था और अत्यन्त सभ्य, विद्वान् एवं सर्वजन प्रिय था। वह विप्रों का और अतिथियों का सर्वदा यजनार्चन करने वाला था।१६। हे द्विजश्रेष्ठ ! वह परम पितृ भक्त था और सदा ही अपनी की हुई प्रतिज्ञा का परिपालन करने वाला था। वह अपने गुरुझनों का पूर्णतया पालन करने वाला था एवं हरि की एक परम सुन्दर श्वपच जो कि तरुण और सुधि भी था झद्म से ब्राह्मण का स्वरूप धारण करके उसके समीप में प्राप्त हो गया था।१८। ब्राह्मण वेषधारी वह श्वपच वोला--हे धीर ! मेरे द्वारा कथित वचनों का आप श्रवण कहिये। मेरा जाया (पत्नी) बहुत अच्छी थी किन्तु अब वह मृत्युगत

हो गई है। अब मैं एकाकी रह गया हूँ। आप ही कृपा करके इस समय मुझे बतलाइये कि मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? ।१६। जो पुरुष किसी ब्राह्मण का विवाह कर देता है तो विशेष रूप से अन्य दान-तीर्थ-यज्ञ और करोडों व्रतोपवासों के करने की क्या आवश्यकता है ।२०। यह सुन कर यह वीर विक्रम उस ब्राह्मण से बोला—हे ब्रह्मन् ! आप मेरे वचनों को सुनिये मेरी एक बाला कन्या है।२१।

यदीच्छा ते भवेद्विप्र ! दास्यामि विधिपूर्वकम् ।
नय मे दक्षिण हस्तं दास्यामि चान्यथा न हि ।।२२
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा जग्राह दक्षिणंकरम् ।
श्वपचो हर्षयुक्तो वै प्रोवाच वचनं त्विति ।।२३
कृत्वा शुभक्षणं मह्यं देहि कन्यां शुभान्विताम् ।
विलम्बे बहुविघ्नं स्यादिति शास्त्रेषु निश्चितम् ।।२४
तुभ्यं श्वःकन्यकां ब्रह्मान्दास्यामि नास्ति चान्यथा ।
दक्षिणं च करं दत्त्वा न कुर्यात्पुरुषाधमः ।।२५
ब्राह्मणं कृष्णशर्माणं चाहूयाकथयन्मुने ! ।
पुरोहितमिद सर्वं प्रोवाच सविंद द्विज ! ।।२६
कथं विप्रायते कन्यां शूद्राय दातुमिच्छसि ।
अज्ञातायाकुलीनाय न ददस्व विशेषतः ।।२७
ऊचुस्तज्ज्ञातयः सर्वे जनकाद्यास्तपोधन ।
अस्माकं वचनं तात शृणुष्व वीरविक्रम ! ।।२८

हे विप्र ! यदि आपकी इच्छा हो तो मैं आपकी सेवा में उस कन्या को विधि पूर्वक समर्पित कर दूँगा। यह आप मेरा दक्षिण कर ग्रहण कीजिए--मैं अपनी कन्या को आपको दूँगा--इसमें अन्यथा नहीं होगा ।२२। उस वीर विक्रम के यह वचन श्रवण कर उसका दक्षिण कर उसने ग्रहण कर लिया था। श्वपच परम हर्ष से युक्त हो गया था और फिर वह यह वचन बोला – ब्राह्मण वेषधारी श्वपच ने कहा – आप कोई परम शुभ क्षण अर्थात् मुहूर्त्त निश्चित करके अपनी शुभ सम्पन्न कन्या का दान कीजिएगा। अब अधिक विलम्ब न करिये क्योंकि देरी करने में तो बहुत

से विघ्न हो सकते हैं—ऐसा ही शास्त्रों में भी निश्चय किया गया कि शुभ कार्य बहुत विघ्न युक्त ही हुआ करते हैं ।२३-२४। वीर विक्रम ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं अपनी कन्या को कल दान करूँगा और आपकी सेवा में उसे समर्पित कर दूँगा इसमें कुछ भी अन्यथा वचन नहीं हो सकते हैं। दक्षिण कर को देकर जो नहीं किया करते हैं वे तो महान् पुरुष ही होते हैं ।२५। सूतजी ने कहा—हे मुने ! कृष्ण शर्मा नामक ब्राह्मण को बुलाकर उसने कहा—हे मुने ! भली भाँति ज्ञाता अपने पुरोहित से यह सब कह दिया था ।२६। विप्र के रूपधारी शूद्र के लिये आप यह अपनी कन्या कैसे देना चाहते हैं। जिसके कुल का ज्ञान नहीं है विशेष रूप से ऐसे को कभी भी न दीजिए ।२७। हे तपोधन ! उसकी जाति के सभी लोगों ने और जनक आदि ने उससे कहा था कि हे तात ! हे वीर विक्रम ! आप हमारे वचन भी सुनिये ।२८।

न ज्ञायते कुलं यस्य देशगोत्रधनं तथा ।
शीलंवयस्तस्य कन्या स्वजनैर्न च दीयते ।।२९
स उवाच द्विजश्रेष्ठ दत्तं मे दक्षिणं करम् ।
कदाचिदन्यथा कर्तुं न शक्नोमि च सर्वथा ।।३०
इत्युक्त्वा तान्स विप्राय कन्यां दातं प्रचक्रमे ।
दृष्ट्वेति ज्ञातयः सर्वे विस्मयमद्भुतंययुः ।।३१
सत्यं तद्वचनं श्रुत्वा शंखचक्रगदाधरः ।
आविर्बभूव सहसा चारुह्य गरुडं मुने ! ।।३२
धन्यं ते च कुलं धर्मो धन्यस्ते जननी पिता ।
धन्यं ते वचन सत्यं धन्यं तेक्षिणंकरम् ।।३३
धन्यं कर्म च ते जन्म त्रैलोक्ये नैव विद्यते ।
एव ते कर्मणा साधो चोद्धारं कुरुषे कुलम् ।।३४
एवं ब्रुवति श्रीकृष्णे विमानं स्वर्णनिर्मितम् ।
आगतं हि मणीयुक्तं सर्वत्र गरुडध्वजम् ।।३५

जिस पुरुष के कुल का ज्ञान नहीं होता है और जिसके देश-गोत्र और धन-सम्पत्ति का भी कुछ ज्ञान नहीं होता है। जिसके शील-स्वभाव अवस्था आदि का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है उस पुरुष को स्वजनों के द्वारा अपनी कन्या को कदापि नहीं दी जाया करती है।२६। उसने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने अपना दक्षिण कर दे दिया है। अब मैं उसको किसी भी प्रकार से अन्यथा नहीं कर सकता हूँ।३०। इतना कह कर उसने उस विप्र के लिए अपनी कन्या का दान करने का उपक्रम किया था। इस घटना को देख कर सभी जाति के लोग एक पदम विचित्र विस्मय को प्राप्त होगये थे।३१। उसके सत्य वचन का श्रवण कर शंख, चक्र और गदा के धारण करने वाले भगवान् हे मुने! तुरन्त ही गरुड़ पर समारुड़ होकर वहाँ पर प्रकट होगये थे।३२। श्री भगवान् ने कहा—हे वीर विक्रम! तेरे धर्म के विषय में क्या कहा जावे, यह तेरा धर्म—कुल परम धन्य हैं और तेरे माता पिता भी बहुत ही भाग्यशाली हैं। तेरा वचन परम सत्य है और तूने जो अपना दक्षिण कर दिया था वह भी अत्यन्त ही धन्य है।३३। हे राजन्! तेरा कर्म और तेरा जन्म परम धन्य है। इसकी समता रखने वाला त्रिभुवन में भी कोई नहीं है। हे साधो! इस प्रकार से आपने अपने इस कर्म के द्वारा अपने पूरे कुल का उद्धार कर दिया है।३४। सूतजी ने कहा—इस प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण उससे कह ही रहे थे कि एक सुवर्ण का बना हुआ विमान वहाँ पर आ गया था जो कि गणों से युक्त था और सभी जगह पर गरुड़ की ध्वजाऐं उसमें लग रही थीं।३५।

सर्वं तस्य कुलं ब्रह्मन्स श्वपाकपुरोहितम्।
रथे चारोपयामास शंखपद्मधरः स्वयम्॥३६
गृहीत्वा तान्हरिःसर्वान्गतो वैकुण्ठमन्दिरम्।
तत्र तस्थुश्चिरं ते च कृत्वा भोगं सुदुर्ल्लभम्॥३७
वचनं लंघयेद्यस्तु यस्तु वा दक्षिणंकरम्।
सकुलो निरयं याति सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥३८

तस्यान्नं तु जलं ब्रह्मन्नग्राह्यं पितृदैवतैः ।
त्यक्त्वा धर्मो गृहं तस्य भीत्या याति द्विजोत्तम ।।३९
दत्त्वाऽऽशां यो जनःकुर्यान्नैराश्यं चैव मूढधीः ।
स स्वकान्कोटिपुरुषान्गृहीत्वा नरकं व्रजेत् ।।४०
वचनं लंघयेद्यस्तु धर्मस्तस्य विलुप्यते ।
नृपाग्नितस्करैर्विप्र सत्यं सत्य सुनिश्चितम् ।।४१
स्वर्गोत्तरमिमं सम्यक्‌च्छ्रुत्वा स्वर्गोत्तरं व्रजेत् ।
जीवन्मुक्तस्त्विहामुत्र कृष्णाख्यं धाम चोत्तमम् ।।४२

उस विमान में उस वीर विक्रम का सम्पूर्ण कुल हे ब्रह्मन् ! वह श्वपच और पुरोहित को भगवान् शंख पद्म धारी ने स्वयं उस विमान पर समारूढ़ कराया था ।३६। श्रीहरि भगवान् उन सबको उस स्वर्ण निर्मित विमान में ग्रहण करके वैकुण्ठ लोक के मन्दिर में ले गये थे । वहाँ पर वे सभी चिरकाल पर्यन्त स्थिर रहे थे । और परम दुर्लभ भोगों का उस वैकुण्ठ लोक में उन्होंने उपभोग किया था ।३७। जो पुरुष अपने दिए हुए वचनों का उल्लंघन किया करता है और अपना दक्षिण कर देकर फिर उसके विपरीत कर्म किया करता है वह पुरुष अपने सम्पूर्ण कुल के सहित नरक में जाकर नारकीय महान् घोर यातनाऐं सहन किया करता है—यह मैं सत्य एवं परम ध्रुव सत्य बतलाता हूँ ।३८। ऐसे अपने प्रति ज्ञात एवं कथित वचनों के उल्लंघन करने वाले पुरुष के तथा दक्षिण कर देकर उसके विपरीत कर्म करने वाले पुरुष के अन्न तथा जल को उसके पितृगण एवं देवता लोग हे ब्रह्मन् ! कभी भी ग्रहण नहीं किया करते हैं । हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! धर्म तो उस पुरुष के घर का ही परित्याग करके भीति से दूर चला जाया करता है अर्थात् ऐसे पुरुष के घर में धर्म का निवास रहता नहीं है ।३९। जो पुरुष किसी को आशा पूर्ण वचन देकर फिर समय पर एकदम निराश कर दिया करता है अर्थात् विश्वास देकर जो फिर विश्वास का घात किया करता है वह महान् मूढ़ बुद्धि वाला ही होता है और ऐसा विश्वासघाती अर्थात् आशा बंधा कर निराश करने वाला मनुष्य अपने

करोड़ों कुल के पूर्व पुरुषों को ले जाकर नरक में डाल दिया करता है तथा स्वयं भी नरकगामी हो जाता है।४०। जो अपने मुख से कहे हुए वचनों का उल्लघन करता है उसका सम्पूर्ण धर्म लुप्त हो जाया करता है। उसके धर्म को नृप-अग्नि और तस्करों के द्वारा लुप्त किया जाता है। हे विप्र ! यह सर्वथा सत्य-सत्य एव परम सुनिश्चित मैं बतला रहा हूँ। इसमें लेश मात्र भी अत्युक्ति एवं मिथ्या नहीं है ।।४१।। इस सम्वाद का श्रवण करना भी स्वर्ग से भी उत्तर है। इसका श्रवण करके मनुष्य स्वर्ग से भी उत्तर अर्थात् उत्तम पद की प्राप्ति किया करता है। इस लोक में वह जीवित रहते हुए भी एक मुक्त पुरुष की भाँति रहा करता है और परलोक में भगवान् श्रीकृष्ण के नाम वाला जो परम उत्तम धाम है उसको प्राप्त किया करता है।४२।

।। ब्रह्मवध के कारण राम का पश्चात्ताप ।।

अहो मे पश्यताज्ञानं विमूढस्य दुरात्मनः।
यद्ब्राह्मणकुले रूढं हतवान्कामलोलुपः ।।१
महिलार्थं त्वहं विप्र वेदशास्त्र विवेकवान्।
हतवान्वाडवकुल बुद्धिहीनोऽतिदुर्मतिः ।।२
इक्ष्वाकणां कुले जातु ब्राह्मणो न दुरक्तिभाक्।
ईदृशं कुर्वता कर्म मयैतत्सुकलङ्कितम् ।।३
ये ब्राह्मणास्तु पूजार्हा दानसम्मानभोजनैः।
ते मया निहता विप्राःशरसंघातसंहितैः ।।४
काँल्लोकान्नु गमिष्यामि कुम्भीपाकोऽपि दुःसहः :
ना तादृशं तीर्थमस्ति यन्मां पावयितु क्षमम्। ५
न यज्ञो न तपो दानं न वा चैव व्रतादिकम्।
यत्तु वै ब्राह्मणद्रोग्धुर्मम पावनताकरम् ।।६
यैःकोपितं ब्रह्मकुलं नरैर्निरयगामिभिः।

ते नरा बहुशो दुःख भोक्ष्यन्ति निरयं गताः ।।७

श्रीराम ने कहा—अहो, दुष्ट आत्मा वाले और विशेष मूढ़ता से युक्त मेरे अज्ञान को देखो ! काम से अत्यन्त लोलुप होकर मैंने ब्राह्मण के कुल में रूढ़ का हनन कर दिया था ।१। वेदों और समस्त शास्त्रों के विवेक रखने वाले मैंने केवल महिला के लिये वाडवकुल विप्र का हनन किया था । मैं वहुत ही बुद्धि हीन दुर्मति हूँ ।२। महाराज इक्ष्वाकु के कुल में ब्राह्मण कभी भी दूसरी वार उक्ति करने वाला नहीं हुआ था । इस प्रकार के कर्म के करने वाले मैंने उस परम पवित्र कुल को अच्छी तरह से कलंकित कर दिया है ।३। जो ब्राह्मण दान-सम्मान-और भोजनों के द्वारा पूजा के योग्या होते हैं, उन विप्रों को मैंने शरों के संघात के प्रहारों से निहत किया था ।४। मैंने महान् घोर पाप किया है, नहीं मालूम इन महापापों के परिणाम में मैं किन लोकों को जाऊँगा । कुम्भीपाक नरक भी वड़ा दुस्सह है । मुझे ऐसा कोई तीर्थ भी दिखलाई नहीं देता है जो मुझ जैसे घोर पापात्मा को पवित्र कर देने में समर्थ हो सके ।५। न तो कोई ऐसा यज्ञ ही है और न तप तथा दान एवं व्रत आदि हैं जो ब्राह्मणों से द्रोह करने वाले मुझे पावन करके मेरा उद्धार कर देवें ।६। जिन नरक में गमन करने वाले मनुष्यों ने ब्रह्मकुल को कुपित कर दिया है वे मनुष्य नरक में जाकर वहुत अधिक दुःखों को भोगा करते हैं अर्थात् उन्हें नारकीय यातनाऐं अत्यधिक होती हैं ।७।

वेदा मूलं तु धर्माणां वर्धाश्रमविवेकिनाम् ।
तन्मूल ब्राह्मणकुलं सर्ववेदैकशाखिनः ।।८
मूलच्छेत्तु र्ममौद्धत्यात्को लोकोऽनुभविष्यति ।
किमद्य करणीयं वै येन मे हि शिवं भवेत् ।।९
विलपन्तं भृशं रामं राजेन्द्रं रघुपुङ्गवम् ।
मायामनुष्यवपुषं कुम्भजन्माऽब्रवीद्वचः ।।१०
मा विषादं महाधीर ! कुरु राजन्महामते ।

न ते ब्राह्मणहत्यास्यद्दुष्टानांनाशमिच्छतः ।। ११

त्वं पुराणः पुमान्साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परेः।
कर्ता हर्ताऽविता साक्षी निर्गुणः स्वेच्छयाः गुणी ॥१२
सुरापी ब्रह्महत्याकृत्स्वर्णस्तेयी महाघकृत्।
सर्वे त्वन्नामवादेन पूता शीघ्रं भवन्ति हि ॥१३
इयं देवी जनकजा महाविद्या महाभूते।
यस्याः स्मरणमात्रेण मुक्ता यास्यन्ति सद्गतिम् ॥१४

सम्पूर्ण धर्मों का मूल वेद ही होते हैं क्योंकि वेद ही तो धर्म का क्या स्वरूप है-बतलाते हैं। जिन धर्म्मों में वर्णों तथा आश्रमों का पूर्ण विवेक भरा होता है। उन वेदों का मूल ब्राह्मणों का कुल होता है क्योंकि वेदों के ज्ञान का भण्डार ब्राह्मणों का ही हृदय होता है और उन्हीं से अन्य सबको विदित होता है। समस्त वेदों की शाखाऐं ब्राह्मण ही जानते हैं।८। मैंने उसी मूल का उच्छेदन किया है और वहुत ही अधिक उद्धतता का कर्म कर डाला है ऐसे महापापी मुझे कौन सा लोक मिलेगा ? अब मैं अपने उद्धार के लिए क्या करूँ जिसके करने से मेरा कल्याण होवे—इस तरह से श्रीराम अपने उद्धार के लिए महान् चिन्तित हो रहे थे और हृदय में अत्यधिक पश्चात्ताप कर रहे थे।९। शेषजी ने कहा—इस तरह से अत्यन्त बिलाप करते हुए रघुकुल में परम श्रेष्ठ राजेन्द्र रामचन्द्रजी से,जो माया से ही मनुष्य का शरीर धारण किए हुए साक्षात् भगवान् पुरुषोत्तम थे कुम्भ से जन्म ग्रहण करने वाले अगस्त्य मुनि यह वचन बोले।१०। अगस्त्य मुनि ने कहा—हे राजन्! आप इतना विषाद हृदय में न करिये। आप तो महान् धीर पुरुष हैं और में आप में मति भी महती विद्यमान है। आपने परम दुष्ट-जनों ! का ही वध करने की इच्छा की थी और उन दुष्टात्मा पुरुषों का नाश करना चाहते थे अतएव आपको ब्राह्मणों की हत्या का दोष कुछ भी नहीं होगा।११। आप तो परम पुराण पुरुष हैं और प्रकृति में भी पर साक्षात् ईश्वर हैं। आप ही समस्त विश्व के कर्त्ता-रक्षक एवं पोषक और संहार करने वाले हैं। आप स्वयं निर्गुण स्वरूप वाले हैं। यह तो आप की अपनी इच्छा से ही गुण युक्त स्वरूप धारण किया है अर्थात्

अवतार लेकर लोक के उद्धार के लिए प्रकट हुए हैं ।१२। सुरापान करने वाला ब्राह्मण की हत्या करने वाला—सुवर्ण की चोरी करने वाला और महान् अघों के करने वाला पुरुष भी सभी आपके नाम के कीर्त्तन करने से शीघ्र ही पवित्र हो जाया करते हैं। आपके नाम के बाद का ऐसा महान् प्रभाव होता है, यह देवी महाराज जनक की आत्मजा हैं, हे महती मति वाले ! यह ही महाविद्या है। इसके स्मरण मात्र से ही महापापी मानव मुक्त होकर सद्गति को प्राप्त हो जाया करते हैं। इस देवी के स्मरण का ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है।१३-१४।

रावणोऽपि न वै दैत्यो वैकुण्ठे तव सेवकः ।
ऋषीणां शापतोऽवाप्तो दैत्यत्वं दनुजान्तकः ।।१५
तस्याऽनुग्रहकर्ता त्वं न तु हन्ता द्विजन्मनः ।
एवं सञ्चिन्त्य मा भूयो निजं शोजितुमर्हसि ।।१६
इति श्रुत्वा ततो वाक्यं रामः परपुरञ्जयः ।
उवाच मधुरं वाक्यं गद्गद्स्वरभावितम् ।।१७
पातकं द्विविधं प्रोक्तं ज्ञाताज्ञातविभेदतः ।
ज्ञातं यद्बुद्धिपूर्वं हि अज्ञातं तद्विवर्जितम् ।।१८
बुद्धिपूर्वं कृतं कर्म भोगेनैव विनश्यति ।
नश्येदनुशयादन्यदिदं शास्त्रविनिश्चितम् ।।१९
कुर्वतो बुद्धिपूर्वं से ब्रह्महत्यां सुनिन्दिताम् ।
न-मे दुःखापनोवात साधुवादः सुसंमतः ।।२०
प्रब्रू हि तादृशं मह्यं तादृशं पापदाहकम् ।
व्रतं दानं मखं किञ्जित्तीर्थसाराधनं महत् ।।२१
येन मे विमलाकोर्तिर्लोकान्वै पावयिष्यति ।
पापाचाराप्तकालुष्यान्ब्रह्महत्याहतप्रभान् ।।२२

लंकाधिपति रावण भी दैत्य नहीं था प्रत्युत वह तो वैकुण्ठ में आप का ही पार्षद सेवक था। सनकादि महर्षियों के शाप से ही वह दनुजान्तक दैत्यत्व को प्राप्त हो गया था ।१५। आपने तो उसके ऊपर शाप मोचन के लिए अनुग्रह ही किया था, हनन नहीं किया था। बिना

ऐसा किए उसके शाप से मुक्ति कैसे हो सकती थी । अपने किसी द्विजन्मा की हत्या नहीं की है । इस प्रकार से आप सब विचार करके फिर अब आगे नित्य शोच करने के योग्य आप नहीं होते हैं ।१६। इस अगस्त्य महर्षि के वचन को सुनकर शत्रुओं के पुरों को जीतने वाले श्रीराम ने गद्‌गद् स्वर से समन्वित मधुर वाक्य कहा श्रीराम ने कहा—हे मुने ! पातक भी दो प्रकार का होता है—एक ज्ञात पातक होता है जिनको जान बूझकर भी किया जाता है । दूसरा अज्ञात पातक होता है जिसका कोई ज्ञान नहीं होता है और अज्ञान दशा में वह बन जाया करता है बुद्धि पूर्वक पातक ज्ञान और उससे विवर्जित अज्ञात होता है ।१७-१८। जो कर्म्म बुद्धि पूर्वक किया जाता है वह तो भोग से ही विनष्ट होता है जो अन्य अज्ञान पातक होता है वह पश्चात्ताप करने ही से नष्ट हो जाया करता है ऐसा शास्त्र का निर्णय है ।१९। मैंने तो यह सुनिन्दित ब्रह्म हत्या बुद्धि पूर्वक ही की है सो यह सुसम्मत साधुवाद मेरे दुःख का अपनयन करने वाला नहीं हो सकता है ।२०। हे मुनिवर ! मुझे तो अब आप कोई उसी प्रकार का उपाय बताइये जोकि मेरे इस किये हुए पाप को दग्ध कर देने वाला हो चाहे वह उपाय कोई किसी प्रकार का व्रत हो दान, मख या कोई महान् तीर्थों का समाराधन हो । इनमें कोई भी हो । जो पाप का उन्मूलन कर सके वही आप बोलिये ।२१। जिसके करने से मेरी विमल कीर्ति हो और वह लोकों को पवित्र करे । पापों के आचरण करने से कालुष्य के भागी होते हैं और ब्रह्म हत्या से प्रभाहीन हो जाया करते हैं ।२२।

इत्युक्तवन्तं तं रामं जगाद स तपोनिधिः ।
सुरासुरनमन्मौलिमणिनीराजिताङ्घ्रिकम् ।।२३
शृणु राम ! महावीर ! लोकानुग्रहकारक ! ।
विप्रहत्यापनोदाय तव यद्वचनं ब्रुवे ।।२४
सर्वं स पापं तरति योऽश्वमेधं यजेत वै ।
तस्मात्वं यज विश्वात्मन्वाजिमेधेन शोभिना ।।२५

सप्ततन्तुर्मही भर्त्रा त्वया साध्यो मनीषिणा ।
महासमृद्धियुक्तेन महाबलसुशालिना ॥२६
स वाजिमेधो विप्राणां हत्यायाः पापनोदनः ।
कृतवान्यंमहाराजो दिलीपस्तव पूर्वजः ॥२७
शतक्रतुःशतं कृत्वा क्रतूनां पुरुषर्षभः ।
पदमापामरावत्यां देवदैत्यसुसेवितम् ॥२८

भगवान् शेषजी ने कहा—इस तरह से कहने वाले भगवान् श्री रामचन्द्रजी से उन तप की निधि अगस्त्य मुनि ने कहा था जो श्रीराम स्वयं ऐसे थे कि सभी सुर और असुर जिस समय में उनके चरणों में अपना मस्तक रक्खा करते थे तो उनके शिर में जो भूषण धारण किया हुआ होता था उसकी मणियों की प्रभा से चरणों की आरती सी हुआ करती थी। मुनिवर ने कहा—हे श्रीराम ! आप श्रवण करिये । आप महान् वीर हैं और समस्त लोकों पर परम अनुग्रह करने वाले हैं । ब्रह्महत्या के अपनोद करने के लिये मैं आपको यही वचन बोलता हूँ ।२३-२४। वह मनुष्य अपने सभी पापों का हरन कर दिया करता है जो अश्वमेध यज्ञ का यजन किया करता है । हे विश्वात्मन् ! इस लिये आप भी परम शोभा समन्वित वाजिमेध का यजन करिये ।२५। आप महान् समृद्धि से युक्त और महान् बल से शोभा वाले हैं, परम मनीषी स्वामी आपको यह सप्ततन्तु मही साधने के योग्य है ।२६। यह वाजिमेध यज्ञ ऐसा ही होता है कि इससे विप्रों की हत्या से होने वाले पापों का अपनोद हो जाया करता है। आपके ही पूर्व पुरुष महाराज दिलीप ने इस अश्वमेध यज्ञ को किया था। शतक्रतु अर्थात् इन्द्र ऐसे ही एक सौ अश्वमेध करके ही अमरावती में महेन्द्रासन के पाद पर प्राप्त हुआ था। जो भी श्रेष्ठ पुरुष सौ अश्वमेध साँग समाप्त कर लेता है वह ही इन्द्रासन पर पहुँच सकता है वह इन्द्रासन ऐसा महान् पद है जिसका सेवन सभी देव और दैत्य किया करते हैं ।२७-२८।

मनुश्च सगरो राजा मरुतो नहुषात्मजः ।
एते ते पूर्वजाः सर्वे यज्ञं कृत्वा पदं गताः ॥२९

तस्मात्वं कुरु राजेन्द्र ! समर्थोऽसि समन्ततः ।
भ्रातरो लोकपालाभा वर्तन्ते तव भावुकाः ॥३०
इत्युक्तमाकर्ण्य मुनेः स भाग्यनान्नघूत्तमो ब्राह्मणघातभीतः ।
पप्रच्छ यागे सुमतिं चिकीर्षन्विधिं पुराविर्त्परिगीयमानः ।३१

प्राचीन काल में महाराज मनु महाराज सगर-राजा मरुत और नहुष का पुत्र ये सभी आपके ही पूर्वज हुए हैं । इन सभी ने अश्वमेध यज्ञ करके ही पद की प्राप्ति की थी ।२६। हे राजेन्द्र ! इसलिए आप भी इस यज्ञ को करें । आप तो सभी प्रकार से शक्तिशाली है । आपके सभी भाई परम शक्ति सम्पन्न और लोकपालों के समान आभा वाले हैं और वे सभी आपके आदेश पालक परम भक्त हैं ।३०। अगस्त्य मुनि के द्वारा इस प्रकार से कथित वचन का श्रवण करके वह भाग्य वाले रघूत्तम श्रीरामचन्द्र जो ब्राह्मणों के घात से भयभीत हो रहे थे अश्वमेध यज्ञ के करने की इच्छा रखते हुए उन्होंने पुरा वेत्ताओं के द्वारा बताई हुई जो इस यज्ञ की विधि थी उसे विद्वानों से पूछा था कि यह यज्ञ कब, किस तरह, कहाँ किया जाना चाहिए ॥३१॥

॥ राम की आज्ञा से शत्रुघ्न का गमन ॥

एवमाज्ञाप्य भगवान्नमश्चामित्रकर्षणः ।
वीरानालोकयन्भूयो जगाद शुभया गरा ॥१
शत्रुघ्नस्य मम भ्रातुर्वाजिरक्षाकरस्य वै ।
को गन्ता पृष्ठतो रक्षंस्तन्निदेशप्रपालकः ॥२
यः सर्ववीरान्प्रतिमुख्यमागतान्विनिर्जयेन्मर्मभिदस्त्रसंघैः ।
गृह्णात्वसौ सेकरवीटकंतद् भूमौ यशः स्वंप्रथयन्सुविस्तरम् ।३
इत्युक्तवति रामे तु पुष्कले भारतात्मजः ।
जग्राह वीटकं तस्माद्रघुराजम्बुजात् ॥४
स्वामिन्गच्छामि शत्रुघ्न पृष्ठरक्षाकरोऽन्वहम् ।
सन्नद्धः सर्वशस्त्रास्त्रचापवाणधरः प्रभो ! ॥५

सर्वमद्य क्षितितलं त्वत्प्रतापो विजेष्यते ।
एतेनिमित्तभूता वै रामचन्द्र ? महामते ? ॥६

भवत्कृपातः सकलं ससुरासुरमानुषम् ।
उपस्थितं प्रयुद्धाय तन्निषेधे क्षमो ह्यहम् ॥७

सर्वं स्वामी ज्ञास्यति यन्मम विक्रमदर्शनात् ।
एषगन्ताऽस्मि शत्रुघ्नपृष्ठरक्षाप्रकारकः ॥८

भगवान् शेष ने कहा - अमित्राकर्षा श्रीराम भगवान् ने इस प्रकार से आज्ञा प्रदान करके वीरों को देखते हुए उन्होंने पुनः अपनी शुभ वाणी से कहा था—मेरा भाई शत्रुघ्न इस यज्ञ के अश्व की रक्षा करने वाला है। अब इसके पीछे इसकी रक्षा करते हुए इसकी आज्ञा का पालन करने वाला कौन जायगा ? ।१-२। यों तो आप लोग सभी वीर हैं परन्तु मैं यह चाहता हूँ कि ऐसा वीर जाना चाहिए जो मुकाविले पर आये हुए समस्त शत्रु वीरों का मर्म भेदी आस्त्रों के संघातों के द्वारा जीत लेवे अर्थात् सबको परास्त कर विजय प्राप्त करे जो भी ऐसा वीर तैयार हो वही मेरे इस करवीटक को ग्रहण करे और इस भूमण्डल में सुविस्तृत यश को फैला देवे ।३। भगवान् श्रीराम के ऐसा कहने पर भाई भरत के पुत्रपुष्पकल श्रीरघुराज राम के कर कमल से वह वीटक ग्रहण कर लिया था। किसी भी महान् उत्तर दायित्व पूर्ण कार्य करने के लिये जो भी प्रस्तुत होता था वही 'पान का बीड़ा' ग्रहण किया करता था—प्राचीन समय में ऐसी प्रथा थी कि इस तरत का बीड़ा रक्खा जाया करता था। पुष्पकल ने श्रीराम के हस्त से वह वीटक लेकर फिर उनसे प्रार्थना की थी कि हे स्वामि ! मैं शत्रुघ्नजी के पीछे रक्षा करने वाला होकर जाता हूँ। हे प्रभो ! मैं इसी समय में सम्पूर्ण शस्त्र-अस्त्र-चाप और बाणों को धारण करने वाला होकर बिल्कुल सन्नद्ध हो गया हूँ ।४-५। हे भगवन् ! आपके प्रताप से आज सम्पूर्ण इस भूमण्डल को जीत लूँगा। हे महानति वाले ! हे स्वामि रामचन्द्र ! आपका प्रताप ही ऐसा शक्तिमान् है, हम लोग तो केवल निमित्त मात्र ही हैं ।६। आपकी कृपा से समस्त सुर असुर और मनुष्यों के समुदाय

को जो कि युद्ध करने को मेरे समक्ष में उपस्थित हो जावेंगे मैं उन सबको पराजित कर देने में समर्थ हो जाऊँगा। आप तो हमारे स्वामी हैं जो भी कुछ मेरा विक्रम हो उसे देखने से सभी कुछ जान लेंगे। लीजिये, मैं यह शत्रुघ्न की पृष्ठ रक्षा करने के लिए चल दिया।७-८।

एव ब्रुवन्तं भरतात्मज स प्रस्तूय साध्वित्यनुमोदमानः।
शशंस सर्वान्कपिवीरमुख्यान्प्रभञ्जनोद्भूतमुखान्हरिः प्रभुः।९
भो हनूमन्महावीर ? शृणु मद्वाक्यमादृतः।
त्वत्प्रसादान्मया प्राप्तमिदं राज्यमकण्टकम्।।१०
सीतया मम संयोगे यो भवाञ्जलधिं तरेत्।
चरितं तद्धरे वेद्मि सर्वं तव कपीश्वर।।११
त्वं गच्छ मम सैन्यस्य पालकः सन्ममाऽऽज्ञया।
शत्रुघ्नः सोदरो मह्यं पालनीयस्त्वह यथा।।१२
यत्र यत्र मतिभ्रंशः शत्रुघ्नस्य प्रजायते।
तत्र तत्र प्रबोद्धव्यो भ्राता मम महामते ?।।१३
इति श्रुत्वा महद्वाक्यं रामचन्द्रस्य धीमतः।
शिरसा तत्समाधाय प्रणामतव रोत्तदः।।१४

इस प्रकार से बोलने वाले भरत के पुत्र पुष्कल को 'बहुत अच्छा'—ऐसा अनुमोदन करते हुए उन श्रीराम ने उसकी प्रसंसा की थी। प्रभु हरि ने फिर समस्त वीर कपिगण में प्रमुखों से और वायु के पुत्र हनुमान प्रभृति प्रधान कपियों से कहा—।।९।। हे महान् वीर हनुमान् ! तुम मेरे वाक्य का आदर करते हुए मेरे वचनों का श्रवण करो। मैंने केवल तुम्हारे ही प्रमाद से यह कण्टक रहित विशाल राज्य प्राप्त किया है।१०। आपने महासागर को पार करके सीता से मेरा संयोग कराया था। हे हरे ! उस आपके चरित्र को मैं जानता हूँ अर्थात् मुझे उसका ज्ञान है, भूला नहीं हूँ। हे कपीश्वर ! तुमने यह महान् अद्भुत कर्म्म किया था।११। हे हनुमान् ! मेरी सेना का पालक बनकर तुम मेरी आज्ञा से वहाँ जाओ। शत्रुघ्न मेरा सगा भाई है। मेरी भाँति ही तुमको

उसकी रक्षा करनी चाहिए ॥ १२ ॥ हे महामतिमान् ! जिस-जिस स्थल तथा समय पर शत्रुघ्न की मति में कुछ भ्रंशता आ जावे वहाँ पर ही मेरे भाई को प्रबोधन देना चाहिए । क्योंकि आप बुद्धिमान हैं ।१३। परम श्रीमान् श्रीराम चन्द्र के इस प्रकार के वचन का श्रवण कर जोकि महावाक्य था हनुमान ने उसे शिर के बल स्वीकार किया और उसी समय में श्रीराम के चरणों मे प्रणाम किया था ।१४।

अथाऽदिशन्महाराजो जाम्बवतं कपीश्वरम् ।
रघुनाथस्य सेवार्यं कपिषूत्तमतेजसम् ॥१५
अङ्गदो गवयो मैंददस्तथा दधिमुखःकपिः ।
सुग्रीवः प्लवगाधीशः शववल्यक्षिकौ कपी ॥१६
नीलो नलो मनोवेगोऽधिगन्ता वानराङ्गजः ।
इत्येवमादयो यूयं सज्जीभूता भवन्तुभोः ॥१७
सर्वैर्गजैःसदश्वैश्च तप्तहाटकभूषवैः ।
कवचैः सशिरस्त्राणैर्भूषिता यान्तु सत्वराः ॥१८
सुभन्तमाहूय सुमंत्रिणं तदा जगाद रामो बलवीर्यशोभनः ।
अमात्यमौले ? वद केऽत्रयोज्या नरा हयंपालयितु समर्थाः॥१९
तदुक्तमेवमाकर्ण्यं जगाद परवीरहा ।
हयस्य रक्षणे योग्यान्बलिनोऽत्र नराधिपान् ॥२०
रघुनाथ ? शृणुष्वीतान्नव वीरान्सुसंहितान् ।
धनुर्धरान्महाविद्यान्सर्वशस्त्रास्त्रकोविदान् ॥२१

इसके अनन्तर महाराज श्रीराम ने कपियों के नायक जाम्बवन्त को आदेश दिया था । जाम्बवन्त समस्त कपियों में उत्तम तेज वाले थे । उनको श्रीरघुनाथ जी की सेवा करने के लिए आज्ञा दी गई थी ।१५। अंगद गवय मैन्द कपि दधि मुख सुग्रीव जोकि सब वानरों का स्वामी था शतवलि अक्षिक नील नल और मन के समान वेग वाला और अधिगन्ता (ज्ञानशील) वानरांगज इत्यादि तुम सभी लोग तुरन्त सज्जीभूत (तैयार) हो जाओ । सब हाथियों तथा अच्छे अश्वों के सहित तपाये हुए सुवर्ण के भूषणों से—कवचों और शिरस्त्राणों से भूषित होकर

शीघ्रता पूर्वक चले जाओ ।१६-१८। शेषजी ने कहा—बल और वीर्य से शोभा वाले श्रीराम ने सुन्दर मन्त्री सुमन्त को बुलाकर उसी समय में कहा था—हे अमात्यों में शिरोमणि ! आप यह बतलाओ कि यहाँ पर कौन-कौन से पुरुष नियुक्त करने चाहिए जो कि अश्व की रक्षा करने के कार्य में समर्थ हों ? ।१६। इस प्रकार से श्रीराम के कथन को सुन कर शत्रुओं के वीरों का हनन करने वाले ने कहा—यहाँ पर अश्व की रक्षा करने के कार्य में अति योग्य बलवान राजाओं को नियुक्त करना चाहिए ।२०। हे रघुनाथ जी ! मेरी प्रार्थना को आप सुनिये, सुसंहित जो ये नये वीर हैं उनको नियोजित करें । ये धनुर्धारी हैं, महायुद्ध ज्ञाता है और सम्पूर्ण शस्त्र तथा अस्त्रों के अच्छे पण्डित भी हैं ।२१।

प्रतापाग्रवं नीलरत्नं तथा लक्ष्मीनिधिं नृपम् ।
रिपुतापं चोग्रहयं तथा शस्त्रविदं नृपम् ।।२२
राजन्योऽसौ नीलरत्नो महावीरो रथाग्रणीः ।
स एव लक्षं रक्षेत लक्षंयुध्येत निर्भयः ।।२३
अक्षौहिणीभिर्दशभिर्यातु वाहस्य रक्षणे ।
दंशितैस्सशिरस्त्राणेर्महाबाहुभिरुद्धतैः ।।२४
प्रतापग्र्यो यो ह्ययं च रिपुगर्वमशातयत् ।
सव्यापसव्यबाणानां मोक्ता सर्वास्त्रचित्तमः ।।२५
एषोऽक्षौहिणिविंशत्या यातु यज्ञहयावने ।
सन्नद्धो रिपुनाशाय युवा कोदण्डदण्डभृत् ।।२६
तथा लक्ष्मीनिधिस्त्वेष यातु राजन्यसत्तमः ।
यस्यपोभिःशतधृतिं प्रसाद्यास्त्राणि चाभ्यसत् ।।२७
ब्रह्मास्त्रं पाशुपत्यास्त्रं गारुडं नागसंज्ञितम् ।
मायूरं नाकुलं रौद्रं वैष्णवं मेघसंज्ञितम् ।।२८
वज्रं पार्वतसंज्ञं च तथा वायव्यसंज्ञितम् ।
इत्यादि कानामस्त्राणां सम्प्रयोगविसर्गवित् ।।२९

स एव निजसैन्यानामक्षौहिण्यैकयायुतः।
प्रयातु शूरमुकुटः सर्ववैरिप्रभञ्जनः ॥३०

प्रतापाग्रय्-नीलरत्न-नृप लक्ष्मी निधि-रिपुताप-अग्रह्य तथा शस्त्रवेत्ता नृप को नियुक्त करिये ।२२। यह नीलरत्न राजन्य महान वीर और रथाग्रणी है। वह ही एक लाख की रक्षा करने वाला होगा और एक लक्ष सैनिकों से बिल्कुल निडर होकर युद्ध करेगा ॥ २३ ॥ वाह के रक्षण करने में दश अक्षौहिणी सेना के साथ वह चला जावे जिस सेना के सैनिक शिरस्त्राणों से संयुत-दंशित-बड़ी २ भुजाओं वाले और महान उद्धत होंगे ।२४। जो यह प्रतापाग्रय् है यह सभी शस्त्र तथा अस्त्रों के प्रयोग करने की कला का बड़ा ही विद्वान है और दाहिने तथा बाँये हाथों से बाणों के छोड़ने वाला है। इसने बड़े २ शत्रुओं के गर्व को खंडित कर दिया है अर्थात् बड़ा भारी शूर-वीर है ॥२५॥ यह भी वीस अक्षौहिणी सेना को साथ में लेकर यज्ञ के अश्व की रक्षा करने को चला जावेगा। यह युवा है और जो कोई भी शत्रु समक्ष में आयेगा उसके नाश करने के लिए बिल्कुल सन्नद्ध है। यह कोदण्ड (धनुष) के दण्ड को धारण करने वाला है ।२६। यह लक्ष्मी निधि नामधारी क्षत्रियों में सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय है। यह भी अश्वमेध के अश्व की रक्षा के लिये चला जायेगा। जिस लक्ष्मी निधि ने तपश्चर्या करके शतधृति को प्रसन्न कर लिया था और अस्त्रों के प्रयोग करने का अभ्यास किया था ।२७। इसने बहुत प्रकार के महान क्लिष्ट अस्त्रों के प्रयोग करने का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया है। उनके नाम ये हैं - ब्रह्मास्त्र-पाशुपत्यात्र-गरुड़ास्त्र- नाग नाम वाला अस्त्र-मायूर-नाकुल-रौद्र-वैष्णव मेघ सज्ञा वाला अस्त्र—वज्र—पर्वत नामक अस्त्र और वायव्य संज्ञा वाला अस्त्र इत्यादि महान् अस्त्रों का बहुत अच्छी तरह प्रयोग करना तथा उनका विसर्जन करना खूब अच्छी तरह से यह जानता है ।२८-२०। यह अपनी एक अक्षौहिणी सेना से समन्वित होकर शूर मुकुट भी अश्व की रक्षा के लिये जायेगा जोकि समस्त वैरियों के भंजन करने वाला है ।३०।

।। विद्युन्माली राक्षस का अश्वहरण ।।

गच्छत्सु रथिवर्येषु शत्रुघ्नादिषु भूरिषु ।
महाराजेषु सर्वेषु रथकोटियुतेषु च ।।१
अकस्मादभवन्मार्गे तमःपरमदारुणम् ।
यस्मिन्स्वीयो न पारक्यो लक्ष्यते ज्ञातिभिर्नरैः ।।२
रजसाव्यावृतं व्योम विद्युत्स्तनितसंकुलम् ।
एतादृशे तु सम्मर्दे सहाभयकरे ततः ।।३
मेघा वर्षन्ति रुधिरं पूयामेध्यादिकं बहु ।
अत्याकुला बभूवुस्ते वीराः परमवैरिणः ।।४
आकुलीकृतलोके तु किमिदं किमिति स्थितिः ।
तमोव्याप्तानि लोकानां चक्षूंषि प्रथितौजसाम् ।।५
जहाराश्वं रावणस्य सुहृत्पातालसस्थितः ।
विद्युन्मालीति विख्यातो राक्षसश्रेणिसंवृतः ।।६
कामगे सुविमाने तु सर्वायसनिषेविणि ।
आरूढोऽश्वं तु वीराणां भयंकुर्वञ्जहार हा ।।७

भगवान् शेष ने कहा—जिस समय में बड़े २ रथी लोग बहुत बड़ी संख्या में जा रहे थे तथा शत्रुघ्न आदि समस्त महाराजों ने अश्व की रक्षा के लिए गमन किया था तथा करोड़ों रथों से युक्त जा रहे थे इन सबके चले जाने पर मार्ग में अचानक ही परम दारुण अन्धकार छा गया था और वह अन्धकार ऐसा गहरा था कि जिसमें ज्ञाति वाले मनुष्यों को कोई भी अपना और पराया सूझ ही नहीं पड़ता था ।१-२। सम्पूर्ण आकाश रज से घिर गया था और उसमें विद्युत की चमक मेघों की गर्जना हो रही थी। इस प्रकार का समर्द महान् भयंकार हो गया था ।३। इसके अनन्तर उस समय में मेघों ने रुधिर की तथा पूय (मवाद) आदि अपवित्र बहुत से पदार्थों की वर्षा करना आरम्भ कर दिया था। ऐसी दशा में वे महान् समस्त शूर वीर भी अत्यन्त घबड़ा गये थे ।४।। उस समय सम्पूर्ण लोक एकदम बेचैन हो गया था

और किसी के भी समझ में नहीं आरहा था कि ऐसी स्थिति किस कारण से वन गई है और यह क्या है। बड़े २ प्रसिद्ध ओज वाले वीरों को भी आँखें तथा सब लोगों के नेत्र एकदम अन्धकार से व्याप्त हो गई थी।५। उस समय में पाताल लोक में रहने वाले रावण के एक मित्र ने जिसका विद्युन्माली–यह नाम प्रसिद्ध था और जो राक्षसों की श्रेणियों के संवृत्त था उस अश्व का हरण कर लिया था।६। कामना के अनुसार ही गमन करने वाले एक बहुत ही अच्छे विमान में, जोकि पूर्ण रूप से लौह के अवयवों द्वारा निर्मित किया हुआ था चढ़कर सब वीरों को महान् भय समुत्पन्न करते हुए उस विद्युन्माली ने उस अश्व का हरण कर लिया था।७।

मुहूर्तात्ततमो नष्टमाकाशं विमलं वभौ।
वीराः शत्रुघ्नमुख्यास्ते प्रोचु कुत्र हयोऽसि सः ॥८
ते सर्वे हयराजं तु लोकयन्तः परस्परम्।
ददृशुर्न यदावाहं हाहाकारस्तदाऽभवत् ॥९
कुत्राश्वो हयमेधस्य केन नीतःकुबुद्धिना।
इति वाचमवोचंस्ते तावत्स दनुजेश्वरः ॥१०
ददृशे सुभटैःसर्वैं रथस्थैः होर्यशोभितैः।
विमानवरमारूढै राक्षसाग्र्यैः समाव्रतः ॥११
दुर्मुखा विकरालास्या लम्वदंष्ट्रा भयानकाः।
राक्षसास्तत्र दृश्यन्ते सैन्यग्रासाय चोद्यताः ॥१२
तदा तं वेदयामासुःशत्रुघ्नं नृवरोत्तमम्।
हयो नीतो न जानीमःखे विमानविलासिना ॥१३
तमसाव्याकुलान्कृत्वा वीरानस्मान्समाययौ।
जग्राह नृपशार्दूल हयं कुरु यथोचितम् ॥१४

थोड़ी देर के बाद ही वह छाया हुआ घोर अन्धकार नष्ट हो गया था और सब आकाश एक दम साफ हो गया था। शत्रुघ्न जिनमें परम प्रमुख थे ऐसे सभी वीर आपस में कहने लगे कि वह अश्व कहाँ चला गया है।८। उस समय में वे सभी वीरगण आपस में मिलकर उस

अश्व को देखते फिर रहे थे किन्तु जब बहुत खोजबीन करने पर भी उस अश्वमेध के अश्व को नहीं देखा तो वहाँ पर बड़ा भारी हा हा कार छागया ।६। वे सभी लोग आपस में यही चर्चा कर रहे थे कि यह यज्ञ का अश्व कहां चला गया और किस दुष्ट बुद्धि वाले ने इसका हरण किया है । इसी बीच में वह दनुजेश्वर दिखलाई दिया था । उस समय में रथों में स्थित तथा शूर वीरता से परम शोभित सभी भटों ने उसे देखा था जोकि एक विमान पर समारूढ़ हो रहा था और बड़े २ प्रमुख राक्षसों से समावृत था ।१०-११। बुरे मुखों वाले, लम्बी दाढ़ों से युक्त और बहुत ही भयानक राक्षस वहाँ पर दिखलाई दे रहे थे जो वीरों की सम्पूर्ण सेना को ग्रसने के लिये बिल्कुल तैयार थे ।१२। उस समय में सबने परम श्रेष्ठ मानव शत्रुघ्न की सेवा में यह ज्ञापन किया था कि शायद इस आकाश में विमान द्वारा विलास करने वाले दुष्ट राक्षस ने यह अश्व ले दिया है—कुछ भी जाना नहीं जाता है ।१३। हे नृप शार्दूल ! हम समस्त वीरों को घोर अन्धकार से व्याकुल करके इसने ही अश्व का हरण किया है और यह यहाँ आगया है । अब आप जो भी उचित हो वह करिये ।१४।

शत्रुघ्नस्तद्वचःश्रुत्वा महारोषसमावृतः ।
कोऽस्त्येष राक्षसो यो मे हयं जग्रास वीर्यवान् ।।१५
विमानं तत्पतत्वद्य मद्वाणव्रजनिर्हयम् ।
पतत्वद्य शिरस्तस्य क्षुरप्रैर्मम वैरिणः ।।१६
सज्जीयन्तां रथाः सर्वेर्महाशस्त्रपूरिताः ।
यान्तु तं प्रतिसंहतुं योद्धारो वाजिहारिणम् ।।१७
इत्युक्त्वा रोषवान्राक्ष उवाच निजमन्त्रिम् ।
नयानयविदं शूरं युद्धकार्यविशारदम् ।।१८
मन्त्रिन्कथय के योज्या राक्षसस्य वधोद्यताः ।
महाशस्त्रा महाशूराः परमास्त्रविदुत्तमाः ।।१६
कथयाशु विचार्यैवं तत्करोमि भवद्वचः ।
वीरान्कथय तस्यैवं योग्याः सर्वास्त्रकोविदान् ।।२०

एतच्छ्रुत्वा तु सचिव वाह वाक्यं यथोचितम् ।
वीरान्रणवरे योग्यान्दर्शयस्तर सानतान् ।।२१

शत्रुघ्न को उन अपने साथी वीरों की यह वात सुनकर बड़ा भारा क्रोध उत्पन्न हुआ था और उसने कहा—यह ऐसा कौन-सा राक्षस है जो इतना वीर्य वाला है कि जिसने हमारा यज्ञ का अश्व हरण कर लिया है ।१५। वह आज ही मेरे वाणों के समूह से हत होकर विमान के सहित गिर जायेगा और मेरे तीखे वाणों के द्वारा उस वैरी का शिर भी कटकर आज ही गिर जायगा ।१६। महान् अस्त्र-शास्त्रों से परिपूर्ण करके सब वीर अपने रथों को तैयार कर लेवें और सभी वीर योधा-गण उस दुष्ट अश्व के हरण करने वाले शत्रु को मार डालने के लिये यहाँ से चले जावें ।१७। इतना कह कर क्रोध से लाल नेत्रों वाले शत्रुघ्न ने अपने मन्त्री से कहा था जो मन्त्री न्याय अन्याय के ज्ञान का बहुत बड़ा विद्वान् था-शूर ीर था-शूरवीर और युद्ध करने की कार्य प्रणाली का महान् मनीषी था ।१८। शत्रुघ्न ने कहा—हे मन्त्रिर ! अब आप मुझे यह वतलाइये कि इस दुष्ट राक्षस के वध करने को तैयार कौन से वीर नियोजित करने चाहिए जो इस काम को पूरा कर देवें ! ऐसे ही किन्हीं वीरों को वतलाइये जो महान् शस्त्रों के प्रयोग करने वाले हों, वहुत भारी शौर्य रखने वाले हों, और परम प्रमुख अस्त्रों के ज्ञान रखने वालों में अतिश्रेष्ठ हों ।। १९ ।। इसका निर्णय करके और विचार करके मुझे अति शीघ्र ही वतलाइये सो मैं आपके कथन के अनुसार ही सब कुछ करूँगा । इस पीति से जो सभी अस्त्रों के प्रयोग करने में दक्ष हों और योग्य हों उन वीरों को कह दो ।।२०।। यह सुन कर उस सचिव ने जो वहुत ही उचित था वह वाक्य कहा और रणक्षेत्र में श्रेष्ठ जो वीर वेग युक्त थे उनको दिखा भी दिया था ।२१।

जेतुं गच्छतु तद्रक्षः समत्रु विजयोद्यतः ।
महाशस्त्रास्त्रसंयुक्तः पुष्कलः परतासनः ।।२२

यथा लक्ष्मीनिधिर्वा तु शस्त्रसंघतमःश्रितः ।
करो तस्य यानस्म भङ्गं तीक्ष्णैःस्वसायकैः ।।२३

हनूमान्दुष्टकर्माऽत्र राक्षसैर्योधितुं क्षमः ।
करोतु मुखपुच्छाभ्यां ताडनं रक्षसां प्रभो ! ॥२४
वानरा अपि ये वीरो रणकर्मविशारदाः ।
गच्छन्तु तेऽखिला योद्धुं तव वाक्यप्रणोदिताः ॥२५
सुमदश्च सुगाहुश्च प्रतापाग्रचश्च सत्तमाः ।
गच्छन्तु सायकैस्तीक्ष्णैस्तान्योद्धुं राक्षसाधमान् ॥२६
भवानपि महाशस्त्रपरिवारो रथेस्थितः ।
करोतु युद्धे विजयं राक्षसं हन्तुमुद्यतः ॥२७
एतन्मम मत राजन्ये योधास्तत्प्रमर्दनाः ।
ते गच्छन्तु रणे शूराःकिमन्यैर्बहुभिर्भटैः ॥२८

सुमित ने कहा—शत्रुओं को ताप पहुँचाने वाले जो पुष्कल हैं वह महान् शस्त्र और अस्त्रों से सुसंयुक्त हैं तथा विजय प्राप्त करने के लिए भी उद्यत हैं वह इस दुष्ट राक्षस से समर करने के लिए उसे जीतने को जावें ॥२२॥ उसी भाँति जो लक्ष्मी निधि नाम वाले महान् वीर योधा है जोकि अनेक शस्त्रों के समुदाय से समन्वित हैं वह भी अपने परम तीक्ष्ण बाणों के द्वारा उस राक्षस के यान का भंग कर देता इस-लिये वह भी युद्ध करने के लिये चला जावे ।२३। श्री हनुमान यहाँ पर दुष्ट कर्म वाले हैं और राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिये पूर्ण क्षमता रखते हैं । हे प्रभो ! यह तो मुख और पूँछ इन दोनों से राक्षसों को ताड़ित करेंगे । २४ । रण कर्म्म के बहुत ही कुशल पण्डित समस्त बन्दर जो भी बड़े वीर वे सभी चले जावें और आपकी आज्ञा से प्रेरित होकर सब चले भी जाँयगे ।२५। उन कुछ प्रमुख वानरों के नाम ये हैं जैसे—सुमद–सुबाहु और प्रतापाग्रय–ये सब बहुत ही श्रेष्ठ हैं । ये सभी उन महान् पामर एवं अधम राक्षसों से युद्ध करने के लिए अपने २ तीक्ष्ण बाणों से अवश्य ही उन्हें मार डालेंगे, ये सब जावें ।२६। आप भी महान् शस्त्रों के परिवार वाले होकर रथ में विराज-मान् होवें और उस राक्षस का हनन करने के हेतु प्रस्तुत हो जावें । आप युद्ध में विजय प्राप्त करें ।२७। मेरा तो हे भगवन् ! यही मत

है । क्षत्रियों में बड़े प्रमर्दन योधा हैं । वे सभी शूरवीर युद्धस्थल में जाने चाहिए । बाकी अन्य वहुत सारे भटों की भीड़ करने की क्या आवश्यकता है ।२८।

इत्युक्तवति वीराग्रये ऽमात्ये सुमतिसंज्ञके ।
शत्रुघ्नः कथयामास वरीन्सङ्ग्रामकोविदान् ।।२९
भो वीराःपुष्कलाद्या ये सवशास्त्रास्त्रकोविदाः ।
ते वदन्तु प्रतिज्ञां वै मत्पुरो राक्षसार्दने ।।३०
कृत्वा प्रतिज्ञांविपुलाँ स्वपराक्रमशोभिनीम् ।
गच्छन्तु रणमध्ये हि भवन्तो बलसंयुताः ।।३१
इति वाक्यं सनाकर्ण्य शत्रुघ्नस्य महावलाः ।
स्वां स्वां प्रतोज्ञ महतीं चक्रुस्ते तेजस न्तिताः ।।३२
तत्रादौ पुष्कलो वीरः श्रुत्वा वाक्यमहीपतेः ।
परमोत्साहसम्पन्नः प्रतिज्ञांमूचिवानिमाम् ।।३३
शृणष्व नृपशार्दूल ! मत्प्रतिज्ञां पराक्रमात् ।
विहिता सर्वलोकानां शृण्वतां परमाद्भुताम् ।।३४
चेन्न कुर्याक्षरप्रागैस्तीक्ष्णैः कोदण्डनिर्गतैः ।
दैत्यं मूर्च्छासमाक्रान्तं कीर्णकेशाकुलाननम् ।।३५
कन्यास्वभोवतु र्यत्पापं यत्पापं देवनिन्दने ।
तत्पापं मम वै भूयाच्चेत्कुर्या स्ववचोऽनृतम् ।।३६

इस प्रकार से वीरों में परम अ..णी सुमति नाम वाले महामन्त्री के कहने पर शत्रुघ्न ने संग्राम के महान् कुशल वीरों से कहा था ।२९। हे पुष्कल प्रभृति वीरगणो ! आप जो भी सब प्रकार के शस्त्रास्त्रों में प्रावीण हैं वे सभी मेरे सामने उस दुष्ट राक्षस के प्रमर्दन करने की प्रतिज्ञा करो ।३०। अपने पराक्रम को सुशोभित करने वाली विपुल प्रतिज्ञा करके बल से समन्वित होकर आप सभी लोग वहाँ रण भूमि के मध्य में जावें ।३१। शत्रुघ्न के महान् बल पराक्रम वाले इस प्रकार के वचन को सुन कर वे सब तेज से युक्त होकर अपनी-अपनी

बहुत बड़ी प्रतिज्ञा करने लगे थे ॥३२। उनमें सब से आदि में पुष्कल वीर ने राजा के वाक्य या श्रवण करके परमाधिक उत्साह से सम्पन्न होकर इस प्रकार प्रतिज्ञा की थी ॥३३॥ पुष्कल ने कहा—हे नृप शार्दूल ! पराक्रम से आप मेरी प्रतिज्ञा को सुनिये । जिसको सभी लोकों को सुनाते हुए मैं परम अद्भुत यह प्रतिज्ञा करता हूँ ॥३४॥ अत्यन्त तीक्ष्ण शरों के द्वारा यदि मैं अपने धनुष से छोड़े हुए बाणों से उस दुष्ट दैत्य को मूर्च्छित नहीं कर दूँ और कीर्ण केशों से आकुल मुख वाला न बना दूँ तो जो देवों द्वारा निन्दित अपनी कन्या का उपभोग करने से जो महापाप होता है वही पाप मेरे इस मिथ्या वचन का मुझे लगे और उसका दण्ड भोगने का मैं अधिकारी बन जाऊँगा ॥३५-३६॥

यदि मद्बाणनिर्भिन्नाः सैनिकाः सुमहाबलाः ।
न प्रतन्ति महाराज ! प्रतिज्ञां तत्र मे शृणु ॥३७
विष्णवीशयोर्विभेद यः शिवशक्त्योः करोत्यपि ।
तत्पापं मम वै भूयाच्चेन्न कुर्यामृतं वचः ॥३८
सर्वं मद्वाक्यमित्युक्तं रघुनाथपदाम्बुजे ।
भक्तिर्मे निश्चलायाऽस्ति सवसत्यं करिष्यति ॥३९
पुष्फलस्य प्रतिज्ञां तां श्रुत्वा लक्ष्मीनिधिर्नृपः ।
प्रतिज्ञां व्यदधात्शत्यां स्वपराक्रमशोभिताम् ॥४०
वेदाना निन्दनं श्रुत्वा आस्ते यो मौनिवन्नरः ।
मानसे रोचयेद्यस्तु सर्वधमंवहिष्कृतः ॥४१
ब्राह्मणो यो दुराचारो रसलाक्षादिविक्रयो ।
विक्रीणाति च गां मूढो धनलोभेन मोहितः ॥४२
म्लेच्छकूपोदकं पीत्वा प्रायश्चित्तं तु नाचरेत् ।
तत्पापं मम वै भूयाद्विमुखश्चेभ्दवाम्यहम् ॥४३

हे महाराज ! यदि मेरे बाणों से छिन्न-भिन्न होकर ये महान् बल वाले सैनिक गिर जावेंगे तो फिर मेरी जो प्रतिज्ञा है उसका भी आप श्रवण कर लीजिएगा । वह यह है कि जो कोई भगवान् विष्णु और महादेव इन दोनों में विभेद किया करता है अर्थात् इन दोनों महा—

विभूतियों को पृथक् समझता है और जो भगवान् शिव तथा जगदम्बा शक्ति इन दोनों को भिन्न समझा करता है इसके करने का जो महा पाप होता है वही पाप मुझे भी लगे यदि मेरा कहा हुआ वचन सत्य न होवे ।३७-३८। यह सब मेरा वाक्य जो भी मैंने कहा है वह जो मेरी भक्ति श्रीरघुनाथ जी के पादार विन्द में निश्चल है वही इसको पूर्ण सत्य करेगी ।३९। पुष्कल की हुई इस प्रतिज्ञा को सुन कर फिर लक्ष्मी निधि राजा ने अपने बल पराक्रम से सुशोभित सत्य प्रतिज्ञा की थी ।४०। राजा लक्ष्मीनिधि ने कहा—वेदों की निन्दा का श्रवण करके भी जो मनुष्य एक मौनी की भाँति खामोश रहता है और मन में जिसे अच्छा रुचिकर प्रतीत होता है वह सभी धर्मों से बहिस्कृत होता है ।४१। जो ब्राह्मण दूषित आचार वाला हो और रस तथा लाक्षा आदि पदार्थों का विक्रय करने वाला हो, तो मूढ़ गाय को बेचता है और धन के लोभ से मोहित है ।४२। जो म्लेच्छ जाति के कुए का जल पीकर भी कोई उस दोष के निवारणार्थ प्रायश्चित नहीं किया करता है वही उपर्युक्त पाप कर्मों के करने से जो होता है मुझे भी लगे यदि मैं अपनी की हुई प्रतिज्ञा से किसी प्रकार भी विमुख हो जाऊँ ।४३।

तत्प्रतिज्ञामथाश्रुत्य हनूमान्नणकोविदः ।
रामाङ्घ्रिस्मरणं कृत्वा प्रोवाच वचनं शुभम् ।।४४
मत्स्वामी हृदये नित्यं धेयो वै योगिभिर्मुहुः ।
यं देवाः सासुराःसर्वे नमन्ति मणिमौलिभिः ।।४५
रामःश्रीमान्योऽयोध्यायाः पतिर्लोकेशपूजितः ।
तं स्मृत्वा यद्ब्रुवे वाक्यं तद्वै सत्य भविष्यति ।।४६
राजन्कोऽयं लघुर्दैत्यो दुर्बलःकामगेस्थितः ।
कथयाशु मया कार्यमेकेन विनिपातनम् ।।४७
मेरुं देवेन्द्रसहितं लाङ्गूलाग्रेण तोलये ।
जलधिं शोषये सर्वं सांवत वा पिबाम्यहं ।।४८

राजःश्रीरघुनाथस्य जानक्याः कृपया मम ।
तन्नास्ति भूतले राजन्यदसाध्यं कदा भवेत् ॥४९
एतद्वाक्यं मयाप्रोक्तमनृतंस्याद्यदि प्रभो !
तदैव रघुनाथस्य भक्तिदूरो भवाम्यहम् ॥५०

लक्ष्मीनिधि की प्रतिज्ञा को सुनकर युद्धविद्या के महा पण्डित हनुमान ने श्रीराम के चरणकमल का मन में सर्व प्रथम स्मरण किया था फिर इसके उपरान्त यह शुभ वचन उन्होंने कहे थे ।४४। योगिजनों के द्वारा बारम्बार जो ध्यान करने के योग्य हैं वही मेरे स्वामी श्रीराम है ज़ो मेरे हृदय में सर्वदा विराजमान रहते हैं । जिनको असुरों के सहित समस्त देवगणमणियों से भूषित मस्तकों से प्रणाम किया करते हैं वह श्रीराम अयोध्या के स्वामी हैं और लोकपतियों के द्वारा वन्द्यमान है । उनका स्मरण करके ही जो वचन मैं बोलता हूँ वह सभी वचन सत्य होगा ।४५-४६। हे राजन् ! यह विचारा एक छोटा सा दैत्य क्या चीज है जोकि अत्यन्त दुर्बल है और कामग विमान में स्थित है । आप कहें तो मैं इसका एक ही के द्वारा विनिपात कर दूँ ।४७। देवेन्द्र के सहित इस मेरु पर्वत को अपनी पूँछ से अधर उठा लूँ-इस महासागर का शोषण कर दूँ—अथवा इसके समस्त जल सहित पान कर लूँ ।४८। राजाधिराज श्रीरघुनाथजी और जगज्जननी जानकी जी की कृपा से मेरे लिये इस भूतल में ऐसी कोई भी कार्य नहीं है जो किसी भी समय में असाध्य होवे ।४९। यह जो मैंने वाक्य कहा है हे प्रभो ! यदि यह मेरा वचन असत्य हो जावे तो मैं उसी समय में श्रीरघुनाथ जी की भक्ति से दूर ही जाऊँ ।५०।

यःशूद्रः कपिलां गां वै पयोबुद्धयाऽनुपालयेत् ।
तस्य पापं ममैवास्तु चेत्कुर्यामनृतंवचः ॥५१
ब्राह्मणीं गच्छते मोहाच्छूद्रः कामविमोहितः ।
तस्य पाप ममैवास्तु चेत्कुर्यामनृतंवचः ॥५२
यद्घ्राणान्नरक गच्छेत्स्पर्शनाच्चापि रौरवम् ।
तां पिबेन्मदिरां यो वा जिह्वास्वादेन लोलुपः ॥५३

तस्य यज्जायते पापं तन्ममैवास्तु निश्चितम् ।
चेन्नकुर्यां प्रतिज्ञातं सत्यं रामकृपावलात् ॥५४
एवमुक्ते महावीरे र्योद्धारस्तरसायुताः ।
चक्रु:प्रतिज्ञां महतीं स्वपराक्रमशालिनीम् ॥५५
शत्रुघ्नोपि व्यधात्तत्र प्रतिज्ञां पश्यता नृणाम् ।
साधु साधु प्रशंसन्वै तान्वीरान्युद्धकोविदान् ॥५६

जो कोई शूद्र किसी कपिल गाय को दूध प्राप्त करने की बुद्धि से अनुपालन करता है उसको जो पाप होता है वही पाप मुझे भी लगे यदि मेरा कहा हुआ वचन झूठा हो जावे ॥५१॥ काम से विशेष मोहित होकर जो कोई शूद्र किसी ब्राह्मणी का मोह से अभिगमन करता है उसको जो महापाप होता है वही पाप मुझे भी हो यदि मेरा वचन असत्य हो जावे ॥५२॥ जिसके घ्राण करने से नरक का निवास होता है और जिसके स्पर्श करने से भी रौरव नरक की प्राप्ति होती है उस मदिरा को जो कोई पुरुष जिह्वा के आस्वादन का लोभी होकर पान किया करता है उसको जो पाप लगता है वही पाप निश्चित रूप से मुझे भी लग जावे यदि मैं श्रीराम की कृपा के बल से अपने प्रतिज्ञा किये हुए वचन को सत्य न कर दूं ।५३-५४। इस प्रकार से महावीर के कहे जाने पर सभी योद्धागण बड़े वेग से युक्त होकर अपने अपने पराक्रम से शोभा वाली प्रतिज्ञाएं करने लगे ।५५। इसके अनन्तर शत्रुघ्न ने भी सब मनुष्यों के देखते हुए अपनी प्रतिज्ञा की थी । बहुत अच्छा - बहुत अच्छा—इस प्रकार से युद्ध कुशल समस्त वीरों की अत्यधिक प्रशंसा भी की थी ।५६।

कथयामि पुरो वः स्वा प्रतिज्ञा सत्त्वशोभिताम् ।
तच्छ्रृण्वन्तु महाभागा युद्धोत्साहसमन्विताः ॥५७
केत्तस्य शिर आहत्य पातयामि न सायकैः ।
विमानाच्च कबन्धाच्च भिन्नं च भूतले ॥५८
यत्पापं कूटसाक्ष्येण यत्पापं स्वर्णचौर्यतः ।
यत्पापं ब्रह्मनिन्दाया तन्ममास्त्वद्य निश्चयात् ॥५९

इति शत्रुघ्नसद्वाक्यं श्रुत्वा ते वीरपूजिताः ।
धन्योऽसि राघवभ्रातः ! कस्त्वदन्यो वदेदिदम् ॥६०
त्वया वै निहतोदैत्यो देवदानदुःखदः ।
लवणो नाम लोकेश ! मधुपुत्रो महाबलः ॥६१
कोऽयं वं राक्षसो दुष्ठः कचास्य बलमल्पकम् ।
करिष्यसि क्षणादेव तस्य नाशं महामते ! ॥६२
इत्युक्त्वा ते महावीराः सज्जीभूता रणाङ्गणे ।
प्रतिज्ञाँ स्वामृतांकर्तुं ययुस्ते राक्षसमुदा । ६३

शत्रूघ्न ने कहा अब मैं सत्य से शोभित अपनी प्रतिज्ञा भी आप सबके समक्ष में करता हूँ । हे महान् भाग्य वालो ! आप सब उस मेरी प्रतिज्ञा को भी श्रवण कर लेवें क्योंकि आप सभी तो इस समय में युद्ध करने के उत्साह में भरे हुए हैं ।५७। यदि मैं अपने छोड़े हुए बाणों से उसका मस्तक भूमि पर काटकर न गिरा दूँ और विमान से तथा उसके कबन्ध से इस भूतल में छिन्न-भिन्न न कर दूँ तो झूठी गवाही देने पर और सुवर्ण की चोरी करने पर जो भी पाप होता है तथा ब्राह्मण की निन्दा करने से जो महापाप लगता है वही पाप निश्चय रूप से मुझे भी आज होवे ॥५८-५९॥ इस प्रकार के शत्रुघ्न द्वारा कहे हुए अच्छे वाक्य को उन पूजित सब वीरों ने सुना था और वे सब कहने लगे हे श्रीराघव के भाई ! आप परमधन्य हैं आपके अतिरिक्त इस जगती तल में अन्य कोई भी नहीं है जो इस तरह के वचन कह सके ।६०। हे लोकों के स्वामिन् ! आपने ही महान् बल वाला मधु का पुत्र लवण का वध किया था जो देवगण और दानवगण सभी को महान् दुःख देने वाला था । जिस दैत्य का हनन आपने किया था उसे अन्य कोई भी मारने वाला नहीं था ।६१। यह विचार दुष्ट राक्षस क्या चोज है और इसका कितना थोड़ा बल-पराक्रम है । आप इसका नाश क्षण मात्र में ही कर देंगे क्योंकि आप में महतीमति विद्यमान है ।६२। इतना कह कर वे सब महान् वीरगण रणाङ्गण में सुसज्जित हो गये थे । अपनी-

अपनी प्रतिज्ञाओं को पूर्ण सत्य करने के लिए वे सभी परम प्रसन्नता के साथ युद्ध क्षेत्र में चले गये थे ।६३।

रथैःसदश्वैःशोभाढ्यैःसर्वशस्त्रास्त्रपूरितैः ।
नानारत्नसमायुक्तैर्ययुस्ते राक्षसाधमम् ॥६४
ताःदृष्ट्वा कामगेयाने स्थितः प्रोवाच राक्षसः ।
मेघगम्भीरयावाचा तर्जयन्निव भूरिशः ॥६५
स आहतः कपीन्द्रेन चपेटाभिरितस्ततः ।
व्यथियो व्यसृजन्मातां सर्वलोकभयङ्करीम् ॥६६
तदा व्याकुलितालोकाःपरस्परभयाकुलाः ।
पलायनपराजाता महोत्पातममसत ॥६७
तदा शत्रुघ्न आयातो रथे स्थित्वा महायशाः ।
श्रीरामस्मरणं कृत्वा चापे सन्धाय सायकान् ॥६८
तां मायां स विधूयाथ मोहनास्त्रेण वीर्यवान् ।
शरधाराः किरन्व्योम्नि ववर्ष समरेऽसुरम् ॥६९

भगवान् शेष ने कहा—जिसमें बहुत अच्छ घोड़े जुते हुए थे और सभी प्रकार के बढ़िया अस्त्र-शस्त्रों से परिपूर्ण थे तथा अनेक मूल्यवान् रत्नों से समन्वित थे ऐसे रथों के द्वारा वे सभी वीर योद्धागण उस अधम राक्षस पर आक्रमण करने के लिये वहाँ से तुरन्त ही चले गये थे ।६४। कामना के अनुसार ही गमन करने वाले यान में बैठे हुए उस राक्षस ने इन सबको देखा था और रथ स्वरूप विमान पर बैठे हुए ही उस राक्षस ने उनसे कहा था और मेघ के समान परम गम्भीर रूप से गर्जना करने लगा था ।६५। वह हनुमान द्वारा आहत किया गया तो उसने व्यथित होकर सब लोकों को भय देने वाली माया उत्पन्न कर डाली ।६६। उस माया से भारी उत्पात होने लगे, जिन्हें देख कर सभी व्याकुल हो कर इधर-उधर भागने लगे ।६७। तब शत्रुघ्न ने वहाँ आकर भगवान् राम का स्मरण करते हुए धनुष पर बाण चढ़ाया ।६८। उस महापराक्रमी मोहनास्त्र से किरणों के समान बाणों की धारा प्रवाह झड़ी लग गई, जिससे राक्षसी माया पूर्णतः नष्ट हो गई ।६९।

शूलहस्तं समायान्त विद्युन्मालिनमाहवे ।
सायकैःप्रहरत्तस्य भुजे त्वर्धंशशिप्रभैः ॥७०
तैर्बाणैश्छिन्नहस्तः स शिरसा हन्तुमुद्यतः ।
हतोऽसि याहि शत्रुघ्न कस्त्वां त्राता भविष्यति ॥७१
इति ब्रुवाणं तरसा चिच्छेद शितसायकैः ।
मस्तकं तस्य बलिनःशूरस्य सहकुण्डलम् ॥७२
हतशेषाययुःसर्वे राक्षसा नाथवर्जिताः ।
शत्रुघ्नं प्रणिपत्याथ ददुर्वाजिनमाहृतम् ॥७३
ततो वीणानिनादाश्च शंखनादा समन्ततः ।
श्रूयन्ते शूरवीराणां जयनादा मनोहराः ॥६४

तब हाथ से शूल लेकर विद्युन्माली शत्रुघ्न की ओर लपका, परन्तु उन्होंने अपने अर्धचन्द्र के समान प्रभा वाले बाण से राक्षस की भुजा पर प्रहार किया ।७०। उस बाण से छिन्न हुए हाथ वाले के शिर को काटने के लिए उद्यत शत्रुघ्न ने कहा कि अरे दुष्ट ! अब मैं तेरा वध किये देता हूँ, देखूँ तुझे कौन बचाता है ।७१। यह कह कर उन्होंने उस राक्षस के कुण्डलयुक्त मस्तक को काट डाला ।७२। शत्रुघ्न ने शेष बचे हुए राक्षसों को भी निर्मूल कर दिया ।७३। तब वीणा और शंख-नाद के सहित वीरों का जयघोष गूँज उठा ।७४।

-❋-

॥ वाल्मीकि आश्रम में लव का अश्व-बन्धन ॥

गतः प्रातः क्रिया कर्तुं समिधस्तत्क्रियार्हकाः ।
आनेतुं जानकीसूनर्वृतो मुनिसुतैर्लवः ॥१
ददर्श तत्र यज्ञाश्वं स्वर्णपत्रेण चिह्नतम् ।
कुङ्कुमागरुकस्तूरीदिव्यगन्धे वासितम् ॥२
विलोक्य जातकुतुको मुनिपुत्रानुवाच सः ।
अर्वा कस्य मनोवेगः प्राप्तो देवान्मदाश्रमम् ॥३

आगच्छन्तु मया सार्धं प्रेक्षन्तां मा भयं कृथाः ।
इत्युक्त्वा स लवस्तूर्णं वाहस्य निकटे गतः ॥४
स रराज समीपस्थो वाहस्य रघुवंशजः ।
धनुर्बाणधरः स्कन्धे जयन्त इव दुर्जयः ॥५
गत्वा मुनिसुतैः सार्धं वाचयामास पत्रकम् ।
भालस्थित स्पष्टवर्णराजिराजितमुत्तम् ॥६
विवस्वतो महावंशः सर्वलोकेषु विश्रुतः ।
यत्र कोऽपि परावाधी न परद्रव्यलम्पटः ॥७

शेष मुनि भगवान् ने कहा जानकी जी के पुत्र लव अन्य मुनियों के पुत्रों से परिवृत्र होकर इसके अनन्तर प्रातःकाल के समय में क्रिया करने के लिए तथा समिधाओं का आहरण करने के लिये जो कि उनकी क्रिया की उपयोगी वस्तु थी वाहिर अरण्य में गए हुए थे ।१। वहाँ लव ने वह अश्वमेध यज्ञ का अश्व देखा था जो कि स्वर्ण के मत्र से चिन्हों वाला था। उस अश्व के अङ्ग कुकुम—अगरु-कस्तूरी और दिव्य गन्ध से सुवासित हो रहे थे ।२। ऐसे उस यज्ञ के अश्व को देखकर लव को बड़ा कौतुक हृदय में हुआ था और वह मुनि कुमारों से वोला—यह किसका अश्व है जिसका वेग मन के तुल्य है और दैववश हमारे आश्रम से यह आकर में प्राप्त हो गया है ।३। हे मुनिकुमारो ! आप सव मेरे साथ आइये और देखिये किसी प्रकार का भय मन में मत करो। यह कहकर वह जानकीनन्दन लव तुरन्त ही उस अश्व के समीप में चला गया था ।४। वह रघुवंश में जन्म ग्रहण करने वाला लव जब उस अश्व के समीप में स्थित हुआ था वहुत शोभित हुआ था। धनुष और बाण उसके कन्धे पर था और जयन्त की भाँति वह दुर्जय था ।५। मुनि पुत्रों के साथ जाकर उसने उस पत्र को वांचा था जो कि उसके भाल में संलग्न हो रहा था और स्पष्ट वर्णों को पंक्तियों से शोभित एवं उत्तम था ।६। भगवान् विवस्वान् का महान् वंश है जो कि समस्त लोकों में प्रसिद्ध है। जहां पर भी कोई परावाधी हो और पर द्रव्य लम्पट न हो ।७।

सूर्यवंशध्वजो धन्वी धनुर्दीक्षागुरुर्गुरुः ।
य देवा सानुगाः सर्वे नमन्ति मणिमौलिभिः ।।८
तस्यात्मजो वीरबलदर्पहारो रघूद्वहः ।
रामचन्द्रो महाभागः सर्वशूरशिरोमणिः ।।६
तन्माता कोशलनृपपुत्री रत्नसमुद्भवा ।
तस्याः कुक्षिभव रत्न रामशत्रुक्षयङ्करः ।।१०
करोति हयमेध स स ब्राह्मणेन सुशिक्षितः ।
रावणा भधविप्रेन्द्रवधपापापनुत्तये ।।११
मोचितस्तेन वाहना मुख्योऽसौ याज्ञिकोहयः ।
महाबलपरीवारपरिखाभिः सुरक्षितः ।।१२
तत्र..कोऽस्ति मद्भ्राता शत्रुघ्ना लवणान्तकः ।
हस्त्यश्वरथपादातसंगघसेनासमन्वितः ।।१३
यस्य राज्ञ इतिश्रेष्ठो मानोजायेत्स्वकान्मदात् ।
शूरावय धनुर्धारिश्रेष्ठा वयमहोत्कटाः ।।१४
ते गृह्णान्तु बलाद्वाहं रत्नमालाविभूषितम् ।
मनोवेगं कामजवं सर्वगत्याधिभास्वरम् ।।१५

जो सूर्यवंश का ध्वज—धनुपधारी-धनुर्विद्या की दीक्षा का गुरु है जिसको समस्त देवगण मणियुक्त मस्तक के बल नमन किया करते हैं ।८। उसका आत्मज-वीरों के बल के वर्प का हरण करने वाले-रघूद्वह श्रीरामचन्द्र महान् भाग्य वाले और सब शूरों के शिरोमणि हैं ।६। उनकी माता कोशल देश के नृप की पुत्री रत्नों से समुद्भव वाली है । उसकी कुक्षि से उत्पन्न होने वाला रत्न राम शत्रु भयंघर हैं ।१०। वह राम ब्राह्मण के द्वारा भली भाँति शिक्षित होकर अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं । वह यज्ञ रावण नामक विप्रेन्द्र के वध से होने वाले पापों के निराकरण के लिए ही किया जा रहा है कि ब्रह्म हत्या का दोष दूर हो जावे ।११। उन्हीं श्रीरामचन्द्र भगवान् ने वाहों में परम प्रमुख याज्ञिक अश्व मोचित किया है जो बड़ी भारी सेना के सहित परिवार की परिखाओं से पूर्णतया सुरक्षित है ।१२। उस अश्व का रक्षक मेरा भाई

शत्रुघ्न है जिसने लवणासुर का वध किया। था शत्रुघ्न के साथ हाथी अश्व-रथ पैदलों के संघ वाली सेना भी है ।१३। जिस राजा का यह इस प्रकार का श्रेष्ठ अश्व है उसको अपने मद से जिसका मान समुत्पन्न हो वे बल पूर्वक इसको ग्रहण करें। यह रत्न माला से विभूषित-मन के तुल्य वेग वाला-काम के सदृश जव से युक्त और सर्व गति से अधिभास्वर है हम सब शूर धनुर्धारी श्रेष्ठ और महान् उत्कट इसकी रक्षा के लिये सन्नद्ध हैं ।१४-१५

ततो मोचयिता भ्राता शत्रुघ्नो लीलया हठात् ।
शरासनविनिर्मुक्तवत्सदन्तकृतव्यथात् ॥१६
ये क्षत्रियाः क्षत्रियकन्यकाया जाताश्च सत्क्षेत्रकुलेषु सत्सु ।
गृणन्तु ते तद्विपरीतदेहा नमन्तु राज्य रघवे निवेद्य ॥१७
इति संवाच्य कुपितो लवः शस्त्रधनुर्धरः ।
उवाच मुनिपुत्रश्चास्तान्नोषगद्गदभाषितः ॥१८
पश्यत क्षिप्रमेतस्य धृष्टत्वं क्षत्रियस्य वै ।
लिलेख यो भालपत्रे स्वप्रतापबलं नृपः ॥१६
कोऽसौ रामः क्व शत्रुघ्नः कीटाः स्वल्पबलाश्रिताः ।
क्षत्रियाणाँ कुले जाता एते न वयुत्तमाः ॥२०
एतस्य वीरसूर्माता जानकी न कुशप्रसूः ।
या रत्नं कुशसज्ञं तु दधाराग्निमिवारणिः ॥२१

जो भी इस अश्व को पकड़ेगा उससे छुड़ाने को भाई शत्रुघ्न उपस्थित है जो लीला से ही या हठ से छुड़ा लेंगे। शरासन से छोड़े हुए वत्सदन्तों के द्वारा पीड़ित करके इस अश्व का मोचन कर लिया जायगा ।१६। जो क्षत्रिय क्षत्रिय की कन्या में उत्पन्न हुए है और जिनकी उत्पत्ति का क्षेत्र सत् है एव कुल भी अच्छा है वे उनके विपरीत देह वाले क्षत्रिय श्रीराम की सेवा में अपना राज्य समर्पित करके उनके चरणों में प्रणाम करें।१७। इस प्रकार के सन्देश को बाँच कर शस्त्र एवं धनुष को धारण करने वाले कुमार लव को बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया था। कुमार लव ने शेष से सद्गद भाषण करने वाले होते हुए

उन मुनि कुमारों से कहा—।१८। इस क्षत्रिय की धृष्टता को आप लोग देखें और शीघ्रता करें जिसके भाल पात्र का राजा होकर अपने प्रताप एवं बल को लिख दिया है ।१९। यह कौन राम और यह शत्रुघ्न कहाँ पर हैं ? स्वल्प बल का आश्रय लेने वाले ये कीट हैं। ये क्षत्रियों के कुल में उत्पन्न हुए हैं क्या हम उत्तम नहीं हैं ? ।२०। इसकी वीर का प्रसव करने वाली माता जानकी हैं और यह कुश से प्रसूत नहीं हुआ है जिसने कुश संज्ञा वाला रत्न अग्नि को भरणि की भाँति धारण किया था ।२१।

इदानीं क्षत्रियत्वादि दर्शयिष्यामि सर्वतः ।
यदि क्षत्रियभुरेष भविष्यति च शत्रुहा ।।२२
गृहीष्यति माया बद्धं वाहयज्ञक्रियोचितम् ।
नोचेत्क्षत्रत्वमुन्मुच्य कुशस्य चरणार्चकः ।।२३
अधुना मद्धनुर्मुक्तैः शरैः सुप्तो भविष्यति ।
अन्ये ये च महावीरा रणमण्डल भूषणाः ।।२४
इत्यादिवाक्यमुच्चार्यं लवो जग्रहतं हयम् ।
तृणीकृत्य नृपान्सर्वाश्चापवाणधरोवरः ।।२५
तदा मुनिसुताः प्रोचुर्लवं हयजिहार्षकम् ।
अयोध्यानृपती रामो महावलपराक्रमः ।।२६
तस्य वाहं न गृह्णाति शक्रोऽपि स्वबलोद्धतः ।
मा गृहाण श्रृणुष्वेदं मद्वाक्यं हितसंयुतम् ।।२७
इत्युक्तं स श्रुतौ दृत्वा जगाद स द्विजात्मजान् ।
यूयं बलं न जानीथ क्षत्रियाणाँ द्विजोत्तमाः ।।२८

मैं इसी समय में सब प्रकार से क्षत्रियत्वादि को दिखला दूगा। यदि यह क्षत्रिय से समुत्पन्न होने वाला है तो यह शत्रु को हनन करने वाला हो जायगा ।२। मेरे द्वारा बांधे हुए इस यज्ञ कार्य के योग्य वाह को ग्रहण कर लेगा ! नहीं तो क्षत्रियत्व का उन्मोचन करके कुश के चरणों का अर्चक होगा ।।२३।। अभी मेरे धनुष से छोड़े हुए शरों से सुप्त हो जायगा। और जो अन्य महान् वीर हैं जोकि रण मण्डल

के भूषण स्वरूप हैं वे भी सब मेरे वाणों की मार से भूमि में प्रसुप्त हो जायेंगे। इस प्रकार कहते हुए लव ने उस अश्व को ग्रहण कर लिया चाप और बाणों को धारण करने वाले वीर ने उन रक्षा करने वाले राजाओं को एक तृण के समान समझ कर उनकी कुछ भी परवाह नहीं की थी।२४-२५। उस समय में मुनि कुमारों ने अश्व के हरण करने वाले कुमार लव से कहा था— अयोध्या के महाराज श्रीराम महान् बल और पराक्रम वाले नृप हैं।२६। उनके वाह को अपने बल पराक्रम से समुद्धत इन्द्र भी नहीं ग्रहण करता है। अतएव इस श्रीराम के यज्ञीय अश्व को तुम ग्रहण मत करो और हमारा हित समन्वित वचन श्रवण करो।२७। इस प्रकार के कथन को उसने श्रुतिगत करके वह कुमार लव उन द्विजों के आत्मजों से बोला—हे द्विजों में उत्तमो! आप लोग क्षत्रियों के बल-पराक्रम को नहीं जानते हैं।२८।

क्षत्रिया वीर्यशौण्डीर्या द्विजा भोजनशालिनः।
तस्माद्यूयं गृहे गत्वा भुञ्जन्तु जननीहृतम् ॥२९
इत्युक्तास्तेऽभवंश्तूष्णी प्रेक्षन्तस्तत्पराक्रमम्।
लवस्य मुनिपुत्रास्तेसन्तस्थुर्दूरतोबाहिः ॥३०
एवं व्यतिकरे वृत्ते सेवकास्तस्य भूपतेः।
आयातास्तं हयं बद्धं दृष्ट्वा प्रोचुस्तदालवम् ॥३१
ववन्ध को हयमहो रुष्टः कस्यः च धर्मराट्।
को बाण व्रजमध्यस्थः प्राप्स्यते परमां व्यथाम् ॥३२
तदा लवो जगादाशु मया बद्धोऽश्व उत्तमः।
यो मोचयति तस्याशु रुष्टोभ्राता कुशो महान् ॥३३
यमः करिष्यति किमु ह्यागातोऽपि स्वयं प्रभुः।
नत्वा गमिष्यति क्षिप्रं शरवृष्टया सुतोषितः ॥३४
इति वाक्यं समाकर्ण्य बालोऽयमिति तेऽब्रवन्।

समागता मोचयितुं हयं बद्धं तु ये हरेः ॥३५

तान्वै मोचयितुं प्राप्ताञ्छत्रुघ्नस्य च सेवकान् ।
कोदण्डं करयोर्धृत्वा क्षुरप्रान्समम्मुचत् ।।३६
ते च्छिन्नबाहवः शोकाच्छत्रूघ्नं प्रतिसङ्गताः ।
पृष्ठस्ते जगदुः सर्वं लवात्स्वभुजकृन्तनम् ।।३७

जो क्षत्रिय होते हैं वे वीर्य शौण्डीर्य हुआ करते हैं और जो द्विज होते हैं वे तो केवल भोजन करने की ही शोभा से सुसम्पन्न हुआ करते हैं। इसलिए आप लोग तो अपने-अपने घरों में जाओ और जननी देवे उसे जाकर खाओ-पीओ ॥२६॥ इस प्रकार से कहे जाने पर वे मुनि कुमार सब चुप हो गये थे और उस कुकार लव के वल-पराक्रम को देख रहे थे। वे मुनि पुत्र लव कुमार से दूर वाहिर जाकर संस्थित हो गये थे ।३०। इस प्रकार के इस व्यतिकर के हो जाने पर राजा के जो सेवक थे वे वहाँ पर आये और उन्होंने उस अश्व को वहाँ बंधा हुआ देखकर कुमार लव से उन्होंने कहा था ।३१। अहो ! यह अश्व यहाँ किसने बाँध लिया है। किसके ऊपर आज धर्मराज रुष्ट हो गया है अर्थात् किसकी मौत निकट आ गई है ? कौन ऐसा है जो वाणों के समूह के मध्य में परमाधिक व्यथा भोगना चाहता है अर्थात् किसको वाणों की मार खानी है ।३२। उसी समय कुमार लव ने कहा—यह उत्तम अश्व यहां पर मैंने वाँध लिया है जो इसको आज छुड़ाने आता है उस पर मेरा भाई कुश बहुत ही अधिक क्रोधित हो रहे हैं ।३३। यम-राज यहाँ आकर क्या करेगा ? यदि स्वयं प्रभु भी आवाजें तो वह भी क्या करेंगे। मेरे शरों की वृष्टि से सन्तुष्ट होकर शीघ्र प्रणाम करके यहाँ से चला जायेगा ।३४। शेष ने कहा—इस प्रकार से लव कुमार के द्वारा कहे हुए वाक्य का श्रवण करके वे सभी यह कहने लगे—'यह वालक हैं, जो लोग हरि के बाँधे हुए अश्व को छुड़ाने के लिये वहाँ पर आये थे उन्होंने लव के कथन को एक वालक का ही एक कथन समझ लिया था ।३५। जो अश्व को छुड़ाने को वहां प्राप्त हुए थे और शत्रुघ्न के जो सेवक थे उन सब पर हाथों में धनुष धारण करके क्षुरप्र (बाण) छोड़ दिये थे ।३६। उन सबकी भुजायें उन बाणों से कट गई थीं

और कटी हुई भुजाओं वाले वे सब शोक से शत्रुघ्न के समीप में पहुँचे थे। जब उनसे कारण पूछा गया तो उन्होंने लव के द्वारा अपनी बाहुओं के कट जाने का हाल बता दिया था ।३७।

—❋—

।। शत्रुघ्न के सेनापति कालजीत और लव का युद्ध ।।

शत्रुघ्नो निजवीराणां छिन्नबाहून्निरीक्षयन् ।
उवाच तान्सुकुपितो रोषसन्दंशिताधरः ।।१
केन वीरेण वा बाहुकृन्तनं समकारि भोः ।
तस्याहृ बाहूकृन्तामि देवगुप्तस्य वै भटाः ।।२
न जानाति महामूढो रामचन्द्रबलं महत् ।
इदानीं दर्शयिष्यामि पराक्रान्त्या वलं स्वकम् ।।३
स कुत्र वर्तते वीरो हयःकुत्र मनोरमः ।
को वाऽगृह्णासुप्तसर्पान्मूढोऽज्ञात्वा पराक्रमम् ।।४
इति ते कथिता वीरा विस्मिता दुःखिता भृशम् ।
रामचन्दप्रतिनिधिं बालकं समशंसत ।:५
सश्रुत्वा रोषताम्राक्षो बालकेन हय ग्रहम् ।
सेनान्यं वै कालजितमाज्ञापयद्यु युत्सुकः ।।६
सेनानीःसकलां सेनां व्यूहयस्व ममाऽऽज्ञया ।
रिपुः सम्प्रति गन्तव्यो महावलपराक्रमः ।।७

भगवान् शेष ने कहा—शत्रुघ्न ने अपने वीरों को कटी हुई भुजाओं वाले देखा तो उनको बड़ा क्रोध आया था और रोष से अपने होठों को काटते हुए कुपित होकर उनसे कहा था—भी ! किस वीर ने आप लोगों के बाहुओं को काट डाला है ? हे भट गण ! मैं आज उसकी भुजाओं को काट डालूँगा चाहे कोई देवता भी उसकी रक्षा करने क्यों न चला आवे ।१२। वह कोई महान् मूढ व्यक्ति है जो श्रीराम चन्द्र के महान् बल-पराक्रम को नहीं जानता है। अब मैं आज अपने वल पराक्रम की पराक्रान्ति से उसे दिखला दूँगा ।३। वह वीर

कहाँ पर विद्यमान् है और हमारे अश्वमेघ यज्ञ का परम सुन्दर अश्व कहाँ पर बँधा हुआ है ? वह कौन महामूढ है जिसने बल पराक्रम को न जान कर सोते हुए सर्पों को ग्रहण कर लिया है ? ।४। इस प्रकार से सब उन वीरों से कहा गया तो वे बहुत ही दुःखित हुए थे और फिर उन्होंने श्रीरामचन्द्र का प्रतिनिधि एक बालक को शत्रुघ्न के लिए बतलाया था ।५। शत्रुघ्न ने एक बालक के द्वारा अश्व ग्रहण करने का समाचार ज्ञात किया तो रोष से उनके नेत्र इसको सुनकर लाल हो गये थे और फिर कालजित नाम वाले एक सेनानी को युद्ध करने के लिए आज्ञा प्रदान की थी ।६। शत्रुघ्न ने कहा अब मेरी आज्ञा से सेनानी सम्पूर्ण सेना की व्यूह रचना करें। अब शत्रु महान् बल और पराक्रम से युक्त ही होगा ।।७।।

नायं बालो हरिर्नूनं भविष्यति हयन्धरः ।
अथवा त्रिपुरारिः स्यान्नान्यथा मद्धयापहृत् ।।८
अवश्यं कदनं भावि सैन्यस्य बलिनो महत् ।
स्वच्छन्दचरितैः खेलन्नास्ते निर्भयधीः शिशुः ।।९
तत्र गन्तव्यमस्माभिःसन्नद्धै रिपुदुर्जयैः ।
एतन्निशम्य वचनं शत्रुघ्नस्य स सैन्यपः ।।१०
सज्जीचकार सेनां तां दुर्व्यूढां चतुरङ्गिणीम् ।
सज्जां तां शत्रुजिद्दृष्ट्वा चतुरङ्ग्युतां वराम् ।।११
स वाक्यैः पविनातुल्यैर्भिन्न सुभटशेखरः ।
चुकोप हृमतेऽत्यन्तं जगाद वचनं पुनः ।।१२
कस्मिन्कुले समुत्पत्तिः किन्नामासि च बालक ! ।
त्वन्नाम नाभिजानामि कुलं शीलं वयस्तथा ।।१३

यह इस हय को पकड़ने वाला कोई बालक नहीं है बल्कि यह निश्चय ही हरि ही होंगे अथवा त्रिपुरारि हो सकते हैं अन्यथा दूसरा कोई भी मेरे अश्व के हरण करने वाला हो हीं नहीं सकता है ।।८।। इस समय तो ऐसा ज्ञात होता है कि अवश्य ही इस महान् बल वाली सेना का संहार होने वाला है यह निर्भय बुद्धि वाला बालक अपने

स्वच्छन्द चरितों के द्वारा क्रीड़ा कर रहा है ।६। वहाँ पर तो रिपुओं के द्वारा दुर्जय हम सब को एक दम भली भाँति तैयार होकर चलना ही चाहिए। उस सेनापति ने शत्रुघ्न इन वचन का श्रवण करके उस ! अपनी दुर्व्यूढ़ चतुरङ्गी सेना को सज्जीकृत किया था उस सज्जा(तैयारी) को जो कि चतुरङ्ग से समन्वित और परम श्रेष्ठ थी शत्रुघ्न ने स्वयं अवलोकित किया था ।१०-११ भगवान् शेष ने कहा वह सुभटों में परम शिरोमणि सेनापति वज्र तुल्य वाक्यों से भिन्न होकर हृदय में अत्यन्त क्रोधित हुआ था और फिर वह यह वचन बोला था ।१२। कालजित् ने कहा—हे बालक ! आप तो हमको यह तो बतला दो कि आपकी उत्पत्ति किस कुल में हुई है और आपका नाम क्या है मैं आप का नाम तक नहीं जानता हूँ और आपका कुल-शील तथा वह भी नहीं जान पाया हूँ ।१२।

पादचारं रथस्थाऽहमधर्मेण कथं जये ।
तदाऽत्यन्तं कुपितो जगाद वचनं पुनः ॥१४
कुलेन किं च शीलेन नाम्ना वा सुमनोहृता (वयसा भट्ट!)।
लवोहं लवतः सर्वाञ्जेष्यामि रिपुसैनिकान् ॥१५
इदानीं त्वामपि भटं करिष्ये पादचारिणम् ।
इत्थमुक्त्वा धनुःसज्यं चकार स लवोबली ॥१६
टङ्कारयामास तदा वीरानाकम्पयन्हृदि ।
वाल्मीकिं प्रथमं स्मृत्वा जानकीं मातरं लवः ॥१७
मदोन्मत्तं महावेगं सप्तधा प्रस्रवान्वितन् ।
गजारूढं तु त दृष्ट्वा दशभिर्धनुषोगतैः ॥१८
बाणैर्विव्याध विहन्सर्वान्निपुगणाञ्जयी ।
कालजित्तस्य वीर्यं तु दृष्ट् वा विसिस्मतमानसः ॥१९
गदां मुमोच महतीं महायसविनिर्मिताम् ।
आपतन्तीं गदां वेगाभ्दारायुतविनिर्मिताम् ॥२०
त्रिधा चिच्छेद तरसा क्षुरप्रैः स कुशानुजः ।
परिघं निशित धारं वैरिप्राणहरोदितम् ॥२१

मुक्तं पुनस्येन लवश्चिच्चच्छेद तरसाऽन्वितः ।
छित्त्वा तत्परिघं घोरं कोपादारक्तलोचनः ॥२२
गजोपस्थे लमारूढं मन्यमानश्चुकोप ह ।
तत्क्षणादच्छिनत्तस्य शुण्डां खड्गेन दन्तिनः ॥२३

मैं तो रथ स्थित हूँ और आप पादचारी हैं। मैं इस तरह अधर्म से आपको कैसे जीत सकूँगा ? तब तो सेनापति के इस वचन को श्रवण कर लव को बड़ा भारी क्रोध आ गया था और फिर उन्होंने ये वचन कहे थे—लव बोले—हे अवस्था से भट ! आपको मेरे कुल-शील और सुमनोहृत् नाम से क्या प्रयोजन है अर्थात् इन सब के पूछने एवं जानने का इस युद्ध भूमि में कोई भी फल नहीं होता है। मैं लव हूँ और लव ही तुम्हारे इन रिपु सैनिकों को जीत लेगा ।१४-१५। रही पादचारी की बात सो मैं अभी आपको भी पादचारी बनाये देता हूँ—इतना कह कर उस महान् बलवान् लव कुमार ने अपना धनुष सज्य कर लिया था ।१६। फिर उस लव ने समस्त वीरों को हृदय में कँपाते हुए अपने धनुष की टंकार की थी। सबसे प्रथम उसने महर्षि वाल्मीकि का स्मरण किया था इसके उपरान्त अपनी माता जानकी का स्मरण किया था ।१७। फिर उस लव कुमार मद से उन्मत-महान् वेग से युक्त सात प्रकार से प्रस्तवान्वित—हाथी पर आरूढ उसको देखकर अपने धनुष से निकले हुए दश बाणों से समस्त रिपुगणों को हंसते हुए उस जय शील ने भेदन किया था। कालजित् रह गया और उसके मन में बहुत ही अधिक विस्मय हुआ था ।१८-१९। कालजित् सेनानी ने महायस अर्थात् सख्त लोहे (स्टील) से बनाई हुई बड़ी भारी गदा का प्रयोग किया था। दश सहस्र भार वाली बड़े वेग से आती हुई गदा को देखकर उस कुश के अनुज लव ने बाणों से उस गदा को तीन स्थानों में टुकड़े कर दिये थे। इसके अनन्तर महा घोर एवं अधिक पैना परिघ उसने लव पर छोड़ा था जो कि वैरियों के प्राणों का निश्चित रूप से हरण करने वाला कहा गया है। उस परिघ को भी लव ने वेग से युक्त होकर छिन्न कर दिया था। उस घोर परिघ का छेदन करके कोप से लाल नेत्रों वाले

लव ने गज पर समारूढ़ उसको देखकर अत्यन्त क्रोध किया था और फिर उसी क्षण अपने खड्ग से उस हाथी की सूंड़ को काट दिया था ।२०-२३।

दन्तयोश्चरणौ घृत्वाऽऽरुरोह गजमस्तके ।
मुकुटं शतधा कृत्वा कवचं तु सहस्रधा ॥२४
केशेष्वाकृष्य सेनान्यं पातयामास भूतले ।
पातितः सगजोपस्थात्सेनानीः कुपितः पुनः ॥२५
हृदये ताडयामास मुष्टिना वज्रमुष्टिना ।
स अहतो मुष्टिभिस्तु क्षुरप्रान्निशिताञ्छरान् ॥२६
मुमोच हृदये क्षिप्रं कुण्डलीकृतधन्ववान् ।
स रराज रणोपान्ते कुण्डलीकृत चापवान् ॥२७
शिरस्त्रं कवचं बिभ्रदभेद्यं शरकोटिभिः ।
स विद्धः सायकैस्तीक्ष्णैस्तं हन्तुं खड्गमाददे ॥२८
दशन्नोषात्स्वदशनान्निः श्वशन्नुच्छ्वसन्मुहुः ।
खड्गस्त समायान्तं शूरं सेनापतिं लवः ॥२९
चिच्छेद भुजमध्यं तुसखड्ग पाणिरापतत् ।
छिन्न खड्गधरं हस्तंवीक्ष्यकोपाच्चमूपतिः ॥३०
वामेन गदया हन्तुं प्रचक्राम भुजेन तम् ।
सोऽपिच्चिन्नोभुजस्तस्यसांघदस्तीक्ष्णसायकैः ॥३१

हाथी के दोनों दाँतों पर अपने चरण रख कर वह शिशु गज मस्तक पर समारूढ़ हो गया था, जो उस गज पर सेनापति बैठा था मुकुट के सैकड़ों और कवच के सहस्रों टुकड़े कर दिये थे। फिर केशों को पकड़ कर उस सेनानी को भूमि पर डाल दिया था। उस गज की अम्बारी से गिराया हुआ वह सेनानी फिर बहुत ही अधिक कुपित हो गया था ।२४-२५। उसने हृदय में वज्र जैसी महान् सख्त मुट्ठी से उस पर ताड़ना की थी। इस तरह से वह मुष्टियों के प्रहारों से आहत हुआ और फिर उसने जो अत्यन्त निशित (पैने) जो सुरद्र थे वे निकाल लिये थे तथा शर निकाले थे ।२६। उसने उन शरों को शीघ्र ही हृदय पर

छोड़ दिया था। वह उस समय में उस रणक्षेत्र में अपने चाप को कुण्डली कृत करने वाला वह वहुत अधिक शोधित हो रहा था।२७। करोड़ों शरों में भी जो भेदन करने के योग्य नहीं था ऐसे कवच और शिरस्त्र को धारण करने वाला भी वह उन परम तीक्ष्ण सायकों के द्वारा विद्ध हो गया था और उसको हनन करने के लिए उसने खंग को ग्रहण कर लिया था।२८। कुमार लव ने उस सेनापति को अपनी तरफ आते हुए देखा था जिसके हाथ में खग था और अत्यन्त क्रोध के आवेश में आकर अपने दाँतों से होठों को काट रहा था तथा वारम्बार ऊँचे-नीचे श्वास ले रहा था।२९। उस कुमार लव ने अपने शरों से खग के सहित उसकी भुजा को मध्य भाग में से काट डाला था। और वह तलवार लिए हुए ही हाथ नीचे गिर गया था। कटे हुए और खग को धारण किये हुये अपने हाथों को जब उस सेनापति ने देखा तो उसे वड़ा भारी क्रोध आया था।३०। फिर उस कुमार को अपनी वाम भुजा से गदा लेकर हनन करने का उपक्रम किया था किन्तु कुमार के तीक्ष्ण वाणों से वह भुजा भी अंगद के सहित कट गयी थी।३१।

सर्वे निपतिता वीरा न केचिज्जीवितास्ततः।
लवो जयं रणे प्राप्य वैरिवृन्दं विजित्य च ॥३२
अन्यागमनशङ्कायां मनःकुर्वन्नवैक्षत ।
केचिदुर्वरिता युद्धाद्भाग्येन न रणे मृताः ॥३३
शत्रुघ्नसविधे जग्मुः शसितुं वृत्तमद्भुतम् ।
गत्वा ते कथयामासुर्यथावृत्तं रणाङ्गणे ॥३४
कालजिन्निधनंबालाच्चित्रकारिरणोद्यमम् ।
तच्छ्रुत्वा विस्मयं प्राप्तः शत्रुघ्नस्तानुवाच ह ॥३५
हसन्नोषाद्दशन्दन्तान्बालग्राहहयं स्मरन् ।
रे वीराः किं मदोन्मत्ता यूयं किम्वाछलग्रहाः ॥३६
किम्वा वैकल्यमायातं कालजिन्मरणं कथम् ।
यः सङ ख्ये वैरिवृन्दानां दारुणः समितिञ्जयः ॥३७

तं कथं वालको जीयाद्यमस्यापिदुरासदम् ।
शत्रुघ्नवाक्यंसंथुत्यर्व रा: प्रोचुरसृक्प्लुता: ॥३८
नास्माकं मदमत्तादि न च्छलो न च देवनम् ।
कालजिन्मरणं सत्यं लवाज्जानीहि भूपते ॥३९

कुमार लव ने सभी वीर निपातित कर दिये थे । उस युद्ध में कोई भी जीवित नहीं बचे थे । लव ने उस रण में जय प्राप्त करली थी और समस्त वैरियों के समुदाय को जीतकर पराजित कर दिया था ।३२। फिर लव ने अन्य किसी के आगमन की शंका में नम कहते हुए देखा था । उस युद्ध में भाग्य वश कुछ लोग जीवित भी बच गये थे और उनकी मृत्यु नही हुई थी ।३३। ये शेष वचे हुए सैनिक शत्रुघ्न के समीप में गये थे और उस परम अद्भुत युद्ध के वृत्त को कहने के लिए वे वहाँ पहुँचे थे । जहाँ जाकर उन सैनिकों ने रणक्षेत्र में जो भी जैसा कुछ हुआ था वह सभी समाचार कह कर शत्रुघ्नको सुना दिया था ।३४। उन एक साधारण छोटे वालक से कालजित् की मृत्यु का समाचार, एक विचित्र ही युद्ध का उद्यम था इसका श्रवण करके शत्रुघ्न को वहुत ही अधिक विस्मय हुआ था । इसके उपरान्त शत्रुघ्न ने उनसे कहा था ।३५। हँसते हुये, रोष से दाँतों को पीसते हुये बालक के द्वारा घोड़े का बाँध लेना— इन सव बातों का स्मरण करते हुए शत्रुघ्न ने कहा — हे वीरो ! क्या आप लोग मद से उन्मत्त हो गये हैं ? अथवा किसी ने आप लोगों के साथ यह छल किया है ? अथवा आप लोगों को कुछ विकलता उत्पन्न हो गई है ? कालजित् का मरण कैसे हो गया है ? जो कालजित् युद्ध-स्थल में शत्रुओं के समुदायके लिए वहुत ही दारुण था और सीमितका जय करते वाला था ।३६-३७। जो यमराज को भी अत्यन्त दुरासह वीर उस कालजित् भट को उस बालक ने कैसे जीत लिया ? शत्रुघ्न के इस वचन को सुनकर रक्त से लथपथ होते हुये वीरों ने शत्रुघ्न से कहा—।३८। न तो हमको महोन्माद आदि कुछ हैं—न कोई भी किसी

प्रकार का छल ही है और न विघ्न ही है। कालजित का मरण तो बिल्कुल ही सत्य है। इसको लव से हे राजन् ! जान सकते हैं ।३६।

शत्रुघ्न तथा लव का संग्राम

मूर्च्छितं मारुतिं श्रुत्वा शत्रुघ्नः शोकमाययौ ।
किं कर्तव्यं मया संख्ये बालकोऽयं महाबलः ।।१
स्वयं रथे हेममये तिष्ठन्वीरवरैः सह ।
योद्धुं प्रागाल्लवो यत्र विचित्रणकोविदः ।।२
कस्त्वं बाल ! रणेऽस्माकं वीरान्पातयसि क्षितौ ।
न जानीषे बलं राज्ञो रामस्य दनुजार्दिनः ।।३
का ते माता पिता कस्ते सुभाग्यो जयमाप्तवान् ।
नाम किं विश्रुतं लोके जानीयां ते महाबल ।।४
मुञ्च वाहं कथं बद्धः शिशुत्वात्तत्क्षमामिते ।
आयाहि राम वीक्षस्व दास्यते बहुल तव ।।५
इत्युक्तो बालको वीरो वचः शत्रुघ्नमादरात् ।
किं ते नाम्नाऽथ पित्रा वा कुलेन वयसा तथा ।।६
युध्यस्व समरे वीर ! चे बलयुतोभवः ।
कुशं वीरं नमस्कृत्य पादयार्याहि नान्यथा ।।७

भगवान् शेष ने कहा—जिस समय में यह मालूम हुआ कि हनुमान मूर्च्छित हो गये हैं तो शत्रुघ्न को बड़ा भारी शोक हुआ था। शत्रुघ्न ने मनमें विचार किया कि मुझे इस युद्ध में क्या करना चाहिये। यह बालक तो महान बलशाली है ।१। इसके अनन्तर शत्रुघ्न स्वयं सुवर्णमय एक रथ में समारूढ़ होकर अच्छे श्रेष्ठ वीरों को साथ में लेकर युद्ध करने के लिये वहाँ पर पहुँच गये थे जहाँ पर विचित्र रण विद्या के पंडित लव कुमार स्थित थे ।२। शत्रुघ्न ने लव से कहा—हे बच्चे ! तुम कौन हो ? तुमने हमारे बड़े २ वीरों को रणक्षेत्र में मार गिराया है। क्या तुम दनुजों के मर्दन करने वाले राजा श्रीराम का बल-पराक्रम नहीं

जानते हो ? यह बताओ, तुम्हारी माता कौन है और तुम्हारे पिता का क्या नाम है। तुम बहुत ही सौभाग्य शाली हो कि तुमने युद्ध में विजय प्राप्त की है : तुम्हारा क्या नाम इस लोक में प्रख्यात है। हे महान् बल वाले ! मुझे यह बतलादो ।४। तुम इस यज्ञ के अश्व को छोड़ दो। तुमने क्यों बांध दिया है। क्योंकि तुम एक छोटे से वच्चे हो अतएव शिशुत्व समझकर मैं तुम्हारे इस अपराध को क्षमा करता हूँ। चलो, यहाँ हमारे साथ आओ, श्रीराम का दर्शन करो। वे तुमको बहुत कुछ प्रदान करेंगे ।५। इस प्रकार से शत्रुघ्न के द्वारा कहे जाने पर उस बालक ने आदर पूर्वक शत्रुघ्न से यह वचन कहे थे। आपको मेरे नाम. मेरे पिता के नाम मेरा कुल और मेरी अवस्था से क्या प्रयोजन है ? हे वीर ! यदि आप वलशाली वीर हैं तो मुझसे समर में युद्ध कर लीजिये। वीर कुश को नमस्कार करके उनके चरणों में मस्तक झुका कर चले जाइये अन्यथा कोई मार्ग नहीं है ।६-७।

भ्राता रामस्य वीरोऽभूर्नवियोर्बलिनांवर: ।
वाहविमोचल बलाच्छक्तिस्ते विद्यते यदि ।।८
इत्युक्त्वा शरसंधानं कृत्वा प्राहरदुद्भट: ।
हृदये मस्तके चैव भुजयो रणमण्डले ।।९
तदा प्रकुपितो राजा धनुः सज्यमथाकरोत् ।
नादयन्मेघगम्भीरं त्रासयन्निव बालकम् ।।१०
बाणानपरिसंघचातान्मुमोच बलिनां वर: ।
वालो बलेन चिच्छेद सर्वास्तान्सायकव्रजान् ।।११
लवस्यानेकधा मुक्तैर्बाणैर्व्याप्तं महीतलम् ।
व्यतीपाते प्रदत्तस्य दानस्सेवाक्षयं गता: ।।१२
ते बाणा व्योमसकलं व्याप्नुवल्लवसहिता: ।
सूर्यमण्डलमासाद्य प्रवर्तन्ते समन्तत: ।।१३
मारुतेनाविशद्यत्र बाणपञ्जरगोचरे ।
मनुष्याणां तु का वार्ता क्षणजीवितशंसिनाम् ।।१४

हम दोनों के सामने राम का भाई बलियों में कोई श्रेष्ठ नहीं हो सकता है। अश्व को यदि छुड़ाना है तो अपने बल-विक्रम से उसका विमोचन करा लेवें। यदि आप में ऐसी शक्ति विद्यमान है अन्यथा अश्व नहीं छोड़ा जायगा।८। इतना कह कर उसने शर को सन्धान करके हृदय में, मस्तक में, भुजाओं में और रण मण्डल में प्रहार कर दिया था।९। उस समय में राजा ने भी अपना धनुष सज्य कर दिया था और मेघ के समान गम्भीर गर्जना करके तथा बालक को त्रास दिखलाते हुये धनुष के ऊपर वाण चढ़ा लिया था।१०। बल शालियों में परम श्रेष्ठ शत्रुघ्न ने अपरि संख्या वाले बाणों को इस पर छोड़ दिया था किन्तु उस बालक ने भी अपने बल विक्रम से उन सम्पूर्ण बाणों के समुदाय को काट डाला था।११। लव के द्वारा अनेक छोड़े हुये बाण तो महीतल में व्याप्त हो गये थे जिस तरह किसी व्यतीपात के अवसर पर दिया हुआ दान अक्षय पुण्य-फल वाला हो जाया करता है।१२। लव के द्वारा छोड़े हुये बाणों के समुदाय सम्पूर्ण व्योम में व्याप्त होते हुये सूर्यमंडल में प्राप्त गये थे और सभी ओर प्रवृत्त हो रहे थे।१३। जहाँ पर वायु का प्रवेश होता है वहीं पर बाणों का पंजर दिखलाई दे रहा था। विचारे मनुष्यों की तो बात ही क्या है जो एक क्षण मात्र में ही अपना जीवित रखने वाले होते हैं। तात्पर्य यह है कि थोड़ा सा जीवन धारण करने वाले और एक ही क्षण में जीवन को नष्ट कर देने वाले मनुष्य हुआ करते हैं।१४।

तद्बाणान्विस्तृन्दृष्ट्वाशत्रुघ्नो विस्मयंगतः।
अच्छिनच्छतसाहस्रं बाणमोचनकोविदः॥१५
तच्छिन्नान्सायकान्सर्वान्स्वीयान्दृष्ट्वा कुशानुजः।
धनुश्चिच्छेद तरसा शत्रुघ्नस्य महीपतेः॥१६
सोऽन्यद्धनुरुपादाय यावन्मुञ्चति सायकान्।
तावद्भञ्जस रथं सायकैः शितपर्वभिः॥१७
करस्थमच्छिनच्चापं सुदृढं गुणपूरितम्।
तत्कर्मा पूजयन्वीरा रणमण्डलवर्तिनः॥१८

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः
अन्यं रथं समास्थाय ययौ तद्धुं ववं बलात् ॥१९
अनेकवाणनिर्भिन्नः स्रवद्रक्तकलेवरः।
पुष्पितः किंशुक इव शुशुभे रणमध्यगः ॥२०
शत्रुघ्नबाणप्रहातः परंकोपमुपागमत् ।
बाणसन्धानचतुरः कुण्डलीकृतचापवान् ॥२१
विशीर्णंकवच देह शिरो मुकुटर्जितम् ।
स्रवद्रक्तपरिप्लुष्टं शत्रुघ्नस्य चकार सः ॥२२

उस शिशु लव कुमार के उन विस्तृत वाणों को देखकर शत्रुघ्न को बड़ा भारी विस्मय हो गया था जो कि अछिन्न सैकड़ों और सहस्रों वाणों के छोड़ने में बड़ा ही प्रवीण पण्डित था ।१५। उस कुछ के छोटे भाई ने उस अपने छिन्न समस्त अपने सायकों को देखकर वड़े ही वेगसे राजा के धनुष को ही छिन्न कर दिया था।१६। उस शत्रुघ्न ने जब तक अपना दूसरा धनुष उठा कर वाणों के छोड़ने का उपक्रम किया था तब तक तो उस कुमार लव ने अपने शित पर्वों वाले वाणों से उसके रथका भंजन कर दियाथा ।१७। जो उस राजा शत्रुघ्न के हाथ में स्थित परम सुदृढ़ एवं गुण से पूरित जो चाप था उसको भी छिन्न कर दिया था। ऐसे कर्म करने वाले उसका रण कण्डल में रहने वाले वीरों ने बहुत ही सत्कार किया था ।१८। वह राजा शत्रुघ्न जिसका धनुष छिन्न हो गया था, रथ से हीन अश्व जिसका मर गया था और सारथि भी नष्ट हो गया था, अन्य एक रथ मँगवा कर उस पर समारूढ़ हुआ था और लव के साथ बल पूर्वक युद्ध करने के लिये युद्ध स्थल में गया था ।१९। लव के द्वारा छोड़े हुये अनेक वाणों से शत्रुघ्न विद्ध हो गया था। उसके शरीर से रक्त का प्रवाह निकल रहा था। उस समय में शत्रुघ्न का शरीर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि रण के मध्य में कोई खिले हुये पुष्पों वाला ढाक का वृक्ष हो क्योंकि ढाल के फूल भी रक्त के ही समान लाल होते हैं ।२०। शत्रुघ्न के वाणों से प्रहत होकर वह लव अत्यन्त क्रोध में भर गया था । और बाणों के संधान

करने में परम उसने अपने धनुषय को कुण्डलाकार कर लिया था ।२१। उस लव ने शत्रुघ्न को विशीर्ण कवच वाला कर दिया था अर्थात् कवच को तोड़ दिया था । शत्रुघ्न के मस्तक का मुकुट काट कर तोड़ डाला था अतएव उसका मस्तक विना ही मुकुट वाला नगा हो गया था और शत्रुघ्न के सम्पूर्ण शरीर को वाणों से छिन्न-भिन्न कर ऐसा कर दिया था कि उससे सव जगह रक्त वह रहा था और रुधिर से पूरा अङ्ग लथ-पथ हो गया था ।।२२।।

इदानी पश्य मे वीर्यं त्वां सङ्ख्ये पातायाम्यहम् ।
सहस्व राणामेकं त्व मा पलयस्व वालक ।।२३
इत्युत्क्वा समरे वालं शरमेकं समाददे ।
यमवक्रसमं घोरं लवणो येन घातितः ।।२४
सन्धायबाणं निशितं हृतिमेत्तुं मनोदधत् ।
लवं वीरसहस्राणां वह्निवत्सवदाहकम् ।।२५
तं बाण प्रज्वलन्तं स द्योतयन्तं दिशोदश ।
दृष्ट्वा सस्मार वलिनं कुशं वैरिनिपातिनम् ।।२६
यद्यस्मिन्समये वीरो भ्रातास्याद्वलवान्मम ।
तदा शत्रुघ्नवशता न मे स्याद्भयमुल्वणम् ।।२७
एवं तर्कयत स्तस्यलवस्य च महात्मनः ।
हृदिलग्नो महावाणो घोरः कालानलोपमः ।।२८
मूर्च्छा प्राप तदा वीरो भूपसांयकसंहतः ।
सङ्गरे सर्ववीराणां शिरोभिः समङ्कृते ।।२९

क्रोध के महान् आवेश में भर कर शत्रुघ्न ने उस बालक लव से कहा—हे बालक ! अब तू मेरा वीर्य देख, मैं इस रण स्थल में तुझको गिराता हूँ । तू मेरा अब एक ही बाण सहन करने को तैयार हो जा । अब तू यहाँ से भाग मत जाना ।२३। यह कह कर उस युद्ध में उस बालक पर वह एक ही बाण छोड़ा था जो यमराज के ही समान ग्रास कर जाने वाला महान् दारुण था और जिससे लवणासुर को निहत किया था ।२४। उस बाण का सन्धा करके जो अत्यन्त

ही निशित था शत्रुघ्न ने उस वालक के हृदय में वेधन करने का मन में विचार किया था जो वाण सहस्रों वीरों को अग्नि की भाँति दग्ध कर देने वाला था ।२५। उस जाज्वल्यमान वाण को देख कर जो दशों दिशाओं को प्रद्योतित् कर रहा था उस कुमार लव ने वैरियों के निपात करने वाले अत्यन्त वलवान् अपने भाई कुश का स्मरण किया था ।२६। यदि आज इस समय में अत्यन्त बलशाली परम वीर मेरा भाई कुश होता है तो अब शत्रुघ्न के वश में आजाना और अत्यन्त उल्वण भय का उत्पन्न होना नहीं होता ।२७। वह वीर कुमार लव इस प्रकार से मन में तर्कना ही कर रहा था कि उस महान् आत्मा वाले लव के हृदय में वह बाण लगा था ।२८। उसी समय वह वीर लव मूर्च्छा को प्राप्त हो गया था और राजा शत्रुघ्न के वाण से अच्छी तरह हत हो गया था ! उस युद्ध स्थल में वह मूर्च्छित होकर पड़ गया था जहाँ बड़े वीरों के मस्तक कट-कट कर पड़े हुए उस भूमि को भूषित कर रहे थे ।२९।

———

लव को मूर्च्छित देख कर सीता का शोक

लवं विमूर्छितं दृष्ट्वा बलिवैरिविदारणम् ।
शत्रुघ्नो जयमापेदे रणमूर्ध्नि महाबलः ।।१
लवं वालं रथे स्थाप्य शिरस्त्राणाद्यलङ्कृतम् ।
रामप्रतिनिधिं मूर्त्या ततो गन्तुमियेष सः ।।२
स्वमित्रं शत्रुणाग्रस्तमितिदुःसमन्विताः ।
बालामात्रेऽस्य सीतायै त्वरिताः संन्यवेदयन् ।।३
माताजानिकि ! ते पुत्रो वयाद्वाहमपाहरत् ।
कस्यचिद्भूपवर्यस्य बलयुक्तस्य मानिनः ।।४
ततो युद्धमभूद्घोरं तस्य सैन्येन जानकि ।
तदा वीरेण पुत्रेण तव सर्वं निपातितम् ।।५

पश्चादपि जयप्राप्तः सुतस्तव मनोहरः ।
तू भूपं मूर्च्छितं कृत्वा जयमाप रणाङ्गणे ॥६
ततो मूर्च्छां विहायष राजा परमदारुणः ।
संङ्क्रुध्य पातयामास तवपुत्रं रणाङ्गणे ॥७
अस्मामिर्वारितः पूर्वं ता गृहाण हयोत्तमम् ।
अस्मान्सर्वांश्च धिक्कृत्य ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥८

भगवान् शेष ने कहा—लव को विशेष रूप से मूर्च्छित देखकर जो बड़े २ बलवान् वैरियों को विदीर्ण करने वाला था उस रण में शत्रुघ्न ने जय प्राप्त की थी जो कि शत्रुघ्न महान् बलवीर्य से समन्वित थे ।१। इसके अनन्तर सिरस्त्राण आदि धारी लव को रथ में बैठाया मूर्त्ति से श्रीराम का ही वह प्रतिनिधि था उसने भी वहाँ जाने की इच्छा की थी ।२। अपने मित्र को शत्रु के द्वारा ग्रस्त देखकर अत्यन्त दुःखित हुए सब बालकों ने शीघ्रता से युक्त होकर लव की माता सीता जी से जाकर यह सब वृत्तान्त कह सुनाया था ।३। बालकों ने कहा—हे माता जानकी देवि ! आपके पुत्र लव कुमार ने बल पूर्वक अश्वमेध के अश्व का अपहरण किया था जोकि किसी महान् बल से सम्पन्न मानी राजाओं में श्रेष्ठ का अश्व था ।४। हे माता जानकी ! इसके पश्चात् उस राजा की सेना से बड़ा भारी घोर युद्ध हुआ था । उस युद्ध में आपके वीर पुत्र ने अपने अस्त्रों से सबको मार गिराया था ।५। इसके पश्चात् आपके पुत्र ने जोकि परम मनोहर है विजय प्राप्त करली थी और रण क्षेत्र में उस राजा को मूर्च्छित करके जय का लाभ लिया था ।६। किन्तु इसके अन्तर यह हुआ कि उस राजा ने मूर्च्छा का त्याग करके बहुत क्रोध किया था और परम दारुण उसने आपके पुत्र को रण भूमि में गिरा दिया है ७। हमने पहिले ही लव को इस कर्म के करने से रोका था और इससे कह दिया कि इस अश्व को ग्रहण मत करो किन्तु हम सब वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण बालकों का इसने तिरस्कार करके अश्व को बलात् हठ करके ग्रहण करके बाँध ही लिया था । हमारा कथन इसने कुछ भी नहीं माना था ।८।

इतिवाक्यं शिशूनां सा समाकर्ण्य सुदारुणम् ।
पपात भूतलोपस्थे दुःखयुक्ता रुरोदह ॥९
कथं नृपो दयाहीना वालेनसह युध्यति ।
अधर्मकृतदुर्बुद्धिर्यो मद्बालं न्यपातयत् ॥१०
लववीर ! भवान्कुत्र वर्ततेऽतिबलान्वितः ।
कथंत्वं निष्कृपस्याहो राज्ञाऽहार्षीर्हयोत्तमम् ॥११
त्वं वालस्ते दुराक्रान्ताः सर्वशस्त्रविशारदाः ।
रथस्था विरथस्त्वं वै कथं युद्धं समं भवेत् ॥१२
ताताहं तुत्वयासार्द्धं रामत्यागा सुखं जहौ ।
इदानीं रहिता युष्मन्कथं जीवामि कानने ॥१३
एहि मां मुञ्च यज्ञाश्वं गच्छत्वेष महीपतिः ।
मद्दुःखं नाभिजानासि मम दुःखप्रमार्जकः ॥१४

इस तरह से जब उन ब्राह्मण बालकों ने कहा तो उन वचनों का श्रवण करके जोकि वहुत ही दारुण थे जानकी जी अतिशय दुःख में भर कर भूतल पर गिर पड़ीं और रुदन करने लगीं थीं।९। सीता ने कहा—वह कैसा दया से हीन राजा है जो एक वहुत ही छोटे से शिशु के साथ युद्ध करता है ? वह राजा बहुत ही अधर्म करने वाला और परम दुष्ट वुद्धि वाला है जिसने मेरे इस छोटे से शिशु को गिरा दिया है।१०। जानकी जी ने कहा—हे वीर लव ! तुम तो अत्यन्त वल से सम्पन्न हो। आप इस समय कहाँ पर हैं ? तुमने क्यों ऐसे निर्दयी राजा के अश्व का आहरण किया था ?।११। तू तो एक छोटा सा बालक ही था और वे बड़े दुराक्रान्त थे तथा सभी शस्त्रास्त्रों की विद्या से पूर्ण ज्ञाता थे। वे सभी अपने २ रथों में स्थित होंगे और तू तो बिना ही रथ वाला पैदल ही था। तुम्हारा और उस राजा के सेनानियों का सम युद्ध कैसे हो सका होगा ?।१२। हे तात ! मैं तो श्रीराम के त्याग से वहुत ही दुःखित थी किन्तु तुम्हारे ही साथ में रह कर अपना समय यापन कर रही थी। इस समय में मैं तुमसे भी रहित हो गई हूँ तो फिर इस कानन में किस तरह जीवित रह सकूंगी। ?

बेटा ! तुम यहाँ जाओ उस अश्व को छोड़ दो । यह राजा चला जावे । मेरे दुःख का प्रमार्जन करने वाले तुम ही हो । क्या मेरे इस महान् दुःख को नहीं जानते हो ? ।१३-१४।

कुशा यद्यभविष्यत्स रणे वीरशिरोमणिः ।
अमोचयिष्यदधुना भवन्त भूपपाश्वंतः ॥१५
सोऽपि मद्दैवतो नास्ति समीपे किं करोम्यतः ।
दैवमेव ममाप्यत्र कारणं दुःखसम्भवे ॥१६
एवमादि बहुश्रीमत्येषा वे विललाप ह ।
पादाङ्गुष्ठेन लिखती भूमिं नेत्रद्वयाश्रुभिः ॥१७
वालान्प्रति जगादासौ पृथुकाः स च भूपतिः ।
कथं मत्सुतमापात्य रणे कत्र गमिष्यति ॥१८
इति वाक्य वदत्येषा जानकी पतिदेवता ।
तावत्कुशस्तु सम्प्राप्त उज्जयिन्या महर्षिभिः ॥१९
माघासितचतुर्दश्यां महाकालं समर्च्यं च ।
प्राप्य भूरिवरांस्तस्मादागमन्मातृसन्निधौ ॥२०
जानकीं विह्वालां दृष्ट्वा नेत्रोद्भूताश्रुविक्लवाम् ।
शोकविह्वलदीनाङ्गी बभाषे यावदूत्सुकः ॥२१

यदि इस समय में कुश होता तो वह रण में वीरों में परम शिरोमणि था, इस समय गें राजा के पास से वह तुमको छुड़ा लेता ।१५। वह भी मेरे दुर्भाग्य से इस समय मे मेरे पास म नहीं हैं इसलिये अब मैं क्या करूँ ? यहाँ पर मेरा दैव भी इस दुःख के उत्पन्न होने मे एक कारण हो रहा है ।१६। इस प्रकार से अपने हार्दिक दुःखोद्गार को प्रकट करती हुई यह श्रीमती जानकी जी विलाप कर रही थी और अपने पैर के अंगूठे से नेत्रों से निकले हुए आँसुओं के द्वारा भूमि पर लिखती जा रही थी ।१७। फिर यह उन वालकों से वोली थी—हे वच्चो ! उस राजा ने क्यों और कैसे मेरे पुत्र को रण में निपातित किया, अब वह कहाँ जायगा ? ।१८। इस प्रकार से वह जानकी देवी यह वाक्य कह रही थी जिसका कि पति ही एक देवता था उसी

बीच में महर्षियों के साथ उज्जयिनी पुरी से कुश वहाँ पर आ गया था ।१६। माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन महा कालेश्वर की अर्चना करके उनसे बहुत से अच्छे २ वरदान प्राप्त करके अपनी माता के समीप में कुश आकर उपस्थित हो गया था ।२०। जानकी माता को उसने अत्यन्त विह्वल देखा था जोकि नेत्रों से अश्रुपात करने से बहुत ही विक्लव युक्त थीं । शोक से अत्यन्त विह्वल और हीन अंगों वाली उसे देख कर जैसे ही अत्यन्त उत्सुकता से युक्त होकर वह कुश बोला था ।२१।

तदा स्वबाहुरवदत्स्फुरन्युद्धाभिशंसनः ।
हृदये च रणोत्साहो बभूवतिरथस्य हि ।२२
स प्रत्युवाच जननीं दीनगद्गदभाषिणीम् ।
मातस्तव गतं दुःखं मयि पुत्र उपस्थिते ।।२३
मयि जीवति ते नेत्रादश्रूणि भुवि नोऽपतन् ।
प्रस्व चोवाचाश्रुखिन्नां दीनगद्गदभाषिणीम् ।।२४
कुशो दुःखमितः सद्यो दुःखितां धीरमानसः ।
मम भ्राता लवः कुत्र वर्तते वैरिमर्दनः ।।२५
सदा मामागतं ज्ञात्वा प्रहर्षन्सन्निधावियात् ।
न दृश्यते कथं वीर कत्ररन्तु गतोबली ।।२६
केन वा सह बालत्वाद्गतो मां वै निरीक्षितुम् ।
किं त्व रोदिषि मे मातर्लव कुत्र स वतते ।।२७
तन्मे कथय सर्वं यत्तव दुःखस्य कारणम् ।
तच्छ्रुत्वा पुत्रवाक्यं सा दुःखिता कुशब्रवीत् ।।२८

उसी समय में उसकी बाहु में स्फुरण हुआ जो कि युद्ध करने का संकेत दे रहा था । उसके हृदय में जोति अतिरथी था रण का उत्साह उमंग आया था ।२२। उस कुश ने परम दीन और गद्गद भाषण करने वाली माता से कहा था—हे माता ! अब आपका दुःख सब समाप्त हो गया ही समझलो क्योंकि मैं आपका पुत्र अब यहाँ उपस्थित हो गया हूँ ।२२। मेरे जीवित रहते हुए अब आपके नेत्रों से अश्रुपात नहीं

होगा—इस तरह से उस महावीर कुश ने परम दीन और गद्गद कण्ठ से भाषण करती हुई अपनी माता से विनम्र निवेदन किया था ।२४। कुश ने कहा अब यहाँ से आगे कोई भी दुःख नहीं होगा अतः आप दुःखित न हों । धीर मन वाले कुश ने माता से पूछा मेरा भाई लव इस समय कहाँ पर है जो शत्रुओं के मर्दन करने वाला है ।२५। सर्वदा वह जब भी यह जाना जाता था कि मैं यहाँ आ गया हूँ तो वह बड़ा ही हर्षित होता हुआ मेरे समीप मे आ जाया करता था । इस समय वह वीर यहाँ दिखालाई नहीं देता है । क्या कहीं वह बलवान् रमण करने के लिए चला गया है ।२६। वह किसके साथ चला गया है ? क्या वह मुझसे मिलने के लिये बचपन के कारण कहीं नहीं चला गया है ? हे माता ! आप इस समय में रुदन क्यों कर रहीं हैं । वह लव कहाँ है बताओ ।२७। हे जननि ! आप वह सब मुझ से कहो जो भी इस समय में तुम्हारे दुःख का कारण हो । इस प्रकार से पुत्र कुश के द्वारा कहे हुए वाक्य को सुनकर परम दुःखित वह माता जानकी कुश से कहने लगी थी ।२८।

लवोऽधृतो नृपेणात्र केनचिद्धयरक्षिणा ।
बबन्ध बालको मेऽत्र हयं यागक्रियोचितम् ॥२९
तद्रक्षकान्बहून्जित्वा एकोऽनेकान्निपून्बली ।
राजा तं मूर्च्छितं कृत्वा बबन्ध रणमूर्धनि ॥३०
बालका इति मामूचुः सहगन्तार एव हि ।
ततोऽहं दुःखिता जाता निशम्य लवमाधृतम् ॥३१
त्व मोचय बलात्तस्मात्काले प्राप्तो नृपोत्तमात् ।
निशम्य मातुर्वचनं कुशः कोपसमन्वितः ।
जगाद तां दशन्नोष्ठं दन्तैर्दन्तान्विनिष्पिषन् ॥३२
मातर्जानीहि तं मुक्तं लवं पाशस्य बन्धनात् ।
इदानीं हन्मि तं बाणैः समग्रबलवाहनम् ॥३३
यदि देवोऽमरो वापि यदि शर्वः समागतः ।
तथापि मोचये तस्मात्कालपोर्निशितैर्नृभिः ॥३४

जानकी देवी ने कहा—किसी अश्व की रक्षा करने वाले राजा ने लव को पकड़ लिया है। मेरे बालक ने यहाँ पर यज्ञ कर्म के योग्य अश्व को बाँध लिया था।२६। इस अकेले ही बालक ने बहुत से शत्रुओं को अपने बल से जो कि उस अश्व के रक्षक थे जीत लिया था किन्तु इसके उपरान्त उस राजा ने रणक्षेत्र में उसको मूच्छित करके बाँध लिया था।३०। जो बालक उसके साथ गमन करने वाले थे उन सब ने यहाँ आकर मुझसे कहा था तभी से अत्यन्त दुःखित हो गई हूँ कि लव आघृत हो गया है यह सुन कर मुझे बड़ा ही दुःख है।३१। अब तुम जाकर उसे वहाँ पर बलपूर्वक उस नृप से छुड़ाओ क्योंकि तुम इसी काल में यहाँ आ गये हो। माता के यह वचन श्रवण कर कुश को बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हो गया था और फिर अपने दाँतों से ओष्ठों को काटते हुए और दाँतों से दाँतों को पीसते हुए उसने अपनी माता से कहा था—कुश बोला—हे माता ! तू अब उस लव को पाश बन्धन से मुक्त हुआ ही समझले। मैं अभी उसको समग्र बल और वाहनों के सहित हनन किये देता हूँ।३२-३३। यदि वह कोई देवता हो, या अमर हो अथवा साक्षत् शर्व ही क्यों न हो तो भी मैं उससे अपने बाणों के द्वारा लव का मोचन तो करा ही लूँगा। मेरे बाण बहुत पैने पर्वों वाले होंगे।३३।

मा रोदिषि मातरिह वीराणां रणमूर्जितम्।
कीर्तयेऽत्र भवत्येत्र पलायनमकीर्तये ॥३५
देहि मे कवचं दिव्यं धनुर्गुणसमन्वितम्।
शिरस्त्राणं च मे मातः करवाल तथाशितम् ॥३६
इदानीं यामि समरे पातयामि बल महत्।
मोचयामि भ्रातरं स्वं स्थतव्याद्भिर्मूच्छितम् ॥३७
इतिवाक्येन सन्तुष्टा जानकी शुभलक्षणा।
सर्वं प्रादादस्त्रवृन्दं जयाशीर्भिर्नियुज्य तम् ॥३८
ययौ कुश संग्रामे बाणान्धनुषि सन्दधे।
चिच्छेद कुशमुक्तं स सायकं शितपर्वकम् ॥३९

हे माता ! तू रुदन न कर रणभूमि में मर जाना वीरों के लिए यश दायक और युद्ध छोड़कर भागना निन्दा दायक है ।३५। इसलिये गुण युक्त दिव्य धनुष, कवच, शिरस्त्राण और तलवार इत्यादि मुझे प्रदान करो ।३६। इस प्रकार मैं उस महान् सेना को भी युद्ध में हराकर युद्ध में मूर्च्छित हुए अपने भाई को छुड़ा लाऊँगा ।२७। शेषजी ने कहा—कुश के इन वचनों से सन्तुष्ट हुई सीता ने सब प्रकार के शस्त्रास्त्र उसे प्रदान किए और उस जयाशी कुश को रण के लिये नियुक्त किया ।३८। कुश ने रणभूमि में जाकर धनुप पर वाण चढ़ाया और कुश द्वारा छोड़ा गया वह बाण शत्रुघ्न द्वारा काट दिया गया ।३९।

तदाऽत्यन्तं प्रकुपितः कुशो बाणस्थ कृन्तनात् ।
अपरं सायकं चापे दधारशितपर्वकम् ॥४०
सा यावत्तदुरोभेत्तुं करोति च बलोद्धुरः ।
तं तावदच्छिनत्तस्य शरं कालानलप्रभम् ॥४१
तदा कुशो मातृपादौ स्मृत्वा रोषसमन्वितः ।
तृतीयं चापके स्वीये दधार शरमद्भुतम् ॥४२
शत्रुघ्नस्तमपि क्षिप्रं छेत्तुं बाण समाददे ।
तावद्विद्धः शरेणासौ पपात धरणीतले ॥४३
हाहाकारो महानासोच्छत्रुघ्ने विनिपातिते ।
जयमाप कुशस्तत्र स्ववाहुवलदर्पितः ॥४४

उस समय में वाणों के कृन्तन कर देने से कुश को अत्यन्त ही कोप उत्पन्न हुआ था और फिर उसने दूसरा शित पर्वों वाला सायक चाप पर चढ़ा लिया था ।४०। वह जब तक बल से उद्धुर उसके उरस्थल का भेदन करने के लिये प्रस्तुत होता है तब तक उसके कालानल के समान प्रभा वाले उस बाण को भी छिन्न-भिन्न कर दिया गया था ।४१। उस समय में कुश ने अपनी माता के चरणों का स्मरण किया था और रोष से समन्वित होकर फिर तीसरा बाण जो कि परम अद्भुत था अपने चाप पर चढ़ाया था ।४२। शत्रुघ्न ने उस बाण को शीघ्र ही

काटने की अपना बाण जब तक ग्रहण किया था तब तक तो वह विद्ध होकर धरणी तल में शर के द्वारा निपतित हो गये थे ।४३। शत्रुघ्न के गिरने से वहाँ रण स्थल में महान् हा-हाकार हो गया था और कुश ने अपनी बाहुओं के बल से दर्पित होकर विजय प्राप्त कर ली थी ।४४।

कुश का सीता से युद्ध वर्णन

शत्रुघ्नं पतितं वीक्ष्य सुरथः प्रवरो नृपः ।
प्रययौ मणिनासृष्टे रथे तिष्ठन्महाद्भुते ।।१
पुष्कलस्तु रणे पूर्वं पातितः विचारयन् ।
लवं ययौ तदायोद्धुं महावीरबलोन्नतम् ।।२
सुरथः कुशमासाद्य बाणान्मुञ्चन्ननेकधा ।
व्यथयामास समरे महावीरशिरोमणिः ।।३
सुरथं बिरथं चक्रे वाणैर्दशभिरुच्छ्रितैः ।
धनुश्चिच्छेद तरसा सुदृढ गुणपूरितम् ।।४
अस्त्रप्रत्यस्त्रसंहारैः क्षेपणैः प्रतिक्षेपणैः ।
अभवत्तुमुलं युद्धं वीराणां रोमहर्षणम् ।।५
अत्यन्तं समरोद्युक्ते सुरथे दुर्जये नृपे ।
कुशः सञ्चिन्तयामास किं कर्तव्यं रणे मया ।।६
विचार्य निशित घोरं सायकंसमुपाददे ।
हननाय नृपस्यास्य महाबलसमन्वितः ।।७
तमागतं शरं दृष्ट्वा कालानलसमप्रभम् ।
छेत्तुं मतिं चकराशु तावल्लग्नो महाशरः ।।८
मुमूर्च्छ समरे वीरो महावीरबलस्ततः ।
पपात स्यन्दनोपस्थे सारथिस्तमुपाहरत् ।।९

भगवान् शेष ने कहा—उस युद्ध स्थल में जब शत्रुघ्न पतित हो गये तो यह देखकर परम श्रेष्ठ सुरथ नृप महान् अद्भुत मणियों से

निर्मित रथ पर समारूढ़ होकर वहाँ पर गये थे ।१। उसने यह विचार किया था कि पुष्कल युद्ध में पहिले ही निपातित कर दिया था । अतः उस समय में महान् वीर और उन्नत बलशाली लव से वह युद्ध करने को लगा था ।२। सुरथ ने कुश के पास पहुँच कर अनेक बाणों को छोड़ा था और उस महान् वीर शिरोमणि ने समर स्थल में उसको व्यथित कर दिया था ।३। कुश ने उस सुरथ नृप को रथ से हीन कर दिया था और अत्यन्त तीव्र दश बाणों के द्वारा वेग से उसके धनुष को छिन्न कर दिया था जो परम सुदृढ़ और गुण से पूरित था ।४। इस प्रकार अस्त्र एवं प्रत्यस्त्रों के संहारों से और क्षेपण-प्रतिक्षेपणों से वीरों का बहुत ही तुमुल युद्ध हुआ था जो रोम हर्षण था ।५। राजा सुरथ बहुत ही दुर्जय नृप था । उस समय में कुश ने सोचा अब मुझे क्या करना चाहिए ।६। ऐसा विचार करके उसने अत्यन्त घोर सायक ग्रहण किया था । वह सायक उस महान् बल से समन्वित कुश ने उस राजा के हनन करने के लिए ही ग्रहण किया था ।७। उस कालाग्नि के समान शर को आता हुआ देखकर ज्यों ही उसे काटने का विचार किया था वैसे ही तब तक वह आकर लग ही गया था । उस महान् शर से वह वीर मूच्छित हो गया था और रथ के ही समीप में गिर पड़ा था । सारथि ने उसे उठा लिया था ।८-९।

सुरथे पतिते दृष्ट्वा कुशं जयसमन्वितम् ।
त्रासयन्तं वीरगणः नियाय पावनात्मजः ॥१०
समीरसूनुं प्रवलमायान्तं वीक्ष्य वानरम् ।
जहास दर्शयन्दन्तान्कोपयन्निव तं क्रुधा ॥११
उवाच च हनुमन्तमेहि त्वं मम संमुखम् ।
भेत्स्ये बाणसहस्रेण मृतो यास्यसि यामिनीम् ॥१२
इत्युक्तो हनुमाञ्ज्ञात्वा रामसूनुं महाबलम् ।
स्वामिकार्यं प्रकर्तव्यमिति कृत्वा प्रधावितः ॥१३
शालमुत्पाट्य तरसा विशालं शतशाखिनम् ।
कुशं वक्षसि संलक्ष्य यायौ तुं महाबलः ॥१४

शालहस्तं समायान्तं हनूमन्तं महाबलम् ।
त्रिभिः क्षुरप्रैर्बिव्याध सोऽर्धचन्द्रोपमैर्वली ।।१५

जिस समय में सुरथ पतित हो गया था और कुश विजयी हो गया था जो कि वहाँ पर सभी को त्रास दे रहा था पवन के पुत्र हनुमान उसके समीप में पहुँच गये थे ।१०। महान् प्रबल समीर पुत्र को आते हुए देखकर बहुत हँसे और उस बानर को देखकर दाँत दिखाते हुए क्रोध से बहुत ही कुपित होकर बोले ।११। कुश ने हनुमान से कहा—आओ, तुम मेरे सामने युद्ध करोगे अभी एक सहस्र वाणों से मरकर यमपुरी में चले जाओगे ।१२। इस प्रकार से कहे जाने पर हनुमान ने राम के पुत्र को महान् बलशाली समझ लिया था किन्तु अपने स्वामी का काम तो करना ही था—यह विचार कर उन्होंने धावा बोल दिया था ।१३। फिर हनुमान ने बड़े ही वेग के साथ एक सौ शाखा वाले शाल के वृक्ष को उखाड़ लिया था और ग्रहण कर कुश के वक्षय स्थल पर लक्ष्य करके वह महाबली युद्ध करने को चल दिये थे ।१४। हाथ में शाल वृक्ष को लेकर आते हुए महान् बलशाली हनुमान को देखकर उस बलीं कुश ने अर्द्धचन्द्र के सदृश तीर क्षुरप्रों के द्वारा उनको वेध दिया था ।१५।

स बाणविद्धस्तरसा कुशेन बलशालिना ।
सालेन हृदि सञ्जने दन्तान्निष्पिष्य मारुतिः ।।१६
शालाहतस्तदा दालः किञ्चिन्नाकम्पत स्मयात् ।
तदा बीराः प्रशंसां तु प्रचक्रुस्तस्य वाल्यतः ।।१७
स शालेन हतो वीरः संहारास्त्रं समाददे ।
संहर्तुं वैरिणं कोपात्कुशः स परमास्त्रवित् ।।१८
संहारास्त्रं समालोक्त दुर्जयं कुशमोचितम् ।
दध्यौ रामं स्वमनसा भक्तविघ्नविनाशकम् ।।१९
तदा मुक्तं कुशनाशु तदस्त्रं हृदि मारुतेः ।

लग्नं महाव्यथाकारि तेन मूर्च्छामितः पुनः ।।२०

वलशाली कुश के द्वारा वेग से वह हनुमान वाण से विद्ध हो गये थे किन्तु मारुति ने फिर भी उस शाल वृक्ष से कुश के हृदय पर प्रहार कर ही दिया था और क्रोध में अपने दाँतों को पीसकर ही प्रहार किया था ।१६। शाल से आहत होकर भी वह वालक कुछ भी कम्पित नहीं हुआ—यह देखकर सबको वहुत ही विस्मय हुआ और उस समय में सभी वीरों ने उस वालक की वहुत प्रशंसा की थी ।१७। शाल से हत होकर उस वीर ने फिर संहारास्त्र ग्रहण किया था कुश परमास्त्रों के वेत्ता थे। उसने कोप से वैरी का संहार करने को ही यह अस्त्र ग्रहण किया था ।१८। कुश के द्वारा छोड़े हुए दुर्जय संहारास्त्र को देखकर हनुमान ने भक्तों के विघ्नों को विनाश करने वाले श्रीराम का हृदय में ध्यान किया था ।११। उस समय में कुश के द्वारा मुक्त वह अस्त्र मारुति के हृदय में आकर लगा था। उसके लगने से हनुमान को बहुत ही अधिक व्यथा हुई थी और उससे वह मूच्छित हो गये थे ।२०।

मूर्च्छां प्राप्तं तु तं दृष्ट्वा प्लवगं दलसंयुतः ।
विव्याध सायकैस्तीक्ष्णैः सैन्य तत्सकलं महत् ॥२१
तस्य वाणापुतैर्भग्नं बलं सर्वं रणाङ्गणे ।
पलायनपरं जातं चतुरङ्गसमन्वितम् ॥१२
तदा कपिपतिः कोपात्सुग्रीवो रक्षको महान् ।
अभ्यधावन्नगान्नैकानुत्पाट्य कुशमुदभटम् ॥२३
कुशः सर्वान्प्रचिच्छेदलीलया प्रहसन्नगान् ।
पुनरभ्यागतान्वृक्षांश्चिच्छेद तरसा बली ॥२४
अनेकबाणव्यथितः सुग्रीवः समराङ्गणे ।
जग्राह पर्वतं घोरं कुशमस्तकमध्यतः ॥२५
कुशस्तं नगमायान्तं वीक्ष्य वाणैरनेकधा ।
निष्पिपेष चकाराशु महारुद्राङ्गयाग्यताम् ॥२६
सुग्रीवस्तन्महत्कर्म दृष्ट्वा बालेन निर्मितम् ।
जयाशां प्रतिनिवृत्तो बभूव समराङ्गणे ॥२७

सुग्रीवं पतितं दृष्ट्वा वीराः सर्वत्रः दुद्रुवुः ।
जयमाप लवभ्राता महावीरवोरोमणिः ॥२८

मूर्च्छा को प्राप्त होने वाले उस बानर को देखकर बल से संयुत कुश ने फिर अपने अत्यन्त तीखे बाणों से उस सम्पूर्ण सेना को विद्ध कर दिया था ।२१। उस समय में सहस्रों उसके बाणों से भग्न वह सैन्य बल उस युद्ध क्षेत्र में भागने लगा था जो कि चतुरङ्ग से युक्त था । उस समय में सभी ओर भगदड़ मच गई थी ।२२। उस समय में कपियों के स्वामी सुग्रीव क्रोध से आक्रामक हुए थे क्योंकि यह सभी के सबसे बड़े रक्षा करने वाले थे । सुग्रीव ने अनेकों वृक्षों को उखाड़ कर उद्भट कुश पर प्रहार किया था किन्तु कुश ने लीला ही से हँसते २ सबको काट डाला था । बली उसने पुनः आये हुए वृक्षों को भी वेग से छिन्न कर दिया था ।२३-२४। अनेक बाणों से महान व्यथित होकर सुग्रीव ने उस समर क्षेत्र में एक घोर पर्वत को उठाया था और कुश के मस्तक पर ठीक मध्य में उसे डाल दिया था किन्तु कुश ने उसको आता हुआ देख कर अपने बाणों से उसे ऐसा पीस दिया था कि वह पिसकर महारुद्र के अंग में लगाई जाने वाली भस्म जैसा हो गया था ।२५-२६। सुग्रीव ने यह सब ऐसा महान् कर्म बालक के द्वारा किया हुआ देखा तो अपनी जय की आशा ही उनकी छूट गई थी और समर में हतोत्साह हो गये थे ।२७। सुग्रीव को भी जब उस युद्ध स्थल में पतित देखा तो सभी ओर से वीर भाग खड़े हुए थे और सब कहने लगे—अब तो लव के भाई नें जय प्राप्त करली है क्योंकि यह समस्त वीरों में इस समय सर्वोपरि शिरोभूषण हैं ।२८।

तावल्लवो भटाञ्जित्वा पुष्कलं चाङ्गदं तथा ।
प्रतापाग्र्यं वीरमणिं तथाऽन्यानपिभूभुजः ॥२९
जयं प्राप्य रणे वीरो लवो भ्रातरमागमत् ।
संग्रामे जयकर्तारं वैरिकोटिनिपातकम् ॥३०
परस्परं प्रहृषितौ परिरम्भं प्रकुर्वतः ।
जयप्राप्तौ तदा वातौ मुने चक्रतुरुन्मदौ ॥३१

भ्रातस्तव प्रसादेन निस्तीर्णो रणतोयधिः ।
इदानीं वीर ! रणकं शोधयावः सुशोभितम् ॥३२
इत्युक्त्वा राजसविधे जगाम सलवः कुशः ।
राज्ञो मौलिमणि चित्रं जग्राह कनकाचितम् ॥३३
पुष्कलस्य लवोवीरो जग्राह मुकुटं शुभम् ।
अङ्गदे महानर्घ्ये शत्रुघ्नस्यापरस्य च ॥३४
गृहीत्वा शस्त्र संघातं हनूमन्तं करीश्वरम् ।
सुग्रीवं सविधे गत्वा उभावपि गवन्धतुः ॥३५
पुच्छे वायुसुतस्यायं गृहीत्वा तु कुशानुजः ।
भ्रातरं प्रत्युवाचेदं नेष्यामि स्वकमन्दिरम् ॥३६

उसी समय में लव भी पुष्कल और अंगद इन दोनों महान् नरों को जीतकर तथा वीरमणि प्रतापाग्रय एवं अन्य भी राजाओं पर विजय प्राप्त करके वीर लव अपने भाई के समीप में आ गया था जो कि इस संग्राम में विजय करने वाला और करोड़ों शत्रुओं का संहार करने वाला था ।२९ ३०। उस समय में परस्पर में दोनों भाई लव और कुश अत्यन्त ही प्रसन्न हुए थे और एक दूसरे से परिरम्भण करने लगे थे। दोनों ने विजय प्राप्त की थी और उन्माद युक्त होकर उस समय में वे वार्तालाप करने लगे थे ।३१। लव ने कहा—हे भाई ! यह आपके ही प्रसाद से रण रूपी सागर को पार किया है । हे वीर ! अब आप इस रण को सुशोभी करके शोधन करेंगे ।३२। इतना कहकर लव और कुश राजा के निकट में गये थे । राजा का जो मौलिमणि चित्र कनकाचित था उसे ग्रहण कर लिया था ।३३। लव वीर ने पुष्कल का शुभ मुकुट ले लिया था । महान् अर्घ्य अंगद और शत्रुघ्न के जो शस्त्रों का समूह था वह ग्रहण कर लिया था ।३४। कपीश्वर हनुमान और सुग्रीव के समीप में जाकर इन दोनों को बाँध लिया था ।३५। कुश के अनुज ने वायुपुत्र हनुमान की पूँछ पकड़कर ग्रहण कर लिया था और अपने भाई से कहा था इसको अपने मन्दिर में ले जायेंगे ।३६।

ताभ्यां तुच्छगृहीतौ वानरौ वीक्ष्य जानकी ।
हनूमन्तं च सुग्रीवं सर्वंवीरं कपीश्वरम् ।।३७
जहास पाशबद्धौ तो वीक्षमाणा वराङ्गना ।
उवाच विमोक्षार्थं वदन्ती वचनं वरम् ।।३८
पुत्रौ ! प्रमुञ्चतं कीशौ महावीरौ महाबलौ ।
द्रक्ष्यतो मां यदि स्फीतौ प्राणत्यागं करिष्यतः ।।३९
अय वै हनुमान्वीरो यो ददाह दनोः पुरीम् ।
अयमप्यृक्षराजो हि सर्ववानरभूमिपः ।।४०
किमर्थं विधृतौ कुत्र किंवा कृतमनादरात् ।
पुच्छे युवाभ्यां विधृतौ स महान्विस्मयोऽस्ति मे ।।४१

उन दोनों भाइयों के द्वारा पूँछ से ग्रहण किये हुए दोनों वानरों को जानकी ने देखा था उन दोनों में एक तो हनुमान थे और दूसरे सर्ववीर कपीश्वर सुग्रीव थे ३७। उन दोनों को बँधे हुए देखती हुई वह वीरांगना जानकी देवी खूब हँसी और फिर बोली कि दोनों का विमोक्ष कर देना चाहिये ।३८। जानकी जी ने कहा—हे पुत्रो ! ये दोनों महान् बल वाले महान् वीर हैं । दोनों कपीशों को छोड़ दो । यदि ये बँधे हुए मुझे देखेंगे तो दोनों अपने प्राणों का त्याग कर देंगे ।३९। यह तो वीर हनुमान है जिससे दनु की पुरी का दाह कर दिया था और यह ऋक्षराज समस्त वानरों का राजा है ।४०। इनको किसलिए कहाँ पर पकड़ लिया था ? अथवा कोई इनने अनादर किया था ? तुम दोनों ने इनकी पूँछ पकड़ रखी थी । मुझे बहुत अधिक विस्मय हो रहा है।४१।

इति मातुर्वचः श्लक्ष्णं श्रुत्वा तां पुत्रकौ तदा ।
ऊचतुर्विनयश्रेष्ठौ महाबलसमन्वितौ ।।४२
मातः कश्चन भूपालो रामो दाशरथिर्बली ।

तेन मुक्तोहयः स्वर्णभालपत्रः सुशोभितः ।।४३

तत्रैवं लिखितं मातरेकवीरा प्रसूर्मम ।
ये क्षत्त्रियास्ते गृह्णन्तु नोचेत्पादतलार्चका ॥४४
तदा मया बिचारो व कृतः स्वान्ते पतिव्रते ।
भवती क्षत्त्रिया किं न वीरसूः किं न वा भवेत् ॥४५
धाष्टर्यं तद्वीक्ष्य भूपस्य गृहीतोऽश्वो मया बलात् ।
जितं कुशेन वीरेण सेन्य तत्पातितं रणे ॥४६
जानीहि मुकुटं त्वन्यं मणिसुक्ताविराजितम् ।
अश्वोऽयं मे मनोहारी कामयानो हि भूपतेः ।४७
आरोहणाय मद्भ्रातुर्जानीहि बलिनोवरे ।
इमौ कोशो मयाऽन्तुमानीतौ बलिनांवरौ ॥४८
कौतुकार्थं तवेवैतौ संग्रामे युद्धकारकौ ।
इति वाक्यं समाकर्ण्य जानकी पतिदेवता ॥४९
जगाद पुत्रौ तो वीरौ वीरवानरमुक्तये ॥५०

उस समय में माता के अत्यन्त श्लक्षण इस वचन को उन दोनों पुत्रों से सुनकर माता से यह कहा था। वे दोनों ही पुत्र अत्यन्त विनयशील और महान वल से समन्वित थे। उनने कहा—हे माता ! कोई बली दशरथ का पुत्र राम नाम का राजा है। उसी ने यह अश्व छोड़ा है जिसके मस्तक पर एक स्वर्ण पत्र सुशोभित हो रहा था ।४२-४३। उस पत्र में लिखा हुआ था हे माता ! यह समस्त भूमि एक ही वीर वाली मेरी है । जो भी कोई क्षत्रिय हों वे ग्रहण करें अन्यथा मेरे पाद तल के अर्चक हो जावें। अर्थात् जिनको अपने क्षत्रियत्व का अभिमान हो वे इस अश्व को बाँधें और युद्ध करें अगर ऐसा नहीं कर सकते हैं तो मेरे अधीनस्थ होकर रहें यह उस पत्र में लिखे हुए वाक्यों का भाव था ।४४। हे पतिव्रते ! इसे वाँचकर मैंने अपने मन में विचार उस समय में किया था कि आप मेरी माता भी क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुई हैं। क्या आप वीरों को प्रसव प्रदान करने वाली नहीं हैं अथवा क्या नहीं हो सकता ।४५। उस राजा की ऐसी धृष्टता देखकर मैंने बल

पूर्वक यह अश्व ग्रहण कर लिया था फिर युद्ध हुआ और कुश वीर ने उसकी समस्त सेना को जीत लिया था तथा सबको समर भूमि में निपतित कर दिया था ।४६। यह मुकुट है जो मणियों और मोतियों से सुशोभित हो रहा है । इसें आप जान लेवें । यह अश्व भी बहुत सुन्दर है जो कि राजा की कामना वाला है ।४७। यह अश्व मेरे भाई के आरोहण के लिए काम में आया करेगा । बल शालियों में परम श्रेष्ठ ये दोनों वानर मैंने अपने दिल वहलावा करने के लिए वाँधकर रक्खा है और इन्हें मैं यहाँ ले आया हूँ ।४८। संग्राम स्थल में युद्ध करने वाले ये दोनों हैं । यहाँ आपके कौतुक के लिए ही लाये गये हैं । इस पुत्र के वचन का श्रवण कर पति देवता जानकी ने कहा—हे पुत्रो ! ये दोनों वीर हैं और इन वानरों की मुक्ति कर दो ।४९-५०।

युवाभ्यामनयः सृष्टो सृदो हृतो रामहयो महान् ।
अनेके पातिता वीरा इमौ बद्धौ कपीश्वरौ ।।५१
पितुस्तव हयो वीरौ यागार्थं मोचितोऽमुना ।
तस्यापि हृतवन्तौ किं वाजिन मखसत्तमे ।।५२
मुञ्चतं प्लवगावेतौ मुञ्चतं वाजिनांवरम् ।
क्षाम्यतां भूपतेर्भ्राता शत्रुघ्नः परकोपनः ।।५३
जनन्यास्तद्वचः श्रुत्वा ऊचतुस्तां बलान्वितौ ।
क्षात्त्रधर्मेण तं भूपं जितवन्तौ बलान्वितम् ।।५४
नास्माकमनयो भावि क्षात्त्रधर्मेण युष्मताम् ।
वाल्मीकिना तुरा प्रोक्तमस्माकं पठतांपुरः ।।५५
दुष्यन्तेन समंयुद्धं भरतेन कृतंपुरा ।
कण्वस्याश्रमके वाहं धृत्वा गागक्रियोचितम् ।।५६

सीताजी ने कहा—तुम दोनों ने बड़ा भारी अन्याय किया है कि यह महत्वशाली श्रीराम का अश्व हरण कर लिया है । बहुत से वीरों को तुमनें मार डाला है और इन दोनों कपीश्वरों को भी बाँध

लिया है ।५१। ये हम और ये दोनों वीर तुम्हारे पिता के ही हैं । यह

अश्वमेध यज्ञ को पूर्ण करने के लिए ही तुम्हारे पिताजी ने छोड़ा है। क्या उस उत्तम यज्ञ में छोड़े हुए उनके अश्व को भी तुमने हरण कर लिया है।५२। इन दोनों बानरों को छोड़ दो और उस अश्व को भी छोड़ दो। ये परम श्रेष्ठ अश्व है तथा राजा के छोटे भाई से जाकर अपना क्षमापन कराओ वह तो शत्रुओं पर कोप करने वाले शत्रुघ्न है।५३। अपनी माता के यह वचन श्रवण करके उन दोनों ने उनसे कहा था। वे दोनों ही भाई पूर्ण बल से सम्पन्न थे। हे माता, छात्र धर्म मे तो उस राजा को चाहे वह कैसा भी बलान्वित हो हम दोनों ने जीत लिया है। युद्ध करने वाले इनके साथ हमारा क्षात्र धर्म से अब भविष्य में कोई युद्ध नहीं होने वाला है। जब पहिले पढ़ते थे तो उस समय वाल्मीकि ने हमको यह बताया।५४-५५। पुराने समय में भरत ने दुष्यन्त के साथ युद्ध किया था। कण्व ऋषि के आश्रम में त्याग क्रिया के उचित अश्व को रखा गया था।५६।

तस्मात्सुतः स्वपित्राऽपि युध्येद् भ्रात्राऽपि चानुजः।
गरुणा शिष्य एवापि तस्मान्नो पापसम्भवः ॥५७
त्वदाज्ञातोऽधुना चावां दास्यावो हयमुत्तमम्।
दोक्ष्यावः कीशावेतौ हि करिष्यावो वचस्तव ॥५८
इत्युक्त्वा मातरं वीरौ मतौ रणे कपीश्वरौ।
अमुञ्चवां हयं चापि हयमेधक्रियाचितम् ॥५९
सीतादेवी स्वपुत्राभ्यां श्रुत्वा सैन्यं निपातितम्।
श्रीरामं मनसा ध्यात्वा भानुमैक्षत साक्षिणम् ॥६०
यद्यहं मनसावाचा कर्मणा रघुनायकम्।
भजामि नान्य मनसा तर्हि जीवेदयं नृपः ॥६१
सैन्यं चापि महत्सर्वं यन्नाशितमिदं बलात्।
पुत्राभ्यां तत्तु जीवेत मत्सत्याज्जगताम्पते ॥६२
इति यावद्वचो ब्रूते जानकी पतिदेवता।
तावद्बलं च तत्सर्वं जीवित रणमूर्द्धनि ॥६३

इसलिए सुत भी अपने पिता से और भाई भी अपने छोटे भाई से युद्ध कर सकता है। इसी भाँति शिष्य भी अपने गुरु के साथ युद्ध कर सकता है—इस प्रकार के युद्ध से जो कि क्षत्रिय का धर्म-कृत्य ही है कोई भी पाप की उत्पत्ति नहीं होती है।५७। धार्मिक दृष्टि से तो हमने कोई भी पाप कर्म या अनुचित कृत्य नहीं किया है किन्तु माता की आज्ञा तो सर्वोपरि स्थिति होती है अतः आपके आदेश से हम दोनों ही उस उत्तम अश्व को दे देंगे और इन दोनों बानरों को भी छोड़ देंगे तथा आपके वचनों का पूर्ण परिपालन करेंगे।५८। यह कहकर वह दोनों वीर और दोनों कपीश्वर रणभूमि में गये थे वहाँ पर अश्वमेध कार्य के योग्य अश्व को भी छोड़ दिया था।५-९। सीता देवी ने अपने पुत्रों से निपातित हुई सेना का हाल सुना था। देवी ने श्रीराम का मन में ध्यान किया था और सूर्य को साक्षी किया था और प्रार्थना की थी कि यदि मैं नित्य ही मन-वाणी और कर्म से श्री रघुनायक का भजन करती हूँ और कभी किसी अन्य का मन में ध्यान भी नहीं करती हूँ तो यह नृप जीवित हो जाये।६०-६१। यह सभी सेना जो बलपूर्वक नष्ट कर दी गई है और मेरे ही पुत्रों ने इसका विनाश किया है हे जगतों के स्वामिन् मेरे सत्यव्रत के प्रभाव से वह सब जीवित हो जावे।६२। ये वचन जब तक पति को ही अपना देवता मानने वाली देवी जानकी बोलती हैं वैसे ही उस रणक्षेत्र में वह सम्पूर्ण बल अर्थात् सेना जीवित हो गई थी।६३।

अश्व के साथ शत्रुघ्न का अयोध्या आगमन

क्षणान्मूर्च्छां जहौ वीरः शत्रुघ्नः समराङ्गणे।
अन्येऽपि वीरा बलिनो मूर्च्छां प्राप्ताः सुजीविता ॥१
शत्रुघ्नो वाजिनाश्रेष्ठं ददर्श पुरतःस्थितम्।
आत्मानं चशिरस्त्राणरहितं सैन्यजीवितम् ॥२

वीक्ष्य चित्रमिदं स्वान्ते चकार च जगाद ह ।
सुमतिं मन्त्रिणाँ श्रेष्ठं मूर्च्छाविरहितं तदा ।।३
कृपां कृत्वा हयं प्रादाद् बालो यज्ञस्य पूर्तये ।
गच्छाम रामं तरसा हयागमनकांगक्षिणम् ।।४
इत्युक्त्वा स रथेस्थित्वा हयमादाय वेगतः ।
ययौ तदाश्रमाद्दूरं भेरीशङ्खविवर्जितः ।।५
तत्पृष्ठतो महासैन्यं चतुरङ्गसमन्वितम् ।
चचाल कुर्वन्म्सभग्नं स्वभारेण फणीश्वरम् ।।६
जवेन जाह्नवीं तीर्त्वा कल्लोलजलशालिनीम् ।
जगाम विषये स्वीये स्वकीयजनशोभिते ।।७

शेष भगवान् ने कहा—वीर शत्रुघ्न ने क्षणभर में ही उस समरांगण में मूर्च्छा का त्याग कर दिया था और अन्य जो भी वीर युद्ध से मूर्च्छित हो गये थे वे सभी बलशाली पुनः जीवित हो गये थे ।१। शत्रुघ्न ने उस श्रेष्ठ अश्व को अपन सामनें स्थित देखा था और अपनें आपको शिरस्त्राण से रहित एवं सम्पूर्ण सेना को जीवित देखा था । ।२। इस एक अति अद्भुत बात को देखकर अपने मन में बड़ा ही विस्मय किया था और शत्रुघ्न नें उस समय मं अपने मन्त्रियों में परम श्रेष्ठ सुमति से कहा था जो मूर्च्छा से रहित हो गया था ।३। उस बालक ने अश्वमेघ यज्ञ की पूर्ति के लिये स्वयं ही कृपा करके यह अश्व प्रदान कर दिया है । अब हम सबको तेजी से श्रीराम के समीप में ही चलना चाहिए क्योंकि वे इस समय इस अश्व के आगमन की आकांक्षा वाले ही रहे होंगे ।४। यह कहकर वह शत्रुघ्न अपने रथ में समारूढ़ हो गये थे और अश्व को साथ में ले लिया था । बड़े वेग के साथ उस आश्रम सं दूर भेरी तथा शंख के वादन को न करते हुए हीं चले गये थे ।५। उनके पीछे-पीछे वह चतुरङ्गिणी सेना जो बहुत विशाल थी अपनें भार से शेष नाग को संलग्न करती हुई चली गई थी ।६। बड़े वेग के साथ जाह्नवी नदी को पार करके जो महान् तरङ्गों के युक्त जल से शोभा वाली थी अपन ही मनुष्यों से सुशोभित देश में चले गये थे ।७।

पुष्कलेनयुतो राजा सुरथेन समन्वितः ।
रथे मणिमये तिष्ठन्महाकोदण्डधारकः ॥८
हयं तं पुरतःकृत्वा रत्नमालाविभूषितम ।
श्वेतातपत्रं तस्यैव मूर्ध्नि चामरभूषितम् ॥९
अनेकरथसाहस्त्रैः परीतो बलिभिर्नृपैः ।
उद्यत्कोदण्डललितैर्वीरनादविभूषितैः ॥१०
क्रमेण नगरीं प्राप सूर्यवंश विभूषिताम् ।
अनेकैः केतुभिः श्रेष्ठैर्भूषितां दुर्गराजिताम् ॥११
रामःश्रुत्वा हयं प्राप्तं शत्रुघ्नेन सहामुना ।
पुष्कलेन च वीरेण ययौ हर्षमनेकधा ॥१२
कटकं निर्दिदेशासौ चतुरङ्ग महाबलम् ।
लक्ष्मणं प्रेषयामास भ्रातरं बलिनांवरम् ॥१३
लक्ष्मणः सैन्यसहितो गत्वा भ्रातरमागतम् ।
परिरेभे मुदाक्रान्तः क्षत शोभितगात्रकम् ॥१४

महान् कोदण्ड का धारण करने वाला राजा पुष्कल से युक्त सुरथ से समन्वित होकर मणियों से परिपूर्ण रथ में स्थित हो गया था ।८। रत्नों की मालाओं से विभूषित उस अश्व को आगे करके उसके मस्तक पर श्वेत वर्ण का आतपत्र था और चामरों से वह शोभित हो रहा था ।९। अनेक प्रकार के सहस्रों रथों से वह परिवृत हो रहा था । उद्यत्कोदण्ड से ललित और वीरनाद से भूषित बलशाली नृपों के द्वारा भी वह चारों ओर से घिरा हुआ था ।१०। इस प्रकार से सूर्यवंश से विभूषित-जिसमें परम श्रेष्ठ अनेक ध्वजाऐं लगी हुई थीं और इनकी शोभा से विभूषित-दुर्ग से राजित उस अयोध्या नगरी में क्रम से वह अश्व प्राप्त हो गया था ।११। श्रीराम ने शत्रुघ्न के साथ वह यज्ञ का अश्व आ गया है और साथ में पुष्कल वीर भी है—ऐसा श्रवण किया तो उनको अपार हर्ष हुआ था ।१२। इन्होंने तुरन्त ही सेना को निर्देश किया था जो कि चतुरङ्ग से समन्वित एव महान् वल से युक्त थी । लक्ष्मण को भी भेजा था जो कि बलशालियों में परम श्रेष्ठ भाई था

।१३। सैन्य के सहित लक्ष्मण आने वाले भाई के स्वागत के लिए गये थे और वहाँ पहुँचकर क्षतों से शोभित गात्र वाले शत्रुघ्न से बड़े ही आनन्द के साथ लक्ष्मण ने परिरम्भण किया ।१४।

सुमते मन्त्रिणांश्रेष्ठ शंस मे वाग्मिनांवर ।
क एते भूमिपाः सर्वे कथमत्र समागताः ।।१५
कुत्रकुत्र हयः प्रातः केनकेन नियन्त्रितः ।
कथं वै माचितो भ्रात्रा महाकल सुशालिना ।।१६
इत्युक्तो मन्त्रिणां श्रेष्ठः सुमतिः प्राह राघवम् ।
प्रहसम्मेघगम्भीरनादेन च सुबुद्धिमान् ।।१७
सर्वज्ञस्य पुरस्तेऽद्य मया कथमुदीर्यंते ।
पृच्छसि त्वं लोकरीत्या सर्वं जानासि सर्वदृक् ।।१८
तथापि तवनिर्देशं शिरस्याधाय सर्वदा ।
ब्रवीमि तच्छृणुष्वाद्य सर्वराज शिरोमणे ।।१९
त्वत्प्रसादादहो स्वामिन्सर्वत्र जगतीतले ।
परिवभ्रामतेवाहो भालपत्रसुशोभितः ।।२०
न कश्चित्तं निजग्राहस्वनाम बलदर्पितः ।
स्वंस्वं राज्य समर्प्याथ प्रणेमुस्ते पदाम्बुसम् ।।२१
को वा रावणदैत्येन्द्र निहन्तुर्वाजिसत्तमम् ।
गृह्णाति विजयाकांक्षी जरामरणवर्जितः ।।२२

श्रीराम ने कहा हे सुमते ! आप तो मन्त्रियों में परम श्रेष्ठ हैं और बोलने वालों में भी आप सर्वश्रेष्ठ वक्ता हैं। अब आप मुझे सब समाचार बतलाओ कि कौन ये सब राजा हैं जो यहाँ किस प्रकार से आए हैं ।१५। कहाँ-कहाँ पर यह अश्व प्राप्त हुआ था और किस किसने इस अश्व को नियन्त्रित किया था। मेरे महान् बलशाली भाई शत्रुघ्न ने किस तरह से इसको छुड़ाया था—यह सभी हालात स्पष्टतया मुझे सुनाइये ।१६। शेष भगवान् ने कहा इस तरह से श्रीराम के द्वारा कहे एवं पूछे जाने पर मन्त्रियों में अतिश्रेष्ठ सुमति श्रीराघव से बोला और मेघ के समान गम्भीर ध्वनि से हँसते हुए उस महा बुद्धिमान मन्त्री

ने कहा था ।१७। सुमति ने कहा—हे भगवन् ! आप तो स्वयं ही सर्वज्ञ हैं । आपके सामने आज मैं क्या कहूँ । आप तो लोक की जैसी रीति होती है उसी के अनुसार मुझसे पूछ रहे हैं । आप स्वयं सभी कुछ जानते हैं और सब देखनें वाले हैं ।१८। तो भी आपका निर्देश है कि मैं अपने मुख से सुनाऊँ तो मैं उसको सर्वदा शिर पर धारण कर बोलता हूँ । हे समस्त राजाओं में शिरोमणि महाराज ! अब आप श्रवण करिये ।१९। हे स्वामिन् ! यह आपका ही प्रसाद है कि उसके प्रभाव से सब जगह इस जगतीतल में आपका यज्ञाश्व परिभ्रमण कर चुका है जिसके भाल पर सुवर्ण पत्र लगा था और वह इससे परम शोभा से सुसम्पन्न था ।२०। किसी ने भी उसको ग्रहण नहीं किया था चाहे कोई अपने नाम और बल के दर्पवाला भी क्यों न रहा हो । अपना-अपना राज्य समर्पित करके सबने आपके चरण कमलों में प्रणाम ही किया था ।२१। ऐसा इस जगती तल मे हो ही कौन सकता है जो दैत्यों में शिरोभूषण रावण क निहनन करने वाले के यज्ञाश्व को ग्रहण कर सके और विजय की आकांक्षा रखने वाला तथा जरा एवं मरण से रहित हो ।२२।

विद्युन्माली हतोदैत्यः सत्ववान्सङ्गतस्ततः ।
सुरथेन समंयुद्धं जानासि त्व महामते ।।२३
ततः कुण्डलकान्मुक्तो हयो वभ्राम सर्वतः ।
न कश्चित्तं निजग्राह स्ववीर्यबलदर्पितः ।।२४
वाल्मीकेराश्रमेरम्ये हयः प्राप्तो मनोरमः ।
तत्र यत्कुतुकंजातं तच्छृणुष्व नरोत्तमः ।।२५
तत्राभंस्तव सारूप्य बिभत्षोडशवार्षिकः ।
जग्राह वीक्ष्यपत्राङ्कं वाजिनं बलवत्तमः ।।२६
तत्र कालजितायुद्धं महज्जातं नरोत्तम ।
निहतस्तेन वीरेण शितधारेणहेतिना ।।२७
अनेके निहताः संख्ये पुष्कलाद्यामहाबलाः ।
मूर्च्छित चापि शत्रुघ्न यत्र वीरशिरोमणिः ।।२८

विद्युन्माली दैत्य मारा गया था। इसके पश्चात् सत्यवान संगत हुआ। सुरथ के साथ युद्ध हुआ था। आप सभी कुछ जानते हैं और महान मति वाले हैं।२३। इसके अनन्तर कुण्डल से युक्त हुआ अश्व सर्व और भ्रमण करने वाला हो गया था। फिर अपने बल-वीर्य के दर्प से युक्त किसी ने भी उस अश्व को ग्रहण नहीं किया था।२४। इसके उपरान्त महर्षि वाल्मीकि का आश्रम आ पहुँचा था जो कि परम सुरम्य एवं मनोरम था। वहाँ अश्व पहुँच गया था। हे नरोत्तम! वहाँ जो एक अति अद्भुत कौतुक घटित हुआ उसका अत्र आप श्रवण करें।२५। वहाँ पर एक बहुत छोटा सा बालक था जिसका रूप लावण्य आपके ही समान था। लगभग सोलह वर्ष की आयु वाला वह था। उस बलवान ने अश्व का पत्रांक बाँचकर इसको पकड़ लिया था।२६। हे नरों में अति श्रेष्ठ! वहाँ पर कालजित के साथ महान घोर युद्ध हुआ था। परिणाम यह हुआ कि उस वीर कुमार ने अपने पैनी धार वाले आयुध से उस कालजित का वध कर दिया था।२७। एक कालजीत ही क्या उस वीर कुमार ने पुष्कल आदि महान बल वाले बहुत वीरों को समरांगण में मार दिया था। उस वीरों में शिरोमणि छोटे से कुमार ने शत्रुघ्न को भी युद्ध क्षेत्र में मूच्छित कर दिया था।२८।

तदा राजा महद्दुःखं विचार्य हृदि संयुगे।
कोपेन मूच्छितं चक्रे वीरोहि बलिनांवरः ॥२९

स यावन्मूच्छितो राज्ञा तावदन्यः समागतः।
तेनैतेन च सञ्जीव्य नाशितं कटकं तव ॥३०

सर्वेषां मूच्छितानां तु शस्त्राण्याभरणानि च।
गृहीत्वा वानरौ बद्धौ जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति ॥३१

कृपांकृत्वा पुनस्तेन दत्तोऽश्वो यज्ञियो महान्।
जीवनं प्रापितं ह्यत्र नष्टजीवितम् ॥३२

वयं गृहीत्वा तं वाहं प्राप्तास्तव समीपतः।
एतदेव मया ज्ञातं तदुक्तं ते पुरोवचः ॥३३

उस समय में राजा ने उस युद्ध में अपने हृदय में महान दुःख का विचार किया था और क्रोध से बलशालियों में परम श्रेष्ठ वह वीर भी मूर्छित कर दिया था ।२९। तब तक राजा ने उसको मूर्छित किया था तब तक एक वैसा ही दूसरा कुमार वहाँ पर आ गया था । उसने तो इसको सञ्जीवित करके आपकी सम्पूर्ण सेना का नाश कर दिया था । ।३०। जो सब वहाँ पर मूर्छित दशा में रण स्थल में भूतल पर पड़े हुए थे उनके सब आभूषण और अस्त्र-शस्त्र ग्रहण करके सुग्रीव एवं हनुमान इन दोनों बानरों को बाँध कर वे दोनों कुमार अपने आश्रम में ले गये थे ।३१। इसके अनन्तर कृपा करके फिर उसने इस यज्ञ का महान अश्व वापिस स्वयं ही दे दिया था । जिन सब सेना के महान वीरों का जीवन नष्ट हो गया था और मर गये थे वे भी सभी पुनः जीवित हो गए थे । ।३२। फिर हमने उस अश्व को ग्रहण किया था और अब वहाँ से चल कर आपके समीप में आ गये हैं । मैंने यही वहाँ का समाचार ज्ञात किया है वही श्रीमान् के सामने कह सुनाया है ।३३।

।। श्रीराम और वाल्मीकि संवाद ।।

कथितौ वै सुमतिना वाल्मीकेराश्रमे शिशू ।
पुत्रौ स्वीयाविति ज्ञात्वा वाल्मीकिम्प्रति सञ्जगौ ।।१
कौ शिशु मम सारूप्यधारकौ बलिनांवरो ।
किमर्थं तिष्ठतस्तत्र धतुर्विद्याविशारदौ ।।२
आमात्य कथितौ श्रुत्वा विस्मयो मम जायते ।
यौ शत्रुघ्नं हनुमन्तंलीलयाङ्गवबंन्धतुः ।।३
तस्माच्छंस मुने सर्व बालयोश्च विचेष्टितम् ।
यथा मे परमाप्रीतिर्भवत्येवमभीप्सिता ।।४
इति तत्कथितं श्रुत्वा राजरांजस्य धीमतः ।
उवाच परमंवाक्यं स्पष्टाक्षर समन्वितम् ।।५

तवान्तर्यामिणो नृणां कथं शर्म च नो भवेत् ।
तथापि कथयाम्यत्र तव सन्तोषहेतवे ।।६

राजन्यौ बालकौ मह्यमाश्रमे बलिनांवरी ।
त्वत्सारूप्यधरौ स्वांग मनोहरवपुर्धरा ॥७७

भगवान शेष ने कहा—सुमति ने महर्षि वालमीकि के आश्रम में शिशु बतलाये थे । वे दोनों अपने ही पुत्र हैं–ऐसा जानकर श्रीराम वालमीकि के आश्रम की ओर गये थे ।१। श्रीराम ने कहा—ये दोनों शिशु कौन हैं जो मेरी समान रूपता को धारण करने वाले हैं—बहुत अधिक बलवान हैं और धनुर्विद्या के महान पण्डित हैं । वहाँ पर वे किस कारण से ठहरे हैं ।२। मेरे अमात्य ने उनका सब समाचार बताया है । मुझे यह सुनकर हृदय में बड़ा भारी विस्मय हो रहा है कि जिसने शत्रुघ्न को और हनुमान को भी लीला ही से बांध डाला था ।३।अतएव हे मुनिवर ! इन दोनों बालकों के विषय में सभी कुछ इनका विचेष्टित बतलादो । मेरी इस सबको जानने की उत्कट अभिलाषा है और पूर्ण जानकारी हो जाने पर मुझे अत्यधिक प्रीति भी होगी ।४। परम श्रीमान् राजाधिराज श्रीराम के इस कथन का श्रवण कर महर्षि ने स्पष्ट अक्षरों वाली वाणी में यह वचन कहे थे ।५। वालमीकि ने कहा–समस्त प्राणियों के अन्दर अन्तर्यामी रूप से विराजमान रहने वाले आपको यह सभी ज्ञान न हो—यह कैसे हो सकता है ? अर्थात् आप तो स्वयं सभी कुछ जानते हैं । तो भी मैं आपके सतोषके लिए कहता हूँ ।६। ये दोनों क्षत्रिय बालक हैं । ये बलशालियों में परम श्रेष्ठ हैं मेरे आश्रम में निवास करते हैं । ये आपके ही समान रूपता को धारण करने वाले और अपने सभी अंगों की मनोहरता को धारण करने वाले हैं ।७।

त्वया यदा वनेत्यक्ता जानकी वैनिरागसी ।
अन्तर्वत्नी वनेघोरे विलपन्ती मुहुर्मुहुः ॥८
कुररीमिव दुःखार्ता वीक्ष्याहं तववल्लभाम् ।
जनकस्यसुतां पुण्यामाश्रमे त्वानयं यदा ॥६
तस्या: पर्णकुटिरमा रचिता ननिपुवकैः ।

तस्यामसूतपुत्रौ द्वौ भासयन्तौ दिशोदश ॥१०

तयोरकरवं नाम कुशोलव इतिस्फटम् ।
ववृधातेऽनिशं यत्र शुक्लपक्षे यथा शशी ॥११
कालेनोपनयाद्यानि सर्वाणि कृतवानहम् ।
वेदान्सांगानहं सर्वान्ग्राहयामास भूपते ! ॥१२
सर्वाणि सरहस्यानि शृणुष्व मुखतो मम ।
आयुर्वेदं धनुर्विद्यां शस्त्रविद्यां तथैव च ॥१३
विद्यां जालन्धरीं चाथ संगीतकुशलौ कृतौ ।
गङ्गाकूले गायमानौ लताकुञ्जवनेषु च ॥१४
चञ्चलौ चलचित्तौ तौ सर्वविद्याविशारदौ ।
तदाऽहमतिसन्तोषं प्राप्त परमबलयोः ॥१५

जब आपने ही किसी अपराध वाली जानकी को बन में त्याग कर छोड़ दी थी उस समय वह विचारी गर्भवती थी और महान घोर वन में वारम्वार विलाप करती हुई घूम रही थी ।८। मैंने उस विलाप करने की दशा में एक हिरनी की भाँति दुःख से पीड़ित आपकी वल्लभा को देखा था । वह राजा जनक की पुत्री और आपकी पतिव्रता परायणा पत्नी थी मैं उसको जब अपने आश्रम में ले गया था ।९। उसी समय में मुनियों के पुत्रों ने उसके रहने के लिए एक परम सुन्दर पर्णकुटी तैयार कर दी थी । उसी पर्णकुटी में उस जानकी देवी ने दशों दिशाओं को भासित करने वाले दो पुत्र उत्पन्न किये थे ।१०। उन दोनों के कुश-लव ये स्फुट नाम रक्खे गये थे । वे दोनों जिस प्रकार से शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा प्रतिदिन वृद्धिशील हुआ करता है उस भाँति वे भी निरन्तर बढ़ने लगे ।११। हे राजन ! जैसे ही समुचित समय उपस्थित हुआ था मैंने उपनयन आदि सब आवश्यक संस्कार करा दिये थे और सांग वेद भी मैंने यथाविधि सिखा एवं पढ़ा दिये थे ।१२। मेरे ही मुख से सभी शास्त्र रहस्य के अर्थात् गूढ़ तत्व के सहित सुन लिये थे, आयुर्वेद-धनुर्वेद-शस्त्रविद्या, जालन्धरी विद्या आदि सब सिखादी थीं और इनके अतिरिक्त संगीत शास्त्र में भी कुशल बना दिया था । दोनों ही गंगा के तट पर शयन करते हुए तथा लताओं के कुंज वनों में गान करने वाले ये भ्रमण

किया करते थे ।१३-१४। ये दोनों बालक बहुत ही चञ्चल और चलायमान चित्त वाले समस्त विद्याओं में विशारद थे। ऐसा परम प्रवीण दोनों बालकों को देखकर मुझे अत्यन्त सन्तोष प्राप्त हो गया था कि वे सब प्रकार से सुयोग्य हो गये हैं ।१५।

अस्मत्साक्षिकमेतस्याः पावनं चरितं सदा ।
सद्यस्ते सिद्धिमायान्ति ये सीतापदचिन्तकाः ॥१६
सस्याः सङ्कल्पमात्रेण जन्मस्थितिलयादिकाः ।
भवन्ति जगतां नित्यं व्यापारा ऐश्वरा अमी ॥१७
सीता मृत्युःसुधाचेयं तपत्येषा च वर्षति ।
स्वर्गो मोक्षस्तपतो योगो दानं च तव जानकी ॥१८
ब्रह्माणं शिवमन्यांश्च लोकपालान्मदादिकान् ।
करोत्येषाकरोत्येव नान्या सीता तव प्रिया ॥१९
त्वं पिता सर्वलोकानां सीता च जननीत्यतः ।
कुदृष्टिरत्र तु क्षेमयोग्या न तव कर्हिचित् ॥२०
वेत्ति सीतां सदाशुद्धां सर्वज्ञो भगवान्स्वयम् ।
भवानपि सुतांभूमेः प्राणादपि गरीयसीम् ॥२१
आदर्तव्या त्वया तस्मात्प्रिया शुद्धेति जानकी ।
न च शापपाराभूतिः सीतायां त्वयि वा विभो ॥२२

इस देवी के चरित्र के विषय में हमारा साक्ष्य है इसका चरित्र सदा परम पावन रहा है। जो पुरुष श्री सीता के चरणारविन्दु का ध्यान किया करते हैं वे पुरुष तुरन्त ही सिद्धि को प्राप्त कर लिया करते हैं ।१६। जिस महापुरुष के हृदय के केवल संकल्प करने ही से इस विश्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति-स्थिति और लय आदिहो जाया करते हैं और हमेशा ही होता रहता है ये ही इन महापुरुष के ऐश्वर्य पूर्ण व्यापार होते हैं। ।१७। यह सीता मृत्यु और सुधा है—यह तपती है और वर्षती भी है—यह आपकी जानकी स्वर्ग-मोक्ष, तप, योग और दान है ।१८। ब्रह्मा-शिव और अन्य लोकपालों को मदादिक यही सीता करती और कराती ही है। आपकी प्रिय सीता अन्य नहीं है ।१९। आप समस्त लोकों

के पिता हैं और अतएव सीता सब की जननी है। इसके विषय में जो आपकी कुदृष्टि है वह कभी भी क्षेम करने के योग्य नहीं होती हैं।२०। आप सीता को सर्वदा शुद्ध जानते हैं क्योंकि आप स्वयं सब कुछ के ज्ञाता भगवान हैं। और आपकी भूमि भी सुता जानकी के लिए जो कि प्राणों से भी अधिक महत्वपूर्ण एवं बड़ी हैं उसी भाँति प्रिय है।२१। अतएव वह प्रिया जो परम शुद्धा है सदा ही आपके द्वारा आदर करने के योग्य है। हे विभो ! आप में और जानकी में शाप की पराभूति नहीं होती है।२२।

इति वाल्मीकिना रामः सर्वज्ञोऽप्यवबोधितः।
स्तुत्वा नत्वा च वाल्मीकिं प्रत्युवाच सलक्ष्मणम् ॥२३
गच्छताताधुना सीतामानेतुं धर्मचारिणीम्।
सपुत्रां रथमास्थाय सुमन्तसहितः सखे ! ॥२४
श्रावयित्वा मपेमानि मुनेश्च वचनान्यपि।
सम्बोध्य च पुरीमेतां सीतां प्रत्यानयाशु ताम् ॥२५
यास्वामि तव सन्देशात्सर्वेषां नः प्रभोर्विभो।
देव्यायास्यति चेद्देव यात्रा मे सफला ततः ॥२६
मयि सा साभ्यसूयैव पूर्वदोषवशात्सती।
अनागतायां तस्यां तु क्षमस्वागन्तुकं हि माम् ॥२७
इत्युक्त्वा लक्ष्मणो रामं रथे स्थित्वा नृपाज्ञया।
सुमित्रमुनिशिष्याभ्यां युतोऽगाद्भूमिजाश्रमम् ॥२८

शेष भगवान ने कहा—इस प्रकार से भगवान श्री राम जोकि सर्वज्ञ है वाल्मीकि मुनि के द्वारा प्रबोधित किये गये थे। श्रीराम ने वाल्मीकि के प्रबोधात्मक उपदेश को सुनकर उनकी स्तुति की थी और प्रणाम भी किया था। उन्होंने लक्ष्मण से कहा—।२३। हे तात ! अभी चले जाओ और धर्म का आचरण करने वाली सीता को ले आओ। पुत्रों के सहित उसे रथ पर बिठाकर लाना ! तुम हे सखा। सुमत के सहित ही तुरन्त ही चले जाओ।२४। देखो, मेरे इन वचनों का श्रवण कराना और महर्षि वाल्मीकि के वचनों को भी जानकी जी को सुनाना और इस

पुरी का भली प्रकार से सम्बोधन करना। उस जानकी को शीघ्र ही ले आओ।२५। लक्ष्मण ने कहा—हे विभो! मैं तो प्रभु आपका सेवक हूँ और सभी का सेवक आज्ञाकारी हूँ आपके सन्देश से मैं अवश्य जाऊँगा किन्तु हे देव! यदि देवी आजायेंगी तो मेरी यात्रा सफल हो जायेगी।२६। मेरे विषय में वह अभ्यसूया ही हैं क्योंकि उन सती को वन में छोड़ने के लिए पहिले भी मैं ही गया था, उसी पूर्व दोष से उन्हें मुझ से अभ्यसूया उत्पन्न हो गई थी। यदि वह यहाँ वापिस न आवें तो खाली लौटकर आये हुये मुझे आप क्षमा कर देना।२७। श्रीराम जी से लक्ष्मण ने यह कह कर रथ पर महाराज की आज्ञा से समारोहण किया था। सुमित्र और मुनि के शिष्यों के साथ वहाँ पर गये जहाँ भूमिजा जानकी देवी का आश्रम था।२८।

कथं प्रसादनीयास्यात्सीताभगवती मया।
पूर्वदोषं विजादन्ती रामाधीनस्य मे सदा ॥२९
एव सञ्चिन्तयन्नन्तहर्षं सङ्कोच मध्यगः।
लक्ष्मणः प्राप सीनाया आश्रमं श्रमनाशनम् ॥३०
रथोत्सोऽथावरुह्यारादश्रुरुद्धविलोचनः।
आर्ये पज्ये भगवती शुभे इति वदन्मुहुः ॥३१
पपात पादयोस्तस्या वेपानानाखिलाङ्गकः।
उत्थापिस्तया देव्या प्रीतिविह्वलया स च ॥३२
किमर्थंभागतः सौम्य! वनं मुनिजनप्रियम्।
आस्ते स कुशलीदेवः कौशल्या शुक्तिमौक्तिकः ॥३३
अपोषो मयि कच्चित्स कीर्त्यकिवलायाहतः।
कीर्त्यते सर्वलोकैश्च कल्याण गुणसागरः ॥३४
अकीर्तिभीतिमापन्नस्त्यक्तु मां त्वां नियुक्तवान्।
यदि ततश्च लोकेषु कीर्तिस्तस्यामलाऽभवत् ॥३५
मृत्वाऽपि पतिसत्कीर्ति कुर्वन्त्या मे हि सुस्थिरा।
पतिसीवीत्यमेवाशु भूयादेव हि देवर! ॥३६

त्यक्तयाऽपि मया तेन नासीत्यक्तो मनागपि ।
फलं हि साधनायत्तं हेतुः फलवशो न तु ॥३७

लक्ष्मण मन मे ही यही विचार करते हुए जा रहे थे कि मेरे द्वारा भगवती सीता को कैसे प्रसन्न करना चाहिए क्योंकि वह मेरे पूर्व दोषको भी जानती है कि मैं तो सर्वदा श्रीराम के ही अधीनता में रहने वाला सेवक हूँ ।२६। इस तरह से लक्ष्मण चिन्तन करते हुए चले जा रहे थे और हर्ष एवं शोक दोनों के मध्य में स्थित थे। लक्ष्मण सीता जी के उस आश्रम में पहुँच गये थे जहाँ पर सभी प्रकार का श्रम नष्ट हो जाया करता है। लक्ष्मण वहाँ पहुँच कर रथ से उतरे और अपनी आँखों में अश्रु भर कर हे आर्ये ! हे पूज्ये ! हे भगवती ! हे शुभे !—इस प्रकार से बारम्बार मुँह से कहते हुये सीता के निकट पहुँच गये थे ।३०। लक्ष्मण का उस समय में सम्पूर्ण शरीर काँप रहा था और वे सीताजी के चरणों में गिर पड़े थे। उस देवी ने प्रीति से विह्वलित होकर दोनों हाथों से पकड़कर लक्ष्मण को उठाया था ।३१। सीताजी ने कहा—हे सौम्य ! आप इस समय यहाँ पर किस लिए आये हो ? यह तो महान घोर वन है जिसमें केवल मुनिजन ही रहा करते हैं और उन्हें ही यह प्रिय भी लगती है। यह तो बताओ वह देव चरण कुशल पूर्वक तो हैं जो कौशल्या रूपिणी शक्ति के मुक्ता के समान है ? ।३२। कहो, वे इस समय में शेष से रहित तो हैं क्योंकि उन्होंने तो केवल अपनी कीर्ति का ही समाहर किया था। हे परम कल्याण स्वरूप ! वे तो गुणों के सागर हैं सभी लोकों के द्वारा उनके गुणों का गान किया जाता है ।३३ अकीर्त्ति के भय से युक्त होकर ही उन्होंने मुझे त्याग देने को और इस घोर वन में छोड़ देने को आपको नियुक्त किया था। बहुत ही अच्छा है यदि इससे ही देव चरण कीर्ति लोकों में मल रहित हो गई हैं ।३४। मैं तो अपने प्राणों का त्याग करके भी पतिदेव की कीर्त्ति को सुस्थिर करने वाली सर्वदा हूँ। हे देवर ! मैं तो यही अभिलाषा करती हूँ कि मेरा पतिदेव के चरणों में सामीप्य शीघ्र से शीघ्र हो जावे ।३५। उन्होंने तो मेरा त्याग कर दिया है किन्तु त्यागी हुई मैंने अपने हृदय से

थोड़ा भी त्याग उनका नहीं किया है। फल तो साधन के ही आधीन होता है किन्तु हेतु फल के वश में रहने वाला कभी नहीं होता है ।३६। लक्ष्मण ने कहा था कि देवि ! श्री राम अब आपके साथ संतोष चाहते हैं और उन्होंने आपके गुणों से परम प्रसन्न होकर यही सन्देश आपको दिया है। अतएव अब आप भी अपने पतिदेव के चरण कमलों के दर्शन करने के लिए दयायुक्त अपना मन बना लीजिये ।३७।

इत्युक्ता भववती तेन प्रियमाणेन ते गुणैः ।
पत्युः पादाम्बुजे द्रष्टुं करोतु सदयं मनः ॥३८
वासांसि रमणीयानि भूषणानि महान्ति च ।
अङ्गरागस्तथा गन्धा मनोज्ञास्त्वयि योजिताः ॥३९
रथोदास्यश्च रामेण प्रेषिता उत्सवायते ।
छत्रं च चामरे शुभ्रे गजा अश्वाश्च शोभने ॥४०
गजारूढौ कुमारौ व पुरस्कृत्य जनेश्वरी ।
मयानुगम्यमानां च गच्छायोध्यांनिजां रीम् ॥४१
त्वयि तत्र गतायां तु सङ्गतायां प्रियेणते ।
सर्वासां राजनारीणामागतानां च सर्वशः ॥४२
सर्वासामृषिपत्नीनां कौसलानां तथैव च ।
मङ्गलैर्वाद्यगीताद्यैर्भवत्वद्यमहोत्सवः ॥४३

ये परम सुन्दर वसन और अति रमणीय भूषण अङ्गराग और मनोज्ञ गन्ध युक्त विविध पदार्थ आपके लिये योजित किए गये हैं ।३८। रथ-दासियां श्रीराम ने प्रेषित की हैं जो कि आप प्रसन्नता दे सकेंगे। छत्र, शुभ्र चमर, हाथी, अश्व हे शोभने ! सभी आपके लिए प्रस्तुत हैं ।३९। जनेश्वरी आप हाथियों पर दोनों कुमारों को बिठा कर उन्हें अपने आगे करदो। मैं आपके पीछे चलूंगा—इस प्रकार अब अपनी पुरी अयोध्या को आप गमन करें ।४०। जब आप वहाँ पर पहुँच जायेंगीं और अपने प्रिय पतिदेव के साथ सगतहो जायेंगी तो वहाँ पर एक महान उत्सव होगा जिसमें सभी राजनारियाँ होंगी जो सभी ओर से उस

समय में आकर अयोध्या में एकत्रित होंगी। सभी ऋषियों की पत्नियाँ उसमें सम्मिलित होकर उल्लास मनायेंगी। कोशल देशों की बहुत सी नारियों का विशाल समाज होगा। बड़ा भारी मंगल मनाया जायेगा और गीत-वाद्यादि सभी कुछ होगा।४१-४३।

इति विज्ञापनां देवी श्रुत्वा सीता तमाह सा।
नाहं कीर्तिकरी राज्ञो ह्यपकीर्तिः स्वयंत्वहम् ।।४४
किं मया तस्व साध्यं स्याद्धर्मकामार्थशून्यया।
सत्येवंभवतां भुपेकोविश्वासौनिरङ्कुशे ।।४५
प्रत्यक्षा वा परीक्षा वा भर्तुर्दोषा मनः स्थिताः।
न वाच्या जातु मादृश्या कल्याणकुलजातया ।।४६
पांणिग्रहणकाले मे यद्रूपो हृदयेस्थितः।
तद्रूपोहृदयान्नासौ कदाचिदपसर्पति ।।४७
लक्ष्मणेमौ कुमारौं मे तत्तो जोंशसमुद्भवौ।
वंशाङ्करौ महाशूरौ धनुर्विद्याविशारदौ ।।४८
नीत्वा पितुः समीपं तु लालनीयो प्रयत्नतः।
तपसाराधयिष्या म रामंकार्मामिहस्थिता ।।४९

भगवान शेष ने कहा—इस प्रकार से लक्ष्मण के द्वारा जब श्री सीता विज्ञापित की गई तो यह सभी कुछ श्रवण करके उन्होंने लक्ष्मण से कहा था—मैं तो राजा की कीर्ति करने वाली नहीं हूँ प्रत्युत मैं तो महाराज की अपकीर्ति करने वाली हूँ ।४४। मैं तो धर्म, अर्थ, काम इन सभी से रहित हूँ मुझसे अब महाराज का क्या साध्य हो सकता है। ऐसा होने पर जबकि मेरे द्वारा कुछ भी साध्य नहीं है तो आपके निरंकुश भूप में क्या विश्वास हो सकता है।४५। प्रत्यक्ष या परोक्ष अथवा मन में स्थित स्वामी के दोष कभी भी नहीं कहने चाहिये और खास कर मुझ जैसी सती के द्वारा ऐसा हो ही नहीं सकता जो कि एक कल्याण कारी कुल में ही समुत्पन्न हुई।४६। पाणिग्रहण के समय में जो भी अपने पतिदेव महाराज का स्वरूप मेरे हृदय से कभी भी अपसर्पित नहीं

होता है अर्थात दूर नहीं जाता है ।४७। हे लक्ष्मण ! वे दोनों कुमार उन्हीं महाराज के तेजोंश से समुत्पन्न हुए हैं । ये दोनों उनके वश के अंकुर स्वरूप हैं, महान शूरवीर है और प्रयत्न पूर्वक इनका लालन करो । मैं तव तपश्चर्या के द्वारा यहाँ पर ही स्थित रहती हुई श्रीराम के चरणों की आराधना करूँगी ।४९।

वाच्यं त्वया महाभाग पूज्यपादाभिवन्दनम् ।
सर्वेभ्यः कुशलं चापिगत्वेतो मदपेक्षया ॥५०
पुत्रौ समादिशत्सीता गच्छतंपितुरन्तिकम् ।
शुश्रूषणीय एवासौ भवद्भ्यांस्वपदप्रदः ॥५१
आज्ञप्तावप्य मच्छन्तौ तौ कुमारौ कुशीलवौ ।
वाल्मीकिवचनातत्रजग्मतुश्चसलक्ष्मणौ ॥५२
वाल्मीकेरेव पादाब्जसमीपं तत्सुता गतौ ।
लक्ष्मणोऽपि ववन्देतं गत्वाबालकसंयुतः ॥५३
वाल्मीकिर्लक्ष्मणस्तौ तु कुमारौ मिलिमा अमी ।
सभायां तंस्थितं रामं ज्ञात्वा ते जग्मुरुत्सूकाः ॥५४
लक्ष्मणः प्रणिपत्याथ सीतावाक्यादि सर्वशः ।
कथयामास रामाय हर्षशोकयुतः सुधीः ॥५५
सीतासन्देशवाक्येभ्यो रामो मूर्च्छा समन्वभूत ।
संज्ञामवाप्य चोवाच लक्ष्मणं नयकोविकम् ॥५६

सीताजी ने लक्ष्मण से कहा—हे महाभाग ! आप देव-चरणों में मेरी अभिवन्दना कह देना और सबका कुशल यहाँ से जाकर मेरी अपेक्षा से कह देना ।५०। इसके अनन्तर जानकी जी ने अपने दोनों पुत्रों को आदेश प्रदान किया था कि अब तुम दोनों अपने पूज्य पिता जी के सन्निधि में चले जाओ । आप दोनों को अपना पद पदान करने वाले वे हैं अतएव आप दोनों का कर्तव्य है कि उनकी भली भाँति शुश्रूषा करनी चाहिये ।५१। यद्यपि वे दोनों लव और कुश नामधारी कुमार माता को छोड़कर वहाँ जाना नहीं चाहते थे, तो भी उनको आज्ञा दे दी गई थी। वाल्मीकि महर्षि के वचन से वे दोनों लक्ष्मण के साथ वहाँ चले गये थे

।५२। महर्षि वाल्मीकि के समीप में वे दोनों पुत्र उपस्थित हुये थे। लक्ष्मण ने भी महर्षि की वन्दना की थी उनके साथ वे दोनों बालक भी थे।५३। वाल्मीकि महर्षि-लक्ष्मण और वे दोनों कुमार ये सब परस्पर से मिल गये थे। सभा में संस्थित श्रीराम को प्रणाम करके सीताजी के द्वारा कहे हुये समस्त वचन कह दिये थे। उस समय में जब लक्ष्मण से सीता के द्वारा कथित वचनों को कह रहे थे तब लक्ष्मण हर्ष और शोक से युक्त थे ।५५। सीताजी के सन्देश वचनों का श्रवण कर श्रीराम ने मूर्छा होने का अनुभव किया था। स्वल्प समय के पश्चात संज्ञा प्राप्त कर नये शास्त्र विद्वान लक्ष्मण से श्रीराम ने कहा—।५६।

गच्छमित्र तुनस्तत्र यत्नेन महता च ताम् ।
शीघ्रमानय भद्रं ते मद्वाक्यानि निवेद्य च ।।५७
अरण्ये किन्तपस्यन्त्या गतिरन्या विचिन्तिता ।
श्रुत्वा दृष्टाऽथ वा मत्तो यन्नागच्छसि जानकि ।।५८
त्वदिच्छया त्वमेवेता गतारण्यं मुनिप्रियम् ।
पूजिता मुनिपत्न्यस्ता दृष्टा मुनिगणास्त्वया ।।५९
पूर्णो मनोरथस्तेऽद्य किं नागच्छसि भामिनी !
न दोष मयि पश्येस्त्वं स्वात्मेच्छायाविलोकनात् ।।६०
गत्वा गत्वाऽथ वामोरु ! पतिरेव गतिः स्त्रियाः ।
निर्गुणोऽपि नुणाम्भोधिः किं पुनर्मनसेप्सितः ।।६१
या या क्रियाकुलस्त्रीणां सा सा पत्युः प्रतुष्टये ।
पूर्वमेव प्रतुष्टोऽहमिदानीं सुतरां त्वयि ।।६२
यागो जपस्तपो दानं व्रतं तीर्थं दयादिकम् ।
देवाश्च मयि सन्तुष्टे तुष्टमेतदसंशयम् ।।६३

हे मित्र ! तुम पुनः वहाँ पर जाओ और महान प्रयत्न कर उस जानकी को शीघ्र ही यहाँ ले आओ। तुम्हारा कल्याण होगा। तुम ये मेरे वाक्य उनसे निवेदन कर देना।५७। तुम जानकी से मेरी ओर से

करना इस अरण्य में तपश्चर्या करती हुई तुमने क्या कोई अन्य गति सोच ली है अथवा देखी या मुझसे सुनी है ? हे जानकि ! जिस कारण से तुम यहाँ मेरे समीप में नहीं आ रही हो ? ।५८। आप अपनी ही इच्छा से यहाँ से उस अरण्य में गई हो जो कि मुनिजन का परम प्रिय होता है । आपसे वहाँ पर मुनिपत्नियों का अर्चन किया था और वहाँ पर अनेक मुनिगणों के दर्शन का लाभ प्राप्त किया था ।५९। हे भामिनि! अब तक वह मनोरथ तो पूर्ण हो गया होगा । अब यहाँ वापिस क्यों नहीं आ रही हो ? तुमको मेरे अन्दर कोईभी दोष नहीं देखना या विचारना चाहिये क्योंकि तुम अपनी इच्छा से अरण्य का अवलोकन करने को गई थीं ।६०। सत्र पर खूब गहन विचार कर करके देख लो । हे वामारु ! स्त्री की गति तो उसका एक मात्र पति ही होता है अर्थात् पति की सेवा शुश्रूषा से ही सभी का कल्याण सम्भव हो सकता है । चाहे वह पति गुण हीन हो अथवा अनेक गुणों का सागर हो फिर क्या कहा जावे वही उसी स्त्री के लिये मन में अभिलषित होना चाहिए ।६१। कुलीन स्त्रियों के लिए जो जो भी क्रियायें होती हैं वे सब इसी ध्येय को रखकर की जातीं हैं कि उनके पति को पूर्णतया सन्तोष एव प्रसन्नता होये । मैं तो तुम्हारे कर्म कपाल से पहिले ही बहुत सन्तुष्ट था और अब तो तुझसे मुझे सुतराँ बहुत अधिक सन्तोष है ।६२। यज्ञ, जप, तप, दान, व्रत, तीर्थ और दया आदि कर्म और देव वृन्द मेरे सन्तुष्ट होने पर ही सब तुष्टि कारक होते हैं यह निश्चित है ।६३।

ॐ लक्ष्मण के साथ सीता का यज्ञ में आना ॐ

अथ सौमित्रिरागत्य जानकीं नतवान्मुहुः ।
प्रेमगद्गदता शसन्वाचं रामप्रणोदिताम् ।।१

सीता समागतं दृष्टवा लक्ष्मणं विनियान्वितम् ।
तन्मुखाद्रामसन्देशं श्रुत्वोवाच विलज्जिता ।।२

सौमित्रे कथमागच्छे रामत्यक्ता महावने ।
तिष्ठमि रामं स्मरन्ती वाल्मीकेराश्रमे त्वहम् ।।३
तस्या मुखोदितं वाक्यं श्रुत्वा सौमित्रिब्रवीत् ।
मातः ! पतिव्रते ! रामस्त्वामाकारयते मुहुः ।।४
पतिव्रता पतिकृतं दोषं नानयते हृदि ।
तस्मादागच्छ हि मया स्थित्वा स्यन्दन उत्तमे ।।५
इन्यादिवचनं श्रुत्वा जानकी पति देवता ।
मनो रोषं परित्यज्य तस्थौ सौमित्रिणा रथे ।।६
तापसीः सकला नत्वा मुनीश्च निगमोज्ज्वलान् ।
रामं स्मरन्ती मरसा रथे स्थित्वाऽगमत्पुरीमम् । ७

भगवान शेष ने कहा इसके अनन्तर पुनः लक्ष्मण श्रीराम की आज्ञा प्राप्त कर जानकी के समीप में उपस्थित हुए थे और उनक चरणों में प्रणाम किया था । श्रीराम के द्वारा प्राप्त प्रेरणा से वाणी को प्रेम से अत्यन्त गद्गद होकर लक्ष्मण ने जानकी से कहा था ।1। सीताजीं ने पुनः आये हुए और अत्यन्त विनय से समन्वित लक्ष्मण को देखा था और फिर लक्ष्मण के मुख से श्रीराम का सन्देश वचन सुना तो उनकी विशेष लज्जा हो आई थी । अत्यन्त लज्जित होकर जानकी जी ने कहा—।२। हे सौमित्रे ! मैं तो इस महान अरण्य में श्रीराम के द्वारा त्याग दी गई थी जब मैं वहाँ कैसे आऊँ । मैं तो श्री राम का स्मरण करती हुई इसी वाल्मीकि महर्षि के आश्रम में रहूँगी । जानकी के मुख से कहे हुए ऐसे वचन श्रवण करके लक्ष्मण ने कहा—हे माता ! आप तो परम पतिव्रता है । श्रीराम आपको बारम्बार बुला रहे हैं ।४। जो पतिव्रता नारी होती है वह पति के द्वारा यदि कोई दोष बन भी जाता है तो उसका विचार किञ्चित मात्र भी हृदय में नहीं किया करती हैं । इसलिए आप आइए और मेरे साथ इस परमोत्तम रथमें विराजमान हो जाइए ।५। इत्यादि लक्ष्मण के नीति युद्ध विनम्र वचन श्रवण करके पति को ही अपना सर्वोपरि आराध्य देवता मानने वाली जानकी जी ने मन में जो रोष था उसका त्याग कर दिया और लक्ष्मण के साथ रथ

पर समारूढ़ हो गई थीं ।६। वहाँ पर जितनी भी तपस्विनी थीं उनको और निगमोज्वल जो मुनिगण थे उनको जानकी जी ने प्रणाम किया था । मन में श्रीराम के चरणों का स्मरण करते हुए रथ में बैठ कर अयोध्यापुरी को रवाना हो गई थीं ।७।

क्रमेण नवरी प्राप्ता महार्हाभगणान्विता ।
सरयूं सरितं प्राप यत्र रामः स्वयं स्थितः ।।८
रथादुत्तीर्य ललिता लक्ष्मणेन समन्विता ।
रामस्य पादयोर्लग्ना पतिव्रतपरायणा ।।६
रामस्तामागतां दृष्ट्वा जानकीं प्रेमविह्वलाम् ।
साध्वि ! त्वया सहेदानीं कुर्वे यज्ञसमापनम् ।।१०
वाल्मीकिं सा नमस्कृत्य तथान्यान्विप्रसत्तमान् ।
जगाम मातृपदयोः सन्नतिं कर्तुमुत्सुका ।।११
रामस्तदा यज्ञमध्ये शुशुभे सीतयासह ।
तारयानुगतो यद्वच्छशीव शरदुत्प्रभः ।।१२
प्रयोगमकरोत्तत्र काले प्राप्ते मनोरमे ।
वैदेह्या धर्मचारिण्या सर्वपापापनोदनम् ।।१३
सीतया सहितं रामं प्रसक्तं यज्ञकर्मणि ।
निरीक्ष्य जहृषुस्तत्र कौतुकेन समन्विताः ।।१४

क्रम से चलकर श्री जानकी अयोध्या नगरी में प्राप्त हो गई थी । उस समय में बहुमूल्य आभरणों से वे विभूषित थीं । सरयू नदी पर पहुँच कर देखा था कि वहाँ पर श्रीराम स्वय स्थित थे ।८। रथ से उतर कर परम ललित रूप वाली जानकी जो कि लक्ष्मण के सहित थीं श्री राम के चरणों में सलग्न हो गई थीं क्योंकि पतिव्रत में ही सर्वदा तत्पर रहने वाली थी ।६। श्रीराम ने भी आई हुई जानकी जी को देखा जो कि उस समय में प्रेम से अत्यन्त विह्वल हो रही थी श्रीराम ने जानकी जी से कहा था—हे साध्वि ! अब मैं आपके ही साथ अश्वमेघ यज्ञ की समाप्ति करूँगा ।१०। उस अति [illegible] सम्मिलन के अवसर पर जानकी जी ने इसके उपरान्त महर्षि वाल्मीकि को प्रणाम किया और अन्य विप्र-

वृन्द जी परमश्रेष्ठ वहाँ पर वर्त्तमान थे उनकी वन्दना की थी। फिर माताओं के चरण कमलों का अभिवादन करने के लिए समुत्सुक होकर अन्दर चली गई थीं।११। उस समय में श्रीराम उस अश्वमेध यज्ञ के मध्य में सीता के साथ सुशोभित हुये थे जिस तरह तारा से अनुगत होकर शरतकाल का उदित चन्द्रमा शोभा प्राप्त किया करता है।१२। मनोरम काल प्राप्त होने पर धर्म चारिणी वैदेही के साथ समस्त पापों के अपनोदय करने वाला प्रयोग भी वहाँ पर किया था।१३। सीता के साथ श्रीराम उस यज्ञ कर्म में प्रसक्त हो गये थे। उस समय में समस्त ऋषि-महर्षि वृन्द यह देख कर अत्यन्त कौतुक से युक्त हो गये थे।१४।

वसिष्ठं प्राह सुमतिं रामस्तत्र क्रतौ वरे।
किं कर्त्तव्यं मया स्वामिन्नतः परमवश्यकम् ॥१५
रामस्य वचनं श्रुत्वा गुरुः प्राह महामतिः।
ब्राह्मणानां प्रकर्तव्या पूजा सन्तोषकारिका ॥१६
मरुत्तेन क्रतुः सृष्टः पूर्वं सम्भारसम्भृतः।
ब्राह्मणास्तत्र वित्ताद्य स्तोषिता अभवस्तदा ॥१७
अत्यन्तं वित्तसम्भार नेतुं तमशकन्नहि।
प्राक्षिपन्नहिमवद्देशे वित्तमारासहाद्विजाः ॥१८
तस्मात्त्वमपि राजाग्र्य लक्ष्मीवान्नृपसत्तम !।
देहि दानादि विप्रेभ्यो सया स्यात्प्रीतिरुत्तमा ॥१९
हृष्टपुष्टजनाकीर्णं सर्वसत्वोपबृंहितम।
अत्यन्तमभवद्रधृष्टं पुर पुंस्त्रीसमावृतम् ॥२०
दानं ददन्तं सर्वतां वीक्ष्य कुम्भोद्भवो मुनिः।
अत्यन्तपरमप्रीतिं ययौ क्रतुवरे द्विजः ॥२१

उस परम श्रेष्ठ यज्ञ में श्रीराम ने सुन्दर मति वाले वसिष्ठ मुनि से प्रार्थना की थी कि हे स्वामिन ! अब और इसके आगे मुझे क्या-क्या करना चाहिए।१५। श्रीराम के इस बचन को श्रवण कर महामतिमान गुरु ने कहा था कि अब तो समस्त ब्राह्मणों की अर्चना करनी चाहिए

जो कि ब्राह्मणों को सन्तोष कर देने वाली हो ।१६। मरुत ने पहले इस क्रतु की सृष्टि की थी जिसमें सभी सम्भार परिपूर्ण थे। उसमें भी सब ब्राह्मण वित्तादि के द्वारा पूर्ण रूप से तोषित किये गये थे ।१७। उस समय में इतना अधिक धन का भार ब्राह्मणों को प्रदान किया गया था कि वे उसे साथ नहीं ले जा सके थे और वित्त के भारों को सहन न करते हुए उन ब्राह्मणों ने उनमें से बहुत कुछ तो हिमवान् पर्वत पर ही प्रक्षिप्त कर दिया था ।१८। इसलिए हे राजाओं में परम शिरोमणि ! आप भी महान् लक्ष्मीमान् नृप हैं। विप्रगणों को इतना अधिकाधिक दान आदि देवें कि जिससे ब्राह्मणों को बहुत ही उत्तम प्रीति समुत्पन्न होवे ।१९। उस समय में वहाँ पर वह स्थल हृष्ट-पुष्ट जनों से समाकीर्ण हो गया था और सभी जीवों से परिपूर्ण था। पुरुष और स्त्रियों से वह स्थल अत्यन्त ही घृष्ट हो गया था और पुर भी भर गया था ।२०। सब को दान देते हुए देखकर कुम्भ से उद्भत मुनि अगस्त्य उस यज्ञ में द्विज अत्यन्त प्रीति को प्राप्त हुए थे ।२१।

तदाभिषेकतोयार्थं पानीयममृतोपमम् ।
आनेतुं च चतुः षष्टिनृपान्सस्त्रीन्समाह्वयत् ।।२२
रामस्तु सीतया सार्द्धं मानेतुमुदकं ययौ ।
घटेन स्वर्णवर्णेन सर्वालङ्कारशोभया ।।२३
सौमित्रिरप्यूर्मिलया माण्डव्याभरतो नृपः ।
शत्रुघ्नः श्रुतकीर्त्या च कान्तिमत्या च पुष्कलः ।।२४
सुबाहुः सत्यवत्या च सत्यवान्वीरभूषया ।
सुमदस्तत्र सत्कीर्त्या राज्ञ्या च विमलो नृपः ।।२५
राजा वीरमणिस्तत्र श्रुतवत्या मनोज्ञया ।
लक्ष्मीनिधिः कोमलया रिपुतापोऽङ्गसेनया ।।२६
विभीषणो महामूर्त्याः प्रतापाग्र्यः प्रतीतता ।
उग्राश्वः कामगमया नीलरत्नोऽधिरम्यया ।।२७

उस समय में अभिषेक करने को जल के लिए अमृत के तुल्य जल लाने के लिए स्त्रियों के सहित चौंसठ नृपों को बुलाया था ।२२। श्रीराम

भी सीता के साथ जल लेने के लिये गये थे। सम्पूर्ण आभरणों की शोभा से संयुत स्वर्ण वर्ण वाले घट को लेकर जल ग्रहण करने को उन्होंने प्रस्थान किया था ।२३। सभी नृप अपनी-अपनी पत्नियों के साथ जल के आवयन के लिये गये थे। लक्ष्मण उर्मिला के साथ गये थे। भरत अपनी पत्नी माण्डवी के साथ गये और शत्रुघ्न श्रुतकीर्ति को साथ में लेकर गये थे। राजा पुष्कल कान्तिमती के साथ गये थे ।२४। सुबाहु सत्यवती के साथ, सत्यवान् वीरभूषा के साथ, सुमद सत्कीरी के साथ और विमल नृप राजी के साथ गये ।२५। राजा वीरमणि मनोज्ञ श्रुतवती के सहित लक्ष्मोनिधि कोमला को लेकर, रिपुताप अंगसेना के साथ गये थे ।२६। विभीषण महामूर्ति को लेकर-प्रतापाग्रय प्रतीता के सहित-उग्राश्व कामागमा के साथ और नीलरत्न अधिरम्या के साथ जल ग्रहण करने को गये थे ।२७।

।। अर्जुन का स्त्रीत्व प्राप्त होना ।।

एकदा रहसि श्रीमानुद्धवो भगवत्प्रियः।
सनत्कुमारमेकान्ते ह्यपृच्छत्पार्षदः प्रभोः ।।१
यत्र क्रीडति गोविन्दो नित्यं नित्यसुरास्पदे ।
गोपाङ्गनाभिर्यत्स्थानं कुत्र वा कीदृशं परम् ।।२
तत्तत्क्रीडनवृत्तान्तमन्यद्यद्यत्तदद्भुतम् ।
ज्ञातं चेत्तव तत्कथ्यं स्नेहोमे यदि वर्त्तते ।।३
कदाचिद्यमुनाकूले कस्यापि च तरोस्तले ।
सुवृत्तोनोपविष्ट न भगवत्पार्ष देन वै ।।४
यद्रहोऽनुभवस्तस्य पार्थेनापि महात्मना ।
दृष्टं कृतं च यद्यत्तत्प्रसङ्गात्कथितं मयि ।।५
ततोऽहं कथायाम्येतच्छृणुष्वावहितः परम् ।
किं त्वेतद्यत्र कुत्रापि न प्रकाश्यं कदाचन ।।६

ईश्वर ने कहा—एक बार एकान्त में भगवान का परम प्रिय प्रभु का पार्षद श्रीमान् उद्धव ने सनत्कुमार से पूछा था ।१। हे भगवान् !

जहाँ पर भगवान् गोविन्द नित्य सुरों के स्थान में गोपाङ्गनाओं के साथ नित्य क्रीड़ा किया करते हैं वह स्थान कहाँ पर है और कैसा है ? ।२। वही-वही क्रीड़ा का वृतान्त और अन्य भी जो-जो और अद्भुत हो उसे यदि आपको ज्ञात हो तो मुझे सभी वतलाने की कृपा करें। यदि मेरे ऊपर आपको पूर्ण स्नेह है तो अवश्य ही वताइये ।३। सनत्कुमार ने कहा—किसी समय में एक वार यमुना के तट पर किसी वृक्ष के नीचे सुन्दर चरित्र वाले भगवान् के पार्षद ने जो रहस्य का अनुभव किया था उसे मैं अब आपको वतलाता हूँ। वह महात्मा पार्थ थे उन्होंने देखा और जो किया था। वही प्रसङ्ग वश मुझसे कहा था। अब आप साव-धान होकर उसका श्रवण करें किन्तु यह परम रहस्य गोपनीय है। इसे कहीं पर भी किसी से भी प्रकाशित नहीं करना चाहिए और पूर्णतया छिपाकर रखना ।४-६।

शङ्कराद्यैर्विरिञ्च्याद्यै रदृष्टमश्रुतं च यत् ।
सर्वमेतत्कृपाम्भोधे ! कृपया कथय प्रभो ! ।७।
किं त्वया कथित पूर्वमाभीर्यस्तव वल्लभाः ।
तास्ताः कतिविधा देव कति वा संखचया पुनः ।।८
नामानि कति वा तासां का वा कुत्र व्यवस्थिताः ।
तासां वा कतिकर्माणि वयोवेषश्च कः प्रभो ! ।।९
काभिः सार्द्ध क्व वा देव विहरिष्यसि भोरहः ।
नित्ये नित्यसुखे नित्यविभवेच वनेवने ।।१०
तत्स्थानं कीदृशं कुत्रं शाश्वतं परम महत् ।
कृपाचेत्तादृशी तन्मे सर्वं वक्तुमिहार्हसि ।।११
यदपृष्टं मयाऽप्येवमज्ञातं यद्रहस्तव ।
आर्तार्तिघ्न ! महाभाग ! सर्वं तत्कथयिष्यसि ।।१२

अर्जुन ने कहा—शंकर आदि विरञ्चि प्रभृति ने यह कभी नहीं देखा था और न कभी सुना ही था उसे सबको हे कृपा के सागर ! हे प्रभो ! कृपा करके मुझे वतलाइये ।७। क्या आपने ही पूर्व में यह कहा

था कि आभीरी सब आपकी वल्लभा हैं ? तो अब यह बतलाइए हे देव ! वे सब कितने प्रकार की है और संख्या में भी कितनी हैं ? ।८। उन सबके कितने नाम हैं और उनमें से कौन वहाँ पर व्यवस्थित हैं ? उन सबके कितने प्रकार के कर्म्म हैं ! हे प्रभो ! यह भी बतलाने की कृपा करे कि उनकी उम्र क्या है और उनका वेष कैसा होता है ? ।९। हे देव ! किस स्थल पर किनके साथ एकान्त में आप विहार किया करते हैं क्योंकि विहार करने का आपका जीवन है वह तो नित्य है और नित्य वैभव से भी सम्पन्न है ।१०। वह स्थान किस प्रकार का है और कहाँ पर है जो कि सर्वदा रहने वाला और परम महान् है । यदि आपकी मुझ वैसी ही कृपा है तो यह सभी कुछ आप मुझे बताने के योग्य होते हैं ।११। मैंने जो भी नहीं पूछा है और जो रहस्य आपका मुझे ज्ञात नहीं है । हे आर्त्तों की पीड़ा का हनन करने वाले ! हे महाभाग ! उन सबको मुझे बतला देवेंगे ।१२।

तत्स्थानं वल्लभास्या मे विहारस्तोदृशो मम ।
अपि प्राणसमानानां सत्यं पुंसामगोचरः ॥१३
कथिथे द्रष्टुमुत्कण्ठा तव वत्स भविष्यति ।
ब्रह्मादीनामदृश्यं यत्किं तदन्यजनस्य वै ॥१४
तस्माद्विरम वत्संतत्किं तु तेन विनातव ।
एवं भगवतस्तस्य श्रुत्वावाक्यं सुदारुणत् ॥१५
दीनः पादाम्बुजद्वन्द्वे दण्डवत्पतितोऽर्जुनः ।
ततो विहस्य भगवान्दोर्भ्यामुत्थाप्य तं विभुः ॥१६
उवाच परमप्रेम्णा भक्ताय भक्तवत्सलः ।
तत्किं तत्कथनेनात्रं द्रष्टव्यं चेत्वया हियत् ॥१७
यस्यां सर्वसमुत्पन्नं यस्यामद्यापि तिष्ठति ।
लयमेष्यति तां देवीं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम् ॥१८

आराध्य परया भक्त्या तस्यै स्वं च निवेदय ।
तां विनैतत्पदं दातुं न शक्नोमि कदाचन ॥१९

श्रुत्वैतद्भगवद्वाक्यं पार्थो हर्षाकुलेक्षणः ।
श्रीमत्यास्त्रिपुरादेव्या ययौ श्रीपादुकातलम् ॥२०

श्रीभगवान् ने कहा—मेरे विहार का वह स्थान वे मेरी वल्लभायें और मेरा वह विहार भी उसी प्रकार का है कि जो मेरे प्राणों के समान भी पुरुष है उनको सत्य रूप से अप्रत्यक्ष रहना है अर्थात् वे भी उसे नहीं देख या जान पाते हैं ।१३। मैं यदि तुमसे वह सभी कहता हूँ तो फिर उसे देखने की भी तुम्हारी उत्कण्ठा जाग्रत हो जायगी । हे वत्स ! जो ब्रह्मा आदि के द्वारा भी अदृश्य है वह अन्य जन को तो दिखलाई दे ही कैसे सकता है ।१४। अतएव हे वत्स ! तुम चुप रह जाओ । उस सब के जाने बिना तुम्हारा क्या बिगड़ता है अर्थात् उसे तुम नहीं जानो तो तुम्हारी कोई हानि नहीं है । इस प्रकार के उन भगवान् से सुदारुण वचनों को सुनकर बड़ी दीनता का अनुभव होने लगा ।१५। फिर तो अत्यन्त दीन होकर अर्जुन भगवान् चरण कमलों में एक दण्ड की भाँति गिर गया था । तब सर्व व्यापक भगवान् ने कुछ हँस कर दोनों हाथ से उस अर्जुन को उठा लिया था ।१६। भक्तों पर प्यार करने वाले भगवान् ने उस अपने परम भक्त अर्जुन से अत्यन्त प्रेम पूर्वक कहा—यहाँ पर इस कथन से क्या प्रयोजन हैं यदि तुमको वह सब देखने की ही अभिलाषा है तो एक उपाय करो ।१७। जिसमें यह चराचर समस्त विश्व ब्रह्माण्ड समुत्पन्न हुआ है और जिसमें यह सम्पूर्ण अब भी स्थित है तथा अन्त में जिसमें लय को प्राप्त होगा उस श्रीमती त्रिपुर सुन्दरी देवी की समाराधाना करो ।१८। पराभक्ति के साथ उस देवी की आराधना करके फिर उसी से अपने अभिप्राय को निवेदन करो और अपने आपको उसी की सेवा में समर्पित कर दो । उसके बिना अर्थात् उसकी कृपा दृष्टि के बिना यह पद मैं किसी भी प्रकार से और कभी भी दे नहीं सकता हूँ ।१९। श्रीभगवान् के इन वचनों का श्रवण कर अर्जुन हर्ष से समाकुलित नेत्रों वाला हो गया था और फिर वह श्रीमती त्रिपुर सुन्दरी देवी के श्री पादुका तल की शरण में चला गया था ।२०।

अस्मिन्नवसरे देवी तमागत्य स्मितानना ।
उवाच गच्छ वत्स ! त्वमधुनाद्गृहान्तरे ।।२१
ततः ससम्भ्रमः पार्थः समुत्थाय मुदान्वितः ।
असङ्ख्यहर्षपूर्णात्मा दण्डवत्तां ननाम ह ।।२२
ततस्तयाकरे तस्य धृत्वा तत्पददक्षिणे ।
प्रतिपेदे सुदेशेन गत्वा चोक्तमिदं वचः ।।२३
स्नानायैतच्छुभं पार्थं विशत्वं जलविस्तरम् ।
सहस्रदलपद्मस्थसंस्थानं मध्यकोरकम् ।।२४
यत्रावतारं कृष्णस्य स्तुवन्त्येव दिवानिशम् ।
भवेद्यत्स्तरणादेव मुनेः स्वान्ते स्मराङ्कुरः ।।२५
ततोऽस्मिन्सरसि स्नात्वा ग वा पूर्वसरस्तटम् ।
उपस्पृश्य जलं तस्य साधय स्वमनोरथम् ।।२६
रानावद्धवचतुस्तीरे मन्दानिल रतङ्गिते ।
मग्ने जलान्तः पार्थे तु तत्रेवान्तर्दधेऽथ सा ।।२७
उत्थाय परितो वीक्ष्य सम्भ्रान्ता चारुहासिनी ।
सद्यः शुद्धस्वर्णरश्मि गौरकान्ततनूलताम् ।।२८
स्फुरत्किशोरवर्षीयां शारदेन्दुनिभाननाम ।
सुनीलकुटिलस्निग्धविलसद्रत्नकुन्तलाम् ।।२९

इसी अवसर में मन्द-मन्द मुस्कराहट करती हुई वह देवी अर्जुन के समीप में आ गई और अर्जुन से कहने लगी—हे वत्स ! तुम अब उस ग्रह के अन्दर चले जाओ ।२१। इसके अनन्तर संभ्रव पूर्वक अर्जुन बहुत ही आनन्द के सहित उठ खड़ा हुआ और अमरिमित हर्ष से परिपूर्ण आत्मा वाला वह उस देवी के श्री चरणों में दण्ड की भाँति चीरकर उसने उसे प्रणाम किया था ।२२। इसके अनन्तर उस देवी ने उसके ऊपर अपना हाथ रक्खा और उसके चरण की दक्षिणा की ओर एक सुन्दर भाग में उसे ले गई । वहाँ पर उसने अर्जुन से यह वचन कहा था ।२३। हे पार्थ ! यह स्नान के लिए परम शुभ है । तुम इस जल में प्रवेश करो । येक सहस्र हलों वाले पद्म के मध्य में स्थित संस्थान है जो

कि मध्य कारक है ।२४। जहाँ पर अहर्निश कृष्ण के अवतार की स्तुति किया करती है जिसके स्मरण मात्र से ही मुनि के भी हृदय में स्मरण का अंकुर हो जाया करता है ।२५। इसके अनन्तर इस सरोवर में स्नान करके और पूर्व सर के तट पर जाकर उसके जल का उपस्पर्शन करके फिर अपने मनोरथ को सफल करो ।२६। उस सरोवर के चारों तट रत्नों से आबद्ध थे और मन्द वायु से तरङ्गित वह जलाशय था । जल के अन्दर अर्जुन के मग्न हो जाने पर वह श्रीमती त्रिपुर सुन्दरी देवी वहीं पर अन्तर्हित हो गई थीं और फिर दिखलाई नहीं दी थी ।२७। अर्जुन ने उठकर देखा कि वह देवी चार हाथ वाली सम्भ्रान्त हो गई है । फिर तुरन्त ही अर्जुन ने शुद्ध सुवर्णमयी किरणों से गौर और सुरम्य तनू लता वाली का दर्शन किया था ।२८। स्फुरमाण किशोर अवस्था वाली और शरद काल के चन्द्रमा के समान मुखाकृति से सुसम्पन्न तथा सुन्दर नीले एवं कुटिल स्निग्ध शोभायुक्त रत्नों से परिपूर्ण केशों वाली को अवलोकन किया था ।२९।

काऽसि त्वं कस्य कन्याऽसि कस्य त्वं प्राथवल्लभा ।
जाता कुत्राऽसि केनास्मिन्नानीता वाऽऽगमा स्वयम् ॥३०
एतच्च सर्वमस्माकं कथ्यतां चिन्तया किमु ।
स्नानेऽस्मिन्परमानन्दे कस्यापि दुःखमस्ति किम् ॥३१
इति पृष्टा तया सा तु विनयावनतिगता ।
उवाच सुस्वरं तासां मोहयन्ती मनांसि व ॥३२
का वाऽस्मि कस्य कन्या वा प्रजाता कस्य वल्लभा ।
आनीता केन वा चात्र किं वाऽथ स्वयमागता ॥३३
एतत्किञ्चिन्न जानामि देवी जानातु तत्पुनः ।
कथितं श्रूयतां तन्मे मद्वाक्ये प्रत्ययो यदि ॥३४
अस्यैव दक्षिणपार्श्वे एकमस्ति सरोवरम् ।
तत्राहं स्नातुमायाता जाता तत्रैव संस्थिता ॥३५
विषमोत्कण्ठिता पश्चात्पश्यन्ती परितो दिशम् ।
एकमाकाशसम्भूतं ध्वनिमश्रौषमद्भुतम् ॥३६

आगताऽस्यजलं स्पृष्ट्वा नानाविधशुभध्वनिम् ।
अश्रौषञ्च ततः पश्चादपश्यं भवतीः पराः ।।३७
एतन्मात्रं विजानामि कायेन मनसा गिरा ।
एतदेव मया देव्यः ! कथितं यदि रोचते ।।३८

प्रिय मुदा ने कहा—तू कौन है और किसकी पुत्री है तथा किसकी प्राणों की प्रिया है ? कहाँ पर जन्म हुआ है और यहाँ पर तुझे कौन लाया है अथवा तू स्वयं ही यहाँ पर आ गई है ।३०। यह सभी कुछ हमको बतलाओ और अब चिन्ता की कोई भी आवश्यकता नहीं है । इस परमानन्द में स्नान करने पर किसी को भी कोई दुःख नहीं होता है ।३१। इस प्रकार से पूछे जाने पर उसने बिनयपूर्वक अवनति करके उन सबके मनों को मोहित करते हुये सुन्दर स्वर में कहा—।३२। अर्जुन ने कहा—(यही अर्जुन स्त्री स्वरूप में हो गया था) मैं कौन हूँ—किसकी कन्या हूँ कहाँ उत्पन्न हुई और किसकी प्यारी हूँ—कौन मुझे यहाँ लाया है अथवा मैं स्वयं ही आ गई हूँ—यह सब कुछ मैं नहीं जानती हूँ । इसे देवी ही जानती हैं । यदि मेरे वाक्य में आपका विश्वास है तो जो कुछ भी मेरे द्वारा कहा जाता है उसका आप श्रवण करें । ।३३-३४। इसी के दक्षिण पार्श्व में एक सरोवर है । वहाँ पर मैं स्नान करने को आई थी और वहीं पर संस्थित हो गई थी । फिर विषमोत्कण्ठिता मैं चारों ओर दिशाओं में देख रही थी तो उसी समय मैंने आकाश से समुत्पन्न एक परम अद्भुत ध्वनि मैंने सुनी थी ।३५-३६। इसके जल का स्पर्श करके मैं आई तो अनेक प्रकार की ध्वनि मैंने सुनी थी । इसके पश्चात् आपको मैंने देखा है ।३७। इतना भर ही कार्य-मन और वाणी से मैं जानती हूँ । हे देवियों ! मैंने इतना ही कहा है यदि आपको वह अच्छा लगता हो ।३८।

मत्सखीनां वचः सत्यं तेन त्वं मे प्रियासखी ।
समुत्तिष्ठ समागच्छ कामं ते साधयाम्यहम् ।।३९
अर्जुनी सा वचो देव्याः श्रुत्वा चात्ममनीषितम् ।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी बाष्पाकुलविलोचना ।।४०

पपात चरणे देव्याः पुनश्च प्रेमविह्वला ।
ततः प्रियम्वदां देवीं समुवाच सखीमिमाम् ॥४१
पाणौ गृहीत्वा मत्संगे समाश्वास्य समानय ।
ततः प्रियम्वदादेव्या आज्ञया जातसम्भ्रमा ॥४२
तां तथैव समादाय सगे देव्या जगामह ।
गत्वोत्तरसरस्तीरे स्नापयित्वा विधानतः ॥४३
संकल्पादिकपूर्वन्तु पूजयित्वा यथाविधि ।
श्रीगोकुलकलानाथमन्त्रं तच्च सुसिद्धिदम् ॥४४
ग्राहयामास तां देवी कृपया हरिवल्लभा ।
व्रतं गोकुलनाथाख्य पूर्वं मोहनभूषितम् ॥४५
सर्वसिद्धिप्रदं मन्त्रं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
गोविन्देरितविज्ञाऽसौ ददौ भक्तिमचञ्चलाम् ॥४६
ध्यानञ्च कथितं तस्यै मन्त्रराजञ्च मोहनम् ।
उक्तञ्च मोहने तन्त्रे स्मृतिरप्यस्य सिद्धिदा ।
नीलोत्पलदलश्यामं नानालङ्कारभूषितम् ॥४७
कोटिकन्दर्पलावण्यं ध्यायेद्रासरसाकुलम् ।
प्रियम्बदामुवाचेदं रहस्यं पावनेच्छया ॥४८
अस्या यावद्भवेत्पूर्णं पुरश्चरणमुत्तमम् ।
तावद्धि पालय नात्वं सावधाना सहालिभिः ॥४९

देवी ने कहा—मेरी सखियो ! वचन बिल्कुल सत्य हैं । इससे तुम मेरी प्यारी सखी हो । उठ जाओ, तुम्हारी कामना को सिद्ध करूँ ।३९। वह अर्जुनी सखी अर्थात् सखी रूप में प्राप्त हुआ अर्जुन ने देवी के वचन सुनकर जो कि अपनी आत्मा के मनीषित थे उस अर्जुनी का सारा अङ्ग पुलकों के अंकुर उठ आने से मुग्ध हो गया था और वाष्पों से नेत्र समाकुलित हो गयेथे ।४०। वह प्रेमातिशय में विह्वल होकर फिर देवी के चरणों में गिर पड़ी थी । इसके अनन्तर इस सखी को प्रयम्वदा देवी से कहने लगीं ।४१। हाथ पकड़कर मेरे सङ्ग में समाश्वासित करके ले आओ । इसके पश्चात् देवी की आज्ञा से सभ्रक उत्पन्न हो जाने

वाली प्रयम्वदा ने उसको उसी प्रकार से लाकर देवी के साथ सङ्ग में चली गई थी। वहाँ पहुँचकर उत्तम सरोवर के तट पर स्नान कराकर और विधान से संगत्यादिक पूर्वक तथाविधि पूजा करके फिर उसको श्री गोकुल कलानाथ का सुसिद्धि प्रद्यन कराने वाला मन्त्र ग्रहण कराया था। हरिवल्लभा देवी कृपा करके ही गोकुलनाथ नाम वाला व्रत जो पूर्व में ही मोहन से भूषित है और समस्त सिद्धियों का देने वाला मन्त्र है एवं समस्त तन्त्रों में गोपित भी है। गोविन्द के द्वारा कही गई बात की ज्ञाता इसने अवंचला भक्ति भी प्रदान की थी।४२-४६। उसका ध्यान भी बतलाया था और उसको मोहन मन्त्रराज भी बताया था और मोहन तत्त्र में इसकी सिद्धि देने याली स्मृति भी वतलाई थी। नील उत्पल के दल के समान श्याम वर्ण वाले अनेक अद्‌भुत बहुमूल्य आभ-रणों से विभूषित-करोड़ों कामदेव के लावण्य से भी अत्युत्तम लावण्य युक्त और राम के रसानन्द में समाकुल रहने वाले का ध्यान करना चाहिए। पावन करने की इच्छा से ही यह रहस्य प्रियम्वदा को वत-लाया था। ।४७-४८। श्री राधिकाजी ने कहा—इसका जब तक यह उत्तम पुरश्चरण पूर्ण न हो तभी तक तुम अपनी सम्पूर्ण अलियों से साथ अत्यन्त सावधान होकर इसका पालन करो ।४६।

अन्यत्क्रीडाभवं यद्यत्तत्सर्वं च पृथक्पृथक् ।
रसालं त्रिविधं यन्त्रं कलयन्तीभिरादरात् । ५०
यथास्थाननियुक्ताभिः पश्येन्तीभिस्तदिङ्गितम् ।
तन्मुखाम्भोजदत्ताक्षि चञ्चलाभिरनुक्रमात् ।।५१
श्रीमत्या राधिकादेव्या वामभागे ससंभ्रमम् ।
आराधयन्त्या ताम्बूलमर्पयन्त्मा शुचिस्मितम् ।।५२
समालोक्यार्जुनीयाऽसौ मदनावेशविह्वला ।
ततस्तां च तथा ज्ञात्वा हृषीकेशोऽपि सर्ववित् ।।५३
ततस्तस्याः स्कन्धदेशे प्रदत्तभुजपल्लवः ।
आगत्य शारदां प्राहं पश्चिमेऽस्मिन्सरोवरे ।।५४

शीघ्रं स्नापय तन्वङ्गीं क्रीडाश्रान्ता मृदु स्मिताम् ।
ततस्तां शारदादेवी तस्मिन्क्रीडासरोवरे ।।५५
स्नानं कुर्वित्युवाचैनां साच श्रान्तातथाऽकरोत् ।
जलाभ्यन्तरमाप्नाऽसौपुनर्जुनतांगतः ।।५६

इतना भर कहकर वह श्री राधिका श्रीकृष्ण के चरण कमल की सन्निधि में चली गई थीं। इसके अतिरिक्त अन्य जो भी क्रीड़ा से समुत्पन्न हुआ वह-वह सब पृथक्-पृथक् था। विविध प्रकार का रसाल यन्त्र को बड़े आदर के साथ कहती हुई और यथास्थान पर नियुक्त हुई उनके इंगित को देखती हुई इन श्री राधिका के मुख कमल में नेत्र लगाकर चञ्चल होने वाली अनुक्रम से वहाँ स्थिति की थी।५०-५१। इस प्रकार से समाराधन करती हुई तथा ताम्बूल को समर्पित करती हुई शुचि स्थिति को भली-भाँति अवलोकन करके यह अर्जुनीया मदन के आदेश से विह्वल हो गई थी। इसके अनन्तर तत्वों के ज्ञाता भगवान् हृषीकेश ने भी उसको उस प्रकार के आवेश में संस्थित जान लिया था।५२-५३। इसके पश्चात् उसकी कामना पूर्ण करके फिर उसके स्कन्ध-भाग पर हाथ रख कर अर्थात् अपनी भुजा पल्लव को गलबाहीं में देकर आकर शारदा ने कहा था—इसको पश्चिम सरोवर के तट पर शीघ्र स्नान कराओ। यह तन्वङ्गीहैं और काम क्रीड़ा के कारण परम श्रान्त हो गई है एवं मृदु स्मित वाली है। इसके अनन्तर शारदा देवी ने उस क्रीड़ा सरोवर में स्नान करा—ऐसा इससे कहा था और वह भी श्रान्त थी ही उसने वहाँ पर स्नान किया था। जैसे ही यह जल के अन्दर पहुँचा वैसे ही यह पुनः अर्जुन एक पुरुष के स्वरूप में पूर्व की ही भाँति हो गया था।५४-५६।

उत्तस्थौ यत्र देवेशः श्रीमद्वैकुण्ठनायकः ।
दृष्ट्वा तमर्जुनं कृष्णो विषण्णं भग्नमानसम् ।
मायया पाणिना स्पृष्ट्वा प्रकृतं विदधे पुनः ।।५७
धनञ्जयत्वाभाशंसे भवान्प्रियसखो मम ।
त्वत्समो नास्तिमेकोऽपिरहो वेत्ता जगत्त्रये ।।५८

यद्रहस्यं त्वया पृष्टमनुभूतं न तत्पुनः ।
कथ्यते यदि तत्कस्मै शपसे मां तदाऽर्जुन ! ।।५९
इति प्रसादामासाद्य शपथैर्जातनिर्णयः ।
ययौ हृष्टमनास्तस्मात्स्वधामाद्‌भुतसंस्मृतिः ।।६०
इति ते कथितं सर्वं रहो यद्गोचरं मम ।
गोविन्दस्य तथा चास्मै कथने शपथस्तव ।।६१

वह अर्जुन खड़ा हो गया था जहाँ पर देवों के ईश श्रीमान् वैकुण्ठ के नायक विराजमान थे। भगवान् श्रीकृष्ण ने उस अर्जुन को विषाद से परिपूर्ण और खेद युक्त मन वाला देखा था। भगवान् ने अपने हाथ से उसका स्पर्श करके गाथा के द्वारा पुनः अकृत कर दिया था।५७। श्रीकृष्ण ने कहा-हे धनञ्जय ! मैं तुमको कहता हूँ कि आप मेरे परम प्रिय सखा हो। इस त्रिभुवन में जैसा तू मेरे रहस्य को जानता है वैसा तेरे समान अन्य कोई एक भी नहीं है।५८। जो रहस्य तुमने पूछा है और पुनः उसका अनुभव भी किया है उस समय हे अर्जुन ! यदि वह किसी को भी कहा जाता है तो सबको बुरा कहेगा।५९। सनत्कुमार ने कहा-इस तरह से प्रसाद को प्राप्त कर शपथों के द्वारा निर्णय पर पहुँचा हुआ फिर प्रसन्न मन वाला होकर उस स्थल से अपने घर की अद्‌भुत सस्मृति करता हुआ चला गया।६०। सनत्कुमार ने कहा कि यह सम्पूर्ण रहस्य जो भी मुझको ज्ञात था तुमको बता दिया है। गोविन्द तथा इसके विषय में कथन करने को तुमको शपथ दिलाई हुई है।६१।

।। नारद का स्त्रीरूप बनना ।।

बृन्दावनरहस्यं च बहुधा कथितं विभो ।
केन पुण्यविशेषेण नारदः प्रकृतिं गतः ।।१
एकदाश्चर्यवृत्तान्तं यथा जिज्ञासितं पुरा ।
ब्रह्मणा कथितं गुह्यं श्रुतं कृष्ण मुखाम्बुजात् ।।२

नारदः पृष्टवान्मह्यं तदाऽहं प्राप्तवानिदम् ।
अहं वक्तुं न शक्नोमि तन्माहात्म्यं कथञ्चन ॥३
किं कुर्वे शपतं तस्य स्मृत्वा सीदामि मानसे ।
इति श्रुत्वा मम वचो दुर्मनाः सोऽभवद्यदा ॥४
तदा ब्रह्माणमाहूय अहमादिष्टवान्प्रिये ।
त्वया यत्कथितं मह्यं नारदाय वदस्व तत् ॥५
ब्रह्मा तदा मम वचो निशम्य सह नारदः ।
जगाम कृष्णसविधं नत्वा पृच्छत्तदेव ते ॥६
किमिदं द्वात्रिंशद्वनं वृन्दारण्यं विशांपते ! ।
श्रोतुमिच्छामि भगवन्यदि योग्योऽस्मि मे वद ॥७

पार्वती ने कहा—हे विभो ! आपने प्रायः श्री वृन्दावन का रहस्य तो कहा था । अब यह बतलाइये कि किस पुण्य विशेष से देवर्षि नारद प्रकृति को प्राप्त हुये थे । ईश्वर ने कहा-यह तो बहुत आश्चर्य भरा हुआ वृतान्त है जिसने पहिले जाना था । ब्रह्माजी ने इस परम गुप्त विषय को बताया था जो कि श्रीकृष्ण के मुख कमल से पहिले श्रवण किया था । ।१-२। श्रीनारद मुनि ने मुझसे पूछा था । उसी समय में मैंने इसे प्राप्त किया था, किन्तु, इसे बता नहीं सकता हूँ । उसका माहात्म्य ऐसा है कि मेरी क्षमता के बाहिर है । मैं किसी प्रकार भी उसे नहीं कह सकता हूँ ।३। मैं उसका शपन तो क्या करूँ केवल स्मरण करके मन से दुःखित होता हूँ । इस प्रकार के मेरे वचन का श्रवण कर जिस समय में वह दुर्मना हो गया था ।४। हे प्रिये ! उस समय में ब्रह्माजी को बुलाकर मुझे आज्ञा दी गई थी । तुमने जो मुझसे कहा है वह नारद से कह दो । ब्रह्माजी ने उस समय में मेरा वचन सुनकर नारद के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के समीप में गये थे वहाँ जाकर उनको प्रणाम किया था और यही पूछा था ।५-६। ब्रह्माजी ने कहा-हे विशापते ! यह बत्तीस वन वाला वृन्दावन क्या और कैसा है ? हे भगवन् ! इसके श्रवण करने की अत्यन्त उत्कट अभिलाषा है । यदि मुझे आप इसके लिए योग्य पात्र समझते हैं तो आप कृपाकर मुझसे कहने का कष्ट करें ।७।

इदं वृन्दावनं रम्यं मम धामैव केवलम् ।
यत्र मे पशवः साक्षाद्वृक्षाः कीटा नरामराः ॥८
ये वसन्ति ममान्त्येते मृया यान्ति ममान्तिकम् ।
अत्र या गोपापत्न्यश्च निवसन्ति ममालये ॥९
सर्वतो व्यापकश्चाह न त्यक्ष्यामि वनं क्वचित् ।
आविर्भावस्तिरोभावो भवेदत्र युगेयुगे ॥१०
तेजोमयमिदं स्थानमदृश्यं चर्मचक्षुषाम् ।
रहस्यं मे प्रभावञ्च पश्य वृन्दावनं युगे ॥
ब्रह्मादीनां देवतानां न दृश्यं तत्कथञ्चन ॥११
तच्छ्रुत्वा नारदो नत्वा कृष्णं ब्रह्माणमेवच ।
आजगाम ह भूलोके मिश्रकं नैमिषंवनम् ॥१२
तत्रासौ सत्कृतश्चापि शौनकाद्यैर्मुनीस्वरैः ।
पृष्टश्चाप्यागतो ब्रह्मन्कुतस्त्वमधुना वद ॥१३
तच्छ्रुत्वा नारदः प्राह गोलोकादागतोऽस्म्यहम् ।
श्रुत्वा कृष्णमुखाम्भोजाद् वृन्दावनरहस्यकम् ॥१४

श्री भगवान् ने कहा—यह परम रम्य वृन्दावन केवल मेरा ही धाम है। जहाँ पर ये पशु साक्षात् वृक्ष-कीट-नर-अमर जो भी निवास किया करते हैं वे सब मेरे ही हैं और मृत होकर मेरी सन्निधि ही में पहुँच जाया करते हैं। यहाँ पर जो ये गोपों की पत्नियाँ मेरे स्थान में निवास करती है वे भी योगिनी हैं।८-९। मैं सर्व प्रकार से व्यापक हूँ और मैं इस वन को कभी भी नहीं छोड़ूँगा। वहाँ पर युग-युग में आविर्भाव और तिरोभाव होता है।१०। यह स्थान तेजोमय है और साधारण चर्म चक्षुओं के देखने के योग्य नहीं है। युग में इसका रहस्य, मेरा प्रभाव और वृन्दावन को देखो। वह ऐसा अद्भुत एव परम गोपनीय है कि ब्रह्मा आदि देव वृन्द को भी किसी प्रकार से भी देखने योग्य नहीं होता है।।११। ईश्वर ने कहा—यह सुनकर देवर्षि नारद ने श्रीकृष्ण को और ब्रह्मा को प्रणाम किया था। फिर इस भूलोक में मिश्रक नैमिष वन में वह आये थे।१२। वहाँ पर शौनकादि मुनिश्वरों के द्वारा इनका अच्छा

सत्कार किया गया था। सभी ने इनसे पूछा था–हे ब्रह्मन्! इस समय आपका आगमन कहाँ से हुआ है—यह हमको बतलाइये।१३। यह सुन कर नारद ने कहा—मैं इस समय में गोलोक से आया हूँ और मैंने श्रीकृष्ण के मुख कमल से इस वृन्दावन का रहस्य सुना है।१४।

तत्र नानाविधाः प्रश्ना कृताश्चैव पुनः पुनः।
समस्ता मनवस्तत्र योगाश्चैव मयाश्रुताः।
तानेव कथयिष्यामि यथाप्रश्नं च तत्त्वतः ॥१५
वृन्दारण्यरहस्यं हि यदुक्तं ब्रह्माणा त्वयि।
तदस्माकं समाचक्ष्व यद्यस्मासु कृपा तव ॥१६
इदं तु परमं गुह्यं रहस्यातिरहस्यकम्।
पुरो मे ब्रह्माणा प्रोक्तं तादृग्वृन्दवनोद्भवम् ॥१७
रहस्यां वद देवेश ऽ वृन्दारण्यस्त मे पितः।
इति जिज्ञासितं श्रुत्वा क्षणं मौनी स चाभवत् ॥१८
मयाऽपि तत्र गन्तव्यं त्वया सह न संशयः ॥१९
इत्युक्त्वा मां गृहीत्वा च गतो विष्णोश्च धामनि।
महाविष्णौ च कथितं मयोक्तं यत्तदेव हि ॥२०
तच्छ्रुत्वा च महाविष्णुः स्वयम्भुवमथादिशत्।
त्वमेवादेशतो मह्यं नीत्वा वै नारद मुनिम् ॥२१

अब मैं प्रश्न के अनुसार उन्हीं को तात्त्विक रूप से तुम्हारे समक्ष में कहूँगा।१५। श्री नारदजी ने कहा–यह तो रहस्य का भी अति रहस्य परम गोपनीय है। सबसे पूर्व मुझे ब्रह्माजी ने कहा था। मैंने इस सम्बन्ध में ब्रह्माजी से प्रार्थना की थी कि हे पिताजी! आप तो देवों के भी स्वामी हैं। उस प्रकार का वृन्दावन में उत्पन्न होने वाला वृन्दावन का रहस्य मुझसे कहिये। मेरी इस जिज्ञासा के वचन को सुनकर वह भी एक क्षण भर के लिए मौनी हो गये थे।१६-१८। इसके अनन्तर उन्होंने

मुझसे कहा था-हे वत्स ! मेरे प्रभु श्री महा विष्णु समीप में चलो । मैं भी वहाँ पर तुम्हारे साथ चलूँगा - इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।१९। इतना कहकर ब्रह्माजी मुझे साथ में लेकर भगवान् विष्णु के धाम में गये थे । वहाँ पर जो मैंने उनसे प्रश्न किया था वही उन्होंने श्री महाविष्णु से कहा था ।२०। यह सुनकर श्रीमहाविष्णु ने स्वयम्भु को आदेश प्रदान किया था कि आप ही मेरी आज्ञा से नारद मुनि को ले जाकर वहाँ चले जावें ।२१।

स्नानाय विनियुङ्क्ष्वाशु सरस्यमृतसंज्ञके ।
महाविष्णुसमादिष्टः स्वायम्भूर्मां तथाऽकरोत् ।।२२
तत्रामृतसरश्चाहं प्रविश्य स्नानमाचरम् ।
तत्क्षणात्तत्सरः पारे योषित सविधेऽभवम् ।।२३
सर्वलक्षणसम्पन्ना योषिद्रूपातिविस्मिता ।
मां दृष्ट्वा ताः समायन्तीमपृच्छञ्च मुहुर्मुहुः ।।२४
का त्व कुतः समायाता कथवात्मविचेष्टितम् ।
तासां प्रियकथां श्रुत्वा मयोक्तं तन्निशामय ।।२५
कुतः कोऽहं समायातः कथं वा योषिदाकृतिः ।
स्वप्नवद् दृश्यते सर्वं किं वा मुग्धोऽस्मि भूतले ।।२६
तच्छ्रुत्वा मद्वचो देवी प्रोवाच मधुरस्वनैः ।
वृन्दा नाम्नी पुरी चेयं कृष्णचन्द्रप्रियासदा ।।२७
अहं च ललितादेवी तुर्यातीता च निष्कला ।
इत्युक्त्वाच महादेवी करुणासान्द्रमानसा ।।२८

वहाँ पर अमृत संज्ञा वाले सरोवर में इनको स्नान करने के लिए विनियोजित कर देवे । महाविष्णु के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने वाले ब्रह्माजी ने मुझको वैसा ही कर दिया था ।२२। वहाँ पर जो अमृतसर था, मैंने उसमें प्रवेश किया था और स्नान भी किया था । उसी क्षण में उस सर के पार में निकट आते ही मैं एक योषित् हो गया था ।२३। नारी भी मैं ऐसा बन गया था जो सम्पूर्ण सुलक्षणों से सम्पन्न और

अत्यन्त रूप लावण्य युक्त अति विस्मय करने वाली थी। मुझे आती हुई देखकर वे सब यहाँ आ गईं और बार-बार मुझसे पूछने लगी थीं ।२४। स्त्रियों ने कहा—तुम कौन हो ? कहाँ से यहाँ पर आई हो ? किस कारण से तुमने यहाँ आगमन करने की यह चेष्टा की है। उन सब की इस भाँति परम प्रिय कथा सुनकर मैंने फिर उनसे कहा था। उसे श्रवण करो ।२५। मैं कौन हूँ और कहाँ से यहां पर आया हूँ तथा किस प्रकार से मेरी यह योषित की आकृति हो गई है—यह सभी कुछ एक स्वप्न की भाँति ही दिखलाई दे रहा है। अथवा मैं भूतल में मुग्ध हो गया हूँ ।२६। इस प्रकार के मेरे वचनों को सुनकर देवी मधुर ध्वनि से मुझसे बोली—देखो, यह वृन्दा नाम वाली पुरी है जो सर्वदा श्रीकृष्ण को परम प्रिय है ।२७। और मैं ललिता देवी हूँ जो तूयतीत और निष्कला हूँ। इस तरह करुणा से सान्द्र चित्त वाली देवी ने मुझसे कहा था ।२८।

मां प्रत्याह पुनर्देवी समागच्छ मया सह।
अन्याश्च योषितः सर्वाः कृष्णपादपरायणा ।।२९
ताश्च मां प्रवदन्त्येवं समागच्छानया सह।
ततोऽनुकृष्णचन्द्रस्य चतुर्दशाक्षरो मनुः ।।३०
कृपया कथितस्तस्या देव्याश्चापि महात्मनः।
तत्क्षणादेव तत्साम्यमलभं विधिघोपमा ।।३१
ताभिः सह गतास्तत्र यत्र कृष्णः सनातनः।
केवलं सच्चिदानन्दः स्वयं योषिन्मयः प्रभुः ।।३२
योषिदानन्दहृदयो दृष्ट्वा मां प्राब्रवीन्मुहुः।
समागच्छ प्रिये ! कान्ते ! भक्त्या मां परिरम्भय ।।३३
अहं च ललिता देवी पुंरूपा कृष्णविग्रहा।
आवयोरन्तरं नास्ति सत्यं सत्यं हि नारद ।।३४
एवं यो वेत्ति मे तत्त्वं समयं च तथा मनुम्।
[illegible] ललितावत्स मे प्रियः ।।३५

उस महादेवी ललिता ने मुझसे फिर कहा था अब तुम मेरे साथ आओ। यहाँ पर श्रीकृष्ण के चरण कमलों में सर्वदा तत्पर रहने वाली अन्य भी बहुत सी ललनायें हैं।२६। वे सब भी मुझसे इसी प्रकार से कहती थीं कि इसके साथ चली आओ। इसके अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण का चौदह अक्षरों वाला मन्त्र कृपा करके मुझसे बताया गया था। फिर महान् आत्मा वाले की उस देवी का ही सम स्वरूप मैंने उसी क्षण में प्राप्त कर लिया था और मैं उस समय में विविध उपमा वाली देवी बन गयी थी।३०-३१। फिर उन सबके साथ वहाँ पर गई थी जहाँ पर सनातन भगवान् श्रीकृष्ण विद्यमान थे भगवान् श्रीकृष्ण केवल सच्चिदानन्द स्वरूप वाले और स्वयं योषिन्मय प्रभु थे।३२। योषितों को आनंद प्रदान करने वाले हृदय को रखने वाले उन्होंने मुझे देखा और मुझसे वे बार-बार कहने लगे। हे प्रिये ! हे कान्ते ! चली जाओ। भक्ति के साथ मेरा परिरम्भण करो।३३। मैं तो ललिता देवी हूँ। जो पुरुष के रूप वाली और श्रीकृष्ण के विग्रह को धारण करने वाली हूँ हम दोनों में कोई भी अन्तर नहीं है, हे नारद ! यह बिल्कुल सत्य एवं महा सत्य है।३४। जो इस प्रकार से मेरे तत्व को और समय को एवं मन्त्र को जानना है जो कि समाचार के संकेत के सहित ही है वह ललिता की भाँति ही मेरा प्रिय है।३५।

इदं वृन्दावनं नाम रहस्यं मम वै गृहम्।
न प्रकाश्यं कदा कुत्र वक्तव्यं न पशौ क्वचित् ॥३६
ततोऽनु राधिका देवी मां नीत्वा तत्सरोवरे।
स्थित्वा सा कृष्णचन्द्रस्य चरणान्ते गता पुनः ॥३७
ततो निमज्जनादेव नारदोऽहमुपागतः।
वीणाहस्तो गानपरस्तद्रहस्यं मुहुर्मुदा ॥३८
स्वयम्भुवं नमस्कृत्य तत्रागां बिष्णुपार्षदम्।
स्वयम्भुवा तथा दृष्टं नोक्तं किञ्चित्तदा पुनः ॥ ३९
इति ते कथितं वत्स ! सुगोप्यं च मया त्वयि।
त्वयाऽपि कृष्णचन्द्रस्य केवलं धाम चित्कलम् ॥४०

यह वृन्दावन नाम वाला रहस्य मेरा घर है। इसे कभी भी कहीं प्रकाशित नहीं करना चाहिए किसी भी पशु वृत्ति वाले मनुष्य से तो कहीं भी कभी न बोलना चाहिए।३६। इसके पश्चात् श्री राधिका देवी मुझे उसी सरोवर के निकट ले गई थी। वहाँ पर स्थित होकर फिर कृष्णचन्द्र के चरणों के समीप में चली गई थीं।३७। इसके अनन्तर मैंने उसी सरोवर में निमज्जन किया था और मैं पुनः नारद हो गया था मेरे हाथ में पहिले ही की भाँति वीणा हो गया था और गान में तत्पर होकर बड़े ही आनन्द से बारम्बार उसी रहस्य का गायन करता था।३८। स्वयम्भु को प्रणाम करके वहाँ पर विष्णु पार्षद के समीप चला गया। स्वयम्भू ने मुझे उसी प्रकार का देखा था और फिर उसी समय में कुछ भी नहीं बोले थे।३९। उन्होंने यह कहा था—हे वत्स ! मुझे तुम्हारे विषय में यह भली-भांति गोपनीय रखना चाहिए और तुमको भी भगवान् कृष्णचन्द्र का केवल चित्कलधाम गोपनीय ही रखना चाहिए।४०।

※ वैसाख मास व्रत विधान ※

इतितस्य वचः श्रुत्वानारदस्य महात्मनः।
अम्बरीषश्च राजर्षिर्विस्मितो वाक्यमब्रवीत्।।१
मार्गशीर्षं दिकान्मासान्हि त्वा पुण्यान्महामुने।
सर्वमासाधिकं मासं वैशाखं किं प्रशंससि।।२
सर्वेभ्योऽप्यधिकः कस्मान्माधवो माधवप्रियः।
को विधिस्तत्र किं दानं किंतपः का च देवता।।३
अथ मन्दमृदुस्मेरस्फुरद्दन्तप्रभानुगः।
अम्बरीषं प्रत्युवाच नारदो मुनिसत्तमः।।४
शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि हिताय जगतस्तव।
विधिर्माधवमासस्य यच्छ्रुतो ब्रह्मणः पुरा।।५
दुर्लभं भारते वर्षे जन्म तत्रापि मानुषम्।
मानुष्ये दुर्लभे लोके स्वस्वधर्मप्रवर्त्तनम्।।६

ततोऽपि भक्तिर्भूपाल वासुदेवेऽति दुर्लभा ।
तत्रापि दुर्लभो मासो माधवो माधवप्रियः ।।७

सूतजी ने कहा—महात्मा नारद देवर्षि के इस प्रकार के वचन को सुन करके राजा अम्बरीष वहुत ही विस्मित हो गये थे और उन्होंने यह वाक्य कहा था—।१। राजा अम्बरीष ने कहा—हे महामुने ! परम पुण्य स्वरूप मार्गशीर्ष आदिक मासों को त्याग करके समस्त अन्य परम पवित्र मासों से भी अधिक वैशाख मास की क्यों आप प्रशंसा करते हैं ? ।२। अन्य समस्त मासों से भी अधिक यह माधव मास माधव को क्यों प्रिय होता है ? इस सास में कुछ कर्म करने की क्या विधि है और उस मास में क्या दान दिया जाता है तथा क्या तत्पश्चया करनी चाहिये एवं इस मास का देवता कौन है ? ।३। सूतजी ये कहा—इसके अनन्तर मुनियों में परम श्रेष्ठ नारद देवर्षि मन्द-मन्द और मृदुल मुस्कराहट से चमकते हुए दाँतों की प्रभा को प्रकट करते हुये अम्बरीष राजा से कहने लगे ।४। नारदजी ने कहा—हे राजन ! आप इस विषय में सावधान होकर सुनिये । मैं आपके हित और सम्पूर्ण जगत् के कल्याण के लिए कहता हूँ । मैंने पहिले ब्रह्माजी से सुना था वही माघव मास का विधान मैं आपको बता रहा हूँ ।५। इस परम पुण्यमय भारतवर्ष देश में जन्म ग्रहण करना ही वहुत दुर्लभ हैं अर्थात् महान् पुण्यों का जव उदय होता है तभी भारत देश में यह प्राणी जन्म लिया करता है अतएव ऐसा सौभाग्य का अवसर बहुत कठिनाई से प्राप्त हुआ करता है । उसमें भी मनुष्य देह प्राप्त कर लेना अतीव दुर्लभ है । इस मनुष्य देह को प्राप्त करके अपने शास्त्रोक्त वर्ग का परिपालन करना दुर्लभ होता है ।६। यह सभी कुछ प्राप्त कर लेने पर भी भगवान् में भक्ति की भावना हो । हे भूपाल ! यह तो महान् दुर्लभ है । उसमें भी माघव (वैसाख) मास नितान्त दुर्लभ होता है अर्थात् वैसाख में समुचित कर्म करने का अवसर ही जाना ही दुर्लभ होता है ।७।

तमवाप्य ततो मासं स्नानदानजपादिकम् ।
कुर्वन्ति विधिना ये तु धन्यास्ते कृतिनो नराः ॥८
तेषां दर्शनमात्रेण पापिनोऽपि विकिल्विषाः ।
भवन्ति भगवद्भावभाविता धर्मकांक्षिणः ॥९
यथा न वारिधिसमो लोके कोऽपि जलाशयः ।
तथा मासो न वैशाखसदृशो माधव प्रियः ॥१०
तावत्पापानि तिष्ठन्ति मनुष्यानां कलेवरे ।
यावत्कलिमलध्वंसी मासो नायाति माधवः ॥११
वैशाखे पूजितो देवो माधवो मधुहा तु यैः ।
नानोपचारैः राजेन्द्र तैः प्राप्तं जन्मनः फलम् ॥१२
किं किं न दुर्ल्लभतरं प्राप्यते मासि माधवे ।
स्नानेन परमेशस्य पूजनेत यथाविधि ॥१३
न दत्तं न हुतं जप्तं न तीर्थे मरणं कृतम् ।
यैर्हि नारायणो नैव ध्यातो निखिलपापहा ॥१४
तेषा जन्मनृणां लोके ज्ञातव्यं निष्फल नृप ।
द्रव्येषु विद्यमानेषु कृषणो यो भवेन्नरः ॥१५

इस मनुष्य जीवन में भगवान् वासुदेव की भक्ति यदि प्राप्त हो जावे तो बैसाख मास पाकर स्नान दान-जप आदि जो विधि विधान पूर्वक किया करते हैं वे मनुष्य धन्य तथा महान् सुकृति एवं कुशल है अर्थात् पुरुष महान् पुण्यशाली हुआ करते हैं ।८। ऐसे महान् पुण्यात्मा पुरुषों का यदि दर्शन मात्र भी हो जाय तो उसका ही ऐसा विलक्षण प्रभाव होता है कि केवल दर्शन से ही पापात्मा पुरुषों के भी किल्वषों का नाश हो जाया करता है और विशुद्ध होकर भगवान् की भक्ति से भावित होकर के धर्म की आकांक्षा करने वाले वन जाया करते हैं ।९। जिस तरह वारिधि संसार में सबसे बड़ा जलाशय होता है और उसकी समानता रखने वाला अन्य दूसरा कोई भी जलाशय नहीं है उसी भांति भगवान् माधव का परम प्रिय वैसाख या सबसे अधिक महिमाशाली

मास है जिसकी समता रखने वाला दूसरा कोई भी मास नहीं होता है। ।१०। मनुष्यों के शरीर में पाप तभी तक निवास किया करता है जब तक कलि के मलों का ध्वंस करने वाला माधव मास नहीं आता है।११। मधु दैत्य के हनन करने वाले भगवान् माधव देव वैसाख में जिनके द्वारा पूजित होता है। हे राजेन्द्र अनेक उपचारों के द्वारा जो पूजन किया करते हैं उन्होंने तो इस मनुष्य जन्म के धारण करने का वास्तविक फल ही प्राप्त कर लिया है।१२। ऐसा क्या-क्या अति दुर्लभ पदार्थ इस माधव मास में प्राप्त नहीं होता है अर्थात् दुर्लभ पदार्थ मात्र भी सभी कुछ माधव मास में कर लिया जाता है यदि यथाविधि इस मास में स्नानादि किया जावे और परमेश का समर्थन किया जावे।१३। जिन्होंने समस्त पापों के हनन करने वाले भगवान् नारायण का ध्यान नहीं किया है उन्होंने चाहे अन्य सभी दानादिक किये हों सभी व्यर्थ हैं उन्होंने दान, तप या मृत्यु कुछ भी नहीं किया है यही समझना चाहिए अर्थात् उसका यह सभी कुछ निष्फल होता है।१४। हे नृप ! ऐसे पुरुषों का मनुष्य शरीर धारण कर जन्म ही लोक में ग्रहण करना निष्फल समझना चाहिए जो सभी प्रकार के द्रव्यों को विद्यमान रहते हुये भी कृपण (कंजूसी करने वाला) होता है।१५।

अनेकजन्मार्जितपातकावली विलीयते माधवमज्जनेन ।
सूर्योदये भूप यथा तमिस्रं वचः स्वयम्भुदिरमादिशन्मे ।।१६
चकार विष्णुर्विपुलप्रचारं मासस्य वै माधवसंज्ञकस्य ।
यमस्य गुप्तं वचसा विचिन्त्य मनुष्यलोकं गमितं चकार ।।१७
तस्मादस्मिन्समायाते माधवेमासि वैष्णवैः ।
स्नात्वा पुण्यजले तीर्थे गङ्गायाः पावने नृणाम् ।।१८
रेवाया वा महाराज यामुने शारदेऽथवा ।
प्रातस्त्वनुदिते भानौ विधानेन नृपोत्तम ।।१९
पूजयित्वा च देवेशं मुकुन्द मधुसूदनम् ।
पुत्रपौत्रधनैः श्रेयो वाञ्छितानि सुखानि च ।।२०
अनुभूय तपस्त्वन्ते स्वर्गमक्षयमाप्नुयात् ।
एवं ज्ञात्वा महाभाग मधुसूदनमर्चय ।।२१

भगवान् स्वयम्भू ने मुझे यही आदेश प्रदान किया है कि भगवान् माधव के ही स्वरूप वाले वैसाख मास में सज्जन (स्नान) करने से अर्थात् तीर्थ में सविधि नहाने से अनेक जन्मों के किए हुए पापों के समूह का विलय हो जाता है जिस प्रकार हे भूप ! सूर्य के उदय होते ही घोर अन्धकार विनष्ट हो जाया करता है वैसे ही पापों का विनाश होता है ।१६। भगवान् विष्णु ने इस माधव सञ्ज्ञा वाले मास का बड़ा भारी प्रचार किया है । यमराज ने गुप्त कथन का वाणी से विचार करके मनुष्य लोक में गमन किया था ।१७। इसलिए इस माधव मास के उपस्थित होने पर वैष्णवजनों को पुण्य जल वाले तीर्थ में स्नान करके अथवा मनुष्यों को पावन करने वाले गङ्गा के जल में स्नान करना चाहिये ।१८। हे महाराज ! हे नृपों में परम श्रेष्ठ ! रेवा-यमुना अथवा शारदा के जल में स्नान करे । जब तक भुवन भास्कर सूर्य उदित न हों तभी तक विधि पूर्वक स्नान कर लेना चाहिए ।१९। फिर देवों के स्वामी भगवान् मुकुन्द का पूजन करे ऐसा करने वाला मनुष्य पुत्र-पौत्र धन श्रेय और अन्य अभी अभीष्ट सुखों का अनुभव करके तथा पूर्ण तपश्चर्या करके अन्त समय में अक्षय मोक्ष की प्राप्ति किया करता है। ऐसा समझकर हे महाभाग! भगवान् मधुसूदन की अर्चना करो ।२०-२१।

स्नात्वा सम्यग्विधानेन वैशाखे तु विशेषतः ।
देवमाराध्य गोविन्दं नारायणमनामयम् ॥२२
प्राप्स्यसित्वं सुखं पुत्रं धनानि च हरे पदम् ।
देवदेवं नमस्कृत्य माधवं पापनाशनम् ॥२३
प्रारभेतः व्रतमिदं पौर्णमास्यां मधौर्नृप ।
यमैश्च नियमैर्युक्तः शक्त्या किञ्चत्प्रदाय च ॥२४
हविष्यभुग्भूमिशायी ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ।
कृच्छ्रादि तपसा क्षामो ध्यायन्नारायणं हृदि ॥२५
एव प्राप्य च वैशाखीं दद्यान्मधु तिलादिकम् ।
भोजनं द्विजमुख्येभ्यो भक्त्या धेनुं सदक्षिणाम् ॥२६
अच्छिद्रं प्रार्थयेच्चापि तस्य स्नानस्य भूसुरान् ।

यथा लक्ष्मीः प्रिया भूप ! माधवस्य जगत्पतेः ॥२७

तथैव माधमोमासो मधुसूदनवल्लभः ।
एवं विधियुतो मर्त्यः स्नात्वा द्वादशवत्सरम् ।।२८
उद्यापनं चरेच्छक्त्या मधुसूदनतुष्टये ।
इदं माधवमासस्य माहात्म्य कथितं तव ।।२९

इस तरह सम्यक रीति एव विधि से वैशाख मास में विशेष रूप से स्नान करके और आमय रहित देव गोविन्द नारायण की आराधना करने से आप भी पूर्ण सुख, पुत्र-धन और अन्त में हरि के पद को प्राप्त कर लेंगे। देवों के भी देव को नमस्कार करे जो कि भगवान माधव पापों के विनाश करने वाले हैं।२२-२३। हे नृप ! इस महत्वपूर्ण व्रत का आरम्भ मधु मास में पूर्णमासी के दिन में ही करना चाहिए। समस्त यम और नियमों से समन्वित होकर रहे और कुछ दान भी करता रहे।२४। हविष्य पदार्थों का आहार करे भूमि में शयन करे तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करे। कृच्छ आदि तप से क्षाम होकर हृदय में यदि नारायण का ध्यान करे तो उत्तम है।२५। इस प्रकार से वैशाखी पूर्णिमा को प्राप्त कर मधु तिल आदि का दान करना चाहिये। जो परम श्रेष्ठ द्विज हों उनको भोजन करावे और भक्तिभाव से युक्त होकर दक्षिणा के सहित धेनु का दान देवे।२६। विना किसी छिद्र अर्थात् कपट भाव के प्रार्थना करे। भूसुरों से उसके स्नान के करने के विषय में प्रार्थना यह करे कि किस प्रकार से लक्ष्मी जगत्पति माधव की प्रिया है, हे भूप ! ठीक उसी प्रकार से यह माधव मास भी मधु सूदन भगवान् को अत्यन्त प्रिय है। इस विधि विधान से युक्त मनुष्य बारह वर्ष तक निरन्तर स्नान करके फिर इसका उद्यापन अपनी शक्ति के ही अनुसार भगवान् मधुसूदन के लिये अर्थात् उनकी पुष्टि के लिए करना चाहिए। यह मैंने माधव मास का माहात्म्य तुमको बतला दिया है।२७-२९।

* वैसाख मास की संक्षिप्त विधि वर्णन *

यातु तमद्यतं नत्वा मुनि राजा ततो मुदा ।
विधि पप्रच्छ संक्षिप्तं स्नानदानक्रियोचितम् ।।१

मुने ! वैशाखमासेऽस्मिन्को विधिः किं तपोऽधिकम् ।
किं च दानं कथं स्नानं कथं केशवपूजनम् ॥२
कृपया वद विप्रर्षे सर्वज्ञस्त्वं हरिप्रियः ।
विशेषतोऽपि पूजाया विधि तीर्थं पदे वद ॥३
मेषसंक्रमणे भानोर्माधवे मासि सत्तम ।
महानद्यां नदीतीरे नदे सरसि निर्झरे ॥४
देवखातेऽथ वा स्नायाद्यथाप्राप्ते जलाशये ।
दीर्घिकाकूपवापीषु नियतात्मा हरिं स्मरन् ॥५
मधुमासस्य शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः ।
पञ्चदश्यां च वा वीर ! मेषसङ्क्रमणेऽपि वा ॥६
वैशाखस्नानवियम ब्राह्मणानामनुज्ञया ।
मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात्सुस्नानपूर्वकम् ॥७

सूतजी ने कहा—गमन करने के लिये उद्यत मुनि को प्रणाम करके फिर राजा ने बहुत ही प्रसन्नता के साथ स्नान-दान आदि की समुचित विधि का संक्षेप में वर्णन करने के बावत पूछा था ।१। राजा अम्बरीष ने कहा—हे महामुने ! इस बैसाख मास में क्या बिधि है और इसमें कौन सा तप अधिक माना जाता है ? क्या दान करना चाहिये और किस प्रकार से स्नान करे तथा भगवान् केशव का पूजन किस विधान में करना चाहिये ।२। हे विप्रर्षे ! आप मेरे ऊपर परम अनुग्रह करके यह सब वर्णन कीजिये । आप तो सर्वज्ञ हैं और भगवान हरि के प्यारे हैं । तीर्थ स्थल में विशेष रूप से पूजा की विधि बतलाइये ।३। नारदजी ने कहा—हैं सत्तम ! सूर्यदेव के मेष राशि पर संक्रमण करने पर माधव मास में किसी भी महानदी में - नदी के तट पर, नद में, सरोवर में, निर्झर में अथवा देवखात में जो भी कोई जलाशय उन उक्तों में प्राप्त हो सके स्नान करना चाहिये । अथवा नियत आत्मा वाला हो कर श्रीहरि का स्मरण करते हुये स्नान करे ।४-५। मधु मास को शुक्ल पक्ष की एकादशी में उपवास करे । हे वीर ! पूर्णिमा में अथवा मेष के संक्रमण समय में वैशाख स्नान के नियमों को धारण करे और ब्राह्मणों

की आज्ञा प्राप्त करके ही आरम्भ करना चाहिये। भगवान् मधुसूदन की अभ्यर्चना करके सुन्दर स्नान पूर्वक ही अर्चन करना चाहिए।६-७।

वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणे रवेः।
प्रातः सनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदनः ॥८
मधुहन्तुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात्।
निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्सानमन्वहम् ॥६
माधवे मेषगे भानौ मुरारे मधुसूदन।
प्रातः स्नानेन मे नाथ यथोक्तफलदो भव ॥१०
यथा ते माधवो मामो वल्लभो मधुसूदन।
प्रातः स्नानेन मे तस्मिन्फलदः पापहा भव ॥११
एवमुच्चार्य तत्तीर्थे पादौ प्रक्षाल्य वाग्यतः।
स्मरन्नारायणं देवं स्नानं कुर्याद्विधानतः ॥१२
तीर्थं प्रकल्पयेद्धीमाम्मूलमन्त्रमिमं पठन्।
ॐ नमो नारायणाय मूलमन्त्र उदाहृतः ॥१३
दर्भपाणिस्तु विधिवदाचान्तः प्रणतो भुवि।
चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ॥१४
प्रकल्प्यावाहयेद्गङ्गा मन्त्रेणानेन मानवः।
विष्णुपादप्रसूताऽसि वैष्णवी विष्णुदेवता ॥१५

सर्व प्रथम निम्न प्रकार से संकल्प करना चाहिए—इस सम्पूर्ण वैसाख मास में रवि के मेष राशि पर संक्रमक होने पर प्रातः काल में नित्य ही नियमों के सहित मैं स्नान करूँगा। भगवान मधुसूदन प्रभु पर प्रसन्न होवें।८। मधु दैत्य के हनन करने वाले भगवान के प्रसाद से और ब्राह्मण देवों के परम अनुग्रह से मेरा यह पुण्यमय वैसाख मास का स्नान प्रतिदिन बिना किसी विघ्न बाधा के पूर्ण हो जावे।९। सूर्य के मेष राशि पर संक्रमण करने पर इस माधव मास में हे मुरारी मधुसूदन! मेरे इस प्रातःकाल के स्नान से आप यथोक्त फल के प्रदान करने वाले हो जावें।१०। हे मधूसूदन! जिस प्रकार से यह माधव मास

आपको प्रिय है। इस मास में मेरे प्रातःकाल के स्नान करने से फलों के प्रदान करने वाले आप पापों के हनन करने वाले हो जावें ।११।इस प्रकार से अपने मुख से उच्चारण करके उस तीर्थ में पादों का प्रक्षालन करके मौन व्रतधारी होवे । नारायण देव का स्मरण करते हुये विधान पूर्वक फिर स्नान करना चाहिए ।१२। श्रीमान पुरुष को तीर्थ की प्रकल्पना कर लेनी चाहिए और निम्न मूल मन्त्र का पाठ करे । 'ओं नमो नारायणाय' —यह मूलमन्त्र कहा गया है ।१३। हाथ में कुशा लेकर विधि पूर्वक आचमन करे और भूमि में प्रणाम करे । चार हाथ प्रमाण से युक्त और सभी ओर से चौकोर भूमि की कल्पना करे और मनुष्य का निम्न मन्त्र से वहाँ पर भागीरथी गङ्गा का आवाह करना चाहिए । हे भागीरथी ! आपने तो भगवान विष्णु के चरणों से जन्म ग्रहण किया है और आप हरम वैष्णवी तथा विष्णु के देवता वाली हैं ।१४-१५।

एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य तु विधानतः ।
उत्थाय वाससी शुक्ले शुद्धे तु परिधापयेत् ।।१६
ततस्तु तर्पणं कुर्य्यात्त्रैलोक्याप्यायनाय वै ।
ब्रह्माणं तर्पयेत्पूर्वं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिम् ।।१७
आचम्य विधिवत्सम्यगालिखेत्पद्ममग्रतः ।
साक्षतैश्च सपुष्पैश्च सलिलारुणचन्दनैः ।।१८
अर्घं दद्यात्प्रयत्नेन सूर्यं नामानुकीर्तनः ।
नमस्ते विष्णुरूपाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ।।१९
सहस्ररश्मये सूर्य नमस्ते सर्वतेजसे ।
नमस्ते रुद्रवपुषे नमस्ते भक्तवत्सल ।।२०
पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषिते ।
नमस्ते सर्वलोकेश सुप्तानामुपबोधन ।।२१

इस प्रकार से स्नान करके इसके अनन्तर आचमन विधि सहित करे । फिर उठकर शुद्ध एवं शुक्ल वस्त्रों को धारण करे ।१६। इसके अनन्तर त्रिभुवन की तृप्ति के लिए तर्पण करना चाहिए । सबसे प्रथम ब्रह्मा को तृप्त करे फिर विष्णु की तृप्ति करे और पुनः रुद्र प्रजापति

आदि का तर्पण करना चाहिये ।१७। विधिपूर्वक आचमन करके फिर अपने सामने एक पद्म का आलेखन करे। अक्षत-पुष्प और रक्त चन्दन सहित जल से अर्घ्य समर्पित करना चाहिए। प्रयत्न के साथ सूर्य के नामों का संकीर्तन करे। विष्णु के स्वरूप वाले आपको नमस्कार है। ब्रह्म स्वरूप के धारण करने वाले आपकी सेवा में नमस्कार है ।१८-१६। हे सूर्यदेव ! सहस्र किरणों वाले तथा सर्व तेज स्वर ी आपके लिए नमस्कार है। रुद्र वपुधारी आपकी सेवा में हे भक्त वत्सल ! हमारा नमस्कार है ।२०। हे पद्मनाभ ! कुण्डलों और अङ्गदों से विभूषित शरीर के धारण करने वाले आपको नमस्कार है। हे सुतप्तों के लिए उद्बोधन देने वाले ! हे लोकों के ईश ! आपकी सेवा में हमारा नमस्कार समर्पित है ।२१।

सुकृतं दुष्कृत चैव सर्व पश्यसिसर्वदा ।
सत्यदेव ! स्मस्तेऽस्तु ! प्रसीद मम भास्कर ।।२२
दिवाकर नमस्तेऽतु ! प्रभाकर नमऽस्तुते ।
एव सूर्य नमस्कृत्य सप्तकृत्वा प्रदक्षिणम् ।।२३
द्विजं गां काञ्चन स्पृष्ट्वा पश्चाच्च स्वगृहं व्रजेत् ।
आश्रमस्थांस्ततः पूज्य प्रतिमां चापि पूजयेत् ।।२४
पूर्वं भक्त्यैव गोविन्दं गृही च नियतात्मवान् ।
पूजयेद् भक्तितो राजन्नुभयत्र यथाविधि ।।२५
विशेषादपि वैशाखे योऽर्चयेन्मधुसूदनम् ।
सर्वं संवत्सरं यावदर्चितस्तेन माधवः ।।२६
माधवे मासि सम्प्राते मेषस्थे कर्मसाक्षिणि ।
केशवप्रीतये कुर्यात्केशवव्रतसञ्चयम् ।।२७
वैशाखं सकलं मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः ।
जपन्हविष्यं भुञ्जानः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।२८

हे सत्यदेव ! आप समस्त मानवों के पुण्य एवं पापों को सर्वदा देखते रहा करते हैं क्योंकि आपसे छिपाकर कोई कुछ भी कभी नहीं

कर सकता हूँ। आपके लिये नमस्कार है। हे भास्कर देव ! मुझ पर आप प्रसन्न होइये ।२२। हे दिवाकर ! हे प्रभाकर आपको प्रणाम हो। इस प्रकार से सूर्यदेव को नमस्कार करके फिर सात बार उनकी प्रदक्षिणा करे ।२२। इसके अनन्तर द्विज गौ और स्वर्ण का स्पर्श करके पीछे अपने घर को जावें। आश्रम में जो भी निवास करने वाले महान् भाव हों उन सबका अर्चन करे और प्रतिमा का पूजन करना चाहिये ।२४। सर्व प्रथम भक्ति भाव से ही गृही पुरुष को नियतात्मा होकर श्री गोविंद का पूजन करना चाहिये। हे राजन ! भक्ति से अर्चना करने पर दोनों लोकों में कल्याण होता है किन्तु विधि पूर्वक ही करे ।२५। विशेष रूप से वैसाख मास में जो मधुसूदन प्रभु का अर्चन किया करता है उसका इतना पुण्यफल होता है उसने एक मास में ही पूजन नहीं किया प्रत्युत पूरे वष उसने मधुसूदन का अर्चन कर लिया है ।२६। माधव मास के सम्प्राप्त होने पर जबकि कर्मों के साक्षी स्वरूप सूर्यदेव मेष राशि पर स्थित होते हैं उसी समय में भगवान केशव के लिये केशव के व्रत का सजय करना चाहिये ।२७। पूरे वैसाख मास में इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखकर नित्य स्नान करने वाला पुरुष हविष्य पदार्थों का आहार करके रहे और जाप करता रहे तो वह सभी प्रकार के पाप से मुक्त हो जाया करता है ।२८।

* पुरा कल्पीय रामायण *

संध्यावन्दनकर्म क्रियतामिति रामो मुनिमाचष्टायम् ।
उष्णद्युतिरत्यस्तमुपैति द्विजकुलमेतन्नीडमुपैति ॥१

सुखस्थितं नृपमभिवीक्ष्य स द्विजो वचस्तदा समुचितमाह शम्भुः। इह स्थितो भवि समस्तपूजितः कथं कथा नृपवर ! वर्तते गुहायाम् । आकर्ण्याथ रघूद्वहो द्विजवच- शुश्रूषुरासीत्कथां, तत्रस्थो निपुणं निवार्य वचन सर्वैः श्रुतं तत्क्षणात् । शुश्रूषामि कथं महाद्भुततमां [illegible] दिनीमथ

नृपः किंत्वेतदित्याह च ।२। कुम्भश्चौत्रवधः पुरा समजनि प्राप्तो दशास्यो वधं, पश्चादित्ययमन्यथा विरचितं रामायणं भाषते । कोऽयं विप्रवरः समस्तजनतानास्क्यसम्पादको, राज्ञां स्थानमुपेत्य वक्ति स मया दण्डयोऽथ पूज्योऽथ वा ।३। अथाह जाम्बवानमुं रघूत्तमं कथांप्रति रामायणं न तावकंत्विदं हि कल्पित मतम् ।४। समस्तमत्र विस्तराद्वदामि देव ! तच्छृणु पंकेरुहस्यसूनुतो मया श्रुतं पुरा ह्यभूत जाम्बवन्त विज्ञाप्य रामचन्द्रो वचनमाह ।५।

श्री सूतजी ने कहा श्रीराम ने अब सन्ध्यावन्दन कर्म करिये—वह वचन मुनिवर ने कहा था क्योंकि उष्णद्युति अर्थात् सूर्यदेव अस्तता को प्राप्त हो रहे हैं और पक्षियों का यह समुदाय अपने घोंसलों में जा रहा है ।१। उस ब्राह्मण ने सुख में संस्थित नृप को देखा था उस समय में समुचित वचन कहा था यहाँ पर स्थित हुए आप सभी के द्वारा पूजित हैं । हे नृपवर ! गुहा में कथा किस प्रकार की है-यह बताइए । इसके अनन्तर रघुवंश क उद्वहन करने वाले श्रीराम ने ब्राह्मण के वचनों का श्रवण किया था और कथा के सुनने की इच्छा रखने वाले थे । वहाँ पर स्थिति ने निपुणता से वचन का निवारण किया और तत्क्षण में सबने श्रवण किया था । अपनी आत्मा का आश्रय करने वाली कथा के महान अद्भुत होने से अन्यथा कैसे सुनने की इच्छा करूँ जो कि राक्षसों के वाधन को बताने वाली है । इसके पश्चात् राजा ने कहा था कि वह क्या है ।२। पहिले कुम्भकरण का वध हो गया था और दशास्य (रावण) भी वध को प्राप्त हो गया था किन्तु यह पश्चात् हुआ-ऐसा अन्यथा रचित रामायण को कहता है, यह कौन विप्रवर है जोकि समस्त जनता की नास्तिकता को प्रतिपादित करता है ? राजाओं का स्थान प्राप्त कर वह कहता है मेरे द्वारा दण्ड देने के योग्य है अथवा पूजा करने के योग्य है ।३। इसके अनन्तर इन श्री रघुत्तम भगवान से रामायण की कथा के प्रति जाम्बवान् ने कहा—यह आपका कल्पित मत नहीं है ।४। हे देव !

मैं यह सब विस्तारपूर्वक बतलाता हूँ। उसका श्रवण करियेगा। मैंने पगेरुह के पुत्र के मुख से पहिले ही सुना था। जाम्बवान् को विज्ञापित करके श्रीरामचन्द्र ने वचन कहा था।५।

कीर्तय तुराणं मे शुश्रुषुः कुतूहलादह प्रणीत तत्केन च विज्ञातम्। जाम्ववानथ बभाषे हि विधात्रे नमो नमस्तथैव विधु-भूषणकेशवाभ्याम्। अथ पुरातनं रामायणं कथयामि। यस्य श्रवणेनाखिलजन्मसम्पादितपापक्षयो जायते। अथ तथापि दश-रथ दशरथसमानरथो महीयसा बलेन सुमानसनामनगरजिगीषया पंकेरुहसुतसुतं वसिष्ठमाहूय नमस्कृत्य मुनिदत्तानुज्ञः शताक्षौहिणी-सेनया सहारुह्य तुरङ्गमं चन्द्रसमानशरीरमतिरोषसमाविष्टो विष्ट-रश्रवसमाराध्य दण्डयात्रां चकार। साध्योनाम स्वीयया सेनया-ऽऽवृतो, दशरथाभिमुखमाययौ योद्ध युद्धं चान्योयूम भूत् ॥६

भगवान श्रीराम बोले—मेरे सामने आप पुराण का कीर्तन करो। मुझे इसके विषय में हृदय से बड़ा भारी कुतूहल है अनएव मैं सुनने की इच्छा वाला हूँ-वह किसने रचना की है और किसने उसका ज्ञान प्राप्त किया है ? इसके अनन्तर जाम्बवान ने विधाता के लिए नमस्कार और उसी भाँति चन्द्रभूषण शिव एवं केशव के लिए नमस्कार किया था। इसके अनन्तर पुरातन रामायण को कहता हूँ जिसके श्रवण करने से सम्पूर्ण जीवन में किए हुए पापों का क्षय हो जाता है। इसके अनन्तर दशरथ के समान रथी बड़े भारी वल से सुमानस नाम वाले नगर को जीतने की इच्छा के पकेरुह सुत (ब्रह्मा) के सुत (पुत्र) वसिष्ठ मुनि को प्रणाम करके मुनि के द्वारा दी हुई आज्ञा को ग्रहण करने वाला वह नृप सौ अक्षौहिणी सेना के साथ अश्व पर समारूढ़ होकर अत्यन्त रोष में समाविष्ट होता हुआ चन्दन के तुल्य शरीर वाले भगवान विष्टरश्रवा की आराधना करके दण्डयात्रा की थी। साध्य नाम धारा अपनी सेना से समावृत होकर युद्ध करने के लिए दशरथ के सामने आया था और परस्पर में वह युद्ध हुआ था।६।

मासमेकं युद्धं कृत्वा दशरथस्तं साध्यं जग्राह। अथ साध्य-सूनुर्भूषणो नामाल्पपरिवारो युयुधे दशरथेन। दशरथोऽपिसाध्य-सूनुं भुवो भूषणमवलोक्य योद्ध मेव नैच्छत्। कथमेतादृश हन्मि चास्मिन्हतेऽस्य कथं पिता भविष्यति कथ पिता भविष्यति कथ तन्माता कथमप्रौढयौवना प्रियाभार्या। अमुष्य हि देहे समालिंग-नचुम्बनढ़रिवर्तननवीनतरदलारविन्दपदानि कुसुमानीव दृश्यन्ते। एतत्समानवर्णवया एतादृशः सुभगः परमप्रीतिवर्द्धनो नामपुत्रो भल्लकमक्षितो मृतः स्मृतिपथं प्राप्यापि माँ रक्षयितुमिच्छतीव मम हृदयमन्यथाकरोति इति ममसा वितर्क्यातिबालकं ग्रहीतु-मारतभत्। स चासाध्योऽपि पराधीनो वभूव। स च कुमारेण सह पराजयखेदममत्वा सुखमध्युवास च। दशरथोऽपि तत्र मासं स्थित्वा तत्पुत्रसन्दर्शनसुखमबलोक्या चिन्वतत्॥७

एक मास पर्यन्त युद्ध करके दशरथ ने उस साध्य को ग्रहण कर लिया था अर्थात पकड़ लिया था। इसके उपरान्त उस साध्य का पुत्र भूपण नामक था। उसका परिवार बहुत ही अल्प था। दशरथ ने भी साध्य के पुत्र भू के भूषण को देखकर उससे युद्ध करने की ही इच्छा नहीं की थी मैं ऐसे सुन्दर को कैसे मारूँगा और इसके मारे जाने पर इसके पिता कैसे रहेंगे, इसकी माता कैसे रहेगी और किस प्रकार से इसकी प्रिय भार्या रहेगी जिसने अभी यौवन की प्रौढ़ता भी प्राप्त नहीं की है, इसके शरीर में अच्छी तरह आलिगन-चुम्बन, परिवर्तन, अधिक नवीन दलारविन्द पर कुसुमों की तरह ही दिखलाई दे रहे हैं। इसी के समान वर्ण और अवस्था वाला ऐसा ही सुन्दर परम प्रीति की वृद्धि करने वाला (प्रीतिवर्द्धन) नाम वाला पुत्र भालू के द्वारा खाया हुआ मर गया था ऐसा स्मृति पथ में आकर भी मुझको उसकी रक्षा करने इच्छा करते हुए ही मेरा हृदय अन्यथा कर देता है—यह मन से वितर्क करके अति बालक को ग्रहण करने का आरम्भ किया था और वह असाध्य ही पराधीन हो गया था, और वह कुमार के साथ पराजय के

दुःख को न मान कर सुख से रहता था। दशरथ भी वहाँ एक मास रहकर उसके पुत्र के दर्शन करने के सुख का अवलोकन करके उसने मन में सोचा था।७।

अहो सर्वदुःखापनोदनक्षममेतन्मुखावलोकनं पुत्रसंवर्द्धनं नाम सर्वराष्ट्रिको मम जयः पुत्रवियोगमनुस्मरतो दुःखाय केवलं केवलं भवति। तदस्य पृच्छां करोमि कथमीदृशो जायते पुत्र इति वितर्क्य तमपृच्छत्। साध्योऽपि सकलमोक्षमार्गं क्षितीशायादिशत्। हरीशानौ सहाराध्य सर्वेकादशीरुपोष्य द्वादशीषु ब्राह्मणानाराध्य तत्तत्कालभवं फलपूर्वमन्नाद्यं व्यञ्जनं पुष्पं च न्यायेन सम्पाद्य कपिला घृतेन केशवं स्नापयित्वा मुद्गचूर्णेन सँलिप्य स्वादूदकेनस्नापयित्वा सुरभिप्राटीरं न्वयमुद्घृष्टं मृगनाभ्यागुरुसारेण वा समेतं देवाङ्गे सर्वमुपलिप्य सतुलसीदलयूथिकाकरवीरनीलोत्पलकमलकोकनदद्रोणकुसुममरुवदमनगिरिकर्णिकाकेतकीदलपूर्वैर्यथासम्भवमभ्यर्च्य द्वादशाक्षरेण पुरुषसूक्तेन वा नाम्ना षोडशोपचारेण वाऽऽराध्य प्रणम्य नृत्यं कृत्वा देवं क्षमापयेत्। तथा व्रतानि विचित्राणि नारायणप्रीणनाय कुर्यात्।८।

ओहो! समस्त प्रकार के दुःखों को दूर करने मे समर्थ पुत्र के मुख का अवलोकन करना होता है। पुत्र सवर्द्धन नाम सर्व राष्ट्रिक मेरा जय पुत्र वियोग का स्मरण करते हुए केवल दुःख के ही लिए होगा। सो इसकी पूछ-ताछ करता हूँ कि कैसे ऐसा पुत्र उत्पन्न होता है—ऐसा वितर्क करके उससे पूछा था। साध्य ने भी सम्पूर्ण मोक्ष का मार्ग राजा को समझा दिया था। हरि और ईशान दोनों को साथ २ आराधना करके समस्त एकादशियों का व्रतोपवास करके द्वादशी के दिन प्रथम ब्राह्मणों की आराधना करके उस-उस समय में होने वाले फलों के साथ-साथ अन्न आदि व्यञ्जन और पुष्प का न्याय पूर्वक सम्पादन करके कपिला गौ के घृत से केशव भगवान् का स्नपन कराके मूँग के चून से भली-भांति लेपन करके स्वादु युक्त जल से स्नान कराकर सुरभि प्राटीर (सुगन्धित चन्दन) जो स्वय अपने ही हाथ से घिसकर तैयार किया गया हो और कस्तूरी तथा अगुरु सार से युक्त हो उससे देवता के

सम्पूर्ण अङ्गों में लेपन करे। फिर तुलसी के दलों से और यूथिका-करवीर-नीलोत्पल-कमल-कोकनद-द्रोण कुसुम-मरुव-दमनक-गिरि कर्णिका-केतकी दल आदि के पुष्पों से जो भी सम्भव हो सके भगवान् की अभ्यंचना करनी चाहिए। फिर द्वादशाक्षर मन्त्र से अथवा पुरुष सूक्त से (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) यह द्वादशाक्षर मन्त्र है सोलह उपचारों के द्वारा (अर्घ्य-पाद-आचमन-स्नान-गन्ध-अक्षत-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य पुनराचमनीय प्रणाम-प्रदक्षिणा-दक्षिणा स्तवन-स्तोत्रपाठ) ये सभी षोडश उपचार होते हैं। पूजन करे। फिर प्रणाम करके नृत्य करे और देव से क्षमापान करना चाहिए तथा विचित्र व्रतों को भगवान् नारायण की प्रसन्नता के लिए करे।८।

प्रसन्नो भगवान्मुनिरीप्सित पुत्रं यच्छति यदमुमाराधयस्वेति दशरथमुक्तवान्। स चापि साध्यं तत्र स्थाप्य गत्वाऽयोध्यां तथा सर्वं कृतवान्। अथ पुत्रकामेष्टौ समाप्तायामाहवनीयाद्यज्ञमूर्तिः शंखचक्रगदापाणिरुदतिष्ठत्। राजानं च वरंवृणीष्वेत्युक्तवान्-स च राजा वव्रे पुत्रानतिधार्मिकान्दीर्घायुषश्चतुरो लोकोपकारकान्देहीति।

अथ राजमहिष्यश्चतस्रः कौशल्या सुमित्रा सुरूपा सुवेषा चेति। राजानमब्रुवन्देव प्रतियोषमेकैकेन पुत्रेण भवितव्यम्। एव यदि प्रसन्नो देवस्तदाऽयमुत्पद्यतां मम। गम यदिष्टं तदयं प्रार्थ्यसे हरिः। विष्णो! प्रसीद देवेश! कमलापते शंखचक्र-गदाधर! विभीषणं! सृष्टिसमस्तलोकपालादिपूजितपादयुगल! शाश्वत! हरे! नमस्ते एवं स्तुतो भगवानथ राजानमाह।९।

इस प्रकार के अभ्यर्चन करने पर भगवान् मुनि प्रसन्न होकर अपना अभीष्ट पुत्र प्रदान किया करते हैं सो तुम इनकी समाराधना करो—यह दशरथ से कहा था। उनने भी साध्य को वहीं पर स्थापित करके अयोध्या पहुँच कर उसी प्रकार से सभी कुछ किया था। इसके अनन्तर पुत्रकामेष्टि यज्ञ के समाप्त हो जाने पर आहवनीय अग्नि से

शंख-चक्र-गदा हाथों में धारण किये हुए भगवान् यज्ञ मूर्ति उठकर

खड़े हुए थे। उन्होंने उठकर राजा से कहा था—'वर की याचना कर लो' और उस राजा ने अत्यन्त धार्मिक दीर्घ आयु वाले चार पुत्रों के प्राप्त होने का वरदान माँगा था। इसके अनन्तर राजा दशरथ के चार रानियाँ थीं। उनके नाम कौशल्या, सुमित्रा, सुरूपा और सुवेषा ये थे। उन्होंने राजा से प्रार्थना की थी कि प्रत्येक पत्नि में एक-एक पुत्र ही होना चाहिए। कौशल्या ने कहा—यह देव यदि प्रसन्न हैं तो मैं यही चाहती हूँ कि यह देव स्वयं ही मुझ में समुत्पन्न होवें। राजा ने कहा—मुझे जो भी इष्ट है वह इन हरि से प्रार्थना की जाती है। हे विष्णो! आप तो देवगण के भी ईश हैं, मुझ पर प्रसन्न होइये। हे कमला के पतिदेव! हे शंख, चक्र, गदा के धारण करने वाले! हे विभीषण! आप तो समस्त सृष्टि तथा लोकपाल आदि से पूजित चरण युगल वाले हैं। हे शाश्वत! हे हरे। आपको नमस्कार है—नमस्कार है—इस प्रकार से स्तुति किए हुए भगवान् राजा से बोले—।६।

तव पुत्रो भविष्यामि कौशल्यायाम्। अथ चरुं प्राविशद्धरिः। तं चरुं हि चतुर्धा विभज्य भार्याभ्यो दत्तवान्। अथ कौशल्यायां रामो लक्ष्मणः सुमित्रायां सुरूपायां भरतः सुवेषायां शत्रुघ्नो जज्ञे। खात्पुष्पवृष्टिश्च पपात।

अथ चतुराननः स्वयमुपेत्य जातकर्मादिकाः क्रियाश्चक्रे। त्रिभुवनाभिरामतया राम इति नाम चक्रे रूपशौर्यादिलक्ष्मीयोग्यतया लक्ष्मण इत्यपरस्य भवं भारात्तारयतीति भरतः शत्रुन्हन्तीति शत्रुघ्न इति नामानि कृत्वा ब्रह्मा स्वभवनं जगाम। शिशवश्च वृद्धिमीयुः।१०।

भगवान् माधव ने कहा—मैं तुम्हारा पुत्र कौशल्या में जन्म ग्रहण करके होऊँगा। इसके अनन्तर भगवान् हरि ने चरु में प्रवेश किया था। उस चरु के चार भाग करके एक-एक भाग चारों भार्याओं को दे दिया गया था। इसके अन्तर कौशल्या में राम, सुमित्रा में लक्ष्मण, सुरूपा में भरत और सुवेषा में शत्रुघ्न ने जन्म ग्रहण किया था। उस समय में जब इन चारों पुत्रों का जन्म हुआ था आकाश से देवांगनाओं के

द्वारा पुष्पों की वृष्टि गिरी थी । इसके उपरान्त चतुरानन ब्रह्माजी ने स्वयं वहाँ आकर उन बालकों की जात कर्म आदि संस्कारों की क्रिया सम्पन्न की थी । तीनों भुवनों में अत्यन्त (अभिराम) सुन्दर होने के कारण इनका (राम)–यह नाम रक्खा गया, (लक्ष्मण)–यह शुभ अन्वर्थ नाम रक्खा था। भूमण्डल का भार उतारने के कारण 'भारात् तारयति' इस व्यूत्पत्ति से (भरत)—यह सुनाम रखा था। शत्रुओं का हनन करने वाले होने के कारण 'शत्रुघ्न'–नाम रक्खा गया । इस तरह से चारों बालकों के ये चार घटितार्थ नाम रखकर ब्रह्मा जी अपने भवन को वापिस चले गये थे। वे चारों बालक शनैःशनैः बड़े होने लग गये थे।१०।

अथ कदाचित् क्रीडमाने रामे वात्यावाममपात यद्रामश्च रुदन्नपतत् । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मराक्षसोराममगृह्णात् । रामश्च मूर्छामाप । अथ सहचरो बाल इतस्ततो रोरूयमाणो रामं तथाविधं राज्ञे व्यज्ञापयत्। अथ राजा राममादाय वशिष्ठमाह किमिदं रामस्येति । अथ वसिष्ठो भस्मादायाभिमन्त्र्य ब्रह्मराक्षसं मोचयामास । पप्रच्छ कोभवानिति स चाहाहं वेदगर्वितो ब्राह्मणो बहूशः परधनमपहृत्य ब्रह्मराक्षसो जातो मे निष्कृतिं विचारय ।११।

किसी समय में राम खेल रहे थे उस समय बालकों ने राम को गिरा दिया था और श्रीराम रुदन करते हुए गिर पड़े थे। इसी बीच में एक ब्रह्मराक्षस ने श्रीराम को पकड़ लिया था और श्रीराम मूर्छा प्राप्त हो गये थे। इसके अन्तर साथ में रह कर क्रीड़ा करने वाला एक बालक इधर-उधर रोरूयमान होता हुआ उस दशा में स्थित श्री राम को देखकर उसने राजा से जाकर यह समाचार बताया था । इसके पश्चात राजा ने श्रीराम को ले जाकर वसिष्ठ मुनि ने भस्म लेकर उसे अभिमन्त्रित किया और उस ब्रह्मराक्षस को छुड़ा दिया था। फिर उससे पूछा था कि आप कौन हैं ? इस प्रश्न पर उसने उत्तर दिया था कि मैं वेद गर्वित ब्राह्मण था, मैंने बहुत सारे पराये

धन का अपहरण किया था और फिर मैं इसी महा पाप कर्म के कारण अब ब्रह्म राक्षस हो गया हूँ । अब आप मेरे उद्धार को कोई उपाय विचारिये ।११।

अथ रामं प्राप्ते काले उपनीय वसिष्ठो वेदानध्यापयामास षडङ्गानि मीमाँसाद्वयं नीतिशास्त्रं च । अथ धनुर्वेदमायुर्वेदं भरतगान्धर्ववास्तुशाकुनविविधयुद्धशस्त्राणि च । अथ विवाहं कर्तुकामेन राज्ञा दशरथेन नानादेशजनपतीन्प्रतिदूताः प्रेरिताः । अथ कश्चिच्छीघ्रमागत्य राजानमिदमब्रवीत् । राजन्विदर्भदेशाधिपतिर्विदेहो नाम राजा । तस्य पुत्री वैदेही होमलब्धा रूपेण लक्ष्मीसमा सर्वलक्षणसम्पन्ना रामयोग्या विद्यते । स च ताँ दातुं राजा रामायोद्यतः । तद्गम्यतां शीघ्रमिति । अथ वसिष्ठादीन्प्रेषयामास । ते च तत्र गत्वा तां च निरीक्ष्य लग्नं निश्चित्यायोध्यामेत्य राजा (राजान) मुक्त्वा रामहिताः पृथिवीपति समेताः शीघ्रं विविधकरितुरगशकटशिबिकान्दोलिकाभिः ।१२।

इसके अनन्तर—जब समुचित समय उपस्थित हो गया तो वसिष्ठ मुनि ने श्रीराम का उपनयन संस्कार कर दिया था और समस्त वेदों का अध्यापन भी करा दिया था । वेदों के ज्योतिष-निरुक्त आदि जो छैः अङ्ग शास्त्र हैं उनका और पूर्वोत्तर दोनों प्रकार के मीमाँस दर्शन तथा नीति शास्त्र भी पढ़ा दिये थे धनुर्वेद-आयुर्वेद भरत गन्धर्व (सगीत) शास्त्र वास्तु शास्त्र-शकुन शास्त्र और अनेक प्रकार के युद्ध करने के शास्त्रों को भी पढ़ा दिया था । इसके अनन्तर जबकि श्रीराम सकल शास्त्रों में पूर्ण निष्णात हो गये थे तब राजा की इच्छा हुई थी कि श्रीराम का विवाह भी कर दिया जावे तो राजा दशरथ ने बहुत से देशों में राजाओं के पास अपने दूतों को प्रेषित किया था । इसके पश्चात् किसी एक दूत ने बहुत ही शीघ्र आकर राजा से यह कह दिया था कि हे राजन् ! विदर्भ देश का स्वामी एक विदेह का नृप है । उसकी एक पुत्री है जो होम में उसे प्राप्त हुई थी । वह कन्या रूप-लावण्य में अत्यन्त ही सुन्दरी तथा लक्ष्मी के ही तुल्य है । समस्त

सुलक्षणों से सम्पन्न हैं और श्रीराम की पत्नि होने के योग्य है। और वह राजा भी उस अपनी पुत्री को श्रीराम को देने के लिए तैयार हो गया है सो अब बहुत ही शीघ्र वहाँ गमन करिये। इसके पश्चात् राजा ने वसिष्ठ आदि मुनि गणों को वहाँ पर प्रेषित किया था। उन्होंने वहाँ जाकर उस राजा की पुत्री को देखा था और लग्न निश्चित करके अयोध्या में वापिस आकर राजा से समस्त वृत्तान्त सुना कर श्री राम के सहित पृथिवी पति को साथ लेकर विविध साधनों द्वारा वहाँ पर चल दिये थे।१२।

तदानीं मगङ्गतूर्यघोषा देवदुन्दुभिभेरीनिसाणमर्दलशंखादिनादाप्रादुर्बभूवुः। गायकाश्च मङ्गलानि जगुः।। मङ्गलवेदवाक्यानुपाठेन वैदिका ब्राह्मणाः कुलपाठका भेरीघोषेण च कृत्स्नमाकाशमापूरयन्।। अथान्योन्याक्षतपूर्वमङ्गीकुर्वन्तः सूतबन्दिजनादिभिः स्तूयमानाः पुरं प्रविविशुः।। विदेहनगरात्पश्चिमभागे निर्मितं मन्दिरं दशरथः प्रविवेश। अवशिष्टाश्च यथा योग्यं भवनं विविशुः।

अथ नारदो मिथिलां तदानीमेवागच्छत्। विदेहोऽपि देवर्षिमभिपूज्य स्वागतं पृष्ट्वा भोजनं कारयित्वा सुखासीनाय मुनये सघनसार ताम्बूलं दत्वा व्यज्ञापयत्। श्वो विवाहे भवान्स्थातु महांत कारयिन्तुं विवाहम्।१२।

उस समय में मंगल तूर्यों की ध्वनि हो रही थी। देवगण की दुन्दुभि, भेरी, निसाण, मर्दल और शखों की ध्वनियाँ प्रादुर्भूत हो गई थीं। गायक गण मंगल गान करने लगे। वैदिक ब्राह्मण मंगल वेद वाक्यों का पाठ कर रहे थे। कुल पाठक लोग भेरी के घोष (ध्वनि) से सम्पूर्ण आकाश मण्डल को पूरित कर रहे थे इसके अनन्तर अन्योन्य परस्पर में अक्षत पूर्वक अङ्गीकार करते हुए सूत-वन्दीजन आदि के द्वारा स्तूयमान होते हुए सब लोगों ने उस राजा के नगर में प्रवेश किया था। विदेह नगर से पश्चिम दिशा की ओर भाग में निर्माण किया हुआ एक मन्दिर था उसमें महाराज दशरथ ने प्रवेश किया था। शेष

अन्य समस्त वर यात्री गण ने जो जिस प्रकार का था उसी के अनुसार भवनों में प्रवेश कर सस्थिति की थी। इसके उपरान्त यह हुआ कि जैसे ही यह वर यात्रा आयी उसी समय में वहाँ देवर्षि नारद भी आ गये थे। राजा विदेह ने देवर्षि नारदजी का अभिपूजन करके स्वागत प्रश्न करके उन्हें भोजन कराया था। फिर सुख पूर्वक आसन पर बिठाकर मुनिवर के लिये घनसार (कर्पूर) से समन्वित ताम्बूल समर्पित करके विज्ञापन किया था। कल मेरी पुत्री का विवाह होगा आप कृपा कर जब यहाँ पधारे हैं तो कल तक अपनी स्थिति आप रखने के योग्य हैं और इस विवाह को करा दीजिए।१३।

श्वो हि नक्षत्रं सूर्यं नक्षत्रदर्शनं मम विवाहो न कर्तव्यं इति। श्रीमन्ममकन्या वैदेही रामाय दित्सिमा स्वयंवरे कुलरूपबलोत्साहसम्पन्नानेकभूपराक्षसविप्रादिसर्वप्राणिसमागमे रामाधिकबलो यदि तामग्रहीष्यत्तदावचनमनृतं मम पापं च भविष्यति।

प्रत्युत दशरथोऽपि सर्वानेवागतान्विजेतुमल क्षत्रकदनश्च रामो यद्यायास्यति तर्हि मम सुतां किं करिष्यति वा किं किं वा प्रेषयिष्यति कीदृशं करयिष्यति मम किंवाकरिष्यतिसर्वथा हि प्रभूतबलवाहनो नरपतिरशेषमपि त्रिभुवनं हन्यात्। किमुतमामल्पसत्त्वं किमुतबहुना भवानेव शरणं ममोपायं वद यथा विवाहे श्च यो भविष्यति रामश्च जामाता भविष्यति। शम्भुरपि तथा करोमीत्युवाच। राम एव नाथः सीताया भविष्यति। राम च कृत्वा स्वस्त्ययनं च करिष्यामि गृहाणाजगवं धनुरिदम्।१४।

राजा ने कहा—हे श्रीमन्! मेरी कन्या वैदेही राम को दे की इच्छा वाली है और स्वयम्वर में तो कुल, रूप, बल, और उत्साह से सम्पन्न अनेक नृप राक्षस और विप्र आदि सभी प्राणियों का समागम होगा। उसमें यदि राम से भी कोई अधिक बलशाली हुआ और मेरी कन्या को उसने ग्रहण कर लिया तो फिर मेरा यह दिया वचन मिथ्या हो जायगा और मुझे बड़ा भारी पाप लगेगा। प्रत्युत दशरथ भी समस्त आये हुए लोगों को जीत लेने के लिए पर्याप्त हैं और

क्षत्रियों के संहार करने वाले श्रीराम भी हैं यदि आजायेंगे तो फिर वे मेरी पुत्री का क्या करेंगे अथवा क्या भेजेंगे—कैसा करायेंगे अथवा मेरा क्या करेंगे। सर्वथा अधिक बल और वाहन वाला राजा अशेष त्रिभुवन को भी मार गिरायेगा। मेरे जैसे थोड़े से बल वाले की क्या बात है। अधिक कहने से क्या लाभ है। अब तो आप ही हे शंकर देव ! मेरे शरण हैं। मुझे आप कोई उपाय बतलाइए जिस प्रकार से इस विवाह में कल्याण हो और मेरे राम ही जामाता होवें। भगवान् शंकर ने विदेह के इस अभीष्ट का श्रवण कर रहा था कि मैं ऐसा ही करता हूँ। जैसा तुम चाहते हो वह श्रीरामचन्द्र ही सीता देवी के स्वामी होंगे। और श्रीराम को स्वस्ति करके आज मैं उपाय करूँगा। आज इस अजगव धनुष को ग्रहण कीजिए।१४।

किमेतेनाजगवेन धनुषा स्वयंवरे सीता रामं प्रापय। इदं धनुरसज्यं मे यस्तु सज्यं करिष्यति। यस्मै देया मया सीताप्रतिज्ञामेवमाचर। इत्येवमुक्त्वा भगवान्गणैरन्तदधे हरः। अथादातुं धनू राजा न शशाकातियत्नतः॥ अथोज्ज्वलं शतसहस्रगजबलंसताहूय गृहणेत्युवाच। स चापि मातुलं नत्वाट्टऽहासं कृत्वोत्प्लुत्य धनुर्द्वाभ्याँ कराभ्यामुद्दधार जानुपर्यन्तंन्मातुलो मारीचः श्रुत्वाएकाकी विप्रवेषं कृत्वा विदेहमयाचत। वैश्वादेवान्ते प्राप्तमतिथिं मामवेहि।१५।

राजा ने कहा—इस अजगव धनुष से क्या होगा। स्वयम्वर में सीता को श्रीराम को प्राप्त कराए। भगवान् शंकर ने कहा—यह मेरा धनुष असज्य है। इस धनुष को जो भी कोई सज्य कर देगा। उसी को मैं अपनी पुत्री जानकी को प्रदान करूँगा। इस प्रकार की तुम प्रतिज्ञा करो। इतना कह कर भगवान् शंकर तो वहीं पर अपने गणों के साथ अन्तर्हित हो गये थे। इसके पश्चात् राजा ने बहुत कुछ यत्न किया था किन्तु उस धनुष को ग्रहण करने में समर्थ न हो सका। इसके उपरान्त उज्वल शत सहस्र हाथियों का बल का समाह्वान करके इस धनुष को ग्रहण करो—यह राजा ने आज्ञा प्रदान की थी। और वह

भी मातुल को प्रणाम करके अट्टहास करके उछलकर दोनों हाथों से धनुष को ग्रहण करके जानुपर्यन्त उसे ऊपर उठा लिया था। मातुल मारीच सुनकर एकाकी विप्र का वेष धारण कर वहाँ आया और विदेह से उसने याचना की थी। वैश्वदेवान्त में प्राप्त अतिथि मुझको जानो।१५।

स्वागतं भो इदं ब्रह्मन्नासन तत्र निषीदेति। स चातिथिस्तथेत्युक्त्वा निषसाद ॥ अथ राजा जलमादाय पादौ प्रक्षाल्य गन्धपुष्पाक्षतैरभ्यर्च्य महाऽन्नं तस्मै निवेद्य भोजनाय प्रार्थयामास। स चापि तदन्न षड्रसोपेत सौवर्णभाजनगतमीक्षमाण इवेतस्ततो विलोकयामास ॥ तस्मिन्नेवावसरे सीता पद्मकिञ्जल्कप्रभेषदरुणवसनं बिभ्रती नील कुटिलकुन्तलैश्चलभ्दिः यूनां मनांस्याकर्षयद्भिः प्रेक्षमाणादष्टिभग्नकलैरिव स्त्रीणां चित्तमीदृशमिति दर्शयद्भिरिवोपशोभितललाटानङ्गचापसुभ्रू पद्मपत्रारुणविलोचना तिलप्रसून नासा मृदुस्निग्धरोमशकपोलानन्तरारक्तोष्ठा रक्तासनमाणिक्यनिभदाडिमीदशना जपाकुसुमारुणाधरातिशोभितचिबुका शुक्तिकर्णा समदीर्घकण्ठाऽतितांसलवक्षाः पीनोद्भिन्नकुचकुड्मलानेकहारोपशोभिता सुभगाकारनतिमांसलबाहुलता मुग्धायतसमानाङ्गुलिशिखापद्मारुणपल्लवा विविधवहुरत्नाङ्गुलिभूषणा मुष्टिग्राह्यमध्या सुरोमराजि गम्भीरनाभिः पृथुजघना करिकरोरूस्तूणीरजंघा सुहादसमला नूपुरादिपादविभूषणा पादाङ्गुलीभूषिता विकसितसौगन्धिदकं विधती भुञ्जानमारीचस पुरतश्चागता वीक्ष्यासावचिन्तयदेनाँ कथमपहरामि कथमालिङ्गामिकथमन्यत्किञ्चित्करोमीत्येवमवसरमलभमानस्तूष्णीमेव विनिर्गतः।१६।

राजा ने कहा—हे ब्रह्मन्! आपका स्वागत है। यह आपके लिए आसन है। इस पर आप विराजमान होइये वह अतिथि है ऐसा कहकर उसने राजा का कथन स्वीकार किया था और आसन पर स्थित हो गया था। इसके उपरान्त राजा ने जल लाकर उसके चरणों का प्रक्षा-

लन किया था और गन्धाक्षत पुष्प आदि से उसकी अर्चना करके उसकी सेवा में महाजन को निवेदन कर राजा ने भोजन करने के लिए उससे प्रार्थना की थी। उसने भी षड्‌रस से सम्पन्न उस अन्न को सुवर्ण के पात्र में रक्खा हुआ देखकर इधर-उधर देखा था। उसी समय में सीता देवी पद्म के किंजल्क की प्रभा के समान थोड़ा अरुण वर्ण का वस्त्र धारण किये हुए वहाँ पर आई थी। नीले वर्ण के चञ्चल कुन्तलों के द्वारा युवकों के मन को हरण करने वाले केश थे। प्रेंक्षमाण दृष्टि के भङ्ग की कला के द्वारा यह प्रकट किया जा रहा था कि स्त्रियों के चित्त की दशा भी इसी प्रकार की हुआ करती है। जिस सीता देवी के पर शोभा से युक्त ललाट पर भृकुटियां ऐसी प्रतीत हो रहीं थीं मानो ये कामदेव के धनुष हैं। पद्म पत्र के समान अरुण लोचन वाली थी। जानकी देवी की नासिका तिल के पुष्प के समान सुन्दर थी। मृदु और स्निग्ध रोम वाले कपोलों के अनन्तर थोड़ी रक्तता वाले जिस देवी के ओष्ठ थे। रक्त वर्ण के आसन पर माणिक्य के सदृश दाड़िम (अनारदाना) के समान दर्शन वाली थी। जपा के पुष्प के तुल्य अरुण वर्ण के अधरों में अत्यन्त शोभा वाली जानकी की चिबुक थी। सीता देवी के कान शुक्ति के सदृश थे। वह देवी समान और दीर्घ कण्ठ वाली थी। अत्यन्त माँसल वक्षः स्थल वाली थी। वह देवी पीन एवं उन्नत उड़मल के सदृश स्तनों वाली थी। अनेक हारों से परम शोभा से युक्त थी। सुभग आकार और नीति से युक्त माँसल (माँस युक्त) वाहुलता वाली थी। अत्यन्त सुन्दर-आयत एवं समान अगुली रूपिणी शिखाओं से समन्वित पद्म के अरुण पल्लव संयुक्त थी अर्थात् कर कमल के सदृश हैं और अँगुलियाँ उसकी शिखाओं के समान प्रतीत हो रही थीं। जानकी देवी अनेक प्रकार के वहुत से रत्नों से युक्त अँगुलि से भूषणों से समन्वित थीं। जानकी देवी का मध्यभाग अर्थात् कटि इतनी कृश थी जो मुष्टि से ही ग्राह्य हो सकती थी। वह सुन्दर शोभावली से समन्वित गम्भीर नाभि से भूषित थीं। पृथु अर्थात् परिपुष्ट जघनों से युक्त थीं। हाथी की सूँड के सदृश ऊरुओं वाली थी। तूणीर के समान जघनों वाली थी, कमल के तुल्य चरणों से

शोभित थीं जिस देवी ने नूपुर आदि चरणों के भूषण धारण कर रक्खे थे। और पादाँगुलियों से भूषित चरणों वाली थीं। विकसित पुष्प के समान सुगन्ध को फैलाती हुई वह जानकी देवी भोजन करते हुए मारीच के आगे आ गई थीं। उसने ऐसी अनुपम सौन्दर्य सम्पन्न जानकी के रूप लावण्य को देखकर मन में सोचा था मैं इसका किस प्रकार से अपहरण करूँ। मैं इसके साथ कैसे आलिंगन करूँ! और क्या कुछ करूँ—यही मन में सोचकर अवसर न प्राप्त करता हुआ वहाँ से चुपचाप ही निकल गया था। तात्पर्य यह कि मारीच जो विप्र के वेष में था जानकी के सौन्दर्य से विमुग्ध हो गया था।१६।

अथ देवा धनुः सज्जीकरणाय यतमाना अहम्पूर्विकया विद्यमाना अन्योन्यतिरस्कारेण महेन्द्रः प्राप धनुरुत्तमं प्रान्तद्वयात्परं नावनमयितुं शशाक। अथ सूर्यो धनुरादाय नमयन्नेव निपपात। वासुर्दलवतां श्रेष्ठो जग्राहाजगवमथ स्वेनेव करेणोत्कर्षयन्नधः पपात धनुश्च वायोरुपरि पपात अहसस्तदा सर्वे। एतस्मिन्नन्तरे तुरगवरमारुह्य वाणासुरः सहस्रवाहुरनेकानेकशिरोभिर्दैत्यैः परिवृतः प्रह्लादसमेतो विदेहपुरीमाजगाम। अथ स्वविभूषणोद्भासितां दिशं कुर्वन्स्वतेजसाऽपयशसो देवताः कुर्वन्नानाविधिगीतं शृण्वद्व्यङ्गुलमात्रेण शक्तो विरराम। प्रह्लादो बलिश्चैव धावातेऽथ विरेमतुः। अथ राक्षसेषु तूष्णीभूतेषु राजानोऽतिबलिनः समागता ज्याबन्धाशक्ता अपसृत्य तस्थुः।१७।

इसके अनन्तर देवगण धनुष को सज्जी करण के लिये वहाँ पर विद्यमान् हुए थे। मैं पहिले इसे सज्जीकृत करूँगा, मैं तुमसे भी पहिले सज्जय करूँगा-- इस प्रकार की अहम्पूर्विका संयुत होते हुए सब देववृन्द आपस में एक दूसरे का तिरस्कार करते हुए वहाँ उपस्थित हुए थे। इसी बीच में महेन्द्र भी आ पहुँचे थे। महेन्द्र ने प्रयत्न किया था कि उस धनुष को सज्जय करे किन्तु वह उस उत्तम धनुष को प्रान्त द्वय से आये न झुका सके थे। इसके अनन्तर सूर्य्य ने धनुष को लेकर

नमित कर ही रहे थे कि स्वयं ही गिर गये थे। समस्त बलवानों में परम श्रेष्ठ वायु देव ने उस अजगव धनुष को अपने ही कर से खींचते हुए ही नीचे गिर पड़े थे और वह धनुष वायु देवता के ऊपर गिर गया था और सभी उस समय में हँस पड़े थे। इसी बीच में बहुत ही श्रेष्ठ अश्व पर समारूढ़ होकर बाणासुर तथा सहस्रबाहु अनेकानेक प्रमुख दैत्यों के साथ परिवृत्त होकर प्रहलाद के सहित वहाँ विदेह पुरी में आ गये थे। इसके पश्चात् अपने आभरणों से दिशाओं को उद्भासित करते हुए और अपने तेज से देवगण को अपयश वाले करते हुए अनेक प्रकार के गीतों को सुनाते हुए केवल दो अगुल भर उसे करके खामोश होगये थे। प्रहलाद और बलि भी दौड़े थे इसके पश्चात् वे भी रुक गये थे। इसके अनन्तर जब समस्त राक्षस खामोश होकर बैठ गये थे तो अत्यन्त बली राजा लोग वहाँ आये किन्तु वे सभी ज्याबन्ध करने में असमर्थ होकर अलग हट कर स्थित हो गये थे।१७।

अथ विश्वामित्रो धनुरादाय एकाङ्गुलापर्यन्तं सज्य कृत्वा विरराम। अथ दिनमात्रे धनुषि तूष्णींभूतेषु राघवः सहानुजैरागत्य धनुर्निरीक्ष्यास्पृशत्। अथ राजकुमाराः शतशः समागताः। सर्वाभरणभूषितो धनुर्दृष्ट्वा पस्पृशुर्नचालनक्षमाः। अथ दाशरथिप्रमुखाः कुमाराः समागताः। अथ वेत्रझर्झरपाणयः समागमन्सर्वानिवापसारयामासुः। अथ रामो लक्ष्मणहस्तं गृहीत्वा सर्वाभरणभूषितो धनुरासाद्य स्पृष्ट्वा नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य धनुरादायोद्दधार। तदादानसमये सव एवैत्य सहासमूचुः। अत्र भग्ना महारथा इति। अथ स रामो धनुर्ज्यास्थानमवनमय्य धनुषि जानु कृत्वा सज्यमेककरेणोत्पादयन्कोटयामनामयत्। अथ सज्जीकृतं दृष्ट्वा सर्व एव नासाग्रन्यस्ताङ्गुलयोऽभवन्। रामोऽपोज्यामन्वनादयत्। तेन नादेन सर्वेषां मनांसि क्षुभितान्यासन्। रामेण सज्जितं धनुरिति सर्वत्र वादः सञ्जातः। जनकोऽपि तां रामाय ददौ राजभिश्च युद्धं कृत्वा तान्निजित्य एव-

पुरीमागात् । अथैकदा दशरथो रामं यौवराज्येभिषिच्य सुखी बभूव सर्वप्रजारञ्जनाच्च रामो राजानुमत इति सर्वप्रजावादी-ऽभूत ।१८।

इसके अनन्तर ब्राह्मण आये । विश्वामित्र ऋषि ने धनुष को लेकर एक अंगुल पर्य्यन्त ही उसे सज्य किया था और विरत होकर बैठ गये थे । अन्य विप्रगण भी निवृत्त होकर रह गये थे । इसके अनन्तर दिन मात्र धनुष में सबको तूष्णीभूत हो जाने पर अर्थात् सज्जय करने में असमर्थ होकर चुप होने पर श्री राघव ने अपने भाइयों के सहित वहाँ पर आकर उस धनुष को देखकर उसका स्पर्श किया था और उसके चालन में समर्थ नहीं हुए थे । इसके अनन्तर दाशरथि प्रमुख कुमार वहाँ आये थे । इसके उपरान्त हाथों में वेत्र और झर्झर लेकर वे वहाँ आ गये थे और उन्होंने सभी को वहाँ से हटा दिया था । इसके अनन्तर श्रीराम ने लक्ष्मण के हाथ को ग्रहण करके समस्त भूषणों से विभूषित होते हुए उस अजगव धनुष को उठाकर-स्पर्श करके झुकाकर प्रदक्षिणा करके फिर धनुष को लेकर ऊपर उठा लिया था । उसके आदान के समय में सभी वहाँ आकर एक साथ कहने लगे थे कि—यहाँ पर महा-रथ लोग भग्न हो गये हैं । अर्थात् बड़े २ वीर गण परास्त हो गये हैं । इसके अनन्तर उन श्रीराम के धनुष के ज्यास्थान को झुकाकर धनुष में जानु करके एक ही हाथ से सज्य करते हुए कोठी में उसे नमित कर दिया था । इसके पश्चात् धनुष को सज्जीकृत देखकर सब ही आश्चर्य से अपनी २ नाक पर अँगुली धरने वाले हो गये थे । श्रीराम ने भी धनुष की ज्या को टंकारित कर दिया था फिर जनक ने पुत्री श्रीराम को दे दी—राजाओं से युद्ध में विजय पाकर अपनी पुरी में आ गये । राजा ने श्रीराम को युवराज बनाना चाहा था ।१८।

अथ केकयदेशाधिपतितनया सुवेषा रामं राजानमसहमाना राजानमुवाच मम वरदानावसर इति राजा चिन्तयत्किंदेयमि-ति चतुर्दशवर्षाणि रामो वनं विशतु पालयतु राज्यं भरतः । राजाऽनृतवचन ! दोषभयात्कथं कथमपि स्वीचकार । अथ

वसिष्ठं भावितयाऽवोचत रामो वनाय निर्गच्छति अस्य किं वा भवेदिति विचार्यं शुभाशुभं ब्रूहि । वसिष्ठो विचार्य राजानमुवाच । गत्वा वनं निखिलदानववीरहन्ता शम्भोरनेकविधिपूजनमातनोति । सीतावियोगरुषितः कपिसेनया च तीर्त्वोदधिं दशमुखं च निहन्ति रामः । आगम्य राज्यं रघुनन्दनोऽपि बहूनि वर्षाणि समातनोति । प्रशस्तकीर्तिर्निखिलेऽपि लोके शर्वेण देवेन चिरं न्यवात्सीत् । सुपुत्रयुक्तो बहुतज्ञयाजी परिवृढः सर्वगुणादिकश्च ।

इसके अनन्तर केकय देश के अधिपति की तनया सुवेषा श्रीराम को राजा होते हुए न सहन कर राजा दशरथ से कहने लगी थी कि यही मेरे वरदान देने का अवसर है राजा ने सोचा क्या देना है देवी ने कहा—चौदह वर्ष तक श्री राम वन में प्रवेश करें और भरत राज्य का पालन करे । सत्य वचन बोलने वाला राजा था दोष के भय से राजा ने किसी प्रकार से उसे स्वीकार किया था । इसके उपरान्त राजा भाविता के कारण वसिष्ठ मुनि से बोले कि श्रीराम वन को निकल कर जा रहे हैं । इसका शुभाशुभ क्या होगा—यह विचार कर बतलाइए । वसिष्ठ मुनि ने अच्छो तरह विचार कर हर्ष के सहित राजा से कहा था । वसिष्ठ मुनि बोले—श्रीराम वन में जाकर सम्पूर्ण दानव वीरों का हनन करेंगे और भगवान् शम्भु की विविध प्रकार की अर्चना का विस्तार भी करेंगे । सीता के साथ वियोग होगा और उसके क्रोध से परिपूर्ण होकर वानरों की सेना के साथ सागर को पार करेंगे तथा फिर युद्ध में दशमुख का हनन करेंगे । इस सब घटना के गठित हो जाने के पश्चात् श्रीरघुनन्दन राज्य में आकर बहुत अधिक वर्षों तक यहाँ शासन करेंगे । लोक में बड़ी भारी कीर्त्ति का प्रसार होगा और शर्व देव के साथ चिरकाल तक निवास करेंगे । अपने अच्छे पुत्रों से युक्त होकर बहुत यज्ञों का यजन करेंगे और सब प्रकार गुण गण से परिवृढ होंग ।१६।

इति वसिष्ठवचनं श्रुत्वा दशरथो रामगुणाननुस्मरन्नित्युवाच श्रेयो मे मरणं रामस्य निर्गमनं इति । अथ रामो मातरं पितरं

गुरुं च वसिष्ठं पितृपत्नीर्नमस्कृत्य वनाय जगाम। अथोपवने दिनमेकं स्थित्वा जटाः कारयित्वा वल्कलं वासो धृत्वै कोपवीतीकृतदन्तशुद्धि रेकेनापवीतेन जटा बद्ध्वा भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो-भसितनिष्ठुर कायोमुक्ताफलदाममणिव्यत्यस्तरुद्राक्षमालामुरसि-दधानोऽल्पभूषणाधिभूषितसीतास हायो लक्ष्मणानुचारो विवेश वनान्तरम्। अथानेकराक्षसांस्तस्मिन्निजघान भवानिव निखिलं चकार सीतापहरणादिनिखिलमपि भवतो यथा तथांऽस्याथ सुग्रीवाश्रममृष्यमूकपर्वतं रामो जगाम निबिडच्छायं चूतवृक्ष-मासाद्य लक्ष्मणसहायः परिश्रयमकल्पयत् ।२०।

इस तरह से वसिष्ठ मुनि के वचनों का श्रवण कर महाराज दशरथ श्रीराम के गुणों का स्मरण करते हुए कहने लगे—यदि ऐसा है तो मेरा मरण और श्री राम का वन गमन कल्याण करने वाला ही है इसके उपरान्त श्रीराम माता पिता-गुरु वसिष्ठ और पितृ पत्नियों को प्रणाम करके वन को चले गये थे। इसके उपरान्त उपवन में एक दिन निवास करके जटाओं की रचना करके वल्कल वसन धारण कर एकोप वीती होकर, दांतों की शुद्धि करके एक उपवीत से जटाओं को बांध कर, समस्त शरीर के अङ्गों को भस्म से उद्धूलित करके, सम्पूर्ण शरीर को भसित एवं निष्ठुर बनाकर मुक्ताफल एवं मणियों से व्यत्यस्त रुद्राक्ष की माला को कण्ठ में पहन कर, थोड़े से भूषणों से अधिभूषित सीता देवी को साथ में लेकर और अनुगमन करने वाले लक्ष्मण के सहित श्रीराम ने अन्य वन में प्रवेश किया था। इसके उपरान्त वहां वन में अनेक राक्षसों का हनन किया था। आपकी ही भांति सम्पूर्ण कर्म किये थे। सीता का अपहरण आदि सभी कुछ जैसा आपका हुआ था वैसा ही इनका भी हुआ था। इसके अनन्तर सुग्रीव के आश्रम ऋष्यमूक पर्वत पर श्री राम गये थे, घनी छाया वाले आम्र के वृक्ष के निकट पहुंच कर लक्ष्मण के साथ वहाँ पर परिश्रय किया था। वृक्ष पर धनुषों को टाँग कर बैठे हुए लक्ष्मण की गोद में अपना शिर रखकर मृग चर्म की शय्या पर शयन कर रहे थे।२०।

वृक्षे तु धनुषी आरोप्यासीनलक्ष्मणांके शिरः कृत्वा हरिचर्म-शय्याशयनो लक्षितां गीतिं शृण्वन्ववृक्षफलं निरीक्षमाणो वानो-रमेकं मणिकुण्डलं हेमपिङ्गलं सुदृढबद्धमौञ्जाकौपीनमच्छोपवी-तिनमतिचञ्चलं फलमादायात्मनि विक्षिपन्तं पुष्पमंजरीश्च किरन्तं गानमनुकुर्वन्त घ्यसनेन रामं वीजयन्तमारुह्य शाखामपि तथा वीजवन्तमावद्धचूतफलमात्रं रामो वीक्ष्य लक्ष्मणमभाषत। लक्ष्मण कोऽयं कपिरिति। लक्ष्मणोऽपि न जान इत्युवाच। अथ रामः समाहूय कस्य त्वं किं नामेत्य पृच्छत्। स च सुग्रीवस्य हनुमानित्युवाच। रामं नत्वा सुग्रीवमेत्य नत्वा देव! नारायण इवापरः पुरुषो युवा मेघश्यामा जटी आजानुबाहुरतियशस्वी सूर्यसंकाशेन सहापरेण इहसते।२१।

एक लक्षित गीत का श्रवण करते हुए और वृक्ष के फल को देखते हुए एक वानर को देखा जो मणियों के कुण्डल पहिने हुए था। और हेम के तुल्य पिंगल वर्ण वाला था। उस वानर ने सुदृढ़ मौञ्जीवन्ध की कोपीन लगा रखी थी और स्वच्छ उपवीत धारण कर रक्खा था। वह अत्यन्त चञ्चल था। फल लेकर अपने ऊपर डाल रहा था और पुष्पों की मञ्जरी को गिरा रहा था। वह गान का अनुकरण कर रहा था व्यजन से श्री राम की हवा करता जा रहा था तथा शाखा पर चढ़ कर भी वैसा ही कर रहा था। आवद्ध आम के फल मात्र को देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा था— हे लक्ष्मण! यह कौनसा बन्दर है? लक्ष्मण ने भी यही उत्तर दिया था कि मैं नहीं जानता हूँ। इसके अनन्तर राम ने उसे अपने पास बुलाकर पूछा था कि तू किसका है और तेरा क्या नाम है? उसने उत्तर दिया था कि मैं सुग्रीव का हूँ और मेरा नाम हनुमान् है। फिर हनुमान ने श्रीराम को प्रणाम कर सुग्रीव के समीप जाकर कहा—हे देव! दूसरे नारायण के समान एक युवा पुरुष हैं जिनका वर्ण मेघ के समान श्याम है—जटाधारी हैं तथा जानुपर्यन्त बाहुओं वाले और अत्यन्त

यशस्वी हैं। सूर्य के तुल्य एक दूसरे भी उनके साथ हैं और यहीं पर स्थित हैं।२१।

रावणेनापहृतया कयाचिद्ध्रियमाणागतया विभूषणानि कानिचित्परित्यक्तानि गतानि मया सङ्गृहीतानि तानि दर्शयामीत्याभाष्य राम मन्दिमांगमय्य दर्शयामास। रामोऽपि निरीक्ष्य निंचित्य प्ररुद्य क्व गतोऽसौ रावण इति पप्रच्छ स च दक्षिणामाशां गत इति बभाषे। अथ रामस्तेन सख्यमकरोत्।

अपृच्छच्च किमर्थमिह भार्याहीनः स्थित इति। मम भ्राता बाली महाबलो मम भार्यां राज्य चापहृत्य कष्किन्धायामास्ते युद्धेन चाहं पराजितस्तद्वधाय सर्वथा मम चिन्ता यथाऽसौ त्वया निहन्यते तथाऽहमपिसागरं वद्ध्वा परतीरे लंकायां स्थितां सीतां रावणेनापहृतां तव समर्पयामीत्याभाष्य शपथं कृत्वा सुग्रीवां बालिनाऽतिबलिना युद्धायाहूतेन युयुधे। रामोऽप्यनन्तरमनिश्चयद्वालिनं नाहन्। अथ सुग्रीवः पला यतो रामनिदमभाषत। तव चित्तमविज्ञाय प्रवृत्तोऽहं मरणाय। रामोऽपि युवयोर्विशेषाज्ञानान्मयातूष्णीभूतं चिन्हितं त्वां निरीक्ष्य तं हन्मि। अथ सुग्रीवश्चिन्ह कृत्वा वालिन युद्धायाहूय समतिष्ठत। तारा बभाषे बालिनम्। सहायवानिव लक्ष्यते सुग्रीवो नोचेदेवं नाह्वयति ज्ञातं मया रामलक्ष्मणौ दशरथतनयौ नारायणांशौ भूभारावतरणाय समागतौ तावस्य सहायभूतौ ।।२२

सुग्रीव ने कहा—रावण के द्वारा अपहरण की गई एक महिला थी जो कि अपहृत होकर यहाँ से ले जाई जा रही थी उसने कुछ अपने भूषण यहाँ डाल दिये थे और मैंने उनको उठा लिया था। उनको मैं अभी आपको दिखलाता हूँ—यह कहकर सुग्रीव ने राम को अपने मन्दिर में लाकर उन भूषणों को दिखलाया था। राम ने उन्हें देखकर निश्चय कर लिया था और रुदन करके पूछने लगे—यह दुष्ट रावण किधर चला गया है। सुग्रीव ने उत्तर दिया था कि वह दक्षिण दिशा की ओर चला गया था। राम ने उस सुग्रीव के साथ मित्रता करली थी

और फिर सुग्रीव से राम ने पूछा था कि आप बिना अपनी भार्या के यहाँ पर क्यों रहते हैं ? सुग्रीव ने कहा—मेरा भाई वाली महान् है। उसने मेरी भार्य्या का और मेरे राज्य का अपहरण कर लिया है। वह किष्किन्धा में रहता है। युद्ध में उसने मुझे हरा दिया है। उसके वध करने के लिये सर्वदा मुझे अधिक चिन्ता बनी रहती है। जिस तरह अभी आप उसका हनन करें तो मैं भी फिर उसी प्रकार का यत्न करूँगा कि सागर को बाँध कर दूसरे तट पर स्थित सीता को जिसको रावण ने अपहृत कर लिया है लाकर आपको दे दूँगा। इतना कह कर शपथ लेकर सुग्रीव ने अत्यन्त बलवान् वाली को बुलाकर उसके साथ युद्ध किया था। राम ने भी अन्तर में निश्चय न करके वालि को नहीं मारा था। इसके पश्चात् सुग्रीव वहाँ से भाग खड़ा हुआ और राम से बोला। मैंने आपके हृदय को न समझ कर ही मरने के लिये यह प्रवृत्ति की थी। राम ने भी कहा था कि तुम दोनों विशेष ज्ञान न होने से ही मैं चुप रहा था। अब चिन्ह युक्त आपको देख कर उसको मार दूँगा। इसके पश्चात् सुग्रीव ने चिन्ह धारण करके फिर बाली को युद्ध के लिये बुलाया था। उस समय में तारा ने वाली से कहा था ऐसा दिखलाई देता है कि सुग्रीव किसी की सहायता लेकर आया है, नहीं तो ऐसे कभी नहीं बुलाता। मुझे ज्ञात हुआ है कि दशरथ के पुत्र राम लक्ष्मण जो नारायण के अंश हैं, भूमि के भार उतारने के लिए ही आये हैं। वे सुग्रीव के सहायक हैं।२२।

नीतिमान्नाम इति मया श्रुतम्। नहि बलवन्तं विहाय दुर्बल भजते तादृशः समायातु वा रामः प्रतिपन्नमधिकं कृत्वा बिभेति वीरो यदि रामः स्वयं युद्धाय यातस्तदा युद्धं कर्तव्यमित्याभाष्य तारा सम्भाव्य सुग्रीवयुद्धाय निर्यातः। अथ मुष्टियुद्धमत्योन्यमभूत्। रामोऽपि वालिनं जघान। अथ तारा चांगदश्च समागत्य व्यथितौ बभूवतुः। अथ राघव वानराः समायाता। अथ तारा रामं बभाषे शास्त्रकुशलः मूरः धार्मिकः राघवः कुरा चापि

राम । कथं पापमकार्षीः । न क्षत्त्रधर्मं जानीषे राजगणसेवी-तम् ।।२३

बाली ने कहा मैंने सुना है कि राम नीतिमान् हैं। बलवान् को त्याग कर वैसा पुरुष कभी भी दुर्बल को नहीं भजा करते हैं। अथवा राम भी आजावें। अधिक प्रतिपन्न को करके वीर डरा सकता है। यदि राम स्वयं युद्ध को आते हैं तो मुझे युद्ध करना ही चाहिए। यह कह कर तारा को समझाकर सुग्रीव से युद्ध के लिए बाली निकल आया था। दोनों में परस्पर में मुष्टि युद्ध हुआ था। राम ने भी बाली को मार दिया था। इसके पश्चात् तारा और अङ्गद आकर व्यथित हुये थे। इसके अनन्तर बानर राघव के पास आ गये। उस समय तारा ने राम से कहा—जो पुरुष शास्त्रों के ज्ञाता एवं परम कुशल विद्वान् शूर वीर थे उन्होंने राम से कहा था—हे राम! आपके वंशधर रघु के वंश में होने वाले सभी राघव पहिले परम धार्मिक थे फिर आपने यह पाप कर्म क्यों किया है? क्या आप राजाओं के समुदाय के द्वारा सेवित क्षत्रियों का धर्म नहीं जानते हैं? ।२३।

मया पितुरनुशासनाद्राज्यगतदुष्टनिग्रहणं कृतम्। गुरुवचनं-स्यानुल्लंघनीयत्वात्तदपहरणवेलायां यो राजा स नाचरत्। अथवा स्वतन्त्रो मृगयोर्हतश्च वाला मृगाणामन्योन्यदारणाद्य-जुगुप्सा च। यतो मम मृगयावदाथन्ना मृगाणाम्। चलितस्थित-बद्धामां चलद्भ्रान्तपलायिनाम्। अथवावसृजतासङ्गमुञ्झिता-मृगया तथा मृगया शास्त्रविधितो मृगयेयं मयाकृता ।।२४

श्री राघव ने कहा—मैंने अपने पिताजी के अनुशासन से राज्य में रहने वाले समस्त दुष्ट पुरुषों का निग्रहण किया है। गुरु के वचन कभी लांघने के योग्य नहीं होते हैं इसी हेतु से उसके अपहरण के समय में जो राजा था उसने आचरण नहीं किया था। अथवा मृग स्वतन्त्र हैं। मृगों में एक का हनन किया गया। वाला मृगों की अन्योन्य में दारा होने से जुगुप्सा है। क्योंकि मृगया की मरीत ही किया है। मृगों की जो

चलित-स्थित और बद्ध हैं और चलते हुए श्रान्त एवं पलायन करने वाले हैं शिकार की हैं। इसके अनन्तर संग को त्याग करने वाली मृगया मैंने की है। मृगया शास्त्र की विधि से ही मैंने की है।२४।

यदि प्रसन्नो भगवान्मम सद्‌गतिं देहि। अयं सुग्रीवस्तथा रक्षणीयोऽङ्गदोऽथ तारा च मया पापिनाऽपराधः कृतस्तत्फल-मनुभुतम्। अथ रामं पश्यन्नेव वाली ममार स्वर्गं च गतः। अथ सुग्रीवं राज्येऽभिषिच्य स्वयं वनं विदेश। अथ तेन सहायेन जल-धिसमीपं गत्वा क्व लंका क्व सीता क्व चारातिरिति सुग्रीव-माह रामः। अथ हनुमानाह प्रविश्य लंका विचित्य सीतां सव-तत्त्वमवगत्य युद्धं सन्धिर्वा कर्तव्यस्तदुदधिलंङ्घनाय कञ्चि-त्ममादिशतु भगवान्। अथ सुग्रीवमाह रामः। कथतेतद् घटत इति ॥२५

कपि ने कहा—यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे कृपा कर सद्‌गति प्रदान कीजिये। यह सुग्रीव है इसका तथा मेरे पुत्र अङ्गद की रक्षा करिए और तारा की भी आप रक्षा करिये। मुझ पापी ने अवश्य महान् अपराध किया है उसका फल भी मैंने प्राप्त कर लिया है। इसके अनन्तर श्रीराम के स्वरूप का दर्शन करते हुये ही वाली ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया था और वह सीधा स्वर्गलोक चला गया था। इसके अनन्तर श्रीराम ने सुग्रीव को राज्यासन पर अभिषिक्त करके फिर स्वयं वन में प्रविष्ट हो गए थे। इसके उपरान्त उसकी सहायता से श्रीराम जलधि के समीप में जाकर कहाँ लंका है—कहाँ सीता है और कहाँ पर वह शत्रु विद्यमान हैं—यह सब उन्होंने सुग्रीव से कहा था। इसके पश्चात् हनुमान ने लंका में प्रवेश करके और सीता की खोज करके वहाँ का पूरा तत्व जान करके अब युद्ध करना है या सन्धि करनी है। क्या करना चाहिए। समुद्र लंघन करने के लिये आप किसी को आदेश प्रदान करे। इसके पश्चात् श्रीराम ने सुग्रीव से कहा—यह किस प्रकार हो सकता है।२५।

मम वानरा भल्लूप्रमुखाः कोटिशः सन्ति। एकं नियुज्ज सर्वमाकलय्य यथायुक्तं तथा करणीयम्। अथ जाम्बवानाह। हनुमानेको गच्छतु बुध्यतु लंकाम्। अथ हनुमानगमल्लंकापुरं विचित्य। सीतामशोकवनिकायामासीनां तया सम्भाष्य च विश्वासं कृत्वा वनं बभञ्च वनरक्षकांश्च। बद्धो रक्षसा लंका दग्ध्वा उत्तरकूलं गत्वा रामं दृष्ट्वा वृत्तान्तं कथयित्वा तूष्णीमतिष्ठत्। अथ रामः सर्वँविचारयामास जाम्बवानुवाच रामेण लंका कपिभिर्विनश्यतीति नारदेन मसोक्तम्। अथ सागरोत्तरणे यत्न आस्थेयः। अथ रामः शकरमाराध्य सर्वं निवेदयित्वा त्वदुक्तं करोमीति वचनमुक्त्वा शिवमभ्यर्च्य प्रणतोभूत्वा व्यजिज्ञपत् ॥२६

सुग्रीव ने श्रीराम से निवेदन किया—मेरे पास करोड़ों की संख्या में भल्लू प्रमुख बन्दर विद्यमान् हैं। एक को नियुक्त करके उससे यह सभी कुछ कहकर जो भी यथा युक्त हो वही इस समय में करना चाहिए। इसके अनन्तर जाम्बवान् ने कहा हनुमान एक ही परम प्रवीण है। यह चला जावे और लंका को भली-भाँति जान लेवे। इसके अनन्तर हनुमान लंका पुरी गया था और खोज की थी। सीता को वहां पर अशोक वाटिका में स्थित देखा और जानकी जी से सम्भाषण भी हनुमान ने किया था और उनको पूर्ण समाश्वासन देकर फिर वन का भंजन किया था तथा उस वन के रखवालों का भी भंजन किया था। राक्षस (मेघनाद) के द्वारा बद्ध होकर फिर हनुमान ने लंकापुरी का दहन किया था। इसके पश्चात् उत्तर सागर के तट पर वापिस आकर श्रीराम का दर्शन करके उनसे सम्पूर्ण लंका का वृत्तान्त सुना दिया था और फिर स्वयं श्रीराम के समीप में चुपचाप स्थित हो गये थे। उसके उपरान्त श्रीराम ने सबका विचार (मन्त्रणा) की थी। जाम्बवान् ने कहा —श्रीराम के द्वारा कपियों की सहायता से लंकापुरी विनष्ट हो जायगी—ऐसा देवर्षि नारद ने मुझसे कहा था। इसके अनन्तर अब तो समुद्र के पार करने का यत्न करना चाहिये। इसके पश्चात्

श्रीराम ने भगवान शंकर की समाराधना की थी। सभी कुछ शंकर से निवेदन करके जो उनकी उक्ति होगी वही मैं करूँगा यह कहकर श्रीराम ने शिव की अभ्यर्चना की और प्रहृत होकर उनसे प्रार्थना की थी।२६।

लंका गमिष्यामि समुद्रतरण उपायमेकं मम देहि शम्भो। ममाजगवं धनुरस्ति तत्कालरूपमविकल्पं वा भवति। तदारुह्य समुद्रं तीर्त्वा लंकामाप्नुहि। रामस्तथेतिनिश्चित्य सस्माराजगवम्। आगतं धनुस्ततश्च रामोऽपूजयत्। अथ हरो धनुरादाय रामाय दत्तवान्। रामोऽपि जलधावपातयद्। आरुरुहुः सर्वे वानरा रामलक्ष्मणौ च षष्ठिपरार्द्धं तेषामसङ्ख्येषु वानरेषु धनुरारूढेषु निष्काम ययौ! धनुस्तटं वानराश्च ततस्ततो गत्वा निरीक्षयामासुः। अथातिकायो नाम राक्षसः कपिवलमालोक्य रावणायोक्तवान्। रावणोऽपि किं कपिभिः शाखामृगैः किं वा मानुषाभ्यां रामलक्ष्मणाभ्यां किमिया तं दैवागतस्मा‌क भोजनमित्युवाच। अथ सुग्रीवः पश्चिमावलम्बिनि भास्वति हनूमज्जाम्बवदादिमहाबलैश्चातिक यैरसङ्ख्यातैर्लंकापाश्व गत्वा उपवन प्रविश्य नाना फलानि खादित्वा पयः पीत्वौपवनरक्षिराक्षसान्विद्राव्य सर्वविपिकमेकैकशो गृहीत्वा प्राद्रवँल्लंका गोपुर च गत्वा समारूह्य प्रासादं च विशीर्यैकैकशः केचित्स्तम्भमादाय रक्षोभिर्युयुधुः। एके च शालं बभञ्जुगृहाणि चूर्णयामासुर्वालवृद्धस्त्रीजनादिकं सर्वमेव निजघ्नुः ॥२७

श्रीराम ने कहा—हे शम्भो! मैं लंका में जाऊँगा अतः अब इस सागर के तरण करने का कोई एक उपाय आप मुझे बतलाइये। भगवान् शम्भू ने कहा—मेरे पास एक अजगव धनुष है। वह तत्काल रूप वाला अथवा अविकल्प होता है। उस पर समारोहण करके सागर को पार करके आप लंकापुरी को प्राप्त कर लीजिए। श्रीराम ने—ऐसा ही किया जायगा ऐसा निश्चय करके फिर अजगव धनुष को स्मृति पथ में लाये। वह अजगव धनुष वहाँ पर स्मरण करते ही आ गया था और श्रीराम ने उसका पूजन किया था एवं स्थापित किया था। इसके अनन्तर भगवान्

शंकर ने उस धनुष को लेकर श्रीराम को दे दिया था। श्री राम ने भी उस धनुष को समुद्र में डाल दिया था। उस पर समस्त वानर और राम तथा लक्ष्मण समारूढ़ हो गये थे। उनके असंख्य वानरों में जो कि उस धनुष पर समारूढ़ हुये थे पष्टि परार्ध स्वेच्छा पूर्वक चले गये थे। इसके अनन्तर वानर उस धनुष के तट को वहाँ पर जा-जा कर देखने लगे थे। इसके उपरान्त एक अति काय-नाम वाला राक्षस था उसने इस प्रकार के कपियों के बल को देखा था और फिर उसने रावण से जाकर कहा था। रावण भी कहने लगा—क्या शाखामृग वन्दर और क्या मनुष्य राम लक्ष्मण आ गये हैं? ये तो सब दैव के प्रदान किये हुये हमारे सब भोजन ही हैं। इसके अनन्तर सुग्रीव ने कहा—भगवान् सूर्य-देव के पश्चिम दिशा में चले जाने पर अत्यन्त विशाल शरीर वाले महान् बल से सुसम्पन्न असंख्य हनुमान और जाम्बवान् आदि वानर लंका के पार्श्व में चले गये हैं और उपवन में प्रवेश करके उन्होंने अनेक प्रकार के फलों को खाकर तथा जल पीकर उपवन के रक्षा करने वाले राक्षसों को मार गिराया है। उस समस्त विपिन को एक-एक करके घेर लिया है और उस पर आक्रमण कर दिया है। लंका और गोपुर पर पहुँच कर तथा रावण के प्रासाद पर चढ़कर एक-एक करके उन्होंने उसको विदीर्ण कर डाला है। कोई-कोई स्तम्भ लेकर राक्षसों से युद्ध कर रहे हैं। कुछ ने उसकी शाला का भञ्जन कर दिया है। कुछ वानरों ने वहाँ के घरों का विनाश कर दिया है। जो भी कोई बालक-वृद्ध और स्त्रीजन उन्हें मिले हैं सब का निहनन उन्होंने करा दिया है।२७।

अथकं प्राकारं निर्जितमाज्ञाय रावण इन्द्रजितं सन्दिदेश। इन्द्रजिता च युद्धं वनराः कृत्वा भीताः पालयिताश्च। अथ हनु-मानखिलं निर्गतमाज्ञाय रावणं ज्ञात्वा वानरानाहूय निर्भत्स्यं सेनां महतीं कारयित्वा दशमुख कल्पयित्वा मोदयामास। अथ खस्थ एवेन्द्रजिद्यु युधे न च वानरास्तं दृष्टवन्तः। अथ हनुमज्जा-म्बवन्तौ खमुत्पत्य पर्वतशिखराभ्यामिन्द्रजितं निजघ्नतुः। अथ

भुवि पापातं तं लक्ष्मणश्च यमलौकगामिनं चकार। अथातिकाय-महाकायौ वानरसैन्यं बहुशो हत्वा लक्ष्मण पीडयित्वा रामेण संयुध्य सुग्रीवं कृत्वा हनूमज्जाम्बवद्भ्यां युयुधाते पराजितौ गृहीत्वा च योद्धारावादाय रामसमीप गत्वा रामाय न्यवेदयताम्। अतिकायमभाषत रामः। रावणस्य मम युद्धं ब्रूहि सचिवानामन्येषां महाभयानाञ्च ॥२८

इसके अनन्तर एक प्रकार को विजित जानकर रावण ने इन्द्रजीत मेघनाद को सन्देश दिया था। इन्द्रजीत—वानरों से जब युद्ध किया तो सब वानर भयभीत होकर भाग खड़े हुये थे। इसके उपरांत हनुमान ने सबको निर्गत जानकर रावण को जानकर सब वन्दरों को बुलाया और उन्हें भर्त्सना दी फिर अपनी एक विशाल सेना बनाकर दशमुख की कल्पना करके उसे छका दिया था। इसके पश्चात् वह इन्द्रजीत आकाश में ही स्थित होकर युद्ध करने लगा था और वन्दर उसे देख भी नहीं पाते थे। इसके पश्चात् हनुमान और जाम्बवान ने आकाश में उछाल मारी थी और पर्वतों की चोटियाँ उखाड़कर उस पर प्रहार किया था। इससे वह मेघनाद भूमि पर गिर पड़ा फिर तुरन्त ही लक्ष्मण ने उसको मार दिया था। अतिकाय और महाकाय नाम वाले राक्षसों से बहुत-सी वानरों की सेना का हनन किया था तथा लक्ष्मण की दशा उत्पीड़न युक्त कर दी थी। उन्होंने श्रीराम से भी युद्ध किया था और सुग्रीव से भी किया था। फिर हनुमान और जाम्बवान ने उससे युद्ध किया था। दोनों को पराजित करके पकड़ लिया था और फिर दोनों योधाओं को लाकर श्रीराम के समीप में पहुँच कर उन्हें उनके सामने उपस्थित कर दिया था। श्रीराम ने अतिकाय से कहा था—तुम जाकर रावण से मेरे युद्ध के विषय में वतलादो और महान् भयंकर उसके सचिव हों उनसे भी कह दो।२८।

बाणं धनुषश्चलितं तौ राक्षसौ बाणमार्गं निरीक्षमाणौ दारुबाणेन पंचधाच्छिन्नन्ननिरीक्ष्य रामं व्यज्ञापयतामावयोः शिशवो रक्षणीयास्त्वयेति तयोस्याह रामः। राक्षसौ लंका प्रविष्टौ। अथ

प्राकारयुद्धं कर्तुं वानरा गत्वा सर्वतो वरणमात्रं हि पार्ष्णिभिः पादैर्जानुभिः करैः पृष्ठैश्च तलसमं कृत्वा द्वितीयप्राकारं गतास्तदा च रावणः समागत्य सर्वानिवेषुभिर्द्रावयित्वा तदनुऊच्छन्नामम-गात् ॥२८

श्रीराम के धनुष से वाण चला दिया था। वे दोनों राक्षस श्रीराम के वाण-मार्ग देख रहे थे। दारु (काष्ठ) के वाण से पाँच प्रकार से छिन्न होता हुआ देखकर उन दोनों ने श्रीराम से प्रार्थना की थी—हे भगवान्! हम दोनों के बच्चों की आप रक्षा कीजिये। श्रीराम ने भी—ऐसा ही किया जायगा—यह कहकर स्वीकार कर लिया था। फिर उन दोनों राक्षसों ने लंकापुरी में प्रवेश किया था। इसके उपरान्त प्राकार (बाहार दीवारी) के युद्ध को करने के लिए वानरों ने प्रस्थान किया था। सभी ओर वरणमात्र पार्ष्णियों से—पादों से—जानुओं से—करों से और पृष्ठ भागों से तल समान करके फिर वे बन्दर दूसरे लंका के प्राकार पर पहुँच गये थे। उस समय में वहाँ रावण ने स्वयं आकर सभी वानरों को वाणों के द्वारा भगाकर उनके ही पीछे उन्हें खदेड़ते हुए श्रीराम के समीप में पहुँच गया था।२८।

अथ राममपि पञ्चभिर्वाणैर्विव्याध अथ रामो दशभिर्बाणै रावणं सव्रणं चकार। अनयोरतिदारुणमन्योन्यं युद्धं बभूव। रावणो दशभिर्बाणैर्विव्याध। अथ रामबाणैश्च क्षतशरीरो राक्षसः पलायनपरोऽभवत्। वानरा लक्ष्मणश्च कोटि-कोटि राक्षसान-घ्नन्। अथ परस्मिन्नहनि विभीषणो रावण विचार्येदमुवाज। तृतीयोपायकालोऽयं चतुर्थ न विचारय। चतुर्थो विपरीतो न शस्तः शस्तार्थकारिणाः। परस्य चाऽत्मनः शक्ति विदित्वा चाऽऽत्मनोऽधिकाम् तदा युद्धं प्रशस्तं स्याद्विपरीतं विनाशकम् ॥३०

इसके पश्चात् उस रावण ने श्रीराम पर भी पाँच वाणों से प्रहार किया था। श्रीराम ने दस वाणों से रावण को व्रणों से युक्त कर दिया था। इन दोनों श्रीराम और रावण का अत्यन्त परस्पर में दारुण युद्ध

हुआ था। फिर रावण ने दश वाणों से श्रीराम को व्यथित किया था। इसके पश्चात् श्रीराम के लगातार जो वाणों की वृष्टि हुई उससे उस राक्षस राज रावण का समस्त शरीर क्षययुक्त हो गया था और वह वहाँ से भाग गया था। वन्दरों ने और लक्ष्मण ने करोड़ों ही राक्षसों को मार गिराया था। इसके उपरान्त दूसरे दिन में विभीषण ने रावण से विचार करके यह कहा था—यह तीसरा उपाय काल है अब चौथे के विषय में तो कुछ भी विचार ही नहीं करना चाहिये। जो शस्त्रार्थं करने वाले होते हैं उनको चतुर्थ विपरीत ही होता है प्रशस्त नहीं होता है। दूसरे की ओर अपनी शक्ति का ज्ञान प्राप्त करके जब यह समझले कि मेरी अपनी शक्ति शत्रु से प्रबल या अधिक है तभी युद्ध का करना प्रशस्त होता है और यदि इसके विपरीत हो अर्थात् अपनी शक्ति से शत्रु की शक्ति अधिक प्रबल हो तो यह युद्ध विनाश कर देने वाला अप्रशस्त ही माना जाता है।३०।

न शूरो राजधर्मं च न च जानासि शाश्चतम्। परनारीपर द्रव्यपरराज्यनिषेवया शुराणामुत्तमो धर्मो न षढानां भवाहशाम्। शत्रुपक्षं समालिङ्ग्य निर्गच्छेच्छा हि चेन्नृप। अथ विभीषणो मन्दिरंगत्वा रामांन्तिकं गत्वा त शरणभजत्। अथ रावणः पुरान्निर्गत्य रामेण लक्ष्मणवानरै राक्षसाअपि युयुधिरे। अथ रावणं महाबलं हन्तुमशक्तो रामो विभीषणमुखमवलोक्य तदुक्तचिन्हपदं बाणेन निर्भिद्यामारयत्। अथ कुम्भकर्णो महागदामादाय सर्वं निष्पाद्य वानराननेकशो भक्षयित्वा रामोत्तमाङ्गं गदयाऽहन्। अथ रामो निशितबाणशतेन तमहन्ममार कुम्भकर्णः ॥३१

रावण ने श्रीराम से कहा था—आप न तो कोई शूरवीर ही हैं और जो शाश्वत राजधर्म्म होता है उसे भी आप नहीं जानते हैं। पराई स्त्री-पराया द्रव्य और पराया राज्य का निवेषण करना शूरों का उत्तम धर्म्म होता है। आप जैसे षण्ढों (नपुंसकों) का यह धर्म्म नहीं हो सकता है। शत्रु पक्ष का समालिंगन करके हे नृप! यदि इच्छा ही तो यहाँ

युद्ध क्षेत्र से निकलकर चले जाओ ।४८। इसके पश्चात् विभीषण ने मन्दिर में जाकर श्रीराम की शरणागति ग्रहण की थी । इसके उपरान्त रावण अपने पुर से निकलकर युद्ध स्थल में आ गया था और उसने फिर श्रीराम-लक्ष्मण और वानरों के साथ युद्ध किया था तथा राक्षसों ने भी युद्ध किया था । इसके पश्चात् जब श्रीराम महान् बलवान् रावण को मार गिराने में असमर्थ हो गये तो उन्होंने विभीषण के मुख की ओर देखा था । विभीषण ने उस समय में रावण की नाभि में जो अमृत का निवास था वह संकेत से श्रीराम को बतला दिया था । फिर श्रीराम ने उसी जगह पर अपना बाण छोड़कर रावण को मार गिराया था । इसके पश्चात् रावण का सहोदर छोटा भाई कुम्भकर्ण अपनी विशाल गदा को लेकर वहाँ आ गया था । उसने बहुत से वानरों का भक्षण कर लिया था और अपनी गदा से श्रीराम के मस्तक पर प्रहार किया था । इसके उपरान्त श्रीराम ने अपने तीखे बाणों से, जो कि सैकड़ों की संख्या में चलाये गये थे, उस कुम्भ का निहनन कर दिया था और कुम्भकर्ण मर गया ।३१।

अथ विभीषणेन रावणादेः श्राद्धादिकं काशयित्वा शिवालयं तत्रन्मां कारयित्वा तमेव लंकाराज्ये विभीषणमभिषिच्यसीता-माग्निप्रवेशशुद्धामुमामहेश्वराभ्यां नमयित्वा पुरहरेण दत्ताखिला-मृत्तबलायुष्यः सुपुष्पकामारुह्य जलधिमुत्तीर्य पारावारतटे सेनां समवस्थाप्य शिवप्रतिष्ठां तत्र कृत्वा मुनिभिर्देवैरभ्यर्चितोऽयोध्या-मगमत् । अथ भरतादि समुपेतो नागरैर्वसिष्ठेन मुनिभिश्चाभ्य-र्चितः स्वगृहमगमत् । आत्मनाऽऽगतानिन्द्रादि देवानासनादिना-ऽभ्यर्च्य वानरान्सम्पूज्य मुक्तजटोऽभिषिक्तो राज्ये रावणवधह-र्षितादेवा राममूचुः । त्वयाऽऽत्मराज्ये स्थापिता वयं नः सर्वदा तारिपालयत्वमादिनारायणो देवो निखिलदुष्टनिग्रहार्थमवतीर्णा रावणं स बान्धवं हत्वा लोकत्रयरक्षकोऽसि श्रियासह सुखी भवे-त्युदीर्य स्वर्गं गताः । अथायोध्यावासिनो रामं प्रहर्षिता ऊचुः ।।३२

इसके अनन्तर विभीषण के द्वारा रावण प्रभृति का श्राद्ध आदि सम्पूर्ण अन्त्येष्टि कर्म सांगोपाँग कराकर शिवालय को उसके नाम से कराकर उसी विभीषण को उस लंका के राज्यासन पर अभिषिक्त करके सीता की अग्नि में शुद्धि परीक्षा की थी और यह सब सम्पन्न करके उमा महेश्वर को प्रणाम कराया था। शिव के द्वारा जो भी वीर वानर युद्ध स्थल मर गये थे उनको आयु एवं वल प्रदान करके जीवित करा दिया था। फिर पुष्पक विमान पर समारूढ़ होकर सागर का तरण करके पारावार तट पर सेना को सम व स्थापित कराकर वहाँ पर भगवान शिव की प्रतिष्ठा की थी। समस्त मुनिगण तथा देव वृन्द के द्वारा अभ्यर्चित होकर श्रीराम अयोध्या पुरी को चले गये थे। स्वयं समागत जो इन्द्रादि देवगण थे उनका आसन आदि प्रदान कर भली भाँति अभ्यर्चन किया था और वानरों का भी अभ्यर्चन किया था। फिर राम के शिर पर जो जटाजूट थीं उनका त्यागकर दिया था। इसके पश्चात् अयोध्या के राज्यासन पर अभिषेक हुआ था। रावण के वध कर देने से देवगण को अत्यधिक हर्ष हुआ था। वे सब देवगण राम से बोले—हे भगवान् ! आपने हम सबको हमारे गये हुये राज्यासनों पर पुनः स्थापित कर दिया है। अब प्रार्थना यही है कि आप हम सबका सर्वदा पालन करते रहें। आप तो आदि नारायण भगवान् हैं। इस भूमण्डल में अवतीर्ण हुए हैं। आपने रावण आदि समस्त दुष्टों के निग्रह करने के लिए ही अवतार लिया है। अब इस महादुष्ट रावण को बन्धु-वान्धव सहित मारकर आपने तीनों लोकों की रक्षा की है। हम लोग यही चाहते हैं आप लक्ष्मी महारानी के साथ परम सुख पूर्वक निवास करें। इतना कहकर समस्त देवगण स्वर्गलोक में चले गये थे। इसके अनन्तर अयोध्यापुरी के निवासी परम प्रहर्षित होकर राम से बोले।३२।

हत्वा शत्रून्समायातो दिष्ट्या प्राप्नोऽसि वै शिवम्।
दिष्ट्या त्वं राजसे राम दिष्ट्या पालयसे प्रजाः ॥३३

त्वयि राजसि काकुत्स्थ ! सर्व स्वस्थं तपस्विनाम्।

गच्छ महे पदमितः किं वा त्वं मन्यसे नृप ॥३४
यस्य विप्राः प्रसीदन्ति तस्य शम्भुः प्रसीदति ।
यस्यप्रसीदतीशानस्तस्य भद्रं भविष्यति ॥३५
तत्कृत्वा भोजनमिह गन्तुमर्हा अनन्तरम् ।
तथेत्युक्त्वा मुनिगणः कृत्वा भोजनमुत्तमम् ॥३६
अभिवर्ध्य तमाशीभिर्हृष्टास्वंपदं ययुः ।
रामोऽपि परमप्रीतः सभार्यश्च सहानुजः ।
अकण्टकं स कृतवान्नाज्यं सर्वजनप्रियः ॥३७
शृणोत्येतदुपाख्यानं य कश्चिदपिपातकी ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः परंब्रह्माधिगच्छति ॥३८
न दुर्गतिर्भसेत्तस्य यश्चेदं स्मरते नरः ।
यश्चापि कीर्तयेत्तस्य एवमेतदुदीरितम् ॥३९

हे भगवान् ! आपने अपने समस्त शत्रु दुष्ट राक्षसों का हनन कर दिया और फिर आप इस समय अपनी राजधानी इस अयोध्यापुरी में प्राप्त हुए हैं—यह एक परम हर्ष की बात है और निश्चय ही यह अतीव कल्याण एवं मङ्गल का समय है । हे राम ! आप अपने राज्यासन पर सुशोभित हैं—यह भी परम प्रसन्नता का विषय है । यह भी एक अत्यन्त ही आनन्द का विषय है कि आप समस्त प्रजा का पालन कर रहे हैं ।३४। मुनिगण ने श्रीराम से कहा—हे काकुत्स्थ ! आपके राज्यासन पर विराजमान् होकर शासन करने पर तपस्वियों का सभी भाँति परम कल्याण है । अब हम सब लोग यहाँ से अपने आश्रमों में जाते हैं । नृप ! आप आपको अपनी अनुमति प्रदान कीजिये । इसे इस समय उचित ही मानते हैं ।३४। श्रीरामचन्द्र भगवान् ने कहा—हे मुनिवृन्द ! जिसके ऊपर विप्रवृन्द अपनी पूर्ण कृपा करके प्रसन्न होते हैं उस पर साक्षात् शम्भु ही प्रसन्न हुआ करते हैं तात्पर्य यह है कि विप्रों की प्रसन्नता तभी होती है जब कि शम्भु की प्रसन्नता हुआ करती है । जिस मनुष्य पर साक्षात् शंकर भगवान् की प्रसन्नता होती है उसका सभी प्रकार से परम मंगल होता है ।३५। अब हे मुनिगणो ! आप

सभी लोग वापिस अपने २ आश्रमों को जाने के इच्छुक हैं तो ठीक है किन्तु मेरी यह प्रार्थना है कि यहाँ आप लोग अपनी भोजन चर्या करने के योग्य होते हैं भोजन करने के अनन्तर ही आप यहाँ से पदार्पण कीजिए। मुनिगण ने राम के इस विनम्र निवेदन 'तथास्तु'—यह कह कर स्वीकार कर लिया था और समस्त मुनिवर्ग ने भोजन किया था जोकि परमोत्तम था।३६। फिर सब मुनियों ने राम का आशीर्वादों के द्वारा समभिवर्द्धन दिया था। फिर अतीव प्रसन्न होते हुए सब लोग अपने-अपने आश्रमों को वापिस चले गये थे। राम को भी अब अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी और अपनी भार्य्या जानकी के सहित तथा अपने छोटे भाइयों के साथ उन्होंने कण्टक रहित राज्य का शासन किया था। भगवान् राम सभी प्रजाजनों के परम प्रिय थे।३७। यह राम का उपाख्यान परम पुण्यमय है। जो इस उपाख्यान का श्रवण किया करता है वह चाहे कितना भी घोर पातकी क्यों न हो वह अपने सभी प्रकार के महान् से भी महान् पापों से छुटकारा पा जाया करता है और अन्त समय मे इस देह का त्याग कर परम ब्रह्म की प्राप्ति करता है।३८। जो मनुष्य इस परम पवित्र महिमा मय उपाख्यान का स्मरण भी एक बार कर लिया करता है उस पुरुष की दुर्गति तो कभी भी हो ही नहीं सकती है।३९।

।। धर्म बीच समुच्चय वर्णन ।।

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यास ततो जयमुदीरयेत् ।१।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।२
श्रुतं पातालखण्डं च त्वयाऽऽख्यातं विदांवरः।
नानाख्यानसमयुक्तं परमानन्ददायकम् ।।३
अधुना श्रोतुमिच्छामो भगवद्भक्तिवर्धनम्।

पाद्मं यच्छेषमस्तीह तद्ब्रूहि कृपया गुरो ! ।।४

शृणुध्व मुनयः सर्वे: यदुक्तं शङ्करेण हि ।
पृच्छते नारदायैव विज्ञानं पापनाशनम् ॥५
एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः ।
गतोऽद्रिं मन्दरं शम्भुं प्रष्टुं किञ्चन्मनोगसम् ॥६
तत्रासीनमुमानाथं प्रणिपत्य शिवाज्ञया ।
उपविष्टः समादिष्ट आसनेऽभिमुखो विभोः ।
पप्रच्छ चेदमेवेश यन्मां पृच्छथ सत्तमाः ॥७

मंगलाचरण किया जाता है—सर्व प्रथम भगवान् नारायण को तथा सर्वोत्तम नर को नमस्कार करके फिर देवी सरस्वती और महर्षि श्री कृष्ण द्वैपायन व्यासजी को नमस्कार करके 'जय'—इस शब्द का समुच्चारण करना चाहिए।१।जिन गुरु चरण ने अज्ञान स्वरूपी अन्धकार के कारण अन्धीभूत अर्थात् दृष्टिहीन चक्षु को ज्ञान रूपी अञ्जन की शलाका से उन्मीलित (खुली हुई) अर्थात् तत्व के दर्शन करने के योग्य बना दिया है। उन गुरुदेव की सेवा में प्रणाम समर्पित है।२। ऋषियों ने कहा—हे विदांवर अर्थात् विद्वानों में परम श्रेष्ठ ! आपने जो पाताल खण्ड का वर्णन किया था वह हमने श्रवण किया है जो कि अनेक आख्यानों से सयुक्त था और अत्यन्त अधिक आनन्द का प्रदान करने वाला था।३। अब हम सब लोग भगवान् की भक्ति की वृद्धि करने वाला विषय श्रवण करने के इच्छुक हैं। हे गुरुदेव ! इस पद्म पुराण में जो भी शेष हो उसे ही कृपा करके आप बतलाइये।४। श्री सूतजी ने कहा—हे मुनि वृन्द ! आप सब लोग उसे श्रवण कीजिये जो कि भगवान् शंकर ने कहा है जब कि देवर्षि नारद जी ने उनसे पूछा था। वह सब विज्ञान पापों का नाश कर देने वाला है।५। एक बार देवर्षि नारद जी जो कि भगवान् के परम भक्त हैं अनेक लोकों में भ्रमण करते हुए भगवान् शम्भु का दर्शन प्राप्त करने के लिए मन्दिर गिरि पर गये थे। उस समय में नारद जी के मन में कुछ भगवान् से पूछने का अभिप्राय था।६। वहाँ पर भगवान् उमा के स्वामी विराजमान थे। नारदजी ने उनको सादर प्रणाम किया था और फिर शिव की आज्ञा प्राप्त

करके बैठ गये थे। शिव ने यह आज्ञा दी थी कि उनके सामने ही मुख करके आसन पर स्थित होवें। नारद जी उसी प्रकार बैठ गये थे। फिर उसने ईश्वर से यही पूछा जो कि इस समय ये आप सब श्रेष्ठ लोग मुझसे पूछ रहे हैं।७।

॥ बदरी नारायण माहात्म्य ॥

एकलक्षं पञ्चविंशत्सहस्राः पर्वतास्तथा ।
तेषां मध्ये महत्पुण्यं बदर्याश्रममुत्तमम् ॥१
नरनारायणो देवो यत्र तिष्ठति नारद ।
तस्य स्वरूपं तेजश्च वक्ष्यामीह चसाम्प्रतम् ॥२
हिमपर्वतशृङ्गे च कृष्णाकारतया द्विज ! ।
पुरुषौ तत्र वर्तेते नरनारायणावुभौ ॥३
श्वेत एकस्तु पुरुषः कृष्णो ह्येकतमः पुनः ।
पिङ्गलश्वेतवर्णश्च जटाधारी महाप्रभुः ॥४
कृष्णो नारायणो ह्येष जगदादिर्महाप्रभुः ।
चतुर्बाहुर्महाञ्छ्रीमान्व्यक्तोऽव्यक्तः सनातनः ॥५
उत्तरायणे महापूजा जायते तत्र सुव्रत ! ।
षण्मासादिकपर्यन्तं पूजा नैव च जायते ॥६
हिमव्याप्तं तदा जातं यावद्वै दक्षिणं भवेत् ।
अत एतादृशो देवो न भूतो व भविष्यति ॥७

भगवान् महेश्वर ने कहा- एक लाख पच्चीस सहस्र पर्वत है। उन समस्त पर्वतों के मध्य में बदर्याश्रम का जो पर्वत है वह सबसे उत्तम है और महान् पुण्य का प्रदान करने वाला है।१। हे नारद ! वहाँ पर बदर्याश्रम में नारायण देव विराजमान् रहते हैं। उनका स्वरूप और जो तेज है उसको मैं अभी तुमको बतलाता हूँ।२। हे द्विज ! हिमवान् पर्वत की चोटी पर कृष्णाकार के रूप में दो पुरुष वर्त्तमान हैं। वे दोनों ही नर और नारायण के नाम से प्रख्यात हैं।३। उनमें एक पुरुष तो श्वेत वर्ण वाले हैं और उनमें एक कृष्ण वर्ण वाले हैं। वह

महाप्रभु जटाओं के धारण करने वाले और पिंगलश्वेत वर्ण से युक्त है। इस जगत् के आदि महाप्रभु जो कृष्ण हैं वह नारायण हैं।४। यह प्रभु चार भुजाओं के धारण करने वाले है और महान् श्रीमान् हैं। इनका स्वरूप व्यक्त है और यह सनातन स्वरूप अव्यक्त भी हैं।५। हे सुन्दर व्रत वाले ! उत्तरायण जब सूर्य होते हैं उसी समय में उनकी महापूजा होती है। फिर ६ मास तक उनकी कोई भी अर्चना नहीं होती है। फिर जो वह सम्पूर्ण स्थल हिम से समाच्छादित हो जाता है तब तक सूर्य दक्षिणायन में रहते हैं। अतएव यह देव सभी देवों से परम विलक्षण ही हैं ऐसा देव अब तक न तो कोई हुआ ही है और न भविष्य में भी होगा।६-७।

तत्र देवा वसन्तीह ऋषीणां चाश्रमास्तथा।
अग्निहोत्राणि वेदानांध्वनिः प्रश्रूयते सदा।८
तस्य वै दर्शनं कार्यं कोटिहत्याविनाशनम्।
अलकनन्दा यत्र गङ्गा तत्र नानसमाचरेत्॥९
कृत्वा स्नानं तु वै तत्र महापापात्प्रमुच्यते।
यत्र विश्वेश्वरो देवस्तिष्ठत्येव स संशयः॥१०
एकस्मिन्समये तत्र सुतपस्तप्तवामहम्।
तदा नारायणो देवो भक्तानां हि कृपाकरः॥११
अव्ययः पुरुषः साक्षादीश्वरो गरुडध्वजः।
सुप्रसन्नोऽब्रवीन्मां वै वरं वरय सुव्रत !॥१२
यं यमीप्ससि देव ! त्वं तं तं काम ददाम्यहम्।
त्वं कैलासविभुः साक्षाद्रुदो वै विश्वपालकः॥१३

वहाँ पर बदर्याश्रम में देवगण निवास किया करते हैं और वहाँ महर्षिगण के भी बहुत आश्रम विद्यमान हैं। वहाँ निरन्तर अग्निहोत्र हुआ करते हैं और सर्वत्र वेद मन्त्रोध्वनियाँ श्रवणों में पड़ती रहती है।८। उनका दर्शन अवश्य ही करना चाहिए क्योंकि वह करोड़ों हत्या के पाप को नष्ट कर देने वाला है वहाँ अलकनन्दा नाम वाली गङ्गा बहती रहती हैं। उसमें स्नान अवश्य ही करना चाहिए।९। वहाँ पर अलक-

नन्दा में स्नान करके मनुष्य महापापों से भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है क्योंकि जहाँ पर साक्षात् विश्वेश्वर देव विराजमान रहा करते हैं— इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ।१०। एक समय ऐसा आया था कि मैंने स्वयं वहाँ पर सुन्दर तत्पश्चर्या की थी । उस समय में अपने भक्तों पर पूर्ण कृपा करने वाले नारायण देव जिनका अभय स्वरूप है और जो पुरुष गरुड़ध्वज साक्षात् ईश्वर हैं मुझ पर सुप्रसन्न हो गये थे उन्होंने परम प्रसन्न होकर मुझसे कहा था—हे सुव्रत ! तुम अपना अभीष्ट वरदान माँग लो ।११। भगवान् श्री नारायण ने कहा था—हे देव ! जो-जो भी कामना तुझे हो और जो-जो भी तू इच्छा रखता है मैं उस-उसी को तुझे दे दूँगा अर्थात् पूर्ण कर दूँगा । तुम कैलाश पर व्यापक साक्षात् रुद्र हो और निश्चय ही सम्पूर्ण विश्व के पालन करने वाले भी हो ।१२-१३।

अलं गृह्णामि भोदेव सुप्रसन्नो जनार्दन ।
द्वौ वरौ मम दीयेतां यदिदातुं त्वमिच्छसि ॥१४
तव भक्तिः सदैवास्तु भक्तराजो भवाम्यहम् ।
सर्वे लोका ब्रुवन्त्वेवमयं भक्तः सदैवहि ॥१५
तव प्रसादाद्देवेश मुक्तिदाता भवाम्यहम् ।
ये लोका मांभजिष्यन्तितेषांदातान संशयः ॥१६
विष्णुभक्त इतिख्यातो लोके चैव भवाम्यहम् ।
यस्याहंवरदाता तु तस्यमुक्तिर्भवेत्प्रभो ॥१७
जटिलो भस्मलिप्तोह ह्यहं वै तव सन्निधौ ।
तव देव प्रसादेन लोकेख्यातो भवाम्यहम् ॥१८

श्री रुद्रदेव ने कहा—हे देव ! हे जनों की पीड़ा दूर करने वाले प्रभो ! आप मुझ पर सुप्रसन्न हैं—मुझे यही बहुत कुछ प्राप्त हो गया है । यदि आप मुझे वरदान करने की कृपा करें तो मुझे दो वर प्रदान कीजिये ।१४। एक तो उन दो वरों में मेरा यही है कि आपके चरणारविन्द की भक्ति सदा-सर्वदा बनी रहे । मैं भक्तों का राजा अर्थात् सर्व शिरोमणि भक्त हो जाऊँ । सभी लोग मुझे यही कहें कि यह सदा ही

भक्ति करने वाला है ।१५। हे देवेश ! मैं भी आपके प्रसाद से प्राणियों को मुक्ति का देने वाला हो जाऊँ । जो लोग मुझको भेजेंगे उनका मैं बिना किसी संशय के दाता हो जाऊँ ।१६। मैं ससार में भगवान विष्णु का भक्त इसी नाम से विख्यात होकर रहूँ और मैं जिसको वरदान दूँ हे प्रभो ! उसकी मुक्ति हो जानी चाहिए ।१७। जटाधारी और भस्म से लिप्त मैं आपके सामने समीप में ही उपस्थित हूँ। हे देव ! आपके प्रसाद से मैं लोक में विख्यात रहूँगा ।१८।

जालन्धर की उत्पत्ति

एकदा नारदोद्रष्टुं पांडवान्दुःखकर्शितान् ।
ययौ काम्यवनविप्रः सत्कृतस्तैर्यथाविधि ।।१
अण नत्वा मुनिश्रेष्ठं युधिष्ठिर उवाच ह ।
भगवन्कर्मणा केन दुःखाब्धौ पतिता वयम् ।।२
तमुवाच ऋषिर्दुःखं त्यजत्वं पांडुनन्दन !
सुखदुःखसमाहारे संसारे कः सुखी नरः ।।३
ईश्वरोऽपि हि न स्थायी पीड्यते देहसंचयैः ।
न दुःखरहितः कश्चिद्देही दुःखसहो यतः ।।४
शरीरं सवितुर्यस्माद्राहुस्तद्ग्रसते बली ।
राहोरपि शिरश्छिन्नं शौरिणाऽमृतभोजने ।।५
सोऽपि शार्ङ्गधरो देव क्षिप्तः सागरगह्वरे ।
जालन्धरेण वीरेण निहतः सोऽपि शम्भुना ।।६
कौऽसौ जालन्धरोवीरः कस्यपुत्रः कुतो बली ।
कथं जालन्धरंसंख्ये हतवान्वृषभध्वजः ।।७
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण तपोधन ।
राज्ञा स एव मुक्तस्तु कथयामात नारदः ।।८

श्री सूतजी ने कहा – हे विप्र ! एक बार देवर्षि नारद दुःख से अत्यन्त कर्शित पाण्डवों से मिलने के लिए काम्यवन में गये थे । उन्होंने नारदजी का यथाविधि स्वागत सत्कार किया था । इसके उपरान्त राजा

राजा युधिष्ठिर ने श्री नारदजी को प्रणाम करके उनसे कहा था ।१। युधिष्ठिर बोले—हे भगवन् ! कृपाकर यह तो बतलाइये कि कौन सा बुरा कर्म हमारा बन गया है जिससे हम इस समय में दु:ख के सागर में पड़े हुए हैं ।२। सूतजी ने कहा—उस समय में देवर्षि नारद ने उस राजा युधिष्ठिर से कहा था—हे पाण्डु नन्दन ! अब आप दु:ख का त्याग कर दो। यह तो सम्पूर्ण संसार ही ऐसा है कि इसमें सुख और दु:ख का समाहार रहा करता है। इस ऐसे संसार में आप ही बताइये कौन सा मनुष्य सुखी है ? तात्पर्य यह है कि यहाँ कोई भी आकर सुखी नहीं रहता है ।३। साक्षात् ईश्वर भी तो स्थायी नहीं है। वह भी देह में संचरण करने वाले दु:खों से उत्पीड़ित किया ही जाया करता है। यहाँ दु:ख से रहित कोई भी देहधारी नहीं है क्योंकि यह देह ही दु:खों के सहन करने वाला ही होता है। क्योंकि यह शरीर तो सविता का है और बलवान राहु इसका ग्रास किया करता है। उस राहु के भी शिर को अमृत का पान करने के समय में भगवान् वासुदेव ने मार डाला था ।३-४। वह भी शार्ङ्गधारी देव एक परम गहन समुद्र में डाल दिये गये हैं अर्थात् अथाह सागर में ही निवास किया करते हैं। वह भी जालन्धर वीर ने यह किया था और वह जालन्धर भी शम्भु के द्वारा मार गिराया गया था ।५-६। राजा युधिष्ठिर ने फिर प्रश्न किया था। यह जालन्धर वीर कौन था ? यह किसका पुत्र था और यह ऐसा बलशाली कैसे हो गया था ? इसका 'जालन्धर'—यह नाम कैसे पड़ा था और वृषभध्वज ने क्यों मार डाला था ? ।७। हे तपोधन ! यह सभी कुछ विस्तार के साथ मुझे बतलाइये। सूतजी ने कहा—वह भी राजा के द्वारा मुक्त हुआ था—यह श्री नारदजी ने कहा था ।८।

शृणुभूपकथांदिव्यामशेषाघौघनाशिनीम् ।
ईशानसिन्धुसून्वोश्च संग्रामं परमाद्भुतम् ।।९
एकदा गिरिश स्तोतुं प्रययौ पाकशासनः ।
अप्सरोगणसंकीर्णो देवैर्बहुभिरावृतः ।।१०

भोभोगणवरश्रेष्ठ श्रृणु मे वाक्यमुत्तमम् ।
समज्ञापय शीघ्रं त्व नृत्यार्थ मिहमागतम् ।
ईश्वरं प्रति देवेशं सर्वदेवैः समावृतम् ॥११
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा गिरिशं नन्दिरब्रवीत् ।
प्रभोऽयमागतः सर्वैर्देवराजः पुरन्दरः ॥१२
नृत्यार्थमथ तं प्राहानय शीघ्रं शचीपतिम् ।
प्रवेशयामास तदा नन्दी तैः सह वासवम् ॥१३
स दृष्ट्वा गिरिशं देव तुष्टाव वृषभध्वजम् ।
रम्भाद्यास्तास्तदा सर्वा नर्तक्यो हरिसन्निधौ ॥१४
मृदङ्गवीणावादित्रैर्मुदा नाट्यं प्रचक्रिरे ।
कांस्यवाद्यान्प्रगृह्यान्या वंशतालान्सकाहलान् ॥१५

श्री नारदजी ने कहा—हे भूप ! अब आप इस सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाली दिव्य कथा का श्रवण कीजिये इस कथा में ईशान और सिन्धु के पुत्र का परम ही अद्भुत युद्ध का वर्णन है ।६। एक अवसर पर पाकशान (इन्द्र) गिरिश श्रीशिव की स्तुति करने के लिए गये थे। उस समय में इन्द्र अप्सराओं के समुदाय से तथा बहुत से देवगण से आवृत थे ।१०। इन्द्र देव ने कहा—हे श्रेष्ठ गणों में भी परम श्रेष्ठ ! आप मेरा यह उत्तम बचन सुनिये और शीघ्र ही मुझे आज्ञा प्रदान करें। मैं यहाँ पर नृत्य के लिए उपस्थित हुआ हूँ । मैं देवों के स्वामी ईश्वर की सन्निधि में सब देवगण से समावृत होकर ही आया हूँ ।११। नारद जी ने कहा—इन्द्र देव के इस वचन को सुनकर नन्दि ने भगवान् गिरिश से प्रार्थना की थी—हे प्रभो ! यह देवराज महेन्द्र सब देवों के सहित यहाँ आया है ।१२। यह यहाँ नृत्य के लिए ही उपस्थित हुआ है । इसके उपरान्त भगवान् ने उसे आदेश दिया था कि शची के पति को अन्दर प्रवेश कराओ । उसी समय नन्दी नें देवों के सहित देवराज को प्रविष्ट करा दिया था ।१३। उस इन्द्र ने गिरिश का दर्शन कर फिर वृषध्वज का स्तवन किया था । फिर रमना आदि जो समस्त नर्तकियाँ वहाँ हर की सन्निधि में उपस्थित थीं उन्होंने बड़े ही हर्ष से मृदङ्ग वीणा आदि

वाद्यों के द्वारा नाच करना आरम्भ कर दिया था ।१४। दूसरी नर्त्तकियों ने कांस्य वाद्यों को ग्रहण करके तथा उन्होंने सकाहल वंश तालों को ग्रहण किया था ।१५।

चक्रुस्ता नृत्यसंरम्भं स्वयं देवः पुरन्दरः ।
ग्तीवनर्तन चक्रे सुन्दरं देवदुर्लभम् ॥१६
ईश्वरस्तोषमापन्नो वासवं वाक्यमब्रवीत् ।
प्रसन्नोऽहं सुरश्रेष्ठ जातस्ते व्रियतां वरः ॥१७
इत्युक्तवति देवेशे स्वबाहुबलगर्वितः ।
प्रत्युवाच हर वाक्यं संग्रामः संवृतो मया ॥१८
यत्र त्वत्सदृशो योद्धा तद्युद्धं देहि मे प्रभो ।
इत्युक्त्वा निर्गतो जिष्णुर्लब्ध्वा शम्भोर्वरं प्रभो ।
तस्मिन्गते तदा शक्रे गिरिशो वाक्यमब्रवीत् ॥१९
गणा मे श्रूयतां वाक्यं देवराजोऽतिगर्वितः ॥२०

स्वयं पुरन्दर देव ने भी उनके ही साथ नृत्य का संरम्भ कर दिया था । वह नर्त्तन अत्यन्त सुन्दर और देवों को भी दुर्लभ था ।१६। ईश्वर उस परमोत्तम नृत्य को देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए थे और फिर वासव से उन्होंने कहा—हे सुरों में श्रेष्ठ देव ! मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ । अब आप वरदान माँग लो ।१७। देवों के स्वामी को ऐसा कहने पर अपने बाहुबल के गर्व से संयुत इन्द्र भगवान् शम्भु से बोला—मैंने सग्राम तो संवृत कर लिया है ।१८। जहाँ पर आपके समान योद्धा हो वही युद्ध है प्रभो ! आप मुझे प्रदान कीजिए । इन्द्र के चले जाने पर उस समय में भगवान् गिरिश ने यह वाक्य कहा था—श्री शंकर बोले—हे गणो ! मेरा वचन आप लोग सुनिए । देवराज इन्द्र अब अत्यन्त गर्व से युक्त हो गया है ।१९-२०।

इत्युक्त्वा क्रोधसंयुक्तोबभूव चततो हरः ।
आविरासात्ततः क्रोधोमूर्त्तिमान्पुरतः ॥२१
घनान्धकारसदृशो मुडं क्रोधस्ततोऽब्रवीत् ।
देहिमे त्वं हि सन्देशकिं करोमि तवप्रभो ॥२२

उमापतिस्तदोवाच गच्च त्वं वासव जय ।
स्वर्गसिन्धुं समासाद्य सागरस्य च वीर्यवान् ॥२३
इत्युक्तोऽन्तर्दधे क्रोधो गणास्ते विस्मयं ययुः ।
ईशानकल्पे जाते तु कामेनार्णवसङ्गमे ॥२४
नाकसिन्धुस्तदा मत्ता स्वयौवनभरोष्मणा ।
तां दृष्ट्वा सिन्धुराजश्च जलकल्लोलवानभूत ॥२५
तदाबभूव राजेन्द्र गङ्गासागरसङ्गमः ।
महानदी तदा प्राप्य रेमे चात्मवलेन च ॥२६
अत्रान्तरे समुद्रस्य बभूव सुभटस्ततः ।
सूनुस्तस्यां महानद्यां समुद्रादभवद्वली ॥२७
महार्णवतनूजेन जातमात्रेण पार्थिव ।
रुदतोन्कम्पिता पृथ्वी त्रिलोका नादिताऽभवत् ॥२८

नारदजी ने कहा—इसके अनन्तर यह इतना मात्र कहकर भगवान् हर अत्यन्त क्रोध से संयुक्त हो गये थे । उसी समय में मूर्तिमान क्रोध हर के सामने प्रकट होकर स्थित हो गया था ।२१। अत्यन्त घनीभूत अन्धकार से तुल्य वह मूर्तिमान क्रोध भगवान् शिव से बोला—हे प्रभो ! अब आप मुझे सन्देश प्रदान करें कि मैं अब क्या कर्म करूँ ।२२। उस समय में उमा के पति ने कहा—तुम जाओ, इन्द्र को पराजित करो । तुम तो अत्यन्त वीर्यमान् हो, सागर के स्वर्ग सिन्धु पर पहुँच जाओ ।२३। इस प्रकार से कहे गये क्रोध देव उसी समय अन्तर्हित हो गये । सब गण लोगों को बड़ा भारी विस्मय हुआ था । इच्छा से ही ईशान के समान अर्णव संगम के समुत्पन्न होने पर अपने यौवन के भार की ऊष्मा से उस समय नाक (स्वर्ग) सिन्धु मत्त हो गई थी । उसको देखकर सिन्धुराज जल की कल्लोलों से युक्त हो गया था ।२४-२५। उस समय में हे राजेन्द्र ! गङ्गा सागर का संगम हुआ था । उस अवसर पर महानदी प्राप्त करके आत्म बल से उसने रमण किया था ।२६। इसी बीच में समुद्र का सुभट हुआ था । इसके पश्चात् उस महानदी में समुद्र से एक बलवान् पुत्र हुआ था ।२७। हे पार्थिव !

उस महार्णव के पुत्र में उत्पन्न होते हुए ही जब रुदन किया था तो सम्पूर्ण पृथ्वी कम्पित हो गई थी और तीनों लोक सुनादित हो गये थे ।२८

समाधिबद्धमुद्रां च सन्तत्याज चतुर्मुखः ।
अत्रान्तरे परित्रस्तां तां संवीक्ष्य जगत्त्रयीम् ॥२९
धातासुरेन्द्रवाक्येन प्रजगाम महार्णवम् ।
आश्चर्यमिति सञ्चिन्त्य हंसारूढोजवाद्ययौ ॥३०
ब्रह्माणमागतं वीक्ष्य सपर्यां विदधेऽर्णवः ।
तमुवाचततो ब्रह्माकिं गर्जसि वृथाऽम्बुधे ॥३१
नाहं गर्जामिगर्जामि मत्सुतो बलबान्प्रभो ।
शिशोर्वै कुरु रक्षां च दुर्ल्लभं तव दर्शनम ॥३२
सन्दृश्यतां च तनयो भार्या प्राहातिशोभनाम् ।
ययौ सा भर्तुरादेशात्सपुत्रा ब्रह्मणोऽन्तिके ॥३३
उत्सङ्गदेशे चतुराननस्य विधाय पुत्रं चरणौ ननाम ।
तदा समुद्रात्मजमद्भुतं तं ।
दृष्ट्वा विधातुः किल विस्मयोऽभूत् ॥३४
गृहीतकूर्चस्य शिशोः करं च
यदा विरिञ्चिर्न शशाक मोचितुम् ।
तदा समुद्रः प्रहसन्प्रयातः कूर्चं प्रगृह्यार्भकर विमोचयन् ॥३५
तादृशं तस्य वालस्य दृष्ट्वा विक्रममात्मभूः ।
प्रीत्या जालन्धरेत्याह नाम्ना जालन्धरोऽभवत् ॥३६
वरं ददावथोतस्य प्रणयेन प्रजापतिः ।
अय जालन्धरो देवैरजेयश्च भविष्यति ॥३७
पातालसहितं नाकं मत्प्रसादेन भोक्ष्यति ।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे ब्रह्मा हंसमारुह्य सत्वरः ॥३८

चतुर्मुख ब्रह्मा ने समाधि में बद्ध मुद्रा का त्याग किया था । इसी बीच में उस जगतत्रयी को परित्रस्त देखा था ।२९। धाता (ब्रह्मा) सुरेन्द्र के वाक्य से महार्णव में आ गये । वे समुद्र को बहुत ही आश्चर्य

हुआ था—यह क्या हो गया—यही मन में विचार करते हुए वे हंस पर समारूढ़ होकर बड़ी शीघ्रता से गये थे ।३०। जब अर्णव ने ब्रह्माजी को आये हुए देखा तो उसने उनकी यथा विधि अर्चना की थी । फिर ब्रह्मा जी ने उससे कहा—हे अम्बुधे ! तू वृथा ही क्यों गर्जन कर रहा है ? ।३१। समुद्र ने कहा–हे देवेश ! मैं तो कोई भी अर्चन नहीं कर रहा हूँ किन्तु हे प्रभो ! मेरा पुत्र अत्यन्त वलवान् उत्पन्न हुआ है। आपका दर्शन तो अत्यन्त दुर्लभ है । अब आप कृपा करके इस शिशु की रक्षा कीजिए ।३२। फिर सागर ने अपनी अत्यन्त शोभना भार्या से कहा था कि इनको अपना पुत्र दिखला दो । वह अपने स्वामी के आदेश से पुत्र के सहित ब्रह्माजी के समीप में गई थी ।३३। उस अर्णव की पत्नी ने ब्रह्माजी की गोद में अपने पुत्र को रखकर फिर उसने ब्रह्माजी के चरणों में प्रणाम किया था । उस समय में उस समुद्र के अतीव अद्‌भुत पुत्र को देखकर ब्रह्माजी को वड़ा भारी विस्मय हुआ था ।३४। उस शिशु ने अपने हाथ से ब्रह्माजी की दाढ़ी पकड़ ली थी उस हाथ को अपनी दाढ़ी से पृथक ब्रह्माजी नहीं कर सके थे । उस समय में सागर हंसते हुए वोला और गया था । उसने ब्रह्माजी की दाढ़ी पकड़ कर उस बालक के हाथ को छुड़ाया था ।३५। ब्रह्माजी ने उस बालक का उस प्रकार का अद्‌भुत विक्रम था और प्रसन्नता से उसे 'जालन्धर'—इस नाम से पुकारा था । तभी से उसका नाम जालन्धर हो गया था ।३६। इसके अनन्तर प्रणय में प्रजापति ने उसे वरदान दिया था कि यह जालन्धर देवों के द्वारा भी अजेय हो जायगा ।३७। मेरे प्रसाद से यह पाताल के सहित स्वर्ग लोक का भी भोग करेगा । इतना कहकर अपने हंस पर समारूढ़ होकर ब्रह्मा जी वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ।७।

जन्माष्टमी व्रत विधान

देवदेव ! जगन्नाथ ! भक्तानामभयप्रद ।
व्रतं ब्रूहि महादेव ! कृपांकृत्वा ममोपरि ।।१

सार्वभौमः पुरा ह्यासीद्धरिश्चन्द्रो महीपतिः ।
तस्य तुष्टोऽददाद् ब्रह्मा पुरीं कामदुधां शुभाम् ॥२
सर्वरत्नमयीं दिव्यां बालार्कसदृशप्रभाम् ।
तत्र स्थितो महीपालो सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ॥३
पालयामास धर्मेण पिता पुपमिवौरसम् ।
प्रभूतधनधान्यस्तु पुत्रदौहित्रवान्नृपः ॥४
सपालयच्छुभं राज्यं परं विस्मयमागतः ।
न तादृशमभूत्पूर्वं राज्यं कस्य हि कर्हिचित् ॥५
न चेदृशं नरैरन्यैर्विमानमधिरोहितम् ।
कस्येह कर्मणो व्युष्टिर्येनाहं सुरराडिव ॥६
इति चिन्तापरो भूत्वा विमानवरमास्थितः ।
ददर्श पार्थिववरो मेरुं शिखरिणां वरम् ॥७

श्री देवर्षि नारदजी ने कहा—हे देवों के भी देव ! आप तो इस सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं और अपने भक्तों को अभय का प्रदान करने वाले हैं । हे महादेव ! आप मुझ पर कृपा करके व्रत बतलाने का कष्ट करें ।१। श्री महादेवजी ने कहा—बहुत प्राचीन समय में महीपत हरिश्चन्द्र सार्वभौम नृपति हुआ था । उस पर परम सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा जी ने उसको समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली अतीव शुभ पुरी प्रदान करदी थी ।२। वह पुरी सभी प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण थी और अत्यन्त दिव्य एवं बाल सूर्य के सदृश प्रभा से समन्वित थी । वहां पर स्थित रहने वाला राजा सातों द्वीपों से युक्त वसुन्धरा का पालन किया करता था और इस भाँति धर्म नीति से सबका परिपालन करता था जिस तरह कोई पिता अपने औरस पुत्र का पालन-पोषण किया करता है । वह राजा समस्त धन-धान्यों से युक्त था और पुत्र एवं पौत्रादि से भी समन्वित था ।३-४। उसने अपने राज्य का जो कि अत्यन्त शुभ था, परिपालन करते हुए परम विस्मय से देखा था । इस प्रकार का कभी भी किसी का पहले राज्य नहीं हुआ था ।५। और न इस प्रकार से पहिले कभी मनुष्यों ने विमानों पर अधिरोहण ही किया था । यह किस सुकर्म

का समुदाय है जिसे मैं आज एक सुरों के राजा की भाँति हो रहा हूँ ।६। इसी चिन्तन में परायण होकर राजा एक अति श्रेष्ठ विमान पर अधिरूढ़ हुआ था । इसके अनन्तर उस राजा ने पर्वतों में परम श्रेष्ठ मेरु पर्वत को देखा था ।७।

तत्रास्ते च महात्मासौ द्वितीय इव भास्करः ।
आसीनं पर्वतवरे शैलपट्टे हिरण्मये ॥८
सनत्कुमारं ब्रह्मर्षि ज्ञानयोगपरायणम् ।
दृष्ट्वा ह्यथवातरद्राजा प्रष्टुकामोऽथ विस्मयम् ॥९
ववन्दे चरणौ हृष्टस्तेनापि स च नन्दितः ।
सुखोपविष्टस्तु नृपः पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम् ॥१०
भगवन्दुर्लभा लोके सम्पच्चेय यथा मम ।
कर्मणा केन लभ्येत कश्चाहं पूर्वजन्मनि ।
तत्व कथय मेव सर्वमनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ॥११
शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि पूर्ववृत्तस्य कारणम् ।
येन कृत्वा विशेषेण तव चानुग्रहोऽभवत् ॥१२
त्वमासीः पूर्वजनुषिसुवैश्यः सत्यवाक्छुचिः ।
स्व कर्म ते परित्यक्तं ततस्यक्तस्तुबान्धवैः ॥१३
सत्व वृत्तिपरिक्षीणो भार्ययानुगतस्तथा ।
निर्गतः स्वजनांस्त्यक्त्वा परप्रेषणलिप्सया ॥१४

वहां पर यह महान आत्मा वाला दूसरे सूर्य के ही समान ही रहता था । उस पर्वत श्रेष्ठ पर स्थित एक हिरण्यमय शैल पट्ट पर ज्ञान और योग में परायण ब्रह्मर्षि श्री सनत्कुमार को इसने देखा था वहाँ पर ही यह राजा कुछ पूछने की इच्छा करता हुआ विमान से नीचे पर्वत पर उतर पड़ा था जो कि उसके हृदय में एक अति विचित्र विस्मय हो रहा था उसी के विषय में इसे पूछने की इच्छा हुई थी ।८। ९। इस राजा ने सनत्कुमार की वन्दना की थी और बहुत ही प्रसन्न हुआ था । उनने भी इसका अभिनन्दन किया था । जब राजा सुखपूर्वक उपविष्ट हो गया तो उन मुनियों में परम श्रेष्ठ से

इसने पूछा था—हे भगवन् ! लोक में यह सम्पत्ति परम दुर्लभ है जैसी कि इस समय में मुझे यह प्राप्त है ।१०। यह ऐसी सम्पत्ति किस कर्म के करने से प्राप्त होती है और मैं पूर्व जन्म में कौन था ! यदि आप मुझ पर कृपा करें और मुझे अनुग्रह करने के योग्य पात्र समझते हैं तो मुझे आप यह तात्विक रूप से सब वताने का श्रम लेवें ।११। सनत्कुमारजी ने कहा—हे राजन् ! आप समाहित होकर श्रवण करें मैं पूर्ववृत्त का सम्पूर्ण कारण बतलाता हूँ जिसके करने के कारण से तुझ पर यह सब अनुग्रह हुआ है ।१२। हे राजन् ! आप पहले पूर्व जन्म में सुन्दर एक वैश्व थे जो कि सत्य भाषण करने वाले एवं पवित्र थे। तुमने अपने कर्म का त्याग कर दिया और फिर बांधवों के द्वारा भी त्याग दिया गया था। ।१३। वह तुम वृत्ति से परिक्षीण होकर केवल अपनी भार्या के द्वारा ही अनुगत हुआ था। फिर पर प्रेषण लिप्सा से अपने जनों का त्याग करके निकल गया था ।१४।

न च प्रेषणादो ह्यासीत्काले दुर्भिक्षपीडितः ।
तत कदाचिद्गहने सरश्चोत्फुल्लपङ्कजम् ।।१५
दृष्ट्वा तत्र कृतो भावो गृह्णीवः पङ्कजानिवै ।
एतावदुक्त्वापुष्पाणि तान्यादाय पदे पदे ।।१६
आस्थितौ नगरीं पुण्यां नाम्ना वाराणसी शुभाम् ।
ततो विक्रीणतः कश्चिन्नैव गृह्णाति पंकजम् ।।१७
तन्मठान्निर्गतः कश्चित्तत्रैव प्राङ्गणोस्वितः ।
तत्रस्थाने प्रविशता श्रुतो वदित्रनिस्वनः ।।१८
कस्मिश्च श्रूयतेह्येष वादित्रस्य च निस्वनः ।
इतिपृष्टे तदातूर्ये तेनोक्ते प्रस्थितौऽन्तरम् ।।१६
काशिराजस्तु विख्यात इन्द्रद्युम्नस्तु पार्थिवः ।
तस्यास्ति दुहिता ख्याता नाम्ना चन्द्रावती सती ।।२०

उस समय में वह प्रेषणद नहीं हुआ था और वह दुर्भिक्ष से पीड़ित हो गया था । इसके अनन्तर किसी समय में एक खिले हुए कमलों वाला सरोवर उसने देखा था। वहाँ पर उन पंकजों के ग्रहण

करने का भाव किया था। इतना कहकर उन पुष्पों को लेकर पद पद में आस्थित हुआ था। वह परम पुण्य एवं शुभ वाराणसी नगरी थी। वहां पर वह पंकजों का विक्रय करता था किन्तु कोई भी उन्हें नहीं ग्रहण करता था।१५-१७। उस मठ से कोई निकला था और वहाँ पर ही प्रांगणों में स्थित हो गया था। उस स्थान में प्रवेश करते हुए उसने वादित्र की ध्वनि सुनी थी।१८। यह नादित्र का शब्द किस में सुनाई दे रहा है—ऐसा पूछने पर उस समय उसके द्वारा सूर्य के कहने पर फिर वह रवाना हुआ था।१९। काशिराज इन्द्र द्युम्न राजा परम प्रसिद्ध था। उसकी पुत्री थी जिसका नाम सती चन्द्रावती था।२०।

उपोषिता महाभागा जयन्तीमष्टमीं शुभाम्।
तत्रागतोऽसौ वैश्यस्तु यत्र तिष्ठ तसाःशुभा ॥२१
संतुष्तचित्तः स तदा हर्षंस्तत्रागतो महान्।
तत्रस्थानेत्वया दृष्टो देववैतानिको विधिः ॥२२
आदित्यसहितो यत्र पूज्यते भगवान्हरिः।
तद्भक्त्या चत्त्वयापत्न्यासहपुष्पार्चनं कृतम् ॥२३
शंबैस्तु प्रकरस्तत्र कृतः पुष्पमयस्तथा।
तं दृष्ट्वा विस्मता साह केनेहाभ्यर्चनं कृतम् ॥२४
ज्ञात्वा तत्कर्म तत्सर्वं कृतं संरक्षणं तथा।
ततस्तुष्टा तु सा तुभ्यं ददौ वित्तं वसुस्वयम् ॥२५
त्वया वित्तं नोगृहीतं भोजनामानुमन्त्रितः।
न गृहीतं भोजनं च न च वित्तं त्वया तदा ॥२६
आदित्यो विष्णुसंयुक्तः पूजितोऽसौ यथाविधि।
ततः प्रभातसमये रक्षमाणस्तया सदा ॥२७
विश्रम्भयित्वा तान्सर्वान्निर्गतोऽसि यथेच्छया।
तदेतदन्यजनुषि सुकृतं चार्चितं त्वया ॥२८
पञ्चत्वं च त्वया प्राप्तं स्वीयकर्मानुयोगतः।
तेन पुण्येन महता विमानमागसत्तदा ॥२९
तत्फलं भुज्यते भूप ! पूर्वजन्मकृतं च यत् ॥३०

उस महान् भाग्य वाली ने शुभ जयन्ती अष्टमी का उपवास किया था। वहीं पर यह वैश्य आ गया था जहाँ पर कि वह शुभा स्थित रहती थी।२१। उस अवसर पर वह सन्तुष्ट चित्त वाला हो गया था और वहाँ पर उसे महान् हर्ष हुआ था। उस स्थान पर तुमने देव वैधानिक विधान को देखा था।२२। जहाँ पर आदित्य के सहित भगवान् श्रीहरि का पूजन किया जाता है। उसकी भक्ति के भाव से तुमने अपनी पत्नी के साथ पुष्पों से समर्चन किया था। शेष जो थे उनसे वहाँ पर एक पुष्पमय प्रकट किया गया था। उसको देखकर अत्यन्त विस्मय युक्त हो गई थी और उनसे कहा था कि यह पुष्पों से किसने अर्चन किया है।२३-२४। उसको वह सब कर्म जानकर उसका भली-भाँति रक्षण भी किया था। इसके अनन्तर वह बहुत ही सन्तुष्ट हो गई और उसने उसके लिए स्वय बहुत सा धन दिया था।२५। आपने वह वित्त ग्रहण नहीं किया था। भोजन के लिए भी तुमको आमन्त्रित किया था किन्तु तुमने भोजन भी ग्रहण नहीं किया था और वित्त भी उस समय में नहीं स्वीकार किया था।२६। भगवान आदित्य का विष्णु भगवान से सयुक्त विधि पूर्वक पूजन किया था। इसके उपरान्त प्रभात के समय में उसके द्वारा सदा रक्षमाण रहता था।२७। उन सबको विश्रम्भित करके अपनी इच्छा के अनुसार निकल गया था। अन्य जन्म में वह यह सुकृत तुमने अर्जित किया था।२८। फिर अपने कर्मों के अनुयोग से तुमने पञ्चत्व (मृत्यु) की प्राप्ति की थी। उसी महान् पुण्य से उस समय में विमान आया था।२९। हे भूप ! पूर्व जन्म में किया हुआ जो सुकृत था उसी का फल इस समय में आपके द्वारा भोगा जा रहा है।३०।

केनैव च विधानेन कस्मिन्मासे च सा तिथिः।
कर्त्तव्या तन्ममाचक्ष्व अनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ।।३१
शृणुष्वावहितो राजन्कथ्यमानं मया तव।
श्रावस्य तु मासस्य कृष्णपक्षाष्टमीं नराधिप ।।३२

रोहिणी यदि लभ्यते जयन्ती नाम सा तिथिः ।
भूयो भूयो महाराज ! भवेज्जन्मनि कारणम् ।।३३
विधानमस्या वक्ष्यामि यथोक्तं ब्रह्मणा मम ।
यत्कृत्वामुक्तपापस्तुविष्णुलोधं प्रगच्छति ।।३४
उपोषिस्ततः कृत्वा स्नानं कृष्णतिलैः सह ।
स्थापयेदव्रणं कुम्भं पंचरत्नसमन्वितम् ।।३५

हरिश्चन्द्र ने कहा—यदि मैं आपके द्वारा अनुग्रह करने के योग्य पात्र हूँ तो आप कृपा करके मुझे यह बतलाइये किस विध विधान से, किस मास में कौन सी वह तिथि है जो करनी चाहिए ।३१। सनत्कुमार ने कहा—हे राजन् ! अब आप खूब सावधान चित्त वाले होकर श्रवण करिये जिसे कि मैं आपको बतलाता हूँ । हे नराधिप ! श्रवण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में यदि रोहिणी नक्षत्र प्राप्त हो जावे तो वही तिथि जयन्ती मानी जाती है । हे महाराज ! पुनः-पुनः जन्म में कारण होती है ।३२-३३। इसका विधान भी मैं बतलाता हूँ जैसा कि ब्रह्माजी ने स्वयं मुझसे कहा था । इसके करने का बड़ा महान पुण्य होता है और इसको करके समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और इसके करने वाला सीधा विष्णु लोक को चला जाता है ।३४। उस दिन उपवास करे और काले तिलों के सहित जल से स्नान करना चाहिए । फिर एक घट की स्थापना करे जो घट व्रण रहित होना चाहिए । उसमें पाँच रत्न भी प्रक्षिप्त करने चाहिये ।३५।

क्षीरादिस्नपनं कृत्वा चन्दनेनानुलेपयेत् ।
श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं पुष्पमालोपशोभितम् ।।३६
नैवेद्यैर्विविधैर्भक्ष्यैः फलैर्नानाविधैरपि ।
दीपं च कारयेत्तत्र पुष्पमण्डपशोभितम् ।।३७
गीतं नृत्यं च वाद्यं चकारयेद्भक्तिमान्बुधैः ।
एवं कृत्वा विधानं तु यथाविभवसारतः ।
गुरुं संपूजयेत्पश्चात्पूजां तत्र समापयेत् ।।३८

फिर क्षीरादि से स्नपन करके चन्दन से अनुलेपन करे और अंगुष्ठ मात्र शशी तथा अंगुल की रोहिणी निर्मित करके जगत् के पति गोविन्द का स्नपनादि करे। श्वेत वस्त्र के जोड़े से आच्छन्न करे तथा पुष्पों की मालाओं से उपशोभित करना चाहिये।३६। विविध भाँति के नैवेद्यों के द्वारा एवं भक्ष फलों के द्वारा जो कि अनेक तरह के हों अर्चन करें। दीपक बनावे जो कि पुष्प मण्डल से सुशोभित हो।३७। बुध पुरुषों के सहित भक्तिमान् पुरुष को गीत-नृत्य और वाद्य आदि सब कराना चाहिये। अपने विभव के अनुसार इस प्रकार से यह सम्पूर्ण विधान सम्पन्न करना चाहिये। फिर अपने श्री गुरु चरण की पूजा करें और वहाँ पर व्रत का समापन करना चाहिये।३८।

शनि पीड़ा निवारण विधान

शनिपीडा कथं याति तन्मे वद सुरोत्तम।
त्वन्मुखाच्छ्रूयते यद्धै तेन जन्तुः प्रमुच्यते ॥१
देवर्षे ! शृणु वृत्तान्तं येन मुच्येत बन्धनात्।
ग्रहाणां ग्रहराजोऽयं सौरिः सर्वमहेश्वरः ॥२
अयन्तु देवो विख्यातः कालरूपी महाग्रहः।
जटिलो वजरोमा च दानवानां भयङ्करः ॥३
तस्याख्यानं च लोकेऽस्मिन्प्रथितं नास्ति वै प्रभो।
मया गुप्तं विशेषेण नोक्तं हि कस्यचित्कदा ॥४
रघुवंशेऽति विख्यातो राजा दशरथः पुरा।
चक्रवर्ती महावीरः सप्तद्वीपाधिपोऽभवत् ॥५
कृत्तिकान्ते शनि ज्ञात्वा देवज्ञैर्ज्ञापितो हि सः।
रोहिणी भेदयित्वा च शनिर्यास्यति साम्प्रतम् ॥६
शाकटं भेदमत्युग्रं सुरासुराभयङ्करम्।
द्वादशाब्दं तु दुर्भिक्षं भविष्यति सुदारुणम् ॥७

नारदजी ने कहा—हे सुरोत्तम शनिदेव की पीड़ा कैसे जाती है यह आप मुझे बतलाइये। आपके मुख से जो भी सुना जाता है

उससे जन्तु की प्रमुक्ति हो जाया करती है महादेवजी ने कहा—हे देवर्षिप्रवर ! आप मुझसे वृत्तान्त सुनिये। यह ऐसा वृत्तान्त है कि मनुष्य इसके श्रवण करने से बन्धन से मुक्त हो जाया करता है। यह समस्त ग्रहों का राजा है। यह सूर्य का पुत्र है और सर्व महेश्वर है ।१-२। यह देव कालरूप वाला महाग्रह संसार में विख्यात है। यह जटिल अर्थात् जटाधारी है और वज्र के तुल्य रोमों वाला एवं दानवों को भी महान् भयंकर हैं ।३। हे प्रभो ! इस लोक में उसका आख्यान प्रसिद्ध नहीं है। मैंने इसे विशेष रूप से गोपनीय रक्खा है और कभी भी किसी से इसको नहीं कहा हैं ।४। पहिले रघु महाराज के वंश में दशरथ नाम धारी राजा वहुत ही विख्यात हुए थे। वह राजा चक्रवर्ती—महान् पराक्रमी और सात द्वीपों के अधिपति हुए थे। ।५। कृत्तिकान्त में शनि को जानकर दैवज्ञ लोगों ने इसे जनाया था वह शनि रोहिणी का भेदन करके अब जाया करता है ।६। शाकट भेद अत्यन्त ही उग्र है जो कि सुर तथा असुर सभी के लिए बड़ा ही भयंकर होता है। बारह वर्ष तक वहुत ही दारुण दुर्भिक्ष उसमें हुआ करता है ।७।

एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं मन्त्रिभिः सह पार्थिवः ।
मन्त्रयामास किमिदं भयङ्करमुपस्थितम् ॥८
आकुलं च जगद्दृष्ट्वा पौरजानपदादिकम् ।
ब्रुवन्ति सर्वतो लोकाः क्षय एष समागतः ॥९
देशाः सनगरा ग्रामा भयभीताः समन्ततः ।
पप्रच्छप्रयतो राजा वसिष्ठप्रमुखान्द्विजान् ॥१०
सम्विधानं किमत्रास्ति ब्रूत मां हि द्विजोत्तमाः ॥११
प्राजापत्यमृक्षमिदं तस्मिन्भिन्ने कुतः प्रजाः ।
अयं योगो ह्मासाध्यस्तु ब्रह्मशक्रादिभिस्तथा ॥१२
इति सचिन्त्य मनसा साहसं परमं महत् ।
समादाय धनुर्दिव्यं दिव्यायुधसमन्वितम् ॥१३

रथमारुह्य वेगेन गतो नक्षत्रमण्डलम् ।
सपादं योजनं लक्षं सूर्यस्योपरि संस्थितम् ॥१४

यह वाक्य श्रवण करके मन्त्रियों के सहित राजा ने मन्त्रणा की थी कि यह क्या भयंकर स्थिति उपस्थिति हो गई है ।८। समस्त जगत् और पौर जानपद आदि को अत्यन्त आकुल देखकर सब लोग यही कहते थे कि यह तो क्षय होने का समय आ गया है ।९। समस्त देश और नगर तथा ग्राम चारों ओर से भयभीत हो गये थे । राजा ने बहुत प्रयत होकर वसिष्ठ आदि परम प्रमुख द्विजों से पूछा था कि हे द्विजोत्तम ! इसमें क्या समिधान है उसे मुझे बतलाइये ।१०-११। वसिष्ठ जी ने कहा—गह तो प्राजापत्य ऋक्ष है। इसके भिन्न हो जाने पर प्रजा कहाँ रह सकती है । यह योग्य बड़ा असाध्य है, ब्रह्मा और शक्र आदि भी इसे साध्य नहीं कर सकते हैं ।१२। यह भली भाँति चिन्तन करके परम महान् साहस बटोर कर दिव्य आयुध से युक्त धनुष लेकर वेग के साथ रथ पर समारूढ़ होकर नक्षत्र मण्डल में पहुँचे जो कि सूर्य के भी ऊपर सवा लक्ष योजन पर संस्थित है ।१३-१४।

रोहिणीपृष्ठमास्थाय राजा दशरथः पुरा ।
रथे तु काञ्चने दिव्ये मणिरत्नविभूषिते ॥१५
हंसवर्णहयैयुक्ते महाकेतुसमुच्छ्रये ।
दीप्यमानो महारत्नैः किरीटमुकुटोज्ज्वलः ॥१६
बभ्राज स तदाऽऽकाशे द्वितीय इव भास्करः ।
आकर्णपूर्णचापे तु संहारास्त्रं न्ययोजयत् ॥१७
संहारास्त्रं शनिर्दृष्ट्वा सुरासुरभयंकरम् ।
हसित्वा तद्भयात्सौरिरिदं वचनमब्रवीत् ॥१८
पौरुषं तव राजेन्द्र परं रिपुभयङ्करम् ।
देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः ॥१९
मया विलोकिला राज न्भस्मसान्न भवन्तिते ।
तुष्टोऽहंतव राजेन्द्र तपसा पौरुषेणच ।
वरं ब्रूहि प्रदास्यामि मनसा यदिकमिच्छसि ॥२०

रोहिणी के पृष्ठ पर समास्थित होकर महाराज दशरथ प्राचीनकाल में बहुत पहिले मणियों और रत्नों से सुशोभित काञ्चन दिव्य रथ में विराजमान थे।१५। वह रथ हंस के तुल्य श्वेत वर्ण वाले अश्वों से युक्त था और उस पर एक बहुत बड़ा झण्डा लगा हुआ था जिससे उसकी ऊँचाई अधिक हो रही थी। महान् मूल्यवान रत्नों से देदीप्यमान होने वाले तथा किरीट और मुकुट से समुज्ज्वल महाराज दशरथ उस समय में आकाश में द्वितीय सूर्य की भाँति ही भ्राजमान हो रहे थे। कर्ण पर्यन्त पूरा खिचा हुआ जो चाप था उस पर उन्होंने संहारास्त्र को नियोजित किया था।१६-१७। सुरों तथा असुरों सब को महान् भय करने वाले उस संहारास्त्र को देख कर शनि ने हँस कर उसके भय से सौरि अर्थात् शनि ने यह वचन कहा था—।१८। शनि बोला—हे राजेन्द्र ! आप का पौरुष आपके शत्रुओं के लिए परम भयंकर है। देव-असुर और मनुष्य तथा सिद्ध--विद्याधर और उरग ये सब हे राजन् ! भस्म के तुल्य होते हुए मैंने देखे हैं। हे राजेन्द्र ! मैं आपसे बहुत ही सन्तुष्ट हो गया हूँ क्योंकि आपका तप महान् है और आप में पुरुषार्थ भी अत्यधिक है। अब आप वरदान मांगलो, जो भी कुछ आपके मन में अभीष्टतम हो, मैं उसे देता हूँ। अब आप चाहते क्या हैं ? ।१९-२०।

रोहिणीं भेदयित्वा तु न गन्तव्यं कदाचन।
सरितः सागराः यावद्यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥२१
याचितं तु मया सौरे ! नान्यमिच्छामि ते वरम्।
एवमस्तु शनिः प्राह वरं दत्त्वा तु शाश्वतम् ॥२२
पुनरेवाब्रवीत्तुष्टो वरं वरय सूव्रत !।
प्रार्थयामास हृष्टात्मा वरमन्यं शनेस्तशा ॥२३
न भेत्तव्यं हि शकटं त्वया भास्करनन्दन।
द्वादशाब्दंतु दुर्भिक्षं न कर्तव्यं कदाचन ॥२४
द्वादशाब्दं त्वु दुर्भिक्षं न कदाचित्भविष्यति।
कीर्तिरेषा त्वदीया च त्रैलोक्ये भविष्यति ॥२५

वरद्वयं तु सम्प्राप्य हृष्टरोमा च पार्थिवः।
रथोपरि धनुर्मुक्त्वा भूत्वा चैव कृताञ्जलिः ॥२६
ध्यात्वा सरस्वतीं देवीं गणनाथं विनायकम्।
राजा दशरथः स्तोत्रं सौरेरिदमथाब्रवीत् ॥२७

महाराज दशरथ ने कहा—देखो प्रथम तो यही बात है कि आपको रोहिणी का भेदन करके किसी भी समय में नहीं जाना चाहिए। सरिताऐं—सागर और जहाँ तक चन्द्र एवं सूर्य तथा मेदिनी है।२१। हे सौरे! यही मैं याचना करता हूँ इसके अतिरिक्त मुझे अन्य आपका कोई वरदान नहीं अभीष्ट है। उस समय में शनि ने कहा—'एवमस्तु'-अर्थात् ऐसा ही होगा। यही शाश्वत वरदान प्रदान कर फिर भी शनि ने कहा था कि मैं बहुत तुष्ट हूँ हे सुव्रत! अन्य कोई वरदान का वरण करो। उस समय में शनि ने अन्य वरदान की याचना करने के लिए प्रसन्नचित्त होकर महाराज दशरथ से प्रार्थना की थी।२१-२३। फिर दशरथ ने कहा—हे भास्कर नन्दन! आपको कभी भी शकट का भेदन नहीं करना चाहिए। बारह वर्ष पर्यन्त ऐसा भयानक दुर्भिक्ष (अकाल) कभी नहीं करना चाहिए।२४। शनि कहा—बारह वर्ष तक का दुर्भिक्ष तो कभी नहीं होगा और यह कीर्त्ति आपकी त्रिभुवन में विचरण करेगी।२५। इस प्रकार से ये दो वरदान सम्प्राप्त करके राजा बहुत ही प्रसन्न हुए थे और फिर रथ पर आरूढ़ होकर धनुष को उतार कर कृताञ्जलि हो गये थे। राजा ने देवी सरस्वती का ध्यान करके तथा गणोंके नायक गणेश का ध्यान करके राजा दशरथ ने शनि का यह स्तोत्र कहा था।२६-२७।

नमः कृष्णाय नीलाय शितिकण्ठनिभाय च।
नमः कालाग्निरूपाय कृतान्ताय च वै नमः ॥२८
नमो निर्मांसदेहाय दीर्घश्मश्रुजटाय च।
नमो विशालनेत्राय शुष्कोदर भयाकृते ॥२९
नमः पुष्कलगात्राय स्थूलरोम्णेऽथ वै नमः।
नमो दीर्घायशुष्काय कालदंष्ट्र नमोऽस्तुते ॥३०

नमस्ते कोटराक्षाय दुर्निरीक्ष्याय वै नमः ।
नमो घोराय रौद्राय भीषणाय कपालिने ॥३१
नमस्ते सर्वभक्षाय वलीमुख नमोऽस्तु ते ।
सूर्यपुत्र नमस्तेऽस्तु भास्करे भयदाय च ॥३२
अधोदृष्टे ! नमस्तेऽस्तु संवर्तक ! नमोऽस्तु ते ।
नमो मन्दगते ! तुभ्यं निस्त्रिंशाय नमोऽस्तु ते ॥३३
तपसा दग्धदेहाय नित्यं योगरताय च ।
नमो नित्यं क्षुधार्ताय अतृप्ताय च वै नमः ॥३४
ज्ञानचक्षुर्नमस्तेऽस्तु कश्यपात्मजसूनवे ।
तुष्टो ददासि वै राज्यं रुष्टो हरसि तत्क्षणात् ॥३५

महाराज दशरथ ने कहा—कृष्ण वर्ण वाले—नील वर्ण से युक्त, शितिकण्ड के तुल्य-कालाग्नि के स्वरूप वाले और कृतान्त के लिये बारम्बार नमस्कार है।२८। बिना माँस वाले देह से युक्त के लिए नमस्कार है। दीर्घ दाढ़ी-मूँछ और जटा धारण करने वाले के लिये नमस्कार है। विशाल नेत्रों से समन्वित और शुष्क उदर तथा भयप्रद आकृति वाले के लिये नमस्कार है।२९। शुष्कय गात्र के लिए प्रणाम है। या स्थूल रोमों वाले के लिए नमस्कार है। दीर्घ-शुष्क तथा काल की दाढ़ के सदृश के लिए हमारा प्रणाम है। कोटर के तुल्य नेत्रों वाले के लिए और बड़ी कठिनाई से निरीक्षण करने के योग्य आपके लिए प्रणाम है। परमघोर-रौद्र—भीषण तथा कपाल धारी के लिए नमस्कार है। सभी कुछ भक्षण करने वाले के लिए हे वली मुख! आपके लिए हमारा नमस्कार है। हे सूर्य पुत्र! भास्कर को भी भय देने वाली आपकी सेवा में हमारा नमस्कार है॥ हे मन्दगति वाले ! निस्त्रिंश आपके लिए हमारा प्रणाम है।३३। तपश्चर्या से अपने देह को दग्ध कर देने और नित्य ही योग में रत रहने वाले आपकी सेवा से हमारा नित्य प्रणाम है। क्षुधा से आर्त्त और अतृप्त आपके लिए हमारा नमस्कार है।३४। ज्ञान की चक्षु वाले आपके लिए नमस्कार है। कश्यप महर्षि

के आत्मज सार्थं के पुत्र आपकी सेवा में हमारा प्रणाम है। आप यदि किसी मनुष्य पर परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हो जाया करते हैं तो आप राज्य जैसा महान् अतुल वैभव प्रदान कर दिया करते हैं और यदि आप किसी भी व्यक्ति से रुष्ट हो जाते हैं तो राज्य के वैभव को भी तत्क्षण में ही अपहरण कर उसे नष्ट-भ्रष्ट ही कर दिया करते हैं ।३५।

देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः ।
त्वयातिलोकिताः सर्वे नाशं यान्ति समूलतः ।।३६
प्रसाद कुरु मे देव वरार्होऽहमुपागतः ।
एवं स्तुतस्तदा सौरिर्ग्रहराजो महाबलः ।।३७
अब्रवीच्च पुनर्वाक्यं हृष्टरोमा तु भास्करिः ।
तुष्टोऽहं तव राजेन्द्र स्तवेनानेन सुव्रत ।
वरं ब्रूहि प्रदास्यामि स्वेच्छया रघुनन्दन ! ।।३८
अद्यप्रभृति ते सौरे पीडाकार्या न कस्यचित् ।
देवासुरमनुष्याणां पशुपक्षिसरीसृपाम् ।।३९
गृह्णान्तीत ग्रहाः सर्वेग्रहाः पीडाकराः स्मृताः ।
अदेयं याचितं राजन्किचिद्युक्तं वदाम्यहम् ।।४०
त्वदा प्रोक्तमिदं स्तोत्रं य पठिष्यति मानवः ।
एककाल ।द्विकालं वा पीडामुक्तौ भवेत्क्षणात् ।।४१
देवासुरमनुष्याणां सिद्धविद्याध्ररक्षसाम् ।
मृत्युं मृत्युगतो दद्यां जन्मन्यन्ते चतुर्थके ।।४२

हे शनि देव ! देव हों या असुर तथा मनुष्य हों, सिद्ध हों अथवा विद्याधर तथा उरग हों कोई भी क्यों न हों, यदि आपकी दृष्टि उन पर पड़ गई अर्थात् बुरी दृष्टि से आपने उन्हें देख लिया तो वे सब मूल के सहित नाश को प्राप्त हो जाया करते हैं ।३६। हे देव ! आप मुझ पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करिये । मैं तो आपके वरदान प्रदान करने के योग्य पात्र हूँ और आपकी सेवा में समुपस्थित हो गया हूँ। इस प्रकार से स्तुति किया गया उस समय में सौरि (शनि) जो कि ग्रहों का राजा और महान् बलवानथे अत्यन्त प्रसन्न होकर भास्करके पुत्र ने पुनः वाक्य

कहा—हे राजेन्द्र ! मैं आप से बहुत ही सन्तुष्ट हो गया हूँ। हे सुव्रत ! आपके इस स्तव से मुझे परम प्रसन्नता हुई है। आप वरदान माँग लो। हे रघुनन्दन ! जो आपकी इच्छा हो मुझ से याचना कर सकते हैं, मैं अवश्य ही प्रदान कर दूँगा ।३७-३८। महाराज दशरथ ने कहा—हे सौरे ! आज से लेकर आपको किसी भी व्यक्ति को पीड़ा नहीं देनी चाहिए चाहे कोई देवता हो असुर हो, मनुष्य हो, पशु-पक्षी सरीसृप हो ।३९। शनि ने कहा—ग्रह शब्द का अर्थ ही यह होता है कि जो ग्रहण किया करते हैं वे ही ग्रह कहलाते हैं। समस्त ग्रह पीड़ा के करने वाले ही हुआ करते हैं। हे राजन् ! आपने जो भी अदेय है वही माँगा है। इसमें जो किञ्चित् युक्त है उसी को मैं बोलता हूँ ।४०। आपके द्वारा पढ़ा हुआ यह स्तोत्र जो भी मानव पढ़ेगा। एक वार या दिन में दो वार जो इसका पाठ करेगा वह मनुष्य उसी क्षण पीड़ा से मुक्त हो जायगा ।४१। देव-असुर-मनुष्य-सिद्ध-विद्याधर-और राक्षसों को जन्म में, चतुर्थ, में, अन्त में होने पर मृत्युगत होकर मृत्यु देता हूँ ।४२।

य पुनः श्रद्धयायुक्तः शुचिर्भूत्वा समाहितः।
शमीपत्रैः समभ्यर्च्य प्रतिमां लोहजां मम ॥४३
माषौदनतिलैर्मिश्रं दद्याल्लोहं च दक्षिणाम्।
कृष्णां गां वृहमं वाऽपि यो वै दद्यात् द्विजातये ॥४४
मद्दिने तु विशेषेण स्तोत्रेणानेन पूजयेत्।
पूजयित्वा जपेत्स्तोत्रं भुत्वाचैव कृताञ्जलिः ॥
तस्य पीडां न चैवाहं करिष्यामि कदाचन।
गोचरे जन्मलग्ने वा दशास्वन्तर्दशासु च ॥४६
रक्षाभि समतं तस्य पीडांचापि ग्रहस्य च।
अनेनैव विधानेन पीडामुक्तं जगद्भवेत् ॥४७
एवं युक्त्या मया दत्ते वरस्ते रघुनन्दन।
वरत्रयं तु संप्राप्य राजा दशरथस्तदा ॥४८
मेने कृतार्थमात्मानं नमस्कृत्य शनैश्चरम्।
शनिना चाभ्यनुज्ञातो रथमारुह्य वेगवान् ॥४९

जो भी फिर श्रद्धा से युक्त पवित्र होकर परम सावधान होता हुआ मेरी लौह की मूर्ति बनवा कर शमी के पत्तों से समभ्यर्चन करता है ।४३। उर्द-ओदन और तिलों से मिश्रित लोहे की जो दक्षिणा देता है। काली गाय-वृषभ को जो कोई ब्राह्मण को दान देता है ।४४। मेरे दिन में अर्थात् शनिवार के दिन विशेष रूप से इस आपके द्वारा पढ़े हुए स्तोत्र से मेरी पूजा करनी चाहिए। पूजा करके फिर इस स्तोत्र का जाप करे और फिर कृतांजलि होवे ।४५। इस प्रकार से पूजा करने वाले व्यक्ति की मैं कभी भी उत्पीड़ित नहीं किया करता हूँ। गोचर में अथवा जन्म लग्न में, दशा में अथवा अन्तर्दशा में मैं सर्वदा रक्षा किया करता हूँ और अन्य ग्रह की पीड़ा से भी रक्षा किया करता हूँ। इसी विधान से यह जगत पोड़ी से मुक्त होता है ।४६-४७। हे रघुनन्दन। इस प्रकार से मैंने आपको वरदान दिया है। इस तरह तीन वरदान प्राप्त करके राजा दशरथ ने उस समय में अपने आपको कृतार्थ माना था। फिर शनि देव को नमस्कार करके शनि के द्वारा अभ्यनुज्ञात होकर वेग से युक्त रथ पर समारूढ़ हो गये थे ।४८-४९।

स्वस्थानं गतवान्राजा प्राप्तश्रेयोऽभवत्तदा ।
य इदं प्रातरुत्थाय शनिवारे स्तव पठेत् ॥५०
पठमचानमिदंस्तोत्रं श्रद्धयाय: शृणोति च ।
नर: स मुच्यते पापात्स्वर्गलोके महीयते ॥५१
राज्ञा दशरथेनोक्तं शनेः स्तोत्रं च शारदम् ।
परमायुष्करं वल्यं सर्वपीडाविनाशनम् ॥५२
कान्तिदं पुत्रदं चैव ग्रहशान्तिकरं परम् ।
ईदृशं नास्ति लोकेऽस्मिन्पावनं भुवि दुर्लभम् ॥५३
वृद्धाख्ये नगरे रम्ये तत्र तीर्थं ह्यनुत्तमम् ।
श्रावणेमासि गन्तव्यं तस्मिस्तीर्थे ह्यनुत्तमे ॥५४
वसन्ति ब्राह्मणा यत्र वृद्धाख्यं च पुरं महत् ।
शनेः सरोवरं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥५५

तत्र गत्वा नरश्रेष्ठ स्नानंचैव समाचरेत् ।
ग्रहपीड़ा विनश्यन्ति इत्येवं ब्रह्मणो वचः ॥५६
चतुरशीतिसहस्राणि तीर्थानि तत्र वा ऋषे ।
नगरं वृद्धसंज्ञं तु कथितं ब्रह्मसूनवे ॥५७
महेशेनैव रचितं यत्र तीर्थं तु वर्तते ॥५८

उस समय में राजा दशरथ श्रेय प्राप्त करके अपने स्थान पर चले गये थे । इस कथा को जो मनुष्य शनिवार के दिन प्रातःकाल से ही उठ कर पढ़ता है तथा स्तव का पाठ करता है या पढ़े हुये इस स्वय को जो श्रद्धाभाव से श्रवण किया करता हैं वह मनुष्य पापों से मुक्त हो जाताहै और मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है ।५०-५१। इस शनि के स्तोत्र को राजा दशरथ ने कहा था । यह शारद परम आयु की वृद्धि करने वाला तथा बल प्रदाता और समस्त पीड़ाओं के विनाश करने वाला है ।५२। इसका प्रभाव है कि इससे कान्ति तथा पुत्र की प्राप्ति होती है और परम ग्रह शान्ति करने वाला है । इस प्रकार का अन्य इस लोक में परम-पावन कोई भी नही है । यह भूलोक में अत्यन्त दुर्लभ है ।५३। वृद्ध नामक सुरम्य नगर में एक अत्युत्तम तीर्थ हैं । श्रावण के मास में उस सर्वश्रेष्ठ तीर्थ में जाना चाहिए ।५४। जहाँ नगर में ब्राह्मण जाति के लोग ही निवास करते हैं । वह वृद्ध संज्ञा वाला नगर एक महान् नगर है । वहाँ पर शनि देव का एक परम पवित्र सरोवर है जहाँ कि सम्पूर्ण प्रकार के पापों का विनाश हो जाया करता है ।५५। हे नर श्रेष्ठ ! वहाँ पहुँच कर उस सरोवर में स्नान करना चाहिए । इससे ग्रह जनित पीड़ाऐं समूल विनष्ट हो जाया करती हैं—इस प्रकार का ब्रह्माजी का वचन है ।५६। हे ऋषिवर ! वहाँ पर चौरासी हजार तीर्थ हैं । वृद्ध संज्ञा वाला नगर ब्रह्माजी के पुत्र को कहा था । भगवान् महेश ने ही इस तीर्थ की रचना की थी ।५७-५८।

।। विष्णु सहस्त्र नाम महिमा ।।

ब्राह्मणा वा क्षत्रिया वावैश्वा वा गिरिकन्यके ।
शूद्रा वाथ विशेषेण पठम्युनुदिनंयदि ।।१
धनधान्यसमायुक्ता यपान्ति विष्णोः परं पदम् ।
श्लोकं वा श्लोकमर्धमेव वा ।।२
पठनान्मोक्षमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ।
विन्यासेन युतं देवि विष्णोर्नामसहस्रकम् ।।३
ये पठन्ति नरश्रेष्ठास्ते यान्ति पदमव्ययम् ।
एककाल द्विकालं वा त्रिकालं वाऽथ यः पठेत् ।।४
किमन्यद्बहुनोक्तेन भूयो भूया वरानने ।
धनायुर्वर्धते तस्य यावदिनद्राश्चतुर्दश ।
पूत्रपौत्रांस्तथा लक्ष्मीं संपदं विपुला लभेत् ।।५
किमन्यद् बहुनोक्तेन भूयो भूयो वरानने ।
विष्णोर्नामसहस्र तु पर निर्वाणदायकम् ।।६
पूजनं प्रथमं तस्य कृतं येन नरेण तु ।
सम्पूर्णं पूजिते विष्णौ तस्य पूजा च वार्षिकी ।।७
व्यग्रत्वं च न कर्त्तव्यं पठने तु विशेषतः ।
यदि चेत्क्रियते पाठे ह्यायुर्वित्तं च नश्यति ।।८

श्री महादेवजी ने कहा—हे गिरि कन्यके ! ब्राह्मण हो अथवा क्षत्रिय हो, वैश्य हो किम्वाशूद्र हों कोई भी वर्ण वाले क्यों न हों, यदि विष्णु सहस्र नाम का प्रतिदिन जो पाठ किया करते हैं वे इस लोक में धन-धान्य से सुसम्पन्न होकर अन्त में भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त किया करते हैं । यदि इसका पूर्ण पाठ भी न करके एक ही श्लोक, का आधा भाग, एक पाद का भी आधा भाग का पाठ कर लिया करें ।१-२। इसके पाठ करने से जब तक भूतों का संप्लव होता है तब तक मोक्ष की प्राप्ति किया करते हैं । हे देवि ! जो लोग इस विष्णु के सहस्र नाम का विन्यास से युक्त पाठ किया करते हैं वे नरों में परम श्रेष्ठ पुरुष अव्यय पद की प्राप्ति किया करते हैं चाहे एक बार या दो काल

में अथवा तीनों कालों में इसको जो पढ़ता है। उसे इसका पुण्य फल प्राप्त होता है और अवश्य ही होता है।३-४। सहस्र नाम के पाठ करने वाले पुरुष का धन और आयु दोनों ही बढ़ते हैं और जब तक बढ़ा करते हैं जब तक चौदह इन्द्र होते हैं। वह पुरुष पुत्र-पौत्र, लक्ष्मी और विपुल सम्पत्ति का लाभ होता है।५। हे वरानने ! अत्यधिक वर्णन करने से क्या लाभ है और बारम्बार कथन से भी क्या प्रयोजन है, सब का साररूप तत्व यही है कि भगवान् विष्णु के नामों का यह सहस्र स्तव परम निर्वाण प्रदान करने वाला है।६। जिस मनुष्य ने उनका सर्व प्रथम पूजन किया है। विष्णु के पूजन करने पर सभी का पूर्ण पूजन हो जाया करता है किन्तु उनकी वार्षिकी पूजा होनी चाहिए।७। सहस्र नाम के पाठ करते समय विशेष रूप से व्यग्रता की जाती है तो विपरीत फल होता है और आयु तथा वित्त का नाश हो जाया करता है।८।

यावन्ति भुवि तीर्थानि जम्बूद्वीपेषु सर्वदा।
तानि तीर्थानि तत्रैव विष्णोर्नामसहस्रकम् ।।९

तत्रैव गङ्गा यमुना त्रिवेणी गोदावरी तत्र सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्र स्थित नाम सहस्रकं तत् ।।१०

इद पवित्रं परमं भक्तानां वल्लभ सदा।
ध्येयं हि दासभावेन भक्तिभावेन चेतसा ।।११

परं सहस्रनामाख्यं ये पठन्ति मनीषिणः।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यान्ति हरिसंनिधौ ।।१२

अरुणोदयकाले तु ये पठन्ति जपन्ति च।
आयुर्बलं च तेषां श्रीर्वर्धते च दिने दिने ।।१३

रात्रौ जागरणे प्राप्ते कलौ भागवतो नरः।
पठनान्मुक्तिमाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।।१४

इस जम्बूद्वीप में भूमण्डल में जितने भी सर्वदा तीर्थ है वे सब तीर्थ इस भगवान के विष्णु के सहस्र नाम में विद्यमान रहा करते हैं। वहाँ पर ही भागीरथी गंगा—त्रिवेणी-गोदावरी-यमुना और सरस्वती आदि

सभी तीर्थ निवास किया करते हैं जहाँ पर विष्णु का सहस्र नाम स्थित रहता है। अर्थात् सहस्र नाम का पठन-श्रवण होता है।९-१०। यह परम पवित्र और सर्वदा भक्तगण का प्यारा है। इसका ध्यान दास भाव से तथा भक्ति भाव समन्वित चित्त से करना चाहिये।११। जो मनीषी लोग इस परमोत्तम सहस्र नाम सज्ञा वाले पुस्तक का पाठ किया करते हैं वे सभी तरह के पापों से छुटकारा पाकर अन्त में श्री हरि की संन्निधि में प्राप्त हुआ करते हैं।१२। अरुणोदय के समय में जो लोग इसका पाठ तथा जाप किया करते हैं उन लोगों का आयु-बल-श्री दिनों दिन बढ़ा करती हैं।१३। रात्रि के समय में जागरण करके इस कलियुग में जो भागवत मनुष्य इसका पठन किया करता है वह मुक्ति को प्राप्त किया करता है और मुक्ति तब तक रहती है जब तक चौदह इन्द्र अपना शासन काल पूर्ण किया करते हैं।१४।

एकैकेन तु नाम्ना व हरौ तुलसिकारणात्।
पूजा सा चैवविज्ञेया कोटियज्ञफलाधिका ॥१५
मार्गे च गच्छमानास्तु ये पठन्ति द्विजातयः।
न दोषा मार्गजास्तेषां भवन्ति किल पार्वति ! ॥१६
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं केशवस्य पु।
ये शृण्वन्ति नरश्रेष्टास्ते पुण्याः पुण्यरूपिणः ॥१७

भगवान् विष्णु के एक-एक नाम का उच्चारण करके हरि के चरणों में एक-एक तुलसी का दल समर्पित करें। ऐसी जो विष्णु की पूजा होती है वह पूजा कोटि यज्ञों के फल प्रदान करने वाली समझनी चाहिए।१५। मार्ग में गमन करते हुए जो द्विजाति गण इसका पाठ किया करते हैं उनको मार्ग में होने वाले दोष नहीं होते हैं ! हे पार्वति ! यह असंदिग्ध सिद्धान्त समझलो ।१६। हे देवि ! आप श्रवण करो, मैं कहता हूँ कि भगवान् केशव का माहात्म्य कितना विशाल है। जो भी नरश्रेष्ठ इसको सुनते हैं वे परम पुण्य मय एवं साक्षात् पुण्य स्वरूप वाले हैं।१७।

* श्री राम रक्षा स्तोत्र *

अतसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम् ।
ध्यात्वा वै पुण्डरीकाक्षं श्रीरामं विष्णुमव्ययम् ।।१
पातु मे हृदयं रामः श्रीकण्ठः कण्ठमेव च ।
नाभिं पातु सखत्राता कटिं मे विश्वरक्षकः ।।२
करौ पातु दाशरथिः पादौ मे विश्वरूपधृतः ।
चक्षुषी पातु वे देवस्सीतापतिरनुत्तमः ।।३
शिखां मे पातु विश्वात्मा कर्णौ में पातु कामदः ।
पार्श्वयोस्तु सुरत्राता कालकोटिदुरासदः ।।४
अनन्त, सर्वदा पातु शरीरं विश्वनायकः ।
जिह्वां मे पातु पापघ्नो लोकः शक्षाप्रवर्त्तकः ।।५
राघवः पातु मे दन्तान्केशान्नक्षतु केशवः।
सक्थिनीपातु मे दत्तविजयो नाम विश्वसृक् ।।६

श्री महादेव जी ने कहा—ॐ इस राम रक्षा स्तोत्र के श्री महर्षि विश्वामित्र ऋषि हैं । श्रीराम इसके देवता हैं। अनुष्टुप् इसका छन्द है । भगवान् विष्णु के लिये ही इसके जाप का विनियोग किया जाता है । अतसी (अलसी)के पुष्य के समान वर्ण के वस्त्र से समावृत-पुण्डरीक के सदृश नेत्रों वाले—अव्यय (साशरहित)-अच्युत विष्णु श्रीराम का ध्यान करे ।1। श्रीराम मेरे हृदय की रक्षा करें । श्री कण्ठ भगवान् मेरे कण्ठ की सुरक्षा करें । मखों (यज्ञों) के त्रास करने वाले प्रभु मेरी नाभि की रक्षा करें । विश्व की रक्षा करने वाले भगवान् मेरे कटि (कमर) प्रदेश की रक्षा करें ।२। दशरथ के पुत्र दाशरथि प्रभु मेरे दोनों करों की रक्षा करें । इस सम्पूर्ण विश्व के रूप को धारण करने वाले प्रभु मेरे दोनों पैरों की रक्षा करने की कृपा करें । सर्वश्रेष्ठ भगवान् सीता के पति मेरे दोनों नेत्रों की सुरक्षा करें ।३। विश्व की आत्मा मेरी शिखा की रक्षा करें । कामद प्रभु मेरे दोनों कानों का त्राण करें । सुरों के त्राता पार्श्व भागों की रक्षा करें । जो कि कालकोटि को दुरासद हैं अर्थात् करोड़ों काल भी जिनको नहीं पा सकते हैं

।४। इस विश्व के नायक भगवान् अनन्त मेरे पूरे शरीर की रक्षा करें। पापों का हनन करने वाले प्रभु मेरी जिह्वाकी रक्षा करें। जो कि लोकों को शिक्षा प्रदान करने के लिये ही प्रवृत्ति किया करते हैं।५। श्रीराघव मेरे दाँतों की सुरक्षा करें। केशव केशीका त्राण करें दत्तविजय नामक विश्व सृष्टा प्रभु मेरी दोनों सक्थियों की सुरक्षा करें।६।

एतां रामबलोपेतां रक्षां यो वै पुमान्पठेत्।
स चिरायुः सुखी विद्वान्लभते दिव्यसंपदम् ॥७
रक्षां करोति भूतेभ्यः सदा रक्षा तु वैष्णवी।
रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति यःस्मरेत् ॥८
विमुक्तः सनरः पापन्मुक्ति प्राप्नोति शाश्वतीम्।
वसिष्ठेन त्विदं प्रोक्त गुरवे विष्णुरूपिणे ॥९
ततो मे ब्रह्मणः प्राप्तं मयोक्तं नारदं प्रति।
नारदेन तु भूलोके पापितं सुजनेष्विह ॥१०
सुप्त्वा वाथ गृहे वापिमार्गे गच्छन्तएव वा।
ये पठन्तिनरश्रेष्ठास्ते नराः पुण्यभागिनः ॥११

इस श्री राम के बल से समन्वित रक्षा को जो भी कोई पुरुष पढ़ता है वह चिरकाल की आयु वाल—परम सुख से समायुक्त-विद्वान दिव्य सम्पदा को अवश्य ही प्राप्त किया करता है।७। वैष्णवी देवी सर्वदा समस्त भूतों से सुरक्षा किया करती है। कोई पुरुष राम-रामभद्र--और रामचन्द्र—इन तीनों नामों का स्मरण किया है।८। उस मनुष्य को समस्त साँसारिक बन्धनों से छुटकारा पाया हुआ ही समझिये और पापों से मुक्त हुआ ही समझ लेना चाहिए तथा उसने शाश्वती मुक्ति मानों प्राप्त करली है—ऐसा यह महर्षि वसिष्ठ जी ने विष्णु रूपी गुरूजी से कहा था।९। इसके अनन्तर ब्रह्माजी से मैंने इसे प्राप्त किया था और फिर मैंने देवर्षि नारदजी से इसे बतलाया था। देवर्षि नारदजी का यह कार्य हुआ है कि उन्होंने इसको इस भूलोक में श्रेष्ठ सत्पुरुषों में प्राप्त करा दिया था।१०। इसके पाठ करने का बड़ा महान् फल होता है। चाहे इसका पाठ मार्ग में चलते हुए किया करे अथवा घर में

स्थित होकर करे किम्वा मार्ग में कहीं को भी गमन करते हुए इसका पाठ करे, तात्पर्य यह है कि किसी भी दशा में स्थित होकर इसका पाठ जो मनुष्य क्रिया करते हैं वे परम श्रेष्ठ नर हैं और वे मनुष्य महान् पुण्य के भागी होते हैं ।११।

।। गङ्गा माहात्म्य ।।

गङ्गायाश्चैव माहात्म्यं पुनर्वद महामते ! ।
यच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे वीतरागाः पुनः पुनः ।
माहात्म्यं कीदृशं चैव तस्याः सर्वेश्वर ! प्रभो ।।१
उत्पत्तिश्च श्रुता पूर्वं महिमा न श्रुतो मया ।
त्वमाद्यः सर्वभूतानां त्वं देवश्च सनातनः ।।२
बृहस्पति समं बुद्धया शक्रतुल्य पराक्रमम् ।
शरतल्पगत भीष्ममृषयो द्रष्टुमाययुः ।।३
तान्प्रणम्य यथान्यायं धर्म पुत्रः सहानुजः ।
पूजयामास विधिज्जगत्पूज्यान्सुतेजसः ।।४
ते पूजिता महात्मानः सुखसीनास्तपोधनाः ।
भीष्माश्रियाः कथाश्चक्रुर्दिव्यधर्माश्रितास्तथा ।।५
काथान्ते तु ततस्तेषामृषीणां भावितात्मनाम् ।
प्रणम्य शिरसा भीष्मं पप्रच्छेदं युधिष्ठिरः ।।६
के देशास्तु महापुण्याः के शैलाः केऽपि चाश्रमाः ।
सेव्या धर्माथिभिर्नित्यं तन्मे ब्रूहि पितामहः ।।७

जगदम्वा पार्वती ने कहा—हे महामते ! भागीरथी गङ्गा का माहात्म्य आप एक वार और कहने की कृपा कीजिये जिसका श्रवण करके सव मुनिगण वारम्वार वीतराग हो जाया करते हैं अर्थात् उन्हें पूर्ण निर्वेद हो जाता है । हे सर्वेश्वर प्रभो ! उसका माहात्म्य किस प्रकार का है ? ।१। मैंने इसकी उत्पत्ति के विषय में सुना है किन्तु इसकी क्या महिमा है इस विषयों में मैंने कभी भी नहीं सुना है । आप तो सभी देवगणों के तथा भूतगणों के आद्य हैं और आप

सनातन देव हैं । तात्पर्य है कि आप तो सभी कुछ जानते ही हैं ।२। श्री महादेव जी ने कहा—बुद्धि में वृहस्पति के तुल्य तथा पराक्रम में महेन्द्र के सदृश शर शय्या पर शयन करने वाले भीष्मको देखने के लिये सभी ऋषिगण समागत हुये थे ।३। न्यायानुकूल उन समस्त समायात ऋषिगण को प्रणाम करके धर्म्मपुत्र ने अपने छोटे पुत्र सहित उन जगत के वन्दनीय सुन्दर तेज वालों का विधिपूर्वक पूजन किया था ।४। वे सव पूजे हुये महान् आत्मा वाले सव तपस्वीगण सुखपूर्वक बैठ गये थे और भीष्म के आश्रय वाली तथा दिव्य धर्म का समाश्रम वाली कथायें कहने लगे थे ।५। उन भावित आत्मा वाले मुनियों की कथा के अवसान में युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह को शिर के वल प्रणाम करके उनसे पूछा था ।६। युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह ! महान् पुण्यमय देश कौन-कौन से हैं ? पुण्य शाली शैल कौन-कौन हैं और परम पुण्य पूर्ण आश्रम कौन हैं ? जो धर्मार्थियों के द्वारा नित्य ही सेवन करने के योग्य हैं—यही आप अनुकम्पा करके बतलाइये ।७।

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं नरोत्तमम् ! ।
शिलोञ्छवृत्तो संवाद सिद्धस्य च युधिष्ठिर ।।७
कश्चित्सिद्धः परिक्रम्य समस्तां पृथिवीमिमाम् ।
उञ्छवृत्तोः शिवे राजन्गृहं प्राप्तो महात्मनः ।।८
आत्मविद्यासुतत्त्वज्ञः सर्वदा सजितेन्द्रियः ।
रागद्वेषपरित्यक्तः कुशलो ज्ञानकर्मसु ।।९
वैष्णवेषु सदाश्रेष्ठो विष्णुधर्मपरायणः ।
अनिन्दको वैष्णवानां सदाधर्म परायणः ।।१०
योगाभ्यासरतो नित्यं शङ्खचक्रविधारकः ।
त्रिकालपूजातत्त्वज्ञः श्रीकण्ठेऽनुरतः सदा ।।११
वेददिद्यासु निपुणो धर्माधर्मविचारकः ।
वेदपाठव्रतो नित्यं नित्यं नित्यं चातिथिपूजकः ।।१२
सतीर्थमतियुक्तस्तु शिलोञ्छेषु स्थितः सदा ।
चतुर्वेदेषु यद्वचान पीतं यद्यास्वयम्भुवा ।।१३

तत्सर्वं स च जानाति द्विजो विष्णुस्वरूपधृत् ।
नानाधर्मार्थविशदो ह्यव्ययेष्टमतिः सदा ॥१५

भीष्म पितामह ने कहा—हे नरोत्तम युधिष्ठिर इसी के विषय में यह शिलोञ्च वृत्ति वाले सिद्ध का सम्वाद है उसके इतिहास को उदाहृत करते हैं—कोई सिद्ध पुरुष थे, वे इस सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करके हे राजन् ! खेतों के कट जाने पर बिखरे हुए रह जाने वाले धान्य की बालों को बीन कर अपना जीवन निर्वाह करने वाले महात्मा शिवि के घर में प्राप्त हो गये थे ।८-९। वह आत्म विद्या में सुन्दर तत्वों के ज्ञाता-सर्वदा इन्द्रियों पर विजय पाने वाले, राग और द्वेष को त्याग देने वाले-ज्ञान कर्म्मों में कुशल वैष्णवों में सदा श्रेष्ठ-विष्णु के धर्म्म में परायण—वैष्णवों की निन्दा न करने वाला-सदा धर्म में परायण—योगाभ्यास करने में रत-नित्य ही शख का चक्र धारण करने वाला—तीनों काल में पूजा के तत्व को जानने वाला—श्रीकण्ठ में सदा अनुराग रखने वाला—वेदों की विद्या में निपुण-धर्म तथा अधर्म का विचार रखने वाला—नित्य वेदों का पाठ का व्रत रखने वाला तथा नित्य ही अतिथियों की पूजा करने वाला सतीर्थ मति से समन्वित और शिलोच्छ में स्थित रहने वाला था । चारों वेदों में जो ध्यान है तथा जो जो भी स्वयम्भू ने गीत किया है वह उस सभी को विष्णु के स्वरूप को धारण करने वाला द्विज जानता था । वह नाना प्रकार के धर्मार्थ में विशद था और सदा व्यय न होने वाली अभीष्ट मति से युक्त था ।१०-१५।

एकस्मिन्नेव काले तु गतोऽसौ वै शिबेर्गृहम् ।
तं दृष्ट्वा विधिवच्चैव कृत्वऽऽतिथ्यं महामनाः ।
शिबिः पप्रच्छ तं सिद्धं देशानां हितकारणम् ॥१६
के देशाः के जनपदाः के शैलाः केऽपि चाश्रमाः ।
पुण्या द्विजवरप्रीत्या मह्यं निर्देष्टुमर्हसि ॥१७
ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्तेऽपि चाश्रमाः ।

पुण्यास्त्रिपथगा येषां मध्ये नित्यं सरिद्वरा ॥१८

तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः ।
गतिं तां न लभेज्जन्तुर्गङ्गांसंसेव्य याँ लभेत् ॥१६

स्नातानाँ तत्र पयसि गाङ्गे ये नियतात्मनाम् ।
तुष्टिर्भवति या पुंसाँ न सा क्रतुशतैरपि ॥२०

अपहृत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः ।
तथाऽपहृत्य पाप्मान भाति गङ्गाजलाप्लुतः ॥२१

एक ही काल में यह शिवि के घर में गया था । महामना ने उसको देख कर विधान के साथ उसका आतिथ्य किया था, फिर शिवि ने उस सिद्ध से देशों के हित का कारण पूछा था ।१६। उञ्छवृत्ति ने कहा—हे द्विजवर ! आप प्रीति के साथ मुझसे यह निर्देश करने के योग्य हैं कि कौन से देश-जनपद-शैल और आश्रम परम पुण्यमय है ? ।१७। सिद्ध ने कहा—वे ही देश-जनपद-शैल और आश्रम पुण्यमय हैं जिनके मध्य में त्रिपथगामिनियों गंगा जो समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ है,रहा करती है ।१८। तपश्चर्या से–ब्रह्मचर्य व्रत के परिपालन से—यज्ञों से और त्याग से जन्तु उस गति को प्राप्त नहीं किया करता है जो गंगा का भली—भाँति सेवन करके किया करता है ।१६। गङ्गा के जल मं स्नान किये हुए नियत आत्मा वाले पुरुषों की जो तुष्टि होती है यह सौ ऋतुओं से भी नहीं होती है । २० । उदयकाल में तीव्र तम का अपहरण करके जिस तरह हवि शोभा पाता है उसी भाँति गगा जल में आप्लवन किया हुआ मनुष्य अपने पाप का अपहरण करके शोभित हुआ करता है ।२१।

अग्निप्राप्य यथा विप्र तूलराशिर्विनश्यति ।
तथा गङ्गावगाहश्च सव पापं व्यपोहति ॥२२·

यस्तु सूर्यांशु संतप्तं गांगेयं सलिल पिबेत् ।
सद्यो नीहारनिर्मुक्तः पापकाद्धि बिशिष्यते ॥२३

चान्द्रायणसहस्रं तु चरेद्यो नियतः पुमान् ।
संप्लुतश्चापि गङ्गायां यो नरः स विशिष्यते ॥२४

लम्वेताधः शिरायस्तु वर्षाणामयुतं नरः ।
मासमेकं तु गङ्गायाः सेवते यो नरोत्तमः ॥२५

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानाँ शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छसि ॥२६

हे विप्र ! अग्नि का जिस प्रकार से स्पर्श प्राप्त करके तूल (रुई) का ढेर विनष्ट हो जाया करता है उसी भाँति भागीरथी गङ्गा का अवगाहन करना भी सम्पूर्ण पाप को व्योहत कर दिया करता है ।२२। जो कोई पुरुष सूर्यांशु के संतप्त गङ्गा के जल का पान किया करता है वह तुरन्त ही नीहार से निर्युक्त पावक से भी विनिष्ट हो जाता है ।२३। जो कोई पुरुष नियत होकर एक सहस्र चान्द्रायण व्रतों को करता है और जो गङ्गा में सप्लुत होता है वह गङ्गा में स्नान करने वाला मनुष्य चान्द्रायण व्रत करने वाले से अधिक विशिष्ट होता है ।२४। जो नर दस हजार वर्ष तक नीचे की ओर शिर करके लम्बमान होता है उसका पुण्य फल जो होता है उतना ही फल एक मास पर्यन्त गङ्गा जल के सेवन करने वाले मनुष्य को हुआ करता है ।२५। सौ योजन दूर स्थित होकर भी जो 'गङ्गा'—यह बोलता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और विष्णु लोक को जाया करता है ।२६।

दर्शनं माधवस्याथ वटस्य दर्शनं तथा ।
वेण्यां स्नानंप्र कुर्वाणो वैकुण्ठं प्रतिगच्छति ॥२७
उदिते च यथा सूर्ये विलयं यान्ति वै तमः ।
तथैक तस्यां पापनिनश्यन्ति स्नानमात्रतः ॥२८
गङ्गाद्वारे कुशावर्ते गल्लिके नीलपर्वते ।
स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ॥२६
एवं ज्ञात्वा नरश्रेष्ठो गङ्गास्नायी पुनः पुनः ।
स्नानमात्रेण भो राजन्मुच्यते किल्बिषादतः ॥३०
देवानां प्रवरौ विष्णर्यज्ञानां चाश्वमेधकः ।
अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां नदी भागीरथी सदा ॥३१

माधव भगवान् का दर्शन—वट का दर्शन और वेणी में स्नान करने वाला मनुष्य सीधा वैकुण्ठ लोक को जाता है ।२७। जिस तरह से सूर्य्य के उदित होने पर अन्धकार विलीन हो जाता है उसी भाँति उसमें केवल

स्नान भर कर लेने से समस्त पाप विनष्ट हो जाया करते हैं ।२८। गंगा द्वार में कुशावर्त्त में—वल्लिक में नील पर्वत में और कनखल तीर्थ में स्नान करके पुनर्जन्म नहीं होता है ।२६। इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करके जो नर श्रेष्ठ पुनः-पुनः गङ्गा में स्नान करने वाला होता है । हे राजन् ! स्नान मात्र से किल्विष से मुक्त होता है ।३०। सब देवों म प्रवर विष्णु हैं—यज्ञों में अश्वमेघ यज्ञ सर्वश्रेष्ठ है । समस्त वृक्षों में अश्वत्थ श्रेष्ठ है और भागीरथी सदा श्रेष्ठ समस्त नदियों में है ।३१।

वैष्णव लक्षण वर्णन

वैष्णवानां लक्षणं च कीदृशं प्रतिपादितम् ।
महिमा कीदृशश्चैव वद विश्वेश्वर प्रभो ।।१
विष्णोरयं यतः प्रोक्तो ह्यतोवै वैष्णवोमतः ।
सर्वस्यादिस्तु विज्ञेयो ब्राह्मरूपधरस्ततः ।।२
यतः सकाशात्संजाता ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
ते वैष्णवास्तु विज्ञेया नैवान्ये तु कदाचत ।।३
शौचसत्यक्षान्तियुक्तो रामद्वेषविवर्जिता ।
वेदविद्याविचारज्ञो यः स वैष्णवः उच्यते ।।४
अग्निहोत्ररतोनित्यं नित्यं चातिथिपूजकः ।
पितृभक्तोमातृभक्तः स वै वैष्णव उच्यते ।।५
दयाधर्मेण संयुक्तास्तथा पापपराङ् मुखः ।
शङ्खचक्राङ्कितो वै स त्वै वैष्णव उच्यते ।।६
कण्ठे मालाधरो यस्तु मुखे राम सदोच्चरेत् ।
गानं कुर्यात्सदा भक्त्या स नरो वैष्णवः स्मृतः ।।७

पार्वती ने कहा—हे विश्वेश्वर प्रभो ! वैष्णवों के लक्षण किस प्रकार का प्रतिपादन किया गया है और महिमा किस तरह की है—यही कृपा कर बतलाइये ।१। श्री महादेवजी ने कहा—क्योंकि यह विष्णु का है अतएव इसको वैष्णव मत कहा जाता है । यह सब का आदि और ब्रह्म-

रूप का धारण करने वाले हैं ।२। जिसके सकाश से वेदों के पारगामी ब्राह्मण समुत्पन्न हुए हैं वे ही वैष्णव जन समझने चाहिए अन्य कभी भी नहीं हो सकते हैं ।३। जो शौच-सत्य और क्षान्ति से युक्त होता है तथा राग-द्वेष आदि दोषों से रहित होता है और वेद-विद्या के विचारों का ज्ञाता है वही वैष्णव कहा जाया करता है ।४। जो नित्य हो अग्निहोत्र में रति रखने वाला है तथा नित्य अतिथियों का पूजन किया जाता है। जो पिता और पुत्र माता का भक्त होता है वही पुरुष वैष्णव कहा जाता है ।५। जो दया और धर्म से संयुक्त होता है तथा पाप कर्मों से परांमुख होता है । जो शंख और चक्र से युक्त अर्थात् अंकित होता है उसी को वैष्णव नाम से पुकारा जाया करता है । ६ । जो कण्ठ में माला को धारण किया करता है और जो सर्वदा मुख से श्रीराम के पवित्र नाम का उच्चारण किया करता है एवं सदा भगवत कीर्त्तन का गायन करता रहता है उसी नर को वैष्णव कहा जाता है ।१७।

षुरोणेषुरता नित्यं यज्ञेषु च रताः सदा ।
ते नरा वैष्णवा ज्ञेया। सर्वधर्मेषु संमताः ।।८
तेषां निन्दां प्रकुर्वन्ति ये नराः पापकारिणः ।
ते मृतास्तु कुयोनिं वै गच्छन्ति च पुनः पुनः ।।६
गोपालनाम्नीं मूर्ति च येऽर्चयन्ति द्विजाः सदा ।
धातुमात्रमयीं कृत्वा चतुर्हस्तां सुशोभिताम् ।।१०
पूजां कुर्वन्ति ये विप्रास्ते ज्ञेयाः पुण्यभागिनः ।
कृत्वा पाषाणजां मूर्ति कृष्णाख्यां रूपसुन्दरीम् ।।११
पूजाँ कुर्वन्ति ये विप्रास्ते ज्ञेयाः पुण्यमूर्त्तयः ।
शालग्रामशिला यत्र यत्रद्वारावतीशिला ।।१२
उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ।
मूर्तिमन्त्रेण संस्थाप्य पूजनं क्रियते यदि ।।१३
तदर्चनं कोटिगुणं धर्मकामार्थ मोक्षदम् ।
नवधा तत्र वै भक्तिः कर्तव्या च जनार्दने ।।१४

अतः पाषाणजामूर्तिस्तथा धातुमयी त्वया ।
तस्याँ भक्तैः प्रकर्त्तव्यं ध्यान पूजनमेव च ।।१५

मदा जो पुराणों में रति रखने वाले हैं और जो नित्य ही यज्ञों के करने-कराने में सर्वदा अनुराग रखते हैं, वे ही मनुष्य वैष्णव जानने चाहिए जो समस्त धर्मों में समस्त होते हैं ।८। उन वैष्णवों की जो मनुष्य निन्दा किया करते हैं वे महान् पापकारी हुआ करते हैं । वे ही मर कर बुरी योनि में बारम्वार जाया करते हैं ।९। जो द्विज गोपाल नाम वाली मूर्त्ति का सदा अर्चन किया करते हैं । वह मूर्त्ति धातुमात्र से निर्मित्त, चार हाथ प्रमाण वाली और परम शोभित होनी चाहिए ।१०। जो प्रिय इस उक्त प्रकार की मूर्ति का अर्चन किया करते हैं उनको परम पुण्य का भागी समझना चाहिए । पाषाण से निर्माण की हुई श्रीकृष्ण की मूर्ति, का जो रूप लावण्य से अति सुन्दर वनाई हुई हो ऐसी श्रीकृष्ण की प्रतिमा की भी जो विप्र पूजा करते हैं उन्हें परम-पुण्य की मूर्ति मानना चाहिए । जहाँ पर शालग्राम की शिला हो और जहाँ द्वारावती की शिला विद्यमान हो अथवा दोनों का संगम जहाँ पर हो यदि उस मूर्ति को मन्त्रों के द्वारा संस्थापित करके पूजन किया जाता है तो वहाँ पर निश्चित् रूप से मुक्ति हो जाया करती है – इसमें रंचक मात्र भी संशय नहीं है ।११-१२। वह अर्चना करोड़ों गुण वाली होती हैं और धर्म-काम-अर्थ तथा मोक्ष के प्रदान करने वाली होती हैं । वहाँ पर भगवान् जनार्दन में नौ प्रकार की भक्ति करनी चाहिए ।१४। इसीलिए आपको पाषाण से निर्माण की हुई अथवा किसी भी उत्तम धातु के द्वारा बनाई हुई मूर्ति का पूजन करना चाहिए और उसी में भक्तों के द्वारा ध्यान एव पूजन आदि सब कुछ करना चाहिए ।

राजोपचारिकीं पूजां मूर्तौ तत्र प्रकल्पयेत् ।
सर्वात्मानं स्मरेन्नित्यं भगवन्तमधोक्षजम् ।।१६
दीनानाथैकशरणं लोकानाँ वृत्तिकारणम् ।
मूर्तौ तत्र स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ।।१७

गोपालोऽयं तथा कृष्णो रामोऽयमिति च ब्रुवन् ।
पूजां करोति यः सम्यक्स वै भागवतोनरः ॥१८
गोकुले तु यथारूपं धृतं वै केशवेन तु ।
तादृग्रूपं प्रकर्त्तव्यं वैष्णवैर्नरसत्तमैः ॥१९
आत्मसन्तोषणार्थाय स्वरूप कारयेद् बुधः ।
यतो भक्तिस्तु बहुला जायते नात्रसंशयः ॥२०
शंखचक्रगदादीनि विष्णोश्चैवायुधानि च ।
तस्यां मूर्तौ विशेषेण कर्त्तव्यानि प्रमाणतः ॥२१

उस मूर्ति में राजा के समान उपचारों वाली पूजन की कल्पना करनी चाहिए । सब की आत्मा एवं सर्वान्तिर्यामी भगवान् अधोक्षज नित्य ही स्मरण करे ।१६। दीनों के नाथ और गरीबों की एक मात्र रक्षा करने वाले तथा लोकों की वृत्ति के कारण स्वरूप उस मूर्ति में महान् पातकों के नाश करने वाले प्रभु का नित्य ही स्मरण करना चाहिए । १७ । यह ही गौओं के पालन करने वाले गोपाल हैं तथा साक्षात् श्री कृष्ण हैं और श्रीराम हैं--ऐसा मुख से बोलते हुए जो भली-भाँति पूजा किया करता है वह ही परम भागवत नर है ।१८। भगवान् केशव ने गोकुल में जिस प्रकार का रूप धारण किया था वैसा ही उनका स्वरूप बनाना चाहिए अर्थात् उसी प्रकार का शृङ्गार करे-यही श्रेष्ठ एवं परम वैष्णव जनों का कर्त्तव्य होता है ।१९। अपनी आत्मा का जिस तरह से सन्तोष होवे उसी को सम्पादित करने के लिए भगवान् का स्वरूप बनाना चाहिए यही एक बुध पुरुष का कर्त्तव्य है । जिससे अत्यधिक भक्ति उत्पन्न हो--इस तरह से करने में भक्ति अधिक हुआ करती है--इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।२०। शंख-चक्र-गदा आदि जो भगवान् विष्णु के आयुध हैं उन्हें उस मूर्ति में प्रमाण के अनुसार विशेष रूप से करे ।२१।

चतर्भुजां द्विनेत्रां च शङ्खचक्रगदाधराम् ।
पीतवासः परीधानां शोभनानां गरीयसीम् ॥२२

वनमालादधानां तां लसद्वैडूर्यकुण्डलाम् ।
मुकुटेन समायुक्तां कौस्तुभोद्भासितां सदा ॥२३
सौवर्णि चाथ रौप्यां वा ताम्रजां चाथ पैत्तलीम् ।
कारगेत्परया भक्त्या वैष्णवैर्द्विप्रसत्तमैः ॥२४
आगमोक्तै र्वेदमन्त्रः प्रतिष्ठाप्य विशेषतः ।
पश्चाद्वा अर्चनं कार्यं यथाशास्त्रानुसारतः ॥२५
षोडशोपचारैर्मन्त्रैः पूजनं विधिपूर्वकम् ।
विजिये तु जगन्नाथे सर्वे देवाश्च पूजिताः ॥२६
अतोऽनेन प्रकारेण पूजनीयो महाप्रभुः ।
अनादिनिधनो देव शङ्खचक्रगदाधरः ।
सर्वं ददाति सर्वेशो शैष्णवान्पुण्यरूपिणः ॥२७

चार भुजाओं वाली --दो नेत्रों से युक्त और शंख---चक्र और गदा को धारण करने वाली—पीताम्बर धारण करने वाली अत्यधिक शोभा से सुसम्पन्न-वनमाला धारिणी—वैदूर्यमणि के निर्मित कुण्डलों से शोभा-मान मुकुट से युक्त तथा सदा कोस्तुभ मणि से युक्त एवं समुद्भासित ---सुवर्ण—चाँदी---ताम्र या पीतल की मूर्ति का निर्माण परम वैष्णव द्विज श्रेष्ठों को करना चाहिए ।२२-२४। आगम में कथित वेदों के मन्त्रों से विशेष रूप से प्रतिष्ठा करके पीछे शास्त्र के अनुसार अर्चन करना चाहिए ।२५। षोडश उपचार वाले मन्त्रों के द्वारा विधान के साथ पूजन करना चाहिए । भगवान् जगन्नाथ के विजित होने पर अर्थात् पूजित हो जाने पर सभी अन्य देव पूजित हो जाया करते हैं ।२६। अतएव इसी प्रकार से महाप्रभु को अभ्यर्चन करना चाहिए । यही देव अनादि निधन है अर्थात् इनका न तो आदिकाल है और न इन-का निधन हीं होता है । शंख-चक्र और गदा इन आयुधों के धारण करने वाले हैं । यह भगवान् सर्वेश्वर हैं और पुण्यरूपी वैष्णवजनों को यह सभी कुछ प्रदान किया करता है ।२७।

के दासा वैष्णवाः के तु केभक्ता भुविकीर्तितः ।
तेषां वै लक्षणं ब्रूहि यथार्थं वै महेश्वर ॥२८

शूद्रा भवन्ति वै दासा वैष्णवा नारदादयः ।
प्रह्लादश्चाम्बरीषाद्या भक्तास्ते नगनन्दिनि ॥२६
ब्रह्मक्रियारतो नित्यं वेदवेदाङ्गपाठकः ।
शंखचक्राङ्कितो यस्तु स वै वैष्णव उच्यते ॥३०
द्विजसेवारतो नित्यं नित्यं विष्णुप्रपूजकः ।
शृणोति बहुधा चैव पुराणं वेदसम्मितम् ॥३१
स शूद्रो हरिदासस्तु इत्युक्तो नगनन्दिनि ।
पञ्चवर्षं त्वमाश्रित्य कृता भक्तिरनेकधा ॥३२
स वै भक्त इति प्रोक्तः सर्वं साधुषु संमतः !
ध्रुवादयस्ते विज्ञेया अम्वरीषादयश्च ये ॥३३
भक्ताश्च मुनिभिः प्रोक्ताः सर्वकालेषु भामिनी ! ।
कलौ धन्यतमा शूद्रा विष्णुध्यानपरायणाः ॥३४
इहलोके सुखं भुक्त्वा यान्ति विष्णुं सनातनम् ।
शङ्खचक्राङ्कितो यस्तु विष्णुभक्तिप्रकारकः ॥३५
चतुर्विधमहोत्साहकर्त्ता चैव विशेषतः ।
सशूद्रो विष्णुदासस्तु यथादृष्टं यथा श्रुतम् ॥३६

पार्वती ने कहा—कौन से लोग दास और वैष्णव हैं और कौन लोग भगवान् के ऐसे भक्त हैं जो भूमण्डल में कीर्त्तित किये जाते हैं ? हे महेश्वर उनके यथार्थ लक्षण आप मुझे बतलाने की कृपा कीजिए ।२८। महादेव जी ने कहा—जो शूद्र होते हैं वे तो दास हुआ करते हैं । अर्थात् 'दास'—इस शब्द से समुच्चिरित किये जाते हैं जो नारद आदि है वे वैष्णव हैं । हे जगनन्दिनि ! प्रहलाद और अम्बरीष आदि जो हैं वे भक्त कहे जाते हैं ।२६। ब्रह्म क्रिया में जो रति रखता है और नित्य ही वेदों तथा वेदांग शास्त्रों का पाठ करने वाला पुरुष है एवं शंख-चक्र के चिह्नों से जो अंकित रहता है यही वैष्णव कहा जाता है ।३०। द्विजगण की सेवा में अनुराग रखने वाला और नित्य हो भगवान् विष्णु का पूजन करने वाला है तथा बहुधा वेदों ये समस्त पुराण का श्रवण किया करता है । हे नगनन्दिनि ! वह शूद्र हरिदास कहा गया है । पाँच

वर्ष का आश्रय ग्रहण करके जिसने अनेक प्रकार से भगवान् की भक्ति की है वही पुरुष "भक्त"---इस नाम से कहा गया है और वह समस्त साधु पुरुषों में सम्मत है। ऐसे भक्त ध्रुव आदि तथा अम्बरीष आदि ही जानने चाहिए।३१-३३। हे भामिनि ! सब कालों में मुनियों के द्वारा भक्त कहे गये हैं इस घोर कलियुग में शूद्र परम धन्य हैं जो सर्वदा भगवान् विष्णु के ध्यान में परायण रहा करते हैं।३४। इस लोक में सुखों का उपभोग करके अन्त में सनातन प्रभु के विष्णु लोक में वे चले जाया करते हैं। जो शख-चक्र के चिन्हों से अंकित है वह विष्णु की भक्ति के प्रकार वाला होता है। ३५। चार प्रकार के महोत्सव का करने वाला जो विशेष रूप से हुआ करता है वह शूद्र भगवान् विष्णु का दास है जैसा कि देखा गया है और सुना गया है।३६।

सर्वमास-विधि वर्णन

सर्वेषां चैव मासानां विधिं ब्रूहि महेश्वर।
महोत्सवः प्रकर्त्तव्यः को विधिस्तत्र समन्ततः ॥१
को देवः पूजनं कस्य महिमा कीदृशो भवेत्।
कस्यां तिथौ प्रकर्त्तव्यं तन्मे वद सुरेश्वर ! ॥२
मासंप्रति किमुक्तं च वैष्णवान्पुण्यकर्मणः।
धन्याहं कृतकृत्याहं शुभगाहं धरातले ॥३
विष्णोः कथां शृणोमोति दर्शनात्स्पर्शनात्तव।
उत्सवानां विधिं ब्रूमो मासं प्रति तवानघे।
यानाकर्ण्यं पुनर्देवि गीतवादित्रहर्षिता ॥४
अतः सा ववरीत्याख्या माधवस्यातिगर्हिता।
धात्री तुलस्यैतद्रागात्तस्यप्रीतिपदे सदा ॥५
ततो विस्मृतदुःखोऽसौ विष्नुस्ताभ्यां सहैव तु।
वैकुण्ठमगमद्धृष्टः सर्वदेवैः नमस्कृतः ॥६

कार्तिकोद्यापने विष्णोस्तस्मत्पूजाविधीयते ।
तुलसीमूलदेशे तु प्रीतिदा मा यतः स्मृता ।।७-८

पार्वती ने कहा—हे महेश्वर ! समस्त मासों की विधि आप बतलाइये । इनका महोत्सव जो भी करना चाहिए उसका विधान क्या सम्भव है ? । १ । देवता कौन सा है ? किसका पूजन होता है और उसकी महिमा किस प्रकार की है ? हे सुरेश्वर ! किस तिथि में इस महोत्सव को करना चाहिए—इसे मुझको आप बतलाइये ।२। पुण्य कर्मों वाले वैष्णवों को मास के प्रति क्या कहा गया है ? इस पुरातन में पार्वतीजी ने कहा—मैं परम धन्य और सुभग तथा कृत कृत्य हूँ जो कि मैं आपके दर्शन और स्पर्श से भगवान् विष्णु की कथा का श्रवण किया करती हूँ । ३ । भगवान् शिव ने कहा—हे अनघे ! मैं आपको मास के प्रति उत्सवों की विधि को बतलाता हूँ । हे देवि ! जिनका श्रवण करके आप पुनः गीत तथा वादित्र से हर्षित होंगी ।४। इसीलिए वह बर्बरी इस नाम वाली माधव की अत्यन्त गर्हित धात्री है । इसके राग से तुलसी सदा प्रीति प्रदा है ।५। फिर भगवान् विष्णु दुःख को विस्मृत कर देने वाले हैं और उन दोनों के ही साथ समस्त देवों के द्वारा वन्दित होते हुए वैकुन्ठ में गये थे ।६। इसीलिए कार्तिक के उद्यापन में विष्णु की पूजा की जाया करती है क्योंकि वह प्रीतिदा तुलसी के मूल देश में कही गयी हैं ।७-८।

तुलसीकाननं राजन्गृहे यस्यावतिष्ठते ।
तद्गृहं तीर्थरूपं तु नायान्ति यमकिङ्कराः ।।९
सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम् ।
रोपयन्ति नरश्रेष्ठा न ते पश्यन्ति भास्करीम् ।।१०
दर्शनं नर्मदायास्तु गङ्गास्नानं तथैव च ।
तुलसीवनसंसर्गः समसेतत्त्रयं स्मृतम् ।।११
रोपणात्पालनात्सेकाद्दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम् ।
तुलसी दहते पापं वाङ्मनः कायसञ्चितम् ।।१२

तुलसींञ्जसरीभिर्यः कुर्याद्धरिहरार्चनम् ।
न स गर्भगृहं याति मुक्तिभागी न संशयः ।।१३
पुष्करादोनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
वासुदेवादयो देवास्तिष्ठन्ति तुलसीदले ।।१४

हे राजन् ! जिसके घर में तुलसी का वन उपस्थित में वह सम्पूर्ण घर ही तीर्थरूप है और वहाँ पर कभी भी यमराज के किंकर नहीं आया करते हैं ।६। समस्त प्रकार के पापों का हरण कर देने वाले—पुण्यमय तथा कामनाओं के प्रदान करने वाला तुलसी का वन है । जो श्रेष्ठ पुरुष इन वन का आरोपण किया करते हैं वे भास्करी अर्थात् यम-राज के मुख का दर्शन नहीं किया करते हैं ।१०। नर्मदा नदी के दर्शन, गङ्गा का स्नान और तुलसी-वन का संसर्ग होना ये तीनों समान बताये गये हैं अर्थात् तीनों का पुण्य फल समान होता है ।११। तुलसी इसके रोपण करने से—इस तुलसी का पालन करने से—इसके सींचने से—दर्शन से और केवल स्पर्श से मनुष्यों के वाणी - मन और शरीर में सञ्चित पापों का दाह कर दिया करती है ।१२। तुलसी की मंजरियों के द्वारा जो हरि और हर का अभ्यर्चन किया करता है वह मनुष्य फिर कभी भी गर्भवास का कष्ट नहीं भोगा करता है । उसकी तो फिर निश्चय ही मुक्ति होती है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।१३। पुष्कर प्रभृति तीर्थ-गङ्गा आदि पुण्य सरितायें और वासुदेव प्रभृति देव इस तुलसी के दल में स्थित रहा करते हैं ।१४।

तुलसीमञ्जरीयुक्तो यदि प्राणान्विमुञ्चति ।
विष्णोः सायुज्यमाप्नोति सत्यं सत्यं नृपोत्तम ।।१५
तुलसीमृत्तिकालिप्तो यस्तु प्राणान्विमुञ्चति ।
यमोऽपि नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि ।।१६
तुलसीकाष्ठजं यस्तु चन्दनं धारयेन्नरः ।
तद्देहं नस्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत् ।।१७
तुलसीविपिनच्छाया यत्रयत्र भवेन्नृप ।
तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं पितृणां तत्तमक्षयम् ।।१८

धात्रीछायासु यः कुर्यात्पिण्डदानं नृपोत्तम ।
तृप्तिं च यान्ति पितरस्तस्य ये नरके स्थिताः ॥१९
मूर्ध्निपाणौमुखेचैव देहे च तुहसत्तम ।
धत्ते धात्रीफलं यस्तु स विज्ञेयो हरिःस्वयम् ॥२०
धात्रीफलं च तुलसी मृत्तिका द्वारकोद्भवा ।
यस्य देहे स्थिता नित्यं स जीवन्मुक्त उच्यते ॥२१

तुलसी की मञ्जरी से समन्वित होता हुआ मनुष्य यदि प्राणों का त्याग किया करता है । हे नृपों में सर्वोत्तम ! वह मनुष्य भगवान् विष्णु के सायुज्य की प्राप्ति किया करता है—यह पूर्णतः सत्य हैं ।१५। तुलसी जहाँ पर समोरापित हो उस भूमि की मृत्तिका से यदि कोई लिप्त होकर अपने प्राणों का मोचन करता है तो उसका ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है कि चाहे वह सैकड़ों पापों से युक्त भी क्यों न हो उसको यमराज देख भी नहीं सकता है ।१६। जो मनुष्यों तुलसी की लकड़ी से समुद्भूत चन्दन को धारण किया करता है । इसका भीं ऐसा विचित्र प्रभाव है कि किया हुआ भी पाप उसके शरीर का स्पर्श नहीं किया करता है ।१७। हे नृप ! तुलसी के वन की—छाया जहां-जहाँ पर होती है वहाँ पर पितृगण का श्राद्ध करना चाहिए क्योंकि ऐसे स्थल में दिया हुआ श्राद्ध अक्षय हुआ करता है ।१८। हे नृपोत्तम ! धात्री की छाया में जो कोई पिण्डदान करता है उसके पितृगण जो नरक में भी स्थित हैं परम तृप्ति को प्राप्त किया करते हैं ।१९। हे नृप श्रेष्ठ ! मस्तक में हाथ-में-मुख में और देह से जो कोई पुरुष धात्री फल को रखता है उसे स्वयं ही हरि समझना चाहिए ।२०। धात्री फल तुलसी और द्वारका की सदुद्भूत मृत्तिका जिस पुरुष के देह में स्थित है वह नित्य ही जीवन्मुक्ति होता है अर्थात् जीवन रखते हुए एक मुक्त आत्मा वाले के तुल्य है ।२१।

धात्रीफलविमिश्रैस्तु तुलसीदलमिश्रितैः ।
जलैः स्नाति नरंस्तस्य गङ्गास्नानफलं स्मृतम् ॥२२
देवार्चनं नरः कुर्याद्धात्रीपत्रैः पलैरपि ।
सुवर्णपुष्पैर्विविधैरर्चनस्याप्नुयात्फलम् ॥२३

तीर्थानि मुनयो देवा यज्ञाःसर्वेऽपि कार्त्तिके ।
नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलाश्रिते ।।२४
द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्तिके ।
लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितात् ।।२५
धात्रीच्छायां समाश्रित्य कार्त्तिकेऽन्नं भुनक्ति यः ।
अन्नसंसर्गजं पापमात्रषं तस्य नश्यन्ति ।।२६
धात्रीमूले तु यो विष्णुं कार्त्तिकेऽर्चयते नरः ।
विष्णुक्षेत्रेषु सर्वेषु पूजितस्तेन सर्वदा ।।२७
धात्री तुलस्योर्माहात्म्यमपि देवश्चतुर्मुखः ।
न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः ।।२८
धात्रीतुलस्युद्भवकारणं यः शृणोति या श्रावयते च भक्त्या ।
विधूतपाप्मा सह पूर्वजैश्च स्वर्गं व्रजत्यग्रचविमानसंस्थः ।।२९

धात्री के फलों से विशेष रूप से मिश्रित तथा तुलसी के दलों से मिला हुआ जल से जो कोई भी मानव स्नान किया करता है उसको भागीरथी गंगा के स्नान करने का पुण्य-फल प्राप्त हुआ करता है । ऐसा कहा गया है ।२२। जो मनुष्य धात्री के पत्रों से तथा फलों के भी द्वारा देवों का अर्चन किया करता है वह अनेक प्रकार के सुवर्ण के निर्मित्त पुष्पों के द्वारा किये हुए अभ्यर्चन का फल प्राप्त किया करता है ।२३। कार्त्तिक मास में समस्त देवगण-सब मुनि मण्डल सब तीर्थ समुदाय और सभी तरह के यज्ञ तुलश्रित अर्थ में अर्थात् तुला राशि में स्थित सूर्य के होने पर ये सब नित्य ही धात्री का समाश्रय लेकर ही स्थित रहा करते हैं ।२४। द्वाशी तीर्थ में तुलसी पत्र और कार्त्तिक मास में धात्री के पत्र को यदि कोई काटता है तो उसको नरक हुआ करता है और वह अत्यन्त ही गर्हित नरकों में जाकर गिरता है ।२५। धात्री की छाया का समाश्रय लेकर कार्त्तिक मास में जो अन्न को खाता है उनके अन्न के संसर्ग से उत्पन्न होने वाला पाप वर्ष भर तक का नष्ट हो जाया करता है ।२६। कार्त्तिक मास में धात्री के मूल में जो कोई मनुष्य भगवान् विष्णु का समर्चन किया करता है उससे वह सर्वदा

विष्णु के समस्त क्षेत्रों में पूजित होता है ।२७। धात्री और तुलसी इन दोनों का माहात्म्य अतीव महान् होता है और ऐसा ही है जैसा कि शार्गधनुष के धारण करने वाले भगवान् विष्णु का होता है । उसे चार मुखों वाले ब्रह्मा भी वर्णन करने में समर्थ नहीं होते हैं, अन्य की तो बात ही क्या है ।२८। धात्री (आँवला) और तुलसी के उद्भव का कारण जो कोई भक्तिभाव से श्रवण करता है और श्रवण कराता है वह समस्त पापों का त्रिधूनन् करके अर्थात् नष्ट करके विशुद्ध हो अपने पूर्वज पुरखाओं के साथ अत्युत्तम विमान में स्थित होकर स्वर्ग लोक को चला जाया करता है ।२९।

कलहकारिणी की मुक्ति

सेतिहासमिद ब्रह्मन्माहात्म्यं कथितं त्यवा ।
अत्याश्चर्यं करंसम्यक्तुलस्यास्तु श्रुतं महत् ।।१
ग्रढुजव्रतिनः पुंसः फलं महदुदाहृतम् ।
तत्पुनर्ब्रूहि माहात्म्यं केन चीर्णमिदं कथम् ।।२
आसीत्सह्याद्रिविषये करवीरपुरे पुरा ।
ब्राह्मणो धर्म वित्कश्चिद्ध मदत्तति विश्रुतः ।।३
विष्णुव्रतकरः शश्वद्विष्णुपूजारतः सदा ।
द्वादशाक्षरविद्यायां जपनिष्ठोऽतिथिप्रियः ।।४
कदाचित्कार्तिके मासि हरिजागरणाय सः ।
रात्र्मां तुर्यांशशेषायां जगाम हरिमन्दिरम् ।।५
हरिपूजोपकरणान्प्रगृह्य व्रजता तदा ।
तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमनिःस्वना ।।६
वक्रदंष्ट्रा ललज्जिह्वा निमग्ना रक्तलोचना ।
दिगम्बरा शुष्कमांसा लम्बोष्ठी घघ रस्वना ।।७

राजा पृथु ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने इतिहास के सहित महात्म्य का वर्णन किया है और अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न कर देने वाला तुलसी

का माहात्म्य जो अतीव महान् है मैंने अच्छी तरह श्रवण किया है जो ऊर्जित व्रत वाले पुरुष और महान् फल आपने कहा था उस माहात्म्य को आप पुनः चाहिए कि यह व्रत किसने और किस प्रकार से किया था ।१-२। देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—परम प्राचीन समय में पहिले सह्याद्रि के देश में एक करवीर पुर था उसमें धर्मदत्त नाम से प्रसिद्ध धर्म का ज्ञाता कोई ब्राह्मण था ।३। वह विष्णु के व्रतों का करने वाला और निरन्तर सदा ही भगवान् विष्णु की पूजा में निरत रहने वाला था। द्वादश अक्षरों की विद्या में अर्थात् 'ओं नमे भगवते वासु-देवाय' इस महामन्त्र की विद्या में जप की निष्ठा रखने वाला तथा अतिथियों में प्यार रखने वाला था ।४। किसी समय कार्तिक मास में वह हरि के जागरण के लिए चतुर्थ भाग जब रात्रि का शेष रह गया था उसी समय में रात में हरि के मन्दिर में चला गया था ।५। उस समय में श्री हरि को पूजा के उपकरणों को ग्रहण कर जाते हुए उसने आती हुई अत्यन्त भयानक ध्वनि करने वाली एक राक्षसी को देखा था ।६। वह राक्षसी तिरछी दाढ़ों वाली-जीभ को निकाले हुए निमग्न और रक्त नेत्रों वाली थी। वह एकदम नग्न थी—उसका मांस शुष्क था—लम्बे ओष्ठों से युक्त और घर्घर ध्वनि करने वाली थी ।७।

तां दृष्ट्वा भयवित्रस्तः कम्पितावयवस्तदा ।
पूजोपकरणैर्वेगात्पयोभिश्चाहनद्भयात् ।।८
संस्मृत्त च हरेर्नाम तुलसीयुतवारिणा ।
स हता पातकं तस्मात्तस्याः सर्वमगात्क्षयम् ।।
अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजाम् ।
स्वांदशामब्रवीत्सर्वा दण्डवत्तं प्रणम्यसा ।।९
पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गता ह्यहम् ।
तत्कथं तु पुनर्विप्र ! याम्युत्तमगतिं शुभाम् ।।१०
तां दृष्ट्वा प्रणतामग्रे वदमानां स्वकर्म तत् ।
अतीवविस्मिता विप्रस्तदा वचनमब्रवीत् ।।११

केन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदृशीं गता ।
कुतस्त्वं का च किं शीला तत्सर्वं कथयस्व मे ॥१२
सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन्भिक्षुनामाऽभवद्द्विजः ।
तस्याऽहं गृहिणी पूर्वं कलहाख्याऽतिनिष्ठुरा ॥१३
न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसाऽपि शुभं कृतम् ।
नार्पितं तस्य मिष्टान्नं भर्तुर्वचनभङ्गया ॥१४
कलहप्रिययानित्य भयोद्विग्नस्तदा द्विजः ।
परिणेतुं तदाऽन्यां स मतिचक्रे पतिर्मम ॥१५

उस परम भयानक राक्षसी को देखकर वह ब्राह्मण उस समय में भय से वित्रस्त हो गया था और उनके शरीर के सब अङ्ग सम्पायमान हो रहे थे। उसने बड़े ही वेग से भय के कारण पूजा के उपकरण जल से हनन किया था।८। भगवान् हरि के नाम का स्मरण करके इस तुलसी से युक्त जल से उसका हनन जब कियाथा उससे उस राक्षसी का सम्पूर्ण पातक क्षय को प्राप्त हो गया था अर्थात् नष्ट हो गया था।६। इसके अनन्तर उसने अपने पूर्व जन्म के कर्मों के विपाक से समुत्पन्न अपनी सम्पूर्ण दशा को पहिले उस ब्राह्मण को दण्डवत प्रणाम करके पीछें कहा था। कलहा ने कहा—मैं अपने पूर्व जन्म में किए कर्मों के विपाक से ही इस दशा को प्राप्त हो गई हूँ। हे विप्र ! अब पुनः मैं अति उत्तम और शुभ गति को कैसे प्राप्त करूँगी—यह बतलाइये।१०। नारदजी ने कहा—उस विप्र ने उस समय में अपने आगे प्रणत और अपने उस कर्म को बतलाने वाली को देखा था तो उस विप्र को अत्यन्त आश्चर्य हुआ था और उस समय में वह विप्र बोला—धर्म दत्त ने कहा—किस कर्म के विपाक होने से तेरी इस तरह की दशा हुई ? तू कहाँ से आई है और तू कौन है ? क्या तेरा शील स्वभाव है यह सभी मुझ को इस समय में बतला दो।११-१२। इस पर कलहा ने कहा—हे ब्रह्मन ! सौराष्ट्र नगर में एक भिक्षु नाम-वाला द्विज हुआ था। उसकी मैं पूर्व में कलहा नाम वाली अत्यन्त निष्ठुर गृहिणी थी।१३। मैंने कभी भी स्वामी के वचन से शुभ कर्म नहीं किया था। भर्त्ता के वचनों को भङ्ग

करने वाली मैंने कभी उसे मिष्ठांन अर्पित नहीं किया था।१४। मैं नित्य ही कलह से प्यार करने वाली थी और उस समय में वह द्विज भय से उद्विग्न रहने लगा था। उसने जो मेरा पति था उस समय में किसी अन्य स्त्री के साथ अपना विवाह करने की बुद्धि स्थिर की थी।१५।

ततो गरं समादाय प्राणास्त्यक्ता मया द्विज ! ॥१६
अथ बद्ध्वा बध्यमानां मां विनिन्युर्यमानुगाः ।
यमश्च मान्तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमपृच्छत ॥१७
अनया किं कृतं कर्म चित्रगुप्त । विलोकय ।
प्राप्नोत्वेषा कर्मफलं शुभं वाऽशुभमेव च ॥१८
चित्रगुप्तस्ततो वाक्यं भर्त्सयन्मामुवाच ह ॥१९

हे द्विज ! इसके अनन्तर विष लाकर मैंने अपने प्राणों का त्याग किया था। इसके अनन्तर यमराज के दूतों ने मुझे बाँधकर वे वध्यमान मुझको वहाँ यम की पुरी में ले गये थे। यमराज ने उस समय में मुझ को देखकर चित्रगुप्त से पूछा था। १६-१७। यम ने कहा—हे चित्र गुप्त ! इसने क्या कर्म किया है ? देखो, यह शुभ अथवा अशुभ कर्मों का फल प्राप्त करेगी। कलहा ने कहा—इसके पश्चात् चित्रगुप्त ने मुझको फटकार लगाते हुए यह वाक्य कहा था—।१८-१९।

अनया तु शुभं कर्म कृतं किंचिन्न विद्यते ।
मिष्ठान्नं भुक्तमनया न भर्तरि तदर्पितम् ॥२०
अतश्च वल्गुलीयोन्यां स्वविष्ठादावतिष्ठताम् ।
भर्तुर्द्वेषकरी त्वेषा नित्यं कलहकारिणी ॥२१
विष्ठादाशूकरीयोन्यां ततस्तिष्ठत्विय हरे ।
पाकभाण्डे सदा भुक्तं नित्यं चैवानया यतः ॥२२
तस्माद्दोषाद् विडाली तु स्वजातापत्यभक्षिणी ।
भर्तारमनयोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतो यतः ॥२३
तस्मात्प्रेतपिशाचेषु तिष्ठत्वेषाऽतिनिन्दिता ।
ततश्चैनां मरु देशां प्रापितव्या भटैः सह ॥२४

तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठत्वियं ततः ।
इत्थं योनित्रयं त्वेषा भुनक्त्वशुभकारिणी ॥२५

चित्रगुप्त ने कहा—इसने कुछ भी शुभ कर्म तो किया ही नहीं है जो यहाँ पर लिखा गया हो । इसने स्वयं मिष्टान्न खा लिया था और अपने भर्त्ता को कभी भी नहीं दिया है ।२०। इसलिए यह वल्गुली योनि में अपनी ही विष्ठा आदि में रहेगी क्योंकि यह सदा अपने ही स्वामी के साथ द्वेष करने वाली और नित्य ही कलह के करने वाली रही है ।२१। हे हरे ! यह तो विष्ठा को खाने वाली शूकरी योनि में रहेगी क्योंकि इसने सदा ही नित्य पाक करने वाले पात्र में ही खाया था ।२२। इस दोष से अपने ही गर्भ से उत्पन्न सन्तति का भक्षण करने वाली यह विडाली है । क्योंकि इसने अपने ही भर्त्ता का उद्देश्य करके आत्मघात किया है ।२३। अतएव यह अत्यन्त निन्दित हैं और यह प्रेत पिशाचों के मध्य में ही रहेगी । इसके उपरान्त इसको मरुदेश में भटों के सहित प्राप्त करा देना चाहिए ।२४। वहाँ पर प्रेत के शरीर में स्थित होकर वह चिरकाल पर्यन्त रहे । इस तरह से यह अशुभ कर्म्मों के करने वाली तीन योनियों में रहकर अपने द्वारा कृत अशुभ कर्मों का फल भोग करे ।२६।

साऽहं पञ्चशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल ।
क्षुत्तृड्भ्यां पीड़िता नित्यं दुःखिता स्वेन लर्मणा ॥२६
ततः क्षुन्पीड़िताऽविश्य शरीरं वणिजस्त्वहम् ।
आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्यास्तु संगमे ॥२७
तत्तीरसंश्रिता यावत्तावत्तास्य शदीरतः ।
शिवविष्णुगणैर्दूरमपाकृष्टा बलादहम् ॥२८
ततः क्षुत्क्षामया दृष्टो भ्रमन्त्या त्वं भया द्विज ।
प्रक्षिप्ततुलसींबारि संसर्गगतपापया ॥२९
तत्कृपां कुरु विप्रेन्द्र ! कथं मुक्तिमवाप्नुयाम् ।
योनित्रयादितभयादस्माच्च प्रेतदेहतः ॥३०

इत्थं निशम्य कलहावचनं द्विजश्च-
तत्कर्म पाकभवविस्मयदुःखयुक्तः ।
तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्ति-
र्ध्यात्वा चिरं स वचनं निजगाद दुःखात ।।३१

कलहा ने उस द्विज से कहा था—वही मैं पाँच सौ वर्ष पर्यन्त प्रेत के देह में स्थित रही थी और नित्य ही भूख-प्यास से अत्यन्त उत्पीड़ित तथा अपने ही कर्म से दुःखित हूँ ।२६। इसके अनन्तर मैं भूख से पीड़ित होती हुई एक वणिक् के शरीर में आविष्ट होकर दक्षिण देश में कृष्ण वेणी के सङ्गम में आयी हुई हूँ ।१७। उसके तीर पर जब तक मैं संश्रित रही थी तभी उसके शरीर से शिव और विष्णु के गणों के द्वारा मैं बलपूर्वक पृथक कर दी गई थी ।२८। हे द्विज ! इसके पश्चात भ्रमण करती हुई मैंने आपको देखा है । आपने मेरे ऊपर जो तुलसी का मिश्रित जल प्रक्षिप्त किया है उसके संसर्ग होने से मेरे पाप चले गये हैं ।२६। हे विप्रेन्द्र ; अब आप ऐसी कृपा मुझ पर करिये और बतलाइए कि मैं कैसे मुक्ति को प्राप्त करूँगी । तीनों योनियों से जो अत्यन्त भय देने वाली हैं और प्रेत के देह से मेरा छुटकारा किस तरह होगा ? ।३०। उस द्विज ने इस तरह के उस कलहा के वचनों को सुनकर विचार किया तो उसे उसके कर्मों के विपाक से होने वाले फल से अत्यन्त विस्मय और दुःख हुआ था । उसकी ग्लानि के देखने से जो हृदय में दया हुई तो वह चल वृत्ति वाला हो गया था । फिर चिरकाल तक ध्यान किया था और फिर दुःख के साथ यह वचन बोला था ।३१।

विलयं यान्ति पापानि तीर्थदानव्रतादिभिः ।
प्रेतदेहस्थितायास्ते तेषु नैवाधिकारिता ।।३२
त्वद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्नं च मम मानसम् ।
नव निर्वृतिमायाति त्वामनुद्धृत्य दुःखिताम् ।।३३
पातकं च तवाऽत्युग्रं योनित्रयविपाकदम् ।
नैवान्यैः क्षीयते पुण्यैः प्रयत्नैश्चातिगर्हितम् ।।३४

तस्मादाजन्मजनितं यन्मया कार्त्तिकव्रतम् ।
तत्पुण्यस्यार्धभागेन सगद्गतिं त्वमवाप्नुहि ॥३५
कार्त्तिकव्रतपुण्येन न साम्यंयान्ति सर्वथा ।
यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतान्यपि यतोध्रुवम् ॥३६

धर्मदत्त ने कहा–तीर्थ, दान और व्रत आदि उत्तम साधनों से पापों का विलय हुआ करता है किन्तु तू तो प्रेत के देह में स्थित है अतः इस देह में रहने वाली तेरा तीर्थ दानादि में कुछ भी करने का अधिकार ही नहीं है ।३२। तेरी इस ग्लानि को देखने से मेरा मन तो अत्यन्त ही खिन्न हो गया है और मेरे मन में शान्ति ही नहीं हो रही है जब तक मैं तेरा इस महान् दुःख से उद्धार न कर दूँ ।३३। तेरा जो पातक है वह भी अत्यन्त उग्र हैं जो कि तीन योनियों के विपाक का प्रदान करने वाला है । यह प्रेतत्व अत्यन्त ही गर्हित है इसका क्षय अन्य पुण्यों से हो ही नहीं सकता है ।३२। इसलिए जन्म से लेकन मैंने कात्तिक के व्रत का समाचरण किया है । मैं उसका जो भी कुछ पुण्य फल प्राप्त हुआ है उसका आधा भाग तुझे देता हूँ उससे तू सदगति की प्राप्ति कर ।३५। अन्य जो यज्ञ-दान तीर्थ और व्रत आदि हैं वे सब निश्चय ही इस कार्त्तिक मास के व्रत को समता को भी प्राप्त नहीं किया करते हैं । कार्त्तिक व्रत का इन सब से कहीं अधिक महत्व होता है ।२६।

इत्युक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तामभ्यषेचयत् ।
तुलसीमिश्रतोयेन श्रावयन्द्वादशाक्षरम् ॥३७
तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा ।
दिव्यवपुंधरा जाता लावण्याद्भासिता दिशः ॥३८
ततः सा दण्डवद्भूमौ प्रणनामाथ त द्विजम् ।
उवाच च तदा वाक्यं हर्षगद्गदभाषिणी ॥३९
त्वत्प्रसाद् द्विजश्रेष्ठ ! विमुक्ता निरयादहम् ।
पापाब्धौ मज्जमानायास्त्वं नौ भूतोऽसि मे ध्रुवम् ॥५०
इत्थं सा वदती विप्रं ददर्शायातमम्बरात् ।
विमानं भास्वरं युक्तं विष्णुरूपधरैर्गणैः ॥४१

श्री नारद जी ने कहा—उस धर्मदत्त ने यह कह कर उस तुलसी के मिश्रित जल से द्वादशाक्षर मन्त्र का श्रवण करते हुए उसका अभिषिचन किया था ।३७। जब तक यह अभिषिचन कर रहा था तब तक वह कलहा प्रेतत्व से मुक्त होकर जलती हुई अग्नि की शिखा के समान दिव्य शरीर के धारण करने वाली हो गई थी और वह परम सुन्दर दिव्य लावण्य से सभी दिशाओं को समुद्भासित करने लगी थी ।३८। इसके पश्चात् उसने भूमि में दण्ड की भाँति पतित होकर उस द्विज को प्रणाम किया था और उस समय में हर्षातिरेक से गदगद होकर भाषण करने वाली उसने यह वाक्य कहा था ।३९। कलहा ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! मैं आपकी ही कृपा से इस नरक से विमुक्त हो गई हूँ । इस पाप के सागर में डूबती हुई मेरे लिये आप निश्चय ही नौका के समान हो गये हैं ।४०। देवर्षि नारदजी ने कहा—वह इस तरह से विप्र से कह ही रही थी कि उसने आकाश से आता हुआ विष्णु के रूप की धारण करने वाले गणों से युक्त अतीव भास्वर एकवमान देखा था ।४१।

।। दीपावली माहात्म्य ।।

दीपावलिफलं नाथ विशेषाद्ब्रूहि साम्प्रतम् ।
किमर्थं क्रियते सा तु तस्याःका देवता भवेत् ।।१
किं च तत्र भवेद्देयं किं न देयं वद प्रभो ।
प्रहर्षः कोऽत्रनिर्दिष्टः क्रीडा कात्र प्रकीर्तिता ।।२
इति स्कन्दवचःश्रुत्वा भगवान्कामशोषणः ।
साधूक्त्वा कार्तिकं विप्रा प्रहसन्निदमब्रवीत् ।।३
कार्त्तिकस्यासितेपक्षे त्रयोदश्यां तु पावके ।
यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति ।।४
मृत्युना पाशहस्तेन कालेन भार्यया सह ।
त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतामिति ।।५

कार्त्तिके कृष्णपक्षे च चतुर्दश्या विधूदये ।
अवश्यमेव कर्त्तव्यं स्नानं च पाहसीरुभिः ।।६
पूर्वविद्धा चतुर्दश्याः कार्त्तिकस्यसितेतरे ।
पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यादतन्द्रितः ।।७
तैले लक्ष्मोर्जले गङ्गा दीपावल्यां चदुर्दशीम् ।
प्रातः स्नानं हि यः कुर्याद्यमलोकं न पश्यति ।।८

स्वामिकार्त्तिकेय ने कहा—हे नाथ ! इस समय में विशेष रूप से दीपावलि का फल बतलाइए । इसको किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए किया जाता है और इस दीपावलि का कौन सा देवता होता है जिसका अर्चन किया जाता है ।१। प्रभो ! उसमें क्या तो देना चाहिए और क्या नहीं देना चाहिये । इसमें किस प्रहर्ष का निर्देश किया गया है और कौन सी क्रीड़ा को कीर्तित किया गया है ? ।२। सूतजी ने कहा—इस तरह के स्कन्द प्रभु का वचन सुनकर भगवान कामदेव को नष्ट करने वाले शिव ने कार्त्तिकेय से यह कहकर कि वहुत अच्छा तुमने पूछा है हे विप्रगण ! फिर हँसते हुए शिवजी ने यह कहा था ।३। श्रीशिव ने कहा—कार्त्तिक मास के कृष्ण पक्ष में त्रयोदशी तिथि में पावक में घर से यमद्वीप रक्खे इसका फल यह है मनुष्य की अपमृत्यु विनाश हो जाता है ।४। पाश हाथ में रखने वाले काल मृत्यु तथा भार्या के सहित सूर्य पुत्र (यमराज) त्रयोदशी में दीप दान से प्रसन्न होवें ।५। कार्त्तिक मास कृष्ण पक्ष में चन्द्रोदय के समय में जो पापों से भयभीत रहने वाले पुरुष हैं उनको अवश्य स्नान करना चाहिए ।६। कार्त्तिक के कृष्ण-पक्ष से पूर्व विद्या चतुर्दशी के पक्ष में प्रातःकाल के समय में तन्द्रा से रहित होते हुए स्नान करना चाहिये ।७। तेल में लक्ष्मी, जम में गङ्गा और दीपावली में चतुर्दशी इनमें जो मनुष्य प्रातःकाल में स्नान करता है वह यमलोक का नहीं देखा करता है ।८।

अपामार्गस्मथा तुम्बी प्रपुन्नाट च वाह्वलम् ।
भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै ।।९

सीतालोष्टसमायुक्त सकण्टकदलान्वित ।
हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनःपुनः ॥१०
अपामार्ग प्रपुन्नाटं भ्रामयेच्छिरसोपरि ।
ततश्च तर्पण कार्यं यमराजस्य नामभिः ॥११
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ।।१२
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ॥१३
नरकाय प्रदातव्यो दीपःसंपूज्य देवताः ।
ततः प्रदोषसमये दीपान्दद्यान्मनोहरान् ॥१४

अपामार्ग—तुम्बी-प्रपुन्नाट-वाह्वाल को स्नान के मध्य में भ्रामण करे। इसके नरक का क्षय होता है ।९। हे अपमार्ग ! आप सीता लोष्ठ समायुक्त हैं और कष्टकों सहित हनों से संयुक्त हैं। पुनःपुनः भ्राम्य माण होते हुये पाव का हरण करो ।१०। अपमार्ग (औधा) प्रयुन्नाट को शिर के ऊपर भ्रमण करावे (घुमावे) इसके अनन्तर तर्पण करना चाहिये। वह तर्पण यमराज के नामों से ही करे। यमराज के नामों का उल्लेख है—यम के लिये-धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वतकाल, सर्वभूतक्षय औदुम्बर-घृघ्न-नील, परमेष्ठी-वृकोदर-चित्र, चित्रगुप्त के लिये नमस्कार है। सभी नामों के आगे नमः और चतुर्थी विभक्ति योग करके तर्पण करे। देवता का भली भाँति पूजन करके नरक के लिये दीप देना चाहिये। इसके पश्चात प्रदोष के समय में मनोहर अन्य भी दीपों का दान करना चाहिये ।११-१४।

ब्रह्माविष्णुशिवादीनां भवनेषु विशेषतः ।
कूटागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च ।।२५
प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कुटेषु च ।
मन्दुरासु विविक्तासु हस्तिशालासु चैव हि ॥१६
एवं प्रभातसमये ह्यमावस्यां तु पावके ।

स्नात्वा देवापितृन्भक्त्वा संपूज्याऽथ प्रणम्य च ॥१७

कृत्वा तु पार्वणं श्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ।
भोज्यैर्नानाविधैर्विप्रान्भोजयित्वा क्षमापयेत् ॥१८
ततोऽपराह्नसमये पोषयेन्नागरान्प्रिय ।
तेषां गोष्ठीं च मानं च कृत्वा संभाषणं नृपः ॥१९
वक्तृणां वत्सर यावत्प्रीतिरुत्पद्यते गुह ।
अप्रबेद्धे हरौ पर्व स्त्रीभिर्लक्ष्मीः प्रबोधयेत् ॥२०
प्रबोधसमये लक्ष्मीं बोधयित्वा सु सुस्त्रिया ।
पुमान्वै वत्सरं यावल्लक्ष्मीस्तं नैव मुञ्चति ॥२१

ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि के भवनों में विशेष रूप से कूटागारों में चैत्यों में सभाओं में नदियों में प्राकार उद्यान वापियों में प्रतोली निष्ठुर में मन्दुराओं में विविक्ताओं में और हस्तिशालाओं में दीप दान करे।१५-१६। इस प्रकार से प्रभात समय में अमावस्या में पावक में स्नान करके भक्ति की भावना से देवों और पितृगणों का पूजन करके प्रणाम करे तथा पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। फिर दधि-क्षीर-घृत आदि नाना प्रकार के भोज्यों से विप्रों को भोजन करा कर उनसे क्षमापन करावे।१७-१८। हे प्रिय! इसके उपरान्त अपरान्ह समय में नागरों का पोषण करे। उनकी गोष्ठीमान करके सम्भाषण करे।१९। हे गुह! वक्ताओं की प्रति वर्ष की समाप्ति तक समुत्पन्न हुआ करती है। भगवान हरि के अप्रबुद्ध होने पर पर्व में स्त्रियों से द्वारा लक्ष्मी का प्रबोधन करना चाहिये।२०। सुन्दर स्त्री के द्वारा प्रबोधन के समय में लक्ष्मी का बोधन करा कर पुमान को पूरे वर्ष पर्यन्त लक्ष्मी कभी नहीं त्यागती है।२१।

अभयं प्राप्य विप्रेभ्यो विष्णुभीताः सुर द्विषः ।
सुप्तं क्षीरोदधौ ज्ञात्वा लक्ष्मीं पद्माश्रितां तथा ॥२२
त्वं ज्योतिः श्रीरविश्चन्द्रो विद्युत्सौवर्णतारकः ।
सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीपज्योतिः स्थिता तु या ॥२३
या लक्ष्मीर्दिवसे पुण्ये दीपावल्या च भूतले ।
गवां गोष्ठे तु कार्त्तिक्यां सा लक्ष्मीर्वरदा मम ॥२४

भूषणीयास्तथा गावो वर्ज्यावहवदोहनात् ।
गोवर्धनधराधार गोकुल त्राणकारक ।।२५
विष्णुबाहुकृतोच्छाय गवां कोटिप्रदो भव ।
या लक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ।।२६
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु ।
अग्रतः सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।।
गावो मे हृदये सन्तु गवो मध्ये वसाम्यहम् ।।२७

विप्रों से अभय का वरदान तथा आशीर्वाद प्राप्त करके जो सुरों से द्वेष करने वाले थे वे विष्णु से भयभीत हो गये थे। पद्म का आश्रय ग्रहण करने वाली लक्ष्मी को क्षीर सागर में जानकर सुप्त हो गये ।२२। आप ही ज्योति है—श्री—रवि-चन्द्र-विद्युत—सौवर्ण तारक हैं। जो यह द्वीप ज्योति स्थित है वह सब ज्योतियों की ज्योति है ।२३। जो लक्ष्मी पुण्य दिवस में हैं—दीपावलि में भूतल में हैं—गौओं के गोष्ठ में है वह लक्ष्मी कार्त्तिकी पूर्णिमा में मुझे वरदान देने वाली होवें ।२४। वहन-दोहन से वर्ज्य गौओं को भूषणों से समलँकृत करना चाहिये। गोवर्धन धरा के आधार और गोकुलों के त्राण के कारण स्वरूप विष्णु के बाहु से किए हुए उच्छाय वाले आप गौओं के कोटि प्रद होवें। जो लक्ष्मी लोक पालों के यहाँ धेनु रूप से संस्थित है और यज्ञ के लिये घृत का वहन करती है वह मेरे पाप का व्यपोन करे। मेरे आगे गौऐं होवें और मेरे पीछे गौऐं होवे मेरे हृदय में गौऐं रहें और मैं सदा गौओं के ही मध्य में निवास करूँ ।२५-२७।

सद्भावेनैव संतोष्य देवान्सत्पुरुषान्नरान् ।
इतरेषामन्नपानैर्वाक्यदानेन पण्डितान् ।।२८
वस्त्रैस्ताम्बूल दीपैश्च पुष्पकर्पूरकुङ्कुमैः ।
भक्ष्यैरुच्चावचैर्भोज्यैरन्तः पुरनिवासिनः ।।२९
वृषभान्ग्रासदानैश्च सामन्तान्नृपतिर्धनैः ।
पदाति जनसंघांश्च ग्रैवेयःकटकैः शुभैः ।।३०

स्वानमात्याश्च तन्नाजा तोषयेत्स्वजनान्पृथक् ।
यथाऽथ तोषयित्वा तु ततो मल्लन्नटांस्तथा ॥३१
वृषभांश्च महोक्षांश्च युध्यमानान्परैःसह ।
राजन्य श्चिापियोधांश्च पदातीन्समलङ्कृतान् ॥३२
मञ्चारूढ़ःस्वयं पश्येन्नटनर्तकचारणान् ।
योधयेद्वासयेच्चैव गोमहिष्यादिकं च यत् ॥३३
वत्सानाकर्ष येद्गोभिरुक्तियत्युक्तिवादनात् ।
ततोऽपराह्नसमये पूर्वस्यां दिशि पावपे ॥३४
मार्गपालीं प्रबध्नीयाद्दुर्गस्तम्भेऽथ पादपे ।
कुशकाशमयीं दिव्या लम्बकैर्बहुभिर्गुह ॥३५

यह गोवर्धन पूजा का विधान है जो करना चाहिए। देवों की सद्भाव से तथा सत्पुरुष नरों को तथा दूसरों को अन्न पान आदि से एवं वाक्यदान से पण्डितों को सन्तुष्ट करके वस्त्रताम्बूल-दीप-पुष्प-कर्पूर-कुंकुम-भक्ष्य तथा उच्चावच भोज्य पदार्थों से अन्तः पुर में निवास करने वालों को सन्तुष्ट करे।२८।२९। ग्रास के दानों से वृषभों को धनों के द्वारा नृपति सामन्तों को सन्तुष्ट करे। जो पदातिजन के सङ्ग है उनको शुभ ग्रैवेय और कटकों से सन्तुष्ट करना चाहिए ।३०। राजा को अपने अमात्यों की तथा स्वजनों को पृथक सन्तुष्ट करना चाहिए। यथोक्त रूप से उपर्युक्त सब का तोषण करके उसी भाँति मल्ल नट वृषभ महोक्ष दूसरों के साथ युध्यमान राजन्यों को योधाओं को और पदातियों को समलंकृत करे।३२-३३। स्वयं मंच पर समारूढ़ होकर नट-नर्त्तक और चरणों को देखे। जो गौ महिषी आदि है उनको योधित और वासित करे। उक्ति प्रयुक्ति कथन से गौओं के द्वारा वत्सों को आकर्षित करना चाहिए। इसके अनन्तर दोपहर के बाद पूर्व दिशा में अग्नि में दुर्ग स्तम्भ में मार्गपाली का प्रबन्ध करे। इसके अनन्तर हे गुह ! बहुत से लम्बकों से दिव्य कुशकाश की मयी को पादप में प्रबन्धित करे।३३।

वीक्षयित्वा गजानश्वान्मार्गपाल्यास्तले नयेत् ।
गार्वावृ षांश्च महिषान्महिषीर्घण्टिकोत्कटाः ।।३६
कृतहोमैर्द्विजेन्द्रै स्तु बध्नीयान्मार्ग पालिकाम् ।
नमस्कार ततःकुर्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रतः ।।३७
मार्गपालि नमस्तुभ्य' सर्व लोक सुखप्रदे ।
मार्गपालीतले स्कन्द यान्तिगावो महावृषाः ।।३८
राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः ।
मार्गपाली समुल्लंघच नीरुजः सुखिनोहि ते ।।३९
कृत्वैतत्सर्व मेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः ।
पूजां कुर्यात्ततः साक्षाद्भूमौ मण्डलके कृते ।।४०
बलिमालिख्य दैत्येन्द्र' त्रर्णकैः पञ्चरङ्गकैः ।
सर्वाभरणसंपूर्णविन्ध्यावलिसमन्वितम् ।।४१
कूष्मा ण्डमयजम्भोरु मधुदानव संवृतम् ।
संपूर्ण हृष्टवदनं किरीटोत्कटकुण्डलम् ।।४२

गजों और अश्वों का देखकर मार्ग पाली के तल में ले जावे तथा गौ-वृषों को, महिषम, हिषियों को घण्टिका सि उत्कट करे ।३६। होम किये हुये द्विजेन्द्रों के द्वार मार्ग पालिका का बन्धन करना चाहिये। सुव्रत को इसके अनन्तर नीचे वतलाये जाने वाले मन्त्र से नमस्कार करना चाहिये ।३७। मन्त्र यह है—हे मार्ग पाली ! आप समस्त लोकों को सुख का प्रधान करने वाली हैं, आपको नमस्कार है । हे स्कन्द ! मार्ग पाली के तल में गौयें और महावृष जाते हैं ।३८। राजा और राज पुत्र तथा विशेष रूप से ब्राह्मण वे सव मार्ग पाली का समुल्लंघन करके नीरुज और सुखी होते हैं ।३९। यह सब कुछ करके रात्रि में दैत्यों के स्वामी बलि की पूजा करनी चाहिये । इसके पश्चात भूमि में एक मण्डल की रचना करने पर साक्षात दैत्यों के स्वामी बलि का आलेखन पाँच वर्णों के रङ्गों से करे जो कि सब आभरणों से सम्पन्न विन्ध्यावलि से संयुत होना चाहिये ।४०-४१। कूष्माण्डमय जम्भ उरु

और मधु दानव से भी संयुत हो। सब सृष्ट वदन युक्त और किरीट-कुण्डलों से समन्वित होवे ।४२।

द्विभुंजं दैत्यराजं च कारयित्वा स्वके पुनः ।
गृहस्य मध्येशालायां विशालायां ततोर्ऽचयेत् ।।४३
मातृभ्रातृजनैः सार्धं सन्तुष्टो बन्धुभिः सहः ।
कमलैः कुमुदैः पुष्पैः कह्लारै रक्तकोत्पलैः ।।४४
गन्ध ष्पान्ननैवेद्यः सक्षीरैंगुंडपायसैः ।
मद्यमांससुरालेह्यचोष्यभक्ष्योपहारकैः ।।४५
मन्त्रेणानेन राजेन्द्रः समन्त्री सपुरोहितः ।
पूजां करिष्यते यो वै सौख्यं स्यात्तस्य वत्सरम् ।।४६
बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो ।
भविष्येन्द्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।।४६
एवं पूजाविधि कृत्वा रात्रौ जागरणं ततः ।
कारयेद्वृक्षणं रात्रौ नटनर्तकगायकैः ।।४७
लोकैश्चापि गृहस्यान्ते सपर्यां शुक्लतण्डुलैः ।
संस्थाप्य बलिराज तु फलैः पुष्पैश्च पूजयेत् ।।४८

दो भुजाओं वाले दैत्यराज की रचना कराकर फिर अपने घर के मध्य में बिशाल शाखा में अर्चन करे ।४३। माता भ्रातृजन के साथ तथा वन्धुजनों के सहित परम सन्तुष्ट होकर कमल, कुमुद, कल्हार और रक्तोत्पल पुष्पों से—गन्ध, पुष्प, अन्न नैवेद्यों के द्वारा क्षीर के सहित गुड़ और पायस से मद्य, माँस, सुरा, लेह्य, चोष्य और भक्ष्य उपहारों के द्वारा यजन करना चाहिये ।४४-४५। अपने मन्त्री और पुरोहितों के सहित जो राजेन्द्र इस मन्त्र से पूजा करेगा वह पूरे वर्ष पर्यन्त सौख्य को प्राप्त करेगा ।४६। मन्त्र यह है—हे विरोचन के पुत्र ! हे प्रभो ! हे बलिराज ! आपको नमस्कार है। हे भविष्य के इन्द्र ! हे सुरों के आराति ! मेरी यह पूजा आप ग्रहण कीजिये ।४७। इस प्रकार से सम्पूर्ण पूजा की विधि को सम्पन्न करके फिर रात्रि में जागरण कराना चाहिये। रात्रि में नट नर्तक और गायकों के द्वारा तथा लोकों के द्वारा

घर के अन्दर शुक्ल तण्डुओं से सपर्या को संस्थापित करके फलों और पुष्पों से बलिराज की अर्चा करनी चाहिए ।४८-४९।

बलिमुद्दिश्य वै तत्र कार्यं सर्वं च पावके ।
यानि यान्यशयाण्याहुर्मुनयस्तत्वदर्शिनः ।।५०
यदत्र दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु ।
तदक्षयं भवेत्सर्वं विष्णो प्रीतिकरं शुभम् ।।५१
रात्रौ ये न करिष्यन्ति तव पूजां बले नराः ।
तेषामश्रोत्रियं सर्मं सर्वं त्वामुपतिष्ठतु ।।५२
विष्णुना च स्वयं वत्स युष्टेन बलये पुनः ।
उपकारकरं दत्तमसुराणां महोत्सवम् ।।५३
तदा प्रभृति सेनानीः प्रवृत्ता कौमुदी सदा ।
सर्वोपद्रवविद्रावा सर्वबिघ्नविनाशिनी ।।५४
लोकशोकहरा काम्या धनपुष्टिसुखावहा ।
कुशब्देन मही ज्ञेया मुदहर्षे ततौ द्वयम् ।।५५
धातुत्वे निगमैश्चैव तेनैषा कौमुदी स्मृता ।
कौ मोदन्ते जना यस्मान्नानाभावैः परस्परम् ।।५६

बलि का उद्देश्य करके वहाँ पर सब पावक में करना चाहिए। तत्वों के देखने वाले मुनिगण जिन-जिन को अक्षय कहते हैं वे सभी करे ।५०। जो कुछ भी यहाँ पर स्वल्प या वहुत अधिक दिया जाता है वह सब अक्षय होती है और शुभ तथा भगवान विष्णु की प्रीति का करने वाला होता है ।५१। हे बले ! जो मनुष्य रात्रि में आपकी पूजा नहीं करेंगे उनका अश्रोत्रिय सब धर्म आपको उपस्थित होवे ।५२। हे वत्स ! स्वयं परम तुष्ट विष्णु ने वलि के लिए असुरों के उपकार को करने वाला महो सव दिया है ।५३। तभी से लेकर सदा सेनानी यह कौमुदी प्रवृत हुई है जो सव उपद्रवों के विद्रावण करने वाली और समस्त विघ्नों के विनाश करने वाली है ।४५। लोकों के शोक का हरण करने वाली—काम्या और धन पुष्टि और सुख का समावह करने वाली है । कुशब्द से मही से यह मही मुद और हर्ष इन दोनों से युक्त

जानने के योग्य हुई है ।५५। इसी धातुतत्र में निगमों के द्वारा वह कौमुदी कही गई है । कौ अर्थात् भूमि में परस्पर में नाना प्रकार के भावों से जिससे मनुष्य प्रसन्न होते हैं ।५६।

हृष्टतुष्टाःसुखापन्नास्तेनैषा कौमुदी स्मृता ।
कुमुदानि बलेर्यस्यां दीयन्ते तेन षण्मुख ।।५७
अर्घार्थं पार्थिवैः पुत्र तेनैषा कौमुदी स्मृता ।
एकमेवमहोरात्रं वर्षे वर्षे च कार्तिके ।।५८
दत्तं दानवराजस्य आदर्शमिव भूतले ।
यःकरोति नृपो राज्ये तस्य व्याधिभयं कुतः ।।५९
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं तस्य संपदनुत्तमा ।
नीरुजश्च जनाः सर्वे सर्वोपप्रववर्जिताः ।।६०
कौसुदी क्रियते तस्माद्भावं कर्तुं महीतले ।
यो यादृशेन भावेन निष्ठत्यस्यां च षण्मुख ।।६१
हर्ष दुःखादिभावेन तस्य वर्षं प्रयाति हि ।
रुदिते रोदते वर्षं हृष्टे वर्ष प्रहर्षितम् ।।६२
भुक्ते भोक्ता भवेद्वर्षं स्वस्थे स्वस्थं भविष्यति ।
तस्मात्प्रहृष्टैः कर्त्तव्या कौमुदी च क्षुभैर्नरैः ।।६३
वैष्णबी दानवी चेयं तिथिः प्रोक्ता च कार्तिके ।।६४

हृष्ट पुष्ट और सुख से आपन्न होते हैं इसी से यह कौमुदी कही गई है । हे षण्मुख ! जिसमें बलि के लिए कुमुद दिए जाते हैं इससे भी यह कौमुदी कही गई है ।५७। पुत्र ! अर्घ के लिए पार्थिवों के द्वारा कुमुदों का उपयोग किया जाता है—इस कारण से भी यह कौमुदी कही गई है । कार्त्तिकी मास में प्रत्येक वर्ष में केवल एक ही अहोरात्र में यह करना चाहिए ।५८। दानव राज बलि के लिये दिया हुआ यह भूतल में एक आदर्श के ही समान है जो भी कोई नृप अपने राज्य में इसको किया करता है उसको व्याधियों का भय तो कभी हो ही नहीं सकता है ।५९। उस राजा के राज्य में सर्वत्र सुभिक्ष क्षेम आरोग्य और उत्तम सम्पदा होती है । सभी मनुष्य रोगों से रहित परम स्वस्थ और

उपद्रवों से रहित हुआ करते हैं ।६०। महीतल में इसी कारण से भाव का करने के लिये कौमदी की छाया करती है । हे षण्मुख ! जो इसमें जिन प्रकार के भाव से स्थित होता हैं ।६१। हर्ष और दुःख आदि के भाव से उसका पूरा वर्ष प्रयाण किया करता है अर्थात गुजरता है । रुदित करने पर पूरा वर्ष रोदन किया करता है तथा हृष्ट रहने पर सम्पूर्ण वर्ष प्रहर्षित रहता है ।६२। युक्त होने पर वर्ष भोक्ता होता है और स्वस्थ होने पर स्वस्थ होगा । इसलिये पूर्ण वर्ष की रक्षा के लिये शुभ मनुष्यों के द्वारा अत्यन्त प्रहृष्ट होते हुये ही इस कौमुदी को करना चाहिए ।६३। कार्त्तिक में यह तिथि वैष्णवी और दानवी कही गयी है ।६४।

दीपोत्सवं जनितसर्वजनप्रसादं ।
कुर्वन्ति ये शुभतया बलिराजपूजाम् ।।६५
दानोपभोगसुखबुद्धिमतां कुलानां ।
हर्षं प्रयाति सकलं प्रभुदं च वर्षम् ।।६६
स्कन्दैतास्तिथयोनूनं द्वितीयाद्याश्चविश्रुताः ।
मासैश्चतुर्भिश्चततःप्रावृट्कालेशुभावहाः ।।६७
प्रथमा श्रावणे मासि तथा भाद्रपदे परा ।
तृतीयशवयुजे मासि चतुर्थी कार्त्तिके भवेत् ।।६८
कलुषा श्रावणे मासि तथा भाद्रपदेऽमला ।
आश्विने प्रेतसंचारा कार्तिकेयाम्यकामता ।।६९
कस्माता कलुषा प्रोक्ता कस्मात्मा निर्मला मता ।
कस्मात्मा प्रेतसंचारा कस्माद्याम्या प्रकीर्तिता ।।७०

जो मनुष्य सब मनुष्यों के प्रसाद को उत्पन्न करने वाले इस दीपोंत्सव को तथा परम शुभ होने से बलिराज की पूजा किया करते हैं । उनका पूरा वर्ष दान उपभोग सुख और वुद्धि वाले कुलों का प्रभुत्व देने वाला गुजरता है ।६५-६६। हे स्कन्द ! द्वितीया से आदि लेकर ये तिथियाँ निश्चय ही विद्युत है और प्रावृट (वर्षा काल में चार मासों से ये शुभ का आवाहन करने वाली होती हैं ।६७। प्रथम श्रावण मास

में होती है। दूसरी भाद्रपद में होती है। तीसरी आश्विन में और चौथी कार्त्तिक में हुआ करती है।६८। श्रावण में कलुषा होती है, भाद्रपद में अमला, आश्विन मास में प्रेत संचारा और कार्त्तिक में याम्य कामता होती है।६९। गुह ने कहा—किस कारण से श्रावण की तिथि को कलुषा बतलाया गया है और कौन से कारणों के होने से निर्मला तथा प्रेत सचारा एवं याम्या कही गयी है।७०।

इति स्कन्दवचः श्रुत्वा भगवान्भूतभावनः।
उवाच वचनं श्लक्ष्णं प्रहसन्वृषभध्वजः। ७१
पुरा वृत्रवधे वृत्तै प्राप्ते राज्य पुरन्दरे।
ब्रह्महत्यापनोदार्थश्वमेधः प्रवर्त्तितः ।।७२
क्रोधादिन्द्रणं वज्रेण ब्रह्महत्या निषूदिता।
षड्विधा सा क्षितौ क्षिप्ता वृक्षतोयमहीतले ।।७३
नार्यी वह्नौ भ्रूणहनि सविभज्य यथाक्रमम्।
तत्पापश्रवणात्पूव द्वितीयाया दिनेन च ।।७४
नारीवृक्षनदाभूमि वह्निभ्रूणहनस्तथा।
कलुषीभवनं जातो ह्यतोऽथ कलुषा स्मृता ।।७५
मधुकैटभयोरक्ते पुरा मग्नानुमेदिनी।
अष्टांगुला पवित्रा सा नारीणां तु रजोमलम् ।।७६
नद्यः प्रावृण्मलाः सर्वा वह्नेरूध्व मषीमलः।
निर्यासमलिना वृक्षाःसङ्गदभ्रूणहनोमलाः ।।७७

महामहर्षि सूतजी ने कहा—इस प्रकार के स्कन्द के वचन का श्रवण कर भूतों पर दया करने वाले वृषभध्वज ने हँसते हुए परम श्लक्षण यह वचन कहा—।७१। महेश बोले—प्राचीन समय में वृत्रासुर के वध होने पर राज्य में पुरन्दर को ब्रह्महत्या प्राप्त हुई थी। उस ब्रह्म हत्या को दूर करने के लिए अश्वमेघ यज्ञ प्रवृत्त किया गया था। इन्द्र ने क्रोध से वज्र के द्वारा ब्रह्महत्या को निषूदिन कर दिया था। वह फिर छै प्रकार की होकर पृथ्वी में प्रक्षिप्त कर दी गई थी। उन छै भागों का सविभाजन करके क्रम के अनुसार वृक्ष–जल–महीतल–नारी–

वह्नि और भ्रूण के हन्ता में दे दिया गया था। उस पाप के श्रवण करने से पूर्व द्वितीया के दिन से नारी-वृक्ष-नदी-भूमि-वह्नि और भ्रूण हन्ता में जो विभाजन हुआ था तो सब कलुषी भवन हो गया था, अतएव यह कलुषा कही गयी है।७२-७५। मधु और कैटभ इन दोनों के रक्त में पहिले यह मेदिनी मग्न हो गयी थी। आठ अंगुल पवित्र थी वह नारियों का रजोमल है।७६। नदियाँ सब वर्षा काल में मल वाली होती है—वह्नि का मषीमल ऊर्ध्व की ओर जाया करता है—वृक्ष निर्यास (गोंद) से मलिन हुआ करते हैं और संज्ञ से भ्रूणों का हनन करने वाले मल वाले हैं।७७।

कलुषा विचरन्त्यस्यां तेनैषा मता।
देवर्षिपितृधर्माणां निन्दका नास्तिका:शठा: ।।७८
तेषां सा वाङ्मलात्पूता द्वितीया तेन निर्मला।
अनध्यायेषु शास्त्राणि पाठयन्ति पटन्ति च ।।७९
साङ्ख्यकास्तार्किका:श्रौतास्तेषां शब्दापशब्दजात्।
मलात्पूता द्वितीयायां ततोऽर्थे निर्मला च सा ।।८०
कृष्णस्य जन्मना वत्स त्रैलोक्य पावित भवेत्।
नभस्येते विनिर्दिष्टा निर्मला सा तिथिर्बुधैः ।।८१
अग्निष्वात्ता वर्हिषद आज्यपा:सोमपास्तथा।
पितृन्पितामहान्प्रेतसंचारात्प्रेतसंचरा ।।८२
प्रेतास्तु पितरः प्रोक्तास्तेषां तस्यांतुसंचरः ।
पुत्रपौत्रैस्तुदौहित्रैः स्वधामन्त्रैस्तु पूजिताः ।।८३
श्राद्धदानमखैस्तृप्ता यान्त्यत:प्रेतसंचरा ।
महालये तु प्रेतानां संचारो भुवि दृश्यते ।।८४
तेनैषा प्रेतसंचारा कीर्तिता शिखिवाहन।
तमस्य क्रियते पूजा यतोऽस्यां पावके नरैः ।।८५

सब कलुष होकर ही इसमें विचरण किया करते हैं इसी कारण से यह कलुषा मानी गयी है। देव-ऋषि और पितृगणों के धर्मों की निन्दा करने वाले, नास्तिक और शठ हैं।७८। वह उनके वाणी के मल से

पूत हुई द्वितीया है। इसी कारण से वह निर्मला कही गयी है। अनध्यायों में शास्त्रों को पढ़ाया करते हैं और स्वयं भी पढ़ते हैं, सांख्यक-तार्किक और श्रौत इनके शब्दाय शब्द से उत्पन्न मल से पूता द्वितीया में है इसी से वह निर्मला है।७९-८०। हे वत्स ! श्रीकृष्ण के जन्म से त्रैलोक्य पावित्र होता है। नभस्य में वह बुधों के द्वारा निर्मला तिथि विनिर्दिष्ट की गयी है।८१। अग्निष्वात्त--वर्हिषद--आज्यय--सोपप-पितृगण और पिता यह इन सबके और प्रेतों के संचार होने से इसका नाम प्रेत संचारा है।८२। प्रेत पितर कहे गये हैं उसमें उनका ही संचारण होता है। पुत्र-पौत्र और दौहित्रों के द्वारा स्वधा मन्त्रों से वे पूजित होते हैं।८३। श्राद्धों दान मखों के द्वारा वे तृप्त होकर जाया करते हैं इसीलिए इसे प्रेत सचारा कहते हैं। महालय में भूमण्डल में प्रेतों का सचार दिखलाई दिया करता है इसीलिए हे शिखिवाहन ! इसको प्रेत संचारा—इस नाम से पुकारा जाता है। इसमें क्योंकि पावक में ही मनुष्यों के द्वारा यमराज की पूजा की जाया करती है।८४-८५।

तेनषा याम्यका प्रोक्ता सत्यं सत्यं मयोदितम् ।
एतत्कार्त्तिकमाहात्म्यं ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ।।८६
कार्त्तिकस्नानजं पुण्यं तेषां भवति निश्चितम् ।
कार्त्तिके च द्वितीयायां पूर्वाह्णेयममर्चयेत् ।।८७
भानुजायां नरःस्नात्वा यमलोकं न पश्यति ।
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां तु शौनक ।।८८
यमो यमुनया पूर्वं भोजितःस्वगृहेऽर्चिता ।
द्वितीतायां महोत्सर्गो नारकीयाश्च तर्पिताः ।।८९
पापेभ्यो विप्रयुक्तास्ते मुक्ताः सर्वनिबन्धनात् ।
आशंसिताश्च संतुष्टाः स्थिताःसर्वे यदृच्छया ।।९०

इसी कारण से यह याम्यका नाम से कही गयी है, यह मैंने पूर्णरूप से सच-सच कह दिया है। जो नरोत्तमद इस कार्त्तिक के महात्म्य का श्रवण किया करते हैं उनको कार्त्तिक मास में स्नान करने से उत्पन्न

होने वाला पुण्य-फल मिश्रित रूप से होता है। कार्त्तिक में द्वितीया तिथि में पूर्वान्ह के समय में यमराज का अभ्यर्चन करना चाहिए।८६ ८७। भानुजा यमुना में इस द्वितीया में मनुष्य स्नान करके फिर यमलोक को नहीं देखा करता है। हे शौनक! यह द्वितीय कार्त्तिक मास के शुक्ल-पक्ष में होती है। पहिले यमुना वहिन ने अपने भाई यम को भोजन कराया था फिर वह अपने घर में अचित हुई थी। द्वितीया में महोत्सर्ग है और नारकीय जो जीव हैं वे भी तर्पित होते हैं।८८-८९। वे समस्त पापों से विप्रयुक्त हो जाते हैं तथा सब प्रकार के निबन्धन से मुक्त होते हैं। आशंसित और सन्तुष्ट सब यदृच्छया स्थित होते हैं।९०।

तेषां महोत्सवो वृत्तो यमराष्ट्र सुखावहः।
अतो यभद्वितीयेयं त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥९१
तस्मान्निजगृहे विप्र न भोक्तव्यं ततो बुधैः।
स्नेहेन भगिनि हस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवद्धनम् ॥९२
दानानि च प्रदेयानि भागिनीभ्यो विधानतः।
स्वर्णालंकारवस्त्राणि पूजासत्कारसंयुतम् ॥९३
भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्याहस्ततः परम्।
सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्य बलवर्धनम् ॥९४
ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां पूजितस्तर्पितो यमः।
महिषासनमारूढो दण्डमुद्गरभृत्प्रभुः ॥९५
वेष्टितः किङ्करैर्हृष्टैस्तस्मै याम्यात्मने नमः।
यैर्भगिन्यःसुवासिन्यो वस्त्रदानादितोषिताः ॥९६
न तेषां वत्सरं यावत्कलहो न रिपोर्भयम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं धर्मकामार्थसाधनम ॥९७
व्याख्यातं सकलं पुत्र सरहस्यं मयाऽनघ! ॥९८
यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः
संभोजितःप्रतितिथौ स्वसृसौहृदेन।
तस्मात्स्वसुः करतलादिह यो हि भुङ्क्ते
प्राप्नोति वित्तशुभसंपदमुत्तमां सः ॥९९

यमराष्ट्र के लिए सुखों का आवाहन करने वाला उनका यह महोत्सव हुआ है इसीलिए यह तीनों लोकों में यमद्वितीया—इस नाम से विश्रुत है ।९१। इसी कारण से हे विप्र ! यमद्वितीया के दिन में बुधों को अपने घर में भोजन नहीं करना चाहिए प्रत्युत बड़े ही स्नेह के साथ अपनी भागिनी के हाथ से ही पुष्टि के वर्धन करने वाला भोजन करना चाहिए ।९२। विधान के साथ बहिनों के लिए दान देते चाहिए और वे दान स्वर्ण-अलंकार तथा वस्त्र आदि होने चाहिए । पूजा एवं सत्कार से समन्वित सहजा भगिनी के हाथ से बल का वर्धन करना वाला भोजन करना चाहिये ।९३-९४। ऊर्ज मास में शुक्ल पक्ष में द्वितीया तिथि में पूजित हुआ यमराज तर्पित हो जाता है जो कि महषि पर समारूढ़ है और दण्ड तथा मुद्गर को धारण करने वाला प्रभु है ।९५। जो परम प्रसन्न किंकरों से वेष्टित हैं ऐसे उन परमात्मा के लिये नमस्कार है । जिन्होंने अपनी भगिनियों को जो सुवासिनी हैं, वस्त्र और दानादि से तोषित कर दिया है उनको पूरे वर्ष तक किसी प्रकार का कलह नहीं होता है और न किसी शत्रु से ही भय होता है । यह परम धन्य-यश के प्रदान करने वाला—आयु का वर्धन करने वाला और धर्म, अर्थ और काम का साधन है । हे पुत्र ! हे अनघ ! मैंने इसको रहस्य के सहित सम्पूर्ण व्याख्यान कर दिया है ।९६-९८। जिस तिथि में यमुना-भगिनी के द्वारा यमराज देव भाई को भली-भाँति भोजन कराया गया था । यह भोजन भी प्रत्येक तिथि में भगिनी के सौहार्द के साथ कराया गया था । इसी से इस संसार में जो पुरुष अपनी बहिन के हाथ से भोजन उस तिथि में किया करता है वह पुरुष उत्तम वित्त की शुभ सम्पदा को प्राप्त किया करता है ।९९।

माघ महात्म्य वर्णन

अधुना माघमहात्म्यं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम ।
पृच्छते वीतवीर्याय दत्तात्रेयेण भाषितम् ।१

दत्तात्रेयं हरिं साक्षाद्वसन्तं सह्यपर्वते ।
पप्रच्छ तं द्विजं गत्वा राजा माहिष्मतीपतिः ॥२
भगवन्योगिनांश्रेष्ठ सर्वेधर्माः श्रुता मया ।
माघस्नानफलं ब्रूहि कृपया मम सुव्रत ॥३
श्रूयतां नृपशार्दूल एतत्प्रश्नोत्तरं शुभम् ।
ब्रह्मणोक्तं पुरा ह्येतन्नारदाय महात्मने ॥४
तत्सर्वं कथयिष्यामि माघस्नानफलं महत् ।
यथादेशं यथातीर्थं यथाविधि यथाक्रियम् ॥५
अस्मिन्वै भारते वर्षे कर्मभूमौ विशेषतः ।
अमाघस्नायिनां नृणां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥६

महामहिम वसिष्ठ जी ने कहा—हे नृपोत्तम ! अब मैं माघ का माहात्म्य को कहता हूँ । इसको पूछने वाले कार्त्तवीर्य को दत्तात्रेय ने कहा था ।१। सह्याद्रि पर निवास करने वाले साक्षात् हरि श्री दत्तात्रेय द्विज श्रेष्ठ से माहिष्मती के स्वामी राजा ने उनके समीप में जाकर पूछा था ।२। सहस्रार्जुन ने कहा—हे भगवन् ! आप तो योगियों में परमा श्रेष्ठ हैं । हे सुवृत ! वैसे तो मैंने सभी धर्मों के विषय में श्रवण किया है । अब आप मुझ पर अनुग्रह करके माघ स्नान का जो पुण्य फल होता हो उसे वर्णन कीजिये ।३। भगवान् दत्तात्रेय ने कहा—हे नृप शार्दूल ! इसलिए हुए आपके प्रश्न का परम शुभ उत्तर सुनिये । पहिले समय में ब्रह्माजी ने महान् आत्मा वाले देवर्षि नारदजी से यह कहा था ।४। वह सभी माघ मास के स्नान का महान् फल मैं कहूँगा और देश के अनुसार तीर्थ तीर्थ के अनुरूप, विधि-विधान पूर्वक और क्रिया के अनुसार ही बतलाऊँगा ।५। यह भारतवर्ष विशेष रूप से कर्मों के सम्पादन करने की भूमि है । इसमें उत्पन्न होकर भी जो मनुष्य माघ मास में स्नान करने वाले नहीं है उनका तो जन्म ही सर्वथा निष्फल कहा गया है ।६।

असूर्यं गगनं यद्वदचन्द्रमुडुमण्डलम् ।

तद्वन्नाभाति सत्कर्म माघस्नानं विना नृप ॥७

व्रतैर्दानैस्तपोभिश्च न तथा प्रीयते हरिः ।
माघमज्जनमात्रेण यथा प्रीणाति केशवः ॥८
न समं विद्यते किंचित्तेजः सौरेणतेजसा ।
तद्वत्स्नानेन माघस्य न समाः क्रतुजाः क्रियाः ॥९
प्रीतये वसुदेवस्य सर्वपापापनुत्तये ।
माघस्नानं प्रकुर्वीत स्वर्गलाभाय मानवः ॥१०
किं रक्षितेन देहेन सुपुष्टेन बलीयसा ।
अध्रुवेणाप्यशुचिता माघस्नानं विना भवेत् ॥११
अस्थिस्तम्भं स्नायुबद्धं मांसक्षतजलेपसम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्ध पात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥१२
जराशोकविपद्व्याप्तं रोगमन्दिरमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यं च सर्वदोषसमाश्रयम् ॥१३
परोपतापितापार्तं परद्रोहि परंविषम् ।
लोलुपं पिशुनं क्रूर कृतघ्नं क्षणिकं तथा ॥१४

हे नृप ! जिस प्रकार से विना सूर्य वाला आकाश और बिना चन्द्रमा के उडुगण शोभित नहीं होते हैं ठीक उसी तरह माघ मास में स्नान के विना किया हुआ सत्कर्म भी शोभा युक्त नहीं होता है ।७। व्रत-दान और तपस्या से भगवान् श्रीहरि उतने प्रसन्न नहीं होते हैं जिस तरह से माघ मास के मज्जन मात्र से ही केशव प्रभु प्रसन्न हो जाते हैं ।८। सूर्य के तेज के समान अन्य कोई भी तेज नहीं होता है उसी भाँति माघ के स्नान के तुल्य ऋतुओं से उत्पन्न होने वाली क्रियायें नहीं हैं ।९। भगवान् वासुदेव की प्रीति प्राप्त करने के लिए और सब प्रकार के पापों का अपनोदन करने से वास्ते तथा स्वर्ग के वास का लाभ प्राप्त करने के वास्ते मनुष्य को माघ मास में स्नान अवश्य ही करना ही चाहिए ।१०। सुपुष्ट, बलवान् और सुरक्षित तथा अध्रुव (नाशवान तथा अचिर स्थायी एवं अशुचि देह के रखने से भी क्या लाभ है यदि माघ का स्नान नहीं किया गया है । अर्थात् माघ स्नान के विना देह की सार्थकता ही नहीं होती है ।११। अब मानव देह का स्वरूप बतलाते

हुए कहते हैं कि यह मानव देह हड्डियों का एक स्तम्भ है जो स्नायुओं से बँधा हुआ है तथा फिर माँस और रुधिर से लिप्त हो रहा है और चमड़े से आवृत है। यह दुर्गन्ध वाला और मूत्र एवं मल का पात्र है अर्थात् इसमें बुरी जो गन्ध है और मल मूत्र भरा हुआ है।१२। बुढ़ापा-शोक और विपत्तियों से भी यह व्याप्त रहा करता है। रोगों का तो यह एक तरह से घर ही है न मालूम कितने रोग भरे हुए हैं चाहे जब कोई उखड़ आता है। यह मानव का देह आतुर-रजस्वल-अनित्य और सभी दोषों का आश्रय होता है।१३। दूसरों को उप ताप देने वाला स्वयं भी ताप ने आर्त्त-दूसरों से द्रोह रखने वाला-परभ-विष-लोलुप-पिशुन-क्रूर-कृतघ्न और क्षणिक है।१४।

दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं दोषत्रयसमन्वितम् ।
अशुचि स्रावि सच्छिद्रं तापत्रयविमोहितम् ॥१५
निसगतोऽधर्मरतं तृष्णाशतसमाकुलम् ।
कामक्रोधमहालोभं नरकद्वारसंस्थिमम् ॥१६
क्रिमिविड्भस्म भवति परिणामे शुनांहत्रिः ।
ईदृक्छरीरं व्यर्थं हि माघस्नान विवर्जितम् ॥१७
बुद्बुदा इव तोयेषु पूतिका इव जन्तुषु ।
जायन्ते मरणायं वमाघस्नानविवर्जिताः ॥१८
अवैष्णवो हतो विप्रो हतं श्राद्धमयोगि च ।
अब्रह्मण्यं हत क्षेत्रमनाचारं हतं कुलम् ॥१९
सदम्भश्च हतो धर्मक्रोधेनैव हतं तपः ।
अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ॥२०
गुर्वभक्ता हता नारी ब्रह्मचारी तथा हतः ।
अदीप्तेऽग्नौ हतो होमो हता भुक्तिरसाक्षिका ॥२१

मानव का यह देह ऐसा है जो कभी भी पूरा नहीं होता है—यह दुर्धर—दुष्ट और तीन दोषों से युक्त रहता है। यह अपवित्र—स्राव करने वाला अर्थात विभिन्न रूपों वाले मलों का स्राव बराबर किसी न किसी छिद्र से सदा होता ही रहा करता है। छिद्रों से युक्त है और तीन

प्रकार के (आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक) तापों से विशेष रूप से मोहित रहने वाला है ।१५। स्वभाव से इस मानव देह की रति अधर्म की ओर ही रहा करती है और इसमें सैकड़ों ही तृष्णायें भरी हुई हैं जिनसे यह सदा घिरा-बंधा-सा रहता है । तीन जो मुख्य नरक के द्वारा मान गये हैं उन तीनों काम-क्रोध और महा लोभ के द्वार इसमें अच्छी तरह स्थित रहा करते हैं ।१६। अन्त में प्राणों के निकलने के पश्चात् क्रमि विड् और भस्म ये तीन ही इसकी गतियाँ होती हैं तथा परिणाम में यह श्वानों का हवि होता है । इस तरह का जो यह मानव का शरीर है वह यदि माघ स्नान इससे नहीं किया गया है तो व्यर्थ ही है ।१७। जो मनुष्य माघ स्नान से वंचित हैं वे जल में बुलबुलों की भाँति तथा जन्तुओं में पूतिकाओं की तरह केवल मरण के लिए ही उत्पन्न हुआ करते हैं क्योंकि अन्य किंचिन्मात्र भी इनकी सार्थकता है ही नहीं ।१८। जो विप्र वैष्णव नहीं है वह हत ही है और जो श्राद्ध आयोगी होता है वह भी नष्ट सा ही होता है । जो क्षेत्र अब्रह्मण्य है वह हत हैं और जिसमें आचार का अभाव रहता है वह कुछ भी विनष्ट जैसा ही होता है ।१९। जिस धर्म में दम्भ की कुछ भी मात्रा रहती है वह छलयुक्त धर्म हत है और क्रोध से तप की हानि होती है । जो ज्ञान विचलासा रहता है और दृढ़ नहीं है वह हत है । प्रमाद से श्रुत हत हो जाया करता है ।२०। जो नारी अपने स्वामी की भक्त नहीं है वह हत प्राय: होती है और जो ब्रह्मचारी है वह ऐसी नारी से नष्ट हो जाया करता है । जो अग्नि अच्छी तरह से दीप्त नहीं होती है उसमें किया हुआ होम हृत होता है और असाक्षिका मुक्ति हत होती है ।२१।

उपजीव्या हता कन्या स्वार्थे पाकक्रियाहता ।
शूद्रभिक्षो हतो यागः कृपणस्य हत धनम् ।।२२
अनभ्यासा हता विद्या हतो राजा विरोधकृत् ।
जीवनार्थं हतं तीर्थं जीवनार्थं हतं व्रतम् ।।२३
असत्या च हमा वाणी तथा पैशुन्यवादिनो ।

संदिग्धश्च हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः ।।२४

हतमश्रोत्रिये दानं हतो लोकश्च नास्तिकः ।
अश्रद्धया हतं सर्वं कृतं यत्पारलौकिकम् ॥२५
इहलोको हतो नृणां दरिद्राणां यथा नृप ।
मनुष्याणां तथा जन्म माघस्नानं विना हतम् ॥२६
मकरस्थे रवौ यो हि न स्नात्यनुदिते रवौ ।
कथं पापैःप्रमुच्येत कथं स त्रिदिवं व्रजेत् ॥२७
माघमासे रटन्त्यापः किंचिदभ्युदिते रवौ ।
ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कं पुनीतहे ॥२८

जो कन्या उप जीव्य हो वह हत होती है और जो केवल अपने ही लिये की जावे वह पाक की क्रिया भी हत है। जिस याग से शूद्र भिक्षु हो वह याग भी नष्ट होता है तथा कंजूस मनुष्य का धन किसी के भी अर्थ का साधक नहीं होता है अतएव हत ही होता है।२२। जो विद्या सीख कर अभ्यास में नहीं लाई जाती है वह नष्ट हो जाती है और जो विरोध करने वाला राजा होता है वह नष्ठ हो जाता है। केवल जीवन के ही लिए जो तीर्थ एवं व्रत किये जाते हैं वे भी हत हैं। जो वाणी सत्य से रहित तथा पैशुन्य (चुगली) के बोलने वाली है वह हत होती है।२३-२४। जिस मन्त्र में सन्देह उत्पन्न होता हो कि यह फलदाता होगा या नहीं—वह मन्त्र जाप भी हत होता है तथा चित्र में व्यग्रता रखते हुए किसी भी मन्त्र का जाप करना भी हत होता है। जो क्षोत्रिय नहीं है ऐसे विप्र को दिया हुआ दान फल शून्य होता है तथा ईश्वर की सत्ता को न मानने वाला नास्तिक लोक भी हत होता है। बिना श्रद्धा भाव के परलोक में कल्याण के लिए किया हुआ सभी कर्म हत होता है।२५। हे नृप ! जो दरिद्र मानव होते हैं उनका यह लोक ही हतं प्रायः है उसी भाँति माघ स्नान के बिना मनुष्यों का यह मानव-जीवन भी नष्ट ही होता है।२६। मकर राशि पर जब सूर्य संक्रमण करता है उस समय में रवि के उदित होने पर जो स्नान नहीं करता है वह कैसे अपने किये हुए पापों से मुक्त हो सकता है और किस प्रकार से स्वर्ग गमन कर सकता है ? अर्थात् न तो उसके पापों से मुक्ति ही

होती है और न स्वर्ग में गमन ही होता है क्योंकि माघ स्नान से उत्तम अन्य कोई ऐसा सुलभ साधन है ही नहीं ।२७। माघ मास में सूर्य के समुदित हो जाने पर जल यह रटन लगाया करते हैं हम कौन से ब्रह्मघ्न-सुरापान करने वाले और पतित को पवित्र करें ।२८।

उपपापानि सर्वाणि पातकानि महान्त्यपि ।।२९
भस्मीभवन्ति सर्वाणि माघस्नायिनि मानवे ।।३०
कम्पन्ते सर्वपापानि माघस्नानसमागमे ।
नाशकालोऽयमस्माकं यदि स्नास्यति वारिणि ।।३१
एवं क्रोशन्ति पापानि तृष्ट्वा स्नानोद्यतं नरम् ।
पावका इव दीप्यन्ते माखस्नानैर्नरोत्तमाः ।।३२
विमुक्ताःसर्वपापेभ्यो मेघेभ्य इव चन्द्रमाः ।
आर्द्रशुष्कं लघुस्थूलं वाङ्मनः कर्मभिःकृतम् ।।३३
माघस्नानं दहेत्पाप पावकः समिधो यथा ।
प्रामादिकं च यत्पापं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत् ।।३४
स्नानमात्रेण तन्नश्येन्मकरस्थे दिवाकरे ।
निष्पापास्त्रिदिव यान्ति पापिष्ठा यान्ति शुद्धताम् ।।३५

जितने भी उप पातक हैं वे तव और जो महान् पातक होते हैं वे भी सब माघ में स्नान करने वाले मानव के जल कर भस्म हो जाया करते हैं ।२९-३०। माघ स्नान के समागम होने पर ही समस्त पाप काँपने लगते है कि अब हमारे नाश का समय उपस्थित हो गया है यदि यह पापी जिसका आश्रय हमने किया है जल में स्नान कर लेगा ।३१। माघ में स्नान करने के लिए उद्यत मानव को देखकर पाप इसी तरह आक्रोश किया करते है । माघ स्नान से मनुष्य अग्नि के समान दे दीप्यमान हो जाया करते हैं ।३२। समस्त पापों से विमुक्त हुए मनुष्य ऐसे ही प्रकाशवान् हो जाया करते हैं जैसे मेघाच्छन्न चन्द्रमा मेघों से छूट कर परम स्वच्छ दिखलाई दिया करता है । आर्त्त-शुष्क-लघु-स्थूल वाणी, मन और कर्म के द्वारा किया हुआ माघ स्नान समिधाओं को अग्नि के तुल्य ही पाप को दग्ध कर दिया करता है । प्रामादिक अर्थात्

प्रमाद से किया हुआ तथा ज्ञान और अज्ञान से किया हुआ जो पाप है वह सभी मकर में स्थित सूर्य के होने पर केवल स्नान मात्र से ही नष्ट हो जाता है। जो निष्पाप मनुष्य होते हैं वे ही स्वर्ग लोक को जाया करते हैं क्योंकि जो महान् पापिष्ठ भी होते वे भी माघ स्नान करने से पूर्णतया शुद्ध हो जाया करते हैं।३३-३५।

संदेहो नाऽत्र कर्तव्यो माघस्नाने नराधिप !।
सर्वेऽधिकारिणी माघे विष्णुभक्तौ यथा नृप ! ।।३६
सर्वेषां स्वर्गदो माघ:सर्वेषां पापनाशनः।
एष एव परो मन्त्री ह्येतदेव परंतपः ।।३७
प्रायश्चित्तं परं चैतन्माघस्नाननुत्तमम्।
नृणां जन्मान्तराभ्यासान्माघस्माने मतिर्भवेत् ।।३८
अध्यात्मज्ञानकौशल्यं जन्माभ्यासाद्यथा नृप।
ससारकदमालपप्रक्षालनविशारदम् ।।३९
पावन पावनानां च माघस्नान पर नृप।
स्नान्ति माघे न ये राजन्सवकामफलप्रदे ।।४०
कथं ते भुञ्जते भागांश्चन्द्रसूर्यग्रहोपमान्।
शृणु राजन्महाश्चर्यं माघस्नानप्रभावजम् ।।४१

हे नराधिप ! इस माघ स्नान का इतना महान् फल होता है— इस में आपको बिल्कुल भी सन्देह नहीं करना चाहिए। हे नृप ! जिस तरह से भगवान् विष्णु की भक्ति करने का सब को अधिकार हुआ करता है उसी तरह से माघ में स्नान के सभी अधिकारी हुआ करते हैं।३६। यह माघ मास ऐसी महामहिमा वाला है कि सब को स्वर्ग देने वाला है और सभी के पापों का विनाश कर देने वाला है। यही एक सर्वोपरि स्थित पर मन्त्र है और यही एक मात्र सब से श्रेष्ठ परम तप है।३७। यह अत्युत्तम माघ स्नान सबसे श्रेष्ठ प्रायश्चित होता है। मनुष्यों की मति कई एक जन्मों के अभ्यास से ही माघ स्नान में हुआ करती है।३८। हे नृप ! जिस तरह से अध्यात्म ज्ञान की कुशलता जन्म-जन्मान्तरों के अभ्यास करते रहने पर ही हुआ करती है, जो कि

इस संसार के कीच के आलेप को धो डालने में दक्ष है। जो भी पवन हैं उन सब में परमोत्तम पावन यह माघ का स्नान होता है। हे राजन्! जो लोग सब मनोरथों को प्रदान करने वाले इस माघ में स्नान नहीं किया करते हैं वे चन्द्र सूर्य ग्रहों के समान भोगों को कैसे भोग सकते है? अर्थात् उन्हें भोगों का उपभोग प्राप्त ही नहीं हो सकता है। हे राजन्! इस माघ के स्नान के प्रभाव से समुत्पन्न एक महान् आश्चर्य युक्त घटना का श्रवण करो।३९-४१।

कुब्जिका नाम कल्याणी ब्राह्मणी भृगुवंशजा।
बालवैधव्यदुःखार्ता तपस्तेपे सुदुस्तरम्।।४२
विन्ध्यपादे महाक्षेत्रे रेवाकपिलसङ्गमे।
तत्र सा व्रतिनी भूत्वा नारायणपरायणा।।४३
सदाचारवती नित्यं नित्यं सङ्गविवर्जिता।
जितेन्द्रिया जितक्रोधा सत्यवागल्पभाषिणी।।४४
सुशीला दानदशीला च देहशोषणशालिनी।
पितृदेवद्विजेभ्यश्च दत्त्वा हुत्वा तथानले।।४५
षष्ठे काले च सा भुङ्क्ते ह्यञ्छवृत्तिः सदा नृप।
कृच्छ्रादिकृच्छ्रपाराकतप्तकृच्छ्रादिभिर्व्रतैः।।४६
पुण्यान्नयति सा मासान्नर्मदायाश्च रोधसि।
एवं तया तपस्विन्या कल्कलिन्या सुशीलया।।४७
सुमहासतत्त्वशालिन्या धृतिसंतोषयुक्तया।
षष्टिर्माघास्तया स्नाता रेवाकपिलसङ्गम।।४८
ततःसा तपसा क्षीणा तस्मिस्तीर्थे मृता नृप।
माघस्नानजपुण्येन तेन सा वैष्णवेपुरे।।४९

एक भृगु के वंश में समुत्पन्न कुब्जिका नाम वाली कल्याणी ब्राह्मणी थी। यह विचारी बाल्यावस्था में ही विधवा हो गयी थी उस वैधव्य के दुःख से अत्यन्त आर्त्त होकर इसने दुस्तर तपश्चर्या का आरम्भ कर दिया था।४२। विन्ध्याचल के पाद में महाक्षेत्र में जहाँ पर रेवा कपिल का संगम है वहीं पर उसने व्रत वाली होकर तथा भगवान्

नारायण में ही तत्पर होती हुई तपस्या की थी ।४३। यह नित्य ही सदाचार वाली और संग से रहित रहा करती थी—इन्द्रियों को जीतने वाली—क्रोध पर नियन्त्रण रखने वाली—सर्वदा सत्य और अत्यन्त भाषण करने वाली होकर रहा करती थी ।४४। सुन्दर शील से समायुक्त दान-शील और देह के शोषण करने के स्वभाव वाली थी । पितृगण-देवता और द्विजों को दान देकर तथा अग्नि में हवन करके ही षष्ठ काल में वह भोजन किया करती थी और वह भी सदा हे नृप ! शिलोञ्छवृत्ति से किया करती थी । वह कृच्छ्र-अति कृच्छ्र-पाराक-तप्त कृच्छ् आदि जो महान् शुद्धिकारक व्रत हैं उन से भी वह युक्त रहा करती थी ।४५-४६। वह नर्मदा के तट पर ही पुण्य मासों को बिताया करती थी । इस तरह से वल्कल धारण करने वाली-सुशील-सुमहा-सत्व शालिनी-धैर्य और सन्तोष से युक्त उस तपस्विनी ने उस रेवा कपिल के संगम में साठ माघों का स्नान किया था ।४७-४८। हे नृप ! फिर वह तपस्या से बहुत क्षीण होकर उसी तीर्थ में मृत हो गई थी । इन माघों के स्नान से उत्पन्न पुण्य से वह वैष्णवपुर में निवास करने वाली हो गई थी ।४९।

उवास प्रमुदायुक्ता चतुर्युगसहस्रकम् ।
सुन्दोपसुन्दनाशाय पश्चात्पद्मभवात्पुनः ॥५०
तिलोत्तमेति नाम्ना सा ब्रह्मलोकेऽवतारिता ।
तेन पुण्यस्य शेषेण रूपस्यैकायन ययौ ॥५१
आयोनिजाऽबलारत्नं देवानामपि मोहिनी ।
लावण्यह्लदिनी तन्वी साऽभूदप्सरसा वरा ॥५२
निपुणस्यविधेःस्रष्टुर्नूनमाश्चर्यकारिणी ।
तामुत्पाद्य विधाता वै तुष्टोऽनुज्ञां तदा ददौ ॥५३
एणशावाक्षि ! गच्छ त्वं दैत्यनाशाय सत्वरम् ।
ततः सा ब्रह्मणोलोकाद्वीणामादाय भामिनी ॥५४
गता पुष्करमार्गेण यत्र तौ देववैरिणौ ।

तत्र स्नात्वा तु रेवायाः पावित्रे निर्मले तले ।।५५

परिधायाम्बरं रक्तं वन्धूककुसुमप्रभम् ।
रणद्वलयिनी चारुशिञ्जन्मेखलनूपुरा ।।५६
लोलमुक्तावली कण्ठी चलत्कुण्डलशोभना ।
माधवीकुसुमापीडा कङ्केलीविटपे स्थित ।।५७

वह वैष्णवपुर में अत्यन्त ही आनन्द से युक्त होकर एक सहस्र चारों युगों की चौकड़ी पर्यन्त वहाँ पर निवास करने वाली रही थी फिर सुन्द-उपसुन्द के विनाश करने के पीछे पद्मा हुई थीं ।५०। वह तिलोत्तमा इस नाम से ब्रह्मलोक में अवतार धारण करने वाली हुई थी। उस पुण्य के शेष भाग के होने के कारण से वह रूप-लावण्य का एक अयन बन गयी थी ।५१। वह अयोनिजा अबलाओं में रत्न के तुल्य थी जो देवगणों को भी मोहित करने वाली हुई थी। लावण्य की ह्रदिनी के समान वह तन्वी सब अप्सराओं में परम श्रेष्ठ थी ।५२। जो सृजन करने वाले अत्यन्त निपुण विधाता हैं उनको भी निश्चय ही आश्चर्य में डुवा देने वाली थी। उसका उत्पादन करके विधाता अत्यन्त ही तुष्ट हो गये थे और उस समय में उन्होंने उसे अनुज्ञा दी थी ।५३। हे एणशावाक्षि ! अर्थात् हिरन के बच्चे के समान नेत्रों वाली ! तुम दैत्यों के विनाश करने के लिए शीघ्र ही चली जाओ। इसके पश्चात् ब्रह्म लोक में तुरन्त ही भामिनी उसने वीणा ग्रहण करके तैयारी करदी थी और वह पुष्कर के मार्ग से वहाँ पहुँच गयीं थी जहाँ पर वे दोनों देवगण के वैरी रहा करते थे। वहाँ पर रेवा नदी के परम पवित्र और निर्मल जल में स्नान किया था। फिर वन्धूक के समान लाल रंग वाला वस्त्र उसने धारण किया था और रणत्कार करने वाले वलयों को धारण करने वाली तथा सुन्दर शिंजित मेखला और नूपुरों वाली हो गई थी ।५४-५६। उसके कण्ठ में चंचल मुक्तावलि थी और हिलने वाले कुण्डलों से वह शोभायमाना हो रही थी। माधवी कुसुमों के आपीड़ वाली वह कंकेली विटप पर स्थित हो गयी थी ।५७।

गायन्ती सुस्वरं साऽपि पीडयन्ती तु वल्लकीम् ।
स्वरषट्कं मूर्च्छयन्ती सुस्निग्धं कोमलं कलम् ।।५८

इत्थं तिलोत्तमा बाला तिष्ठन्त्यशोककानने ।
दृष्ट्वा दैत्यभटैरिन्दोःकलेव सुखदा हृदि ।।५९
तां दृष्ट्वा विस्मितैराजन्सानन्दैः सैनिकैर्भृशम् ।
त्वरमाणैरदृष्ट्वैव गत्वा सुन्दोपसुन्दयोः ।।६०
कथिता संभ्रमेणैव वर्णयित्वा पुनः पुनः ।
हे दैत्यौ न विजानीमो देवी वा दानवी नुकिम् ।।६१
नागाङ्गनाऽथ वा यक्षी स्त्रीरत्नं सवथा तु सा ।
युवां रत्नभुजौ लोके रत्नभूता हि साऽवला ।।६२
वर्तते नातिदूरेऽग्रे ह्यशोके शोकहारिणी ।
गत्वा तां पश्यतं शीघ्रं मन्मथस्याऽपि मोहिनीम् ।।६३

वह वहाँ पर सुन्दर स्वरों के साथ गायन करती हुई अपनी वीणा का वादन कर रही थी । परम सुस्निग्ध कोमल और कल छैं स्वरों को मूर्च्छित कर रही थी ।५८। इस प्रकार से वह वाला तिलोत्तमा उस अशोक कानन में स्थित हो रही थी । वहाँ पर दैत्यों के भटों ने उसको देखा था जो हृदय में चन्द्रमा की कला के समान सुख दान करने वाली थी ।५९। हे राजन् ! उसको देखकर अत्यन्त विस्मित होते हुए अत्यन्त आनन्द से युक्त सैनिकों ने उसे देखने के साथ ही शीघ्रता से गमन करके सुन्दोपसुन्दों के समीप में अपने आपको पहुँचा दिया था ।६०। उन्होंने बारम्बार उसकी लावण्य छटा का वर्णन कर करके बहुत ही सम्भ्रम के साथ उनसे कहा था । हे दैत्यवरों ! हम नहीं जानते हैं कि वह ऐसी अत्यद्भुत रूप लावण्य से परिपूर्ण कौन है—कोई देवी है या दानवी है ।६१। या तो वह कोई नागों की अङ्गना है या यक्षिणी है जो भी कोई हो किन्तु वह स्त्रियों में रत्न के समान अवश्य ही सब प्रकार से है । आप दोनों तो रत्नों के सुख का उपभोग करने वाले हैं और लोक में वह अवला रत्नभूता है ।६२। यहाँ से वह अधिक दूर भी नहीं है और अशोक वन में ही शोक के हरण करने वाली विद्यमान है वहाँ पर जाकर आप उसको स्वयं देखिए । वह इतनी सुन्दरी है जो साक्षात्

कामदेव को भी जो सुन्दर शिरोमणि कहा जाता है। अपनी रूप-सौन्दर्य की छटा से मोहित कर देने वाली है।६३।

इति सेनापतीनां तौ श्रुत्वा वाचं मनोहराम्।
चषकं सीधुन (शीघ्रत) स्त्यक्त्वा विहाय जलसेचनम् ॥६४
उत्तमस्त्रीसहस्राणि त्यक्त्वा तस्माज्जलाशयात्।
शतभारायसीं क्रूरां कालदण्डोपमां गदाम् ॥६५
भिन्नाभिन्नां गृहीत्वा तु जवेनाभिप्लुतं गतौ।
यत्र श्रृङ्गारसज्जा सा हन्तुं चण्डीव संस्थिता ॥६६
राजन्संधुक्षयन्तीव दैत्ययोर्मन्मथानलम्।
स्थित्वा तस्याः पुरोजालमौ तद्रूपेण विमोहितौ ॥६७
विशेषान्मधुनामत्तावूचतुस्तौ परस्परम्।
भ्रातर्विरम भार्येयं ममास्तु वरवर्णिनी ॥६८
त्वमेवार्य त्यजैतां मे भार्या तु मदिरेक्षणाम्।
इत्याग्रहेण सरब्धौ मातङ्गाविव सोन्मदौ ॥६९
अन्योन्यं कालनिर्दिष्टौ गदया जघ्नतुस्तदा।
परस्परप्रहारेण गतासू पतितौ भुवि ॥७०

इस तरह की उन सेनापतियों की परम मनोहर उस वाणी का श्रवण करके उन्होंने शीघ्र ही सुरा का जो चषक (प्याला) हाथ में था उसका त्याग कर दिया था और जल में सेचन की जो क्रीड़ा-विहार कर रहे थे उसको भी बन्द कर दिया था।६४। एक से एक उत्तम सहस्रों स्त्रियों को भी वहीं पर त्याग दिया था और उस जलाशय से निकल कर शत भारों के प्रमाण वाली एक लोहे की गदा को जोकि कालदण्ड के समान ही थी और महान् क्रूर थी ग्रहण कर लिया था। इस तरह से भिन्नाभिन्न को लेकर बड़े वेग से अभिप्लवन करते हुए वहाँ पर चले थे जहाँ पर श्रृङ्गार की सज्जा वह चण्डी की तरह हनन करने के लिये संस्थित थी।६५-६६। हे राजन्! वह उन दोनों दैत्यों की कामाग्नि को अत्यन्त तीव्र करती हुई वहाँ विद्यमान हो रही थी। उसके रूप से विमोहित होकर वे दोनों आत्मा उसके आगे स्थित

हो गये थे ।६७। विशेष रूप से मदिरा पान से मत्त वे दोनों परस्पर में बोले—हे भाई तुम रुक जाओ यह वरवर्णिनी मेरी भार्या हो जावेगी ।६८। हे आर्य ! आप इसको त्याग देवें यह मदिरेक्षणा को मेरी ही भार्या हो जाने दो—इस तरह से दोनों ही आग्रह कर रहे थे और ऐसे ही दोनों क्रोधाविष्ट हो गए थे और उन्मत्त मातङ्गों की भाँति वन गये थे ।६९। वे अन्योन्य में काल से निर्दिष्ट हो गये थे और दोनों ने परस्पर में एक दूसरे पर गदाओं का प्रहार किया था । इस तरह बराबर आपसी प्रहारों से दोनों मृत होकर भूमि में गिर गये थे ।७०।

तौ मृतौ सैनिकैर्दृष्ट्वा कृतः कोलाहलो महान् ।
कालरात्रिसमा केयं हा किमेतदुपस्थितम् ॥७१
एवं वदत्सु सैन्येषु दैत्यौ सुन्दोपसुन्दकौ ।
मातयित्वा गिरेः शृङ्गे ह्नादिनीव तिलोत्तमा ॥७२
प्रस्थिता गगन शीघ्रं द्योतयन्ती दिशो दश ।
देवकार्यं ततः कृत्वा आगता ब्रह्माणः पुरः ॥७३
ततस्तुष्टेन देवेश विधिना सानुमोदिता ।
स्थानं सूर्यरथे दत्तं तव चन्द्रानने मया ॥७४
भुङ्क्ष्व भोगाननेकास्त्वं यावत्सूर्योऽम्बरे स्थितः ।
इत्थं सा ब्राह्मणी राजन्भूत्वा चाप्सरसाम्वरा ॥७५
भुङ्क्तेऽद्याऽपि रवेर्लोकेमाघस्नानफलं महत् ।
तस्मात्प्रयत्नतो राजञ्छ्रद्दधानैः सदा नरैः ॥७६
स्नातव्यं मकरादित्ये वाञ्छद्भिः परमांगतिम् ।
नाऽनवाप्तोऽध तस्तास्ति पुरुषार्थोहिकश्चन ॥७७

सैनिकों ने उन दोनों को मृत हुए देखकर महान् कोलाहल किया था और कहने लगे थे—हा ! यह कौन काल रात्रि के समान यहाँ पर आकर उपस्थित हो गई है ? यह क्या हो गया है ? ।७१। उन सैनिकों के इस तरहसे बोलने पर उन मृत सुन्द-उपसुन्द दोनों दैत्यों को ह्नादिनी के तुल्य तिलोत्तमा ने गिरि के शृङ्ग में गिरा कर वह अति शीघ्र दशों दिशाओं को अपने तेज से प्रकाशित करती हुई आकाश में प्रस्थान कर

गयी थी। देवों के उस कार्य का सम्पादन करके वह फिर ब्रह्माजी के आगे उपस्थित हो गयी थी ।७२-७३। इससे ब्रह्माजी बहुत ही प्रसन्न हुए थे और विधि ने उसका बहुत अधिक अनुमोदन किया था और कहा था—हे चन्द्रानने मैंने अब तुझको भगवान् भास्कर देव के रथ में स्थान दे दिया है ।७४। जब तक यह सूर्यदेव इस अम्बर में स्थित रहे तब तक तुम वहाँ पर अनेक प्रकार के भोगों का उपभोग करो। हे राजन् ! इस प्रकार से वह ब्राह्मणी अप्सराओं में परम श्रेष्ठ हो गई थी। इस समय तक भी वह सूर्य लोक में माघ स्नान के महान् फल का उपभोग कर रही है। इसलिए हे राजन् ! प्रयत्न पूर्वक सदा मनुष्यों को अति श्रद्धालु होकर मकरादित्य के अवसर पर स्नान करना चाहिए यदि परम श्रेष्ठ गति के प्राप्त करने की इच्छा हृदय में विद्यमान है। उस पुरुष को यहाँ पर कोई भी पुरुषार्थ अप्राप्त नहीं रहा करता है ।७५-४७।

नाऽक्षीणं पातकं किंचिन्माघे मज्जति यो नरः।
तुलयन्ति न ये नाऽत्र यज्ञाः सर्वे तद्दक्षिणाः ।।७८
माघस्नाघेन राजेन्द्र तार्थेचैव विशेषतः।
न चान्यत्स्वर्गदं कर्म न चान्यत्पापवाशनम् ।।७९
न चान्यन्मोक्षदं यस्मान्माघस्नानसमं भुवि ।।८०

जो मनुष्य माघ में मज्जन किया करता है उसका कोई भी पातक अक्षीण नहीं रहा करता है इसके साथ सभी प्रकार के दक्षिणा वाले यज्ञ भी यहाँ पर तुलना नहीं कर सकते हैं ।७८। हे राजेन्द्र ! तीर्थ में विशेष रूप से मात्र स्नान के करने से फल होता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा स्वर्ग के देने वाला कर्म नहीं है और न अन्य कोई पापों के नाश करने वाला ही कर्म होता है। ऐसा अन्य कोई कार्य मोक्ष का प्रदान करने वाला भी माघ स्नान के समान इस भूमण्डल में विद्यमान है। तात्पर्य यह है माघ स्नान ही सर्वोपरि परम श्रेष्ठ कर्म है जिसकी तुलना कोई भी कर्म कर ही नहीं सकता है ।७९-८०।

।। विष्णु-महिमा वर्णन ।।

श्रेष्ठा भक्तिस्तु का प्रोक्ता वद विश्वेश्वर प्रभो।
येन विज्ञानमात्रेण नराः सुखमवाप्नुयुः ।।१
तल्लीनचित्तः स पुमान्सा भक्तिः परमा मता।
दयाधर्मपरो नित्यं विष्णुधर्मेषु तत्परः ।।२
फलमूलजलाहारी शङ्खचक्रप्रधारकः।
त्रिकालं पूजयेद्विष्णुं सा भक्तिः सात्विकी मता ।।३
उत्तमा सात्विकी प्रोक्ता राजसी चैव मध्यमा ।।४
कनिष्ठा तामसीचैव त्रिविधा भक्तिरुच्यते ।।५
श्रीधरे तु प्रकर्त्तव्या मुक्तिकामफलेप्सुभिः।
अहङ्कारेण रूपेण दम्भमात्सर्यमायया ।।६
ये कुर्वन्ति जना भक्ति तामसी सा उदाहृता।
परस्योत्सादनार्थं वा दम्भमुद्दिश्य वाऽथवा ।।७
या भक्ति क्रियते देवे तामसा सा प्रकीर्तिता।
विषयान्प्रतिसंधाय यशऐश्वर्यमेव वा ।।८
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ।।
कर्मक्षयार्थे कर्त्तव्या ब्राह्मणैर्ज्ञानतत्परैः ।।९

जगदम्बा पार्वती ने कहा—हे विप्रो! आपके द्वारा वर्णित कार्त्तिक का और माघ का माहात्म्य श्रवण किया है। अब तो मेरी यही इच्छा है कि मैं मुक्ति के प्रदान करने वाले उत्तम कर्म का श्रवण करूँ।१। हे विश्व के स्वामिन्! हे प्रभो! आप मुझे यह बतलाइए कि श्रेष्ठ भक्ति कौन सी कही गयी है जिसके विज्ञान मात्र से ही मनुष्य सुख की प्राप्ति किया करते हैं। श्री महादेवजी ने कहा—पुमान् जिसमें लीन चित्त वाला हो जावे वही परम श्रेष्ठ भक्ति मानी गयी है दया और धर्म में परायण नित्य ही भगवान् विष्णु के धर्मों में मनुष्य को तत्पर रहना चाहिये।२। फल-मूल और जल का आहार करने वाला तथा शंख और चक्र का धारण करने वाला पुरुष तीनों कालों में भगवान्

विष्णु का जो पूजन किया करता है उसी भक्ति को सात्विकी भक्ति माना गया है ।३। सात्विकी भक्ति को उत्तम माना गया है – राजसी भक्ति मध्यम होती है और तामसी कनिष्ठ श्रेणी की होती है--इस तरह से तीन प्रकार की भक्ति कही जाती है ।४-५। मुक्ति काम फल की इच्छा रखने वालों को यह श्रीधर में करनी चाहिए । अहंकार के रूप से-दम्भ से और मात्सर्य की माया से जो जन भक्ति किया करते हैं वह तामसी भक्ति उदाहृत की गयी है । दूसरों के उत्सादन करने के लिये अथवा दम्भ का उद्देश्य लेकर जो भक्ति देवता की कीजाया करती है वह तामसी भक्ति कही गयी है । विषयों का प्रतिसन्धान करके यश अथवा ऐश्वर्यों का प्रतिसन्धान करके जो अर्चा आदि में मेरा अभ्यर्चन किया करता है वह पृथग्भाग राजस होता है । ज्ञान में परायण ब्राह्मणों के द्वारा कर्मों के क्षय के लिए ही भक्ति करनी चाहिए ।६-९।

विष्णोर्ह्यात्मार्पणीं बुद्धि सा भक्तिः सात्विकी मता ।
अतो व सर्वदा देवि ससेव्यः सर्वदा हरिः ।।१०
तामसेन तु भावेन तामसत्व हि लभ्यते ।
राजसो राजसेनैव सात्विकेन तु सात्विकः ।।११
वेदाध्यायरतः श्रीमान्नागद्वेषविवर्जितः ।
शंखचक्रधरो विप्रः सर्वदा शुचिरुच्यते ।।१२
कर्मकाण्डे प्रवृत्तो यः सर्वदा विष्णुनिन्दकः ।
निन्दकस्तज्जनानां च महाचाण्डालउच्यते ।।१३
वेदाध्यायरतानित्यं नित्यं वै यज्ञयाजकाः ।
अग्निहोत्ररता नित्यं विष्णुधर्मपराङ्मुखा ।।
निन्दन्ति विष्णुधर्मांश्च वेदवाह्याः सुरेश्वरि ।।१४

भगवान् विष्णु की चरण सन्निधि को स्वात्म समर्पण कर देने वाली बुद्धि होती है उस भक्ति को सात्विकी भक्ति माना गया है । इसी लिए हे देवि ! सब प्रकार से सर्वदा हरि का भली-भाँति से सेवन करना चाहिए ।१०। तामस भाव से तामसत्व प्राप्त होता है । राजस भाव से राजसत्व की उपलब्धि होती है और सात्विक भाव से सात्विकत्व

हुआ करता है। वेदों के अध्ययन में रति रखने वाला-राग और द्वेष से रहित-शंख और चक्र को धारण करने वाला श्रीयुक्त विप्र सर्वदा पवित्र कहा जाया करता है।११-१२। जो कर्मकाण्ड में जो प्रवृत्त रहा करता है और सर्वदा भगवान् विष्णु की निन्दा करता है तथा विष्णु के भक्तों की जो निन्दा किया करता है वह महान् चाण्डाल कहा जाता है।१३। जो नित्य ही वेदों के अध्ययनाध्यायन में रत रहते हैं और नित्य ही यज्ञों का याजन किया करते हैं एवं नित्य अग्निहोत्र करने में रति रखते हैं तथा विष्णु के धर्म में पराङ मुख रहा करते हैं और विष्णु के धर्मों की बुराई किया करते हैं. हे सुरेश्वरि ! वे वदबाह्म होते हैं।१४।

कुर्वन्ति शान्ति विबुधा प्रहृष्टाः
क्षेमं प्रकुर्वन्ति पितमहाद्याः।
स्वस्ति प्रयच्छन्ति मुनीन्द्र मुख्या।
गोविन्द भक्ति वहतां नराणाम् ॥१५

शुभाग्रहा भूत पिशाच युक्ता
ब्रह्मादयो देवगणः प्रसन्नाः।
लक्ष्मीः स्थिरा तिष्ठति मन्दिरे च
गोविन्द भक्ति वहतां नराणाम् ॥१६

गङ्गा गया नैमिष पुष्कराणि
काशी प्रयागः कुरुजाङ्गलानि।
तिष्ठन्ति देहे कृतभक्तिपूर्व
गोविन्द भक्ति वहतां नराणाम् ॥१७

एवमारराधयेद्विद्वान्भगवन्तं श्रिया सह।
कृतकृत्यो भवेन्नित्यं स विप्रो नाऽत्रसंशयः ॥१८

क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा शूद्रा वा सुरसत्तमे।
भक्ति कुर्वन्तिशेण मुक्ति याति स वै नरः ॥१९

श्रीगोविन्द की भक्ति को वहन करने वाले मनुष्यों की शान्ति को विवुध गण परम प्रहृष्ट होकर किया करते हैं। जो पितामह आदि होते हैं वे उनका क्षेम करते हैं। मुनीन्द्रों में प्रमुख स्वस्ति (कल्याण)

प्रदान करते हैं ।१५। गोविन्द की भक्ति का वाहन करने वाले नरों के भूत पिशाचों से युक्त ग्रह भी शुभ होते हैं और ब्रह्मा आदि देवगण परम प्रसन्न होते हैं तथा उनके घर में लक्ष्मी स्थिर होकर रहा करती है। ।१६। जो श्री गोविन्द की भक्ति को करने वाले नर होते हैं उनके देह में सदा गंगा-गया-नैमिष-पुष्कर-काशी-प्रयाग-गुरु-जांवल आदि तीर्थ प्रत भक्ति पूर्वक स्थित रहा करते हैं ।१७। इसी प्रकार से विद्वान पुरुष को चाहिए कि श्री के सहित भगवान् का समाराधन करे। ऐसा करने पर वह विप्र नित्य ही कृत-कृत्य होता है - इसमें रंचक मात्र भी संशय नहीं है ।१८। हे सुरसत्तमे ! क्षत्रिय हो या वैश्य हो अथवा शूद्र हो जो भी कोई ही भगवान् की भक्ति पूर्णतया किया करता है वह मनुष्य मुक्ति का लाभ प्राप्त किया करता है ।१९।

।। शालग्राम पूजन-माहात्म्य ।।

शालग्रामशिलाप्रद्धामूर्त्तयस्सन्ति भूतले ।
तासां चैव तु मूर्तीनां पूजन कतिधा स्मृतम् ।।१
ब्राह्मणैः कति पूज्यास्ताः क्षत्रियैर्वा सुरेश्वर ।
वैश्यैर्वाऽपि कथ शूद्रैः स्त्रीभिर्वाऽपि समादिश ।।२
शालग्रामशिला पुण्या पवित्रा धर्मकारिणी ।
यस्या दर्शनमात्रेण ब्रह्महा शुध्यते नरः ।।३
तद्गृहं सर्वतीर्थानां प्रवरं श्रुतिनोदितम् ।
यत्रेयं सर्वदा मूर्तिः शालग्रामशिला शुभा ।।४
ब्राह्मणैः पञ्चपूज्याः स्युश्चतस्रः क्षत्रियैस्तथा ।
वैश्यैस्तिस्रतथा पूज्या एका पूज्या प्रयत्नतः ।।५
तस्या दर्शनमात्रे शूद्रा मुक्तिमवाप्नुयात् ।
अनेन विधिना देवि ये नराः पूजयन्ति वै ।।६
भगोसान्सर्वास्तत्र भुक्त्वा यान्ति विष्णोः परं पदम् ।
इयं सा महती मूर्तिः सर्वदा पापहारिणी ।।७

जगज्जननी पार्वती ने कहा—हे भगवन् ! शालग्राम शिला इस भूतल में परम शुद्ध मूर्त्तियाँ हैं। उन मूर्त्तियों का पूजन किया जाता है उसके कितने भेद हुआ करते हैं ? ।१। हे सुरेश्वर ! उन शालग्राम शिलाओं को कितनी संख्या ब्राह्मणों के द्वारा पूजनी चाहिए-क्षत्रियों को कितनी तथा वैश्यों को कितनी समर्चित करनी चाहिए तथा शूद्रों के द्वारा और स्त्रियों को भी कितनी संख्या की पूजा करना उचित होता है—इसके विषय में आप आज्ञा दीजिए ।२। श्री महादेवजी ने कहा—शालग्राम की शिला परम पुण्यमय-पवित्र और धर्म कारिणी हुआ करती है जिसके दर्शन मात्र से ब्रह्म हत्यारा मनुष्य भी शुद्ध हो जाया करता है ।३। वह घर समस्त तीर्थों से भी श्रेष्ठ होता है—ऐसा श्रुति ने प्रतिपादन किया है जहाँ पर यह परम शुभ शालग्राम शिला की भगवान् की मूर्ति सर्वदा विराजमान रहा करती हैं ।४। ब्राह्मणों को पाँच संख्या का भजन करना चाहिए, क्षत्रियों को चार संख्या का पूजन करना चाहिए तथा वैश्यों को केवल तीन संख्या वाले शालग्राम शिलाओं का अर्चन करना चाहिए। अथवा प्रयत्न पूर्वक केवल एक ही शिला का पूजन करें ।५। शालग्राम शिला के दर्शन मात्र से शूद्र मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। हे देवि ! इस विधि से जो नर पूजन किया करते हैं वे समस्त भोगों का सुख वहाँ पर भोग कर अन्त में विष्णु के परम पद को प्राप्त हो जाया करते हैं। यह ऐसी महत्व पूर्ण महती मूर्ति है जो सर्वदा पापों का हरण करने वाली है ।६-७।

कैलासाद्य फलं देवि जायते पूजनाद्यतः ।
तत्र गङ्गा च यमुना गोदावरी सरस्वती ।
तिष्ठते च शिला यत्र सर्वं तत्र न संशयः ।
किमत्र बहुनोक्तेन भूयो भूयो वरानने ।।९
पूजनं मनुजैः सम्यक्कर्त्तव्यं मुक्तिमिच्छुभिः ।
भक्ति भावेन देवेशि येऽर्चयन्ति जनार्दनम् ।।१०
तेषां दर्शनमात्रेण ब्रह्महा शुध्यते जनः ।
दासभावेन ये शूद्राः स्वर्चनं कुर्वते सदा ।।११

तेषां पुण्यं न जानन्ति ब्रह्माद्याश्चा सुरेश्वरि ।
भक्तिभावेन ये विप्रा हरिमभ्यर्चयन्ति वै ।।१२
एकविंशतिकुलं तैस्तु तारित तेषु जन्मसु ।
शंखचक्राङ्कितो यस्तु द्विप्रः पूजनमाचरेत् ।।१३
पूजितं तु जगत्सर्वं तेन विष्णुप्रपूजनात् ।
पितरः संद्वदन्त्यस्मत्कुले जाताश्च वैष्णावाः ।।१४

हे देवि ! जिसके पूजन से कैवल्यासाद्य फल होता है। वहाँ पर गंगा-यमुना-गोदावरी-सरस्वती ये सब संस्थित रहा करती है जहाँ शालग्राम की शिला विद्यमान होती हैं । वहाँ सब ही रहते हैं-- इसमें कुछ भी संशय नहीं है। हे वरानने ! यहाँ पर वारम्वार बहुत अधिक कथन से क्या लाभ है।८-९। जो मुक्ति की इच्छा रखने वाले मनुष्य हैं उनको भली-रीति से पूजन करना चाहिए । हे देवेशि ! भक्ति के भाव से जो भगवान् जनार्दन की अर्चना किया करते हैं उनके दर्शन मात्र से ही ब्राह्मण का हनन करने वाला मनुष्य शुद्ध हो जाया करता है। जो शूद्र दास भाव से सदा सुन्दर अर्चन करते है ।१०-११। हे सुरेश्वरी ! ब्रह्मा आदि भी उनका जो पुण्य होता है उसे नहीं जानते हैं । जो विप्र भक्ति की भावना से हरि को अभ्यर्चना किया करते हैं उन्होंने उनके जन्मों में एक विह्वल होकर पूजन किया करताहै उसने उस विष्णु के ही केवल पूजन करने से सम्पूर्ण जगत् की पूजा करली है । तब पितृगण कहा करते हैं कि हमारे कुल में वैष्णव उत्पन्न हो गये है ।१२-१४।

तत्कुलं तारितं तैस्तु यावदाभूतसंप्लवम् ।
ते तु चास्मान्समुद्धृत्य नयन्ते विष्णुमन्दिरम् ।।१५
स एव दिवसो धन्यो धन्या माताऽथ बान्धवाः ।
पिता तस्य च वै धन्यो न्या वै सुहृदस्तथा ।।१६
सर्वे धन्यतमा ज्ञेया विष्णुभक्तिपरायणाः ।
तेषां दर्शनमात्रेण महापापात्प्रमुच्यते ।।१७

उपपानकानि सर्वाणि महान्ति पातकानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति वैष्णवानां च दर्शनात् ।।१८
पावकाइवर्दीप्यन्ते ये नरा वैष्णवा भुवि ।
विमुक्ताः सर्वपाप्भ्यो मेघेभ्यइव चन्द्रमाः ।।१९
आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनः कर्मभिः कृतम् ।
तत्सर्वं नाशमायाति वैष्णवानां च दर्शनात् ।।२०
हिंस दिक च यत्पापं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत् ।
तत्सर्वं नाशमायाति दर्शनाद्वैष्णवस्यच ।।२१

जब तक आभूत संप्लव हो उन्होंने उस कुल को तार दिया है। वे हम को समुद्धृत करके विष्णु के मन्दिर में ले जाते हैं। वह ही दिवस धन्य है, माता धन्य है और बान्धव भी धन्य हैं। उसका पिता धन्य है तथा सुहृदगण भी परम धन्य हैं सभी अत्यन्त धन्यतम जानने चाहिए जो विष्णु की भक्ति में परायण हैं। उनके दर्शन मात्र से मनुष्य महान् पाप से प्रमुक्त हो जाता है ।१५-१७। समस्त उप पातक और महान् पातक वे सभी वैष्णवों के दर्शन मात्र से नष्ट हो जाते हैं। ।१८। जो मनुष्य इस भूमण्डल पर वैष्णव हैं वे पावक की भाँति देदीप्यमान हुआ करते है। वैष्णव नर सभी पापों से विमुक्त हो जाते हैं जिस तरह से मेघों से चन्द्रमा मुक्त होकर अतीव विमल हो जाया करता है ।१९। आर्द्र—शुष्क—लघु और स्थूल जो वाणी मन और कर्मों के द्वारा किया गया है वह सभी वैष्णवों के दर्शन मात्र से नाश को प्राप्त हो जाया करता है ।२०। हिंसा आदि का जो पाप है तथा ज्ञान और अज्ञान से किया हुआ पाप है वह भी सम्पूर्ण विष्णु के भक्त के दर्शन से विनष्ट हो जाया करता है ।२१।

निष्पापास्त्रिदिवं यान्ति पापिष्टा यान्ति शुद्धताम् ।
दर्शनादेव साधूनां सत्यं तुभ्यं मयोदितम् ।
संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारदः ।
पावनः पावनानां च विष्णुभक्तो न संशयः ।।२३

प्रत्यहं विष्णुभक्ता ये स्मरन्ति मधुसूदनम् ।
ते तु विष्णुमया ज्ञेया विष्णुस्तत्रनसंशयः ।।२४
नवनीलघनश्यामं नलिनायतलोचनम् ।
शंखचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरावृतम् ।।२५
कौस्तुभेन विराजन्तं वनमालाधरं हरिम् ।
उल्लसत्कुण्डलज्योतिः कपोलवदनश्रिया ।।२६
विराजितं किरीटेन वलयाङ्गदनपुरैः ।
प्रसन्नवदनाम्भोजं चतुर्बाहुं श्रियान्वितम् ।।२७
एवं ध्यायन्ति ये विप्रा विष्णुं चैव तु पार्वति ! ।
ते विप्रा विष्णुरूपाश्च वैष्णवास्ते न संशयः ।।२८
तेषां दर्शनमात्रेण भक्त्या वा भोजनेन वा ।
पूजनेन च देवेशि वैकुण्ठं लभते ध्रुवम् ।।२९

जो विल्लु पापों से रहित हैं उनको त्रिदिव की प्राप्ति होती है और पापिष्ठ हैं वे शुद्धता को प्राप्त कर लिया करते हैं यह ऐसा ही साधु-पुरुषों के दर्शन से होता है। यह हमने तुमको बिल्कुल सच-सच बतला दिया है।२२। इस संसार के पापरूपी कीच के आलेपन के धोने में महान् कुशल और पावनों को भी पावन कर देने वाला भगवान् विष्णु का भक्त होता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।२३। जो विष्णु के भक्त प्रतिदिन मधुसूदन प्रभु का स्मरण किया करते हैं उनको विष्णु मय ही जानना चाहिये। वहाँ पर साक्षात् विष्णु विराजमान रहते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।२४। अब भगवान् विष्णु के ध्यान की रीति बतलायी जाती है—नवीन नील घन के समान श्याम वर्ण वाले नलिन के तुल्य आयत लोचनों से युक्त शंख-चक्र-गदा और पद्म इन चार आयुधों के धारण करने वाले—पीताम्बर से समावृत वपु वाले—कौस्तुभ मणि से शोभित-वनमाला को धारण करने वाले—उल्लसित कुण्डलों की ज्योति के पड़ने से कपोल और मुख की शोभा से समन्वित-किरीट धारण करके विराजमान--वलय, अङ्गद और पुरों से संयुक्त प्रसन्न मुख कमल वाले—चार भुजाओं से सम्पन्न तथा श्री से समन्वित

श्री हरि का ध्यान कर स्मरण करना चाहिये ।२५-२७। हे पार्वति ! इस उपर्युक्त रीति से जो विप्र विष्णु के स्वरूप का ध्यान किया करते हैं वे विप्र विष्णु के ही रूप वाले हैं । वे वैष्णव है-इसमें कुछ भी संशय का अवसर नहीं है । उनके केवल दर्शन से-भक्ति से अथवा भोजन कराने से हे देवेशि ! ऐसे विप्रों के पूजन से मनुष्य निश्चय ही वैकुण्ठ की प्राप्ति किया करते हैं ।२८-२९।

॥ श्री विष्णु भगवान माहात्म्य ॥

अनन्तं वासुदेवस्य कीदृश स्मरणं स्मृतम् ।
यच्छ्रुत्वा न पुनर्मोही मानुषाणांप्रजायते ॥१
दृष्ट्वा तत्त्वेन देवेशि स्मराम्येनं तु नित्यशः ।
तृषातुरो यथा वारि तद्वद्विष्णुंस्मराम्यहम् ॥२
हिमेनाकुलितं विश्वं स्मरत्यग्नि यथा तथा ।
तद्वदेव तु व विष्णुं स्मरन्तिविबुधादयः ॥३
पतिव्रता यथा नारी पतिं स्मरति नित्यशः ।
तथा स्मरामि लोकेशं विष्णुं विश्वेश्वरेश्वरम् ॥४
भयार्त्तः शरणं यद्वदथ लोभी यथा धनम् ।
पुत्रकामो यथा पुत्रं तथा विष्णु स्मराम्यहम् ॥५
दूरस्थोऽपि यथा गेह चातको माधवं यथा ।
ब्रह्मविद्यां ब्रह्मविदस्तथा विष्णुंस्मराम्यहम् ॥६
हसामानसमिच्छन्ति मनुयः स्मरणं हरेः ।
भक्ताश्च भक्तिमिच्छन्ति तथा विष्णुं स्मराम्यहम् ॥७
प्राणिनां वल्लभो देहो यत्र आत्माऽवतिष्ठते ।
आयुर्वाच्छन्ति ये जीवास्तथा विष्णुं स्माराम्यहम् ॥८

जगदम्बा पार्वती ने कहा हे स्वामिन्!भगवान् वासुदेव के अनन्त स्मरण हैं । अब यह बतलाइये-किस प्रकार का स्मरण कहा गया है जिसका श्रवण करके मनुष्यों को पुनः मोह उत्पन्न न होवे ।१। श्रीमहा-

देव ने कहा—हे देवेशि ! मैंने इसको तात्विक रूप से भली-भाँति देख व समझ भी लिया है वो भी मैं इसका नित्य ही अच्छी तरह से स्मरण किया करता हूँ जिस प्रकार से कोई अत्यन्त ही तृषा से आतुर हो जाता है तो वह जल का बड़ी लगन के साथ स्मरण किया करता है ठीक उसी भाँति मैं भी अत्यन्त आतुर होकर भगवान् विष्णु का स्मरण किया करता हूँ ।२। जिस प्रकार से हिम से व्याकुल हुआ यह विश्व अग्नि का स्मरण किया करता है ठीक उसी तरह से देवगण आदि सब भगवान् विष्णु का स्मरण किया करते हैं ।३। पतिव्रत धर्म का पूर्णतः पालन करने वाली नारी जैसे नित्य ही अपने पतिदेव का ही ध्यान-स्मरण किया करती है उसी भाँति मैं इस विश्व के स्वामियों के भी स्वामी लोक के ईश भगवान् विष्णु का स्मरण और ध्यान करता हूँ ।४। भय से आर्त्त पुरुष जिस तरह अपने शरण रक्षा करने वाले का सर्वदा स्मरण करता है ठीक उसी तरह से मैं विष्णु का स्मरण करता हूँ ।५। दूर देश में भी स्थित रहने वाला जैसे अपने घर का, चातक माधव का और ब्राह्मण के वेत्ता ब्रह्मविद्या का स्मरण किया करते हैं उसी भाँति मैं भगवान् विष्णु का स्मरण तथा ध्यान बराबर करता रहता हूँ ।६। हंस पक्षी मानसरोवर की ही सर्वदा इच्छा रखते हैं और मुनिगण श्रीहरि के स्मरण को चाहते हैं, भगवान् के सच्चे भक्तगण भगवद्भक्ति की इच्छा रखते हैं उसी भाँति मैं भगवान् विष्णु का स्मरण करता हूँ ।७। समस्त प्राणधारियों का यह देह परमप्रिय होता है जिसमें आत्मा अवस्थित रहा करता है जो जीव अपनी आयु को अधिकाधिक बाँधा रखते हैं ठीक उसी तरह से मैं विष्णु भगवान् का सर्वदा स्मरण एवं ध्यान किया करता हूँ ।८।

भ्रमराश्च यथापुष्पं चक्रवाका दिवाकरम् ।
यथात्मवल्लभा भक्ति तथा विष्णु स्मराम्यहम् ।।९
अन्धेनाकुलिता लोका दीप वाञ्छन्ति वै यथा ।
तथा वै पुरुषा लोके स्मरणं केशवस्य च ।।१०

यथाश्वमार्त्तोविश्रामंनिद्राव्यसनिनोयथा ।
गतालस्यायथाविद्यांतथाविष्णु स्मराम्यहम् ।।११
मातङ्गाःपार्वतींभूमिंसिंहा वनगजादिकम् ।
तथैवस्मरणंविष्णुः कर्तव्यंपापभीरुभिः ।।१२
सूयकान्तरेवेर्योगाद्वह्निस्तशूप्रजायते ।
एवं वै साधु संयोगाद्धरौ भक्तिः प्रजायते ।।१३
शीतरश्मेर्यथाकान्तश्चन्द्रयोगादपः श्रवेत् ।
एवं वैष्णवसयोगान्मुक्तिर्भवति शास्वती ।।१४

भ्रमर (भौंरे) मधुर मधु प्राप्त करने के लिए जैसे सर्वदा पुष्पों की प्राप्ति की इच्छा मन में रक्खा करते हैं और चक्रवाक पक्षी सूर्य के उदय काल की भावना रखते हैं क्योंकि निशा काल में चकवा चकवी का वियोग ... जाना कवि समय ख्याति है तथा आत्म वल्लभ पुरुष भक्ति को चाहा करते हैं उसी तरह मैं विष्णु का स्मरण किया करता हूँ ।६। अन्धकार से बेचैन हुए लोग दीप के प्रकाश को चाहा करते हैं उसी तरह से लोग केशव भगवान् का स्मरण करते हैं ।१०। जिस तरह श्रम से आर्त्त विश्राम को—व्यवसन शील निद्रा को और विगत आलस्य वाले विद्या को प्राप्त करते हैं उसी भाँति मैं विष्णु का स्मरण करता हूँ ।११। मातङ्ग (हाथी) पर्वतों वाली भूमि को और सिंह वन गज आदि के स्थल को चाहते हैं ठीक उसी तरह से पापों से भयभीत पुरुषों को भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिये ।१२। सूर्यकान्त नाम वाली मणि से सूर्य के साथ योग हो जाने पर जैसे अग्नि समुत्पन्न हो जाया करती है इसी भाँति से साधु पुरुष के संयोग से हरि में भक्ति की भावना का उदय हो जाया करता है ।१३। चन्द्रकान्त मणि से चन्द्रमा के साथ संयोग होने से जैसे शीत रश्मियों की समुत्पत्ति हो जाया करती है एवं जल का स्राव होने लगता है उसी तरह वैष्णवजनों के साथ सम्पर्क प्राप्त हो जाने से शाश्वती मुक्ति होती है ।१४।

कुमुद्वती यथा सोमं दृष्टवा पुष्पं विकासते ।
तद्वद्देव कृता भक्तिमुं सिदा सर्वदा नृणाम् ।।१५

यथा नला या सत्रस्ता भ्रमरी स्मरणं चरेत् ।
तेन स्मरणयोगेन नलासारूप्यतामियात् ॥१६
गोपीभिर्जारबुद्धया च विष्णोश्च स्मरणं कृतम् ।
ताश्च सायुज्यतां नीतास्तथा विष्णु स्मराम्यहम् ॥१७
केऽपि वै दुष्टभावेवच्छ भावेन केचन ।
के चापि लोभभावेन निःस्पृहाश्चैव केचन ॥१८
भक्त्या वा स्नेहभावेन द्वेषभावेन वा पुनः ।
केऽपि स्वामित्वभावेन बुद्धया वा बुद्धिपूर्वकम् ॥१९
येन केनापि भावेन चिन्तयन्ति जनार्दनम् ।
इहलोके सुखं भुक्त्वा यान्ति विष्णोः पर पदम् ॥२०
अहोविष्णोश्च माहात्म्यमद्भतं लोमहर्षणम् ।
यहृच्छयापि स्मरणंत्रिधा मुक्तिप्रदायकम् ॥२१

कुमुद्वती चन्द्रोदय को देखकर अपने में पुष्पों का विकास किया करती है अर्थात् कुमोदनी में निशाकाल में ही पुष्प खिला करते हैं जब सूर्य का प्रभाव और चन्द्र का उदय होता है। उसी तरह से की हुई भक्ति सर्वदा मनुष्यों को मुक्ति के प्रदान करने वाली होती है।१५। जैसे सत्रस्व भ्रमरी नला का स्मरण किया करती है और उस स्मरण के याग से वह नला की ही स्वरूपता को प्राप्त हो जाया करती है उसी भाँति निरन्तर स्मरण से भक्त विष्णु के सारूप्य को प्राप्त किया करते हैं।१६। व्रज की गोपियों ने जार की बुद्धि से ही श्री कृष्ण का स्मरण किया था क्योंकि उस समय में प्रणय के भाव से ही उनका ध्यान किया था और उनको इनके परम पुरुष होने का ज्ञान ही नहीं था न ऐसी भावना ही व्रजांगनाओं के हृदय में समुदित हुई थी तो भी वे सब सायुज्यता को प्राप्त करदी गयीं थीं। भगवान् विष्णु का स्मरण किसी भी भावना से क्यों न किया जावे सर्वदा उससे कल्याण ही होता है। मैं भी उसी तरह उनका निरन्तर स्मरण किया करता हूँ।१७। कुछ लोग दुष्टता की भावना से और कुछ लोग कपट के भाव से उनका स्मरण किया करते हैं [illegible] लोभ के [illegible] तथा कुछ लोग बिल्कुल निःस्पृह

होकर विष्णु का स्मरण करते हैं। भक्ति से, द्वेष की भावना से या स्नेह के भावों से उनका स्मरण किया जावे। कुछ लोग स्वामित्व के भाव से अथवा बुद्धि पूर्वक ज्ञान से उनका स्मरण करते हैं। कुछ भी हो, जिस किसी भी भाव से (बुरे या भले) जो जनार्दन प्रभु का चिन्तन किया करते हैं वे इस लोक में पूर्ण सुखों का उपभोग करके अन्त में विष्णु के परम पद को चले जाते हैं।१८-२०। अहो! यह भगवान् विष्णु का माहात्म्य अत्यन्त ही अद्भुत हैं और लोम हर्षण है तथा यदृच्छा से भी इनका स्मरण तीन प्रकार से मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है।२१।

न धनेन समृद्धेन विपुलाविद्यया तथा।
एकेन भक्तियोगेन समीपे दृश्यते क्षणात् ॥२२
सन्निध्येऽपि स्थितो दूरे नेत्रयोरञ्जनं यथा।
भक्तियोगेन दृश्येत भक्तैश्चैव सनातनः ॥२३
इदं तत्त्वमिदं तत्त्वं मोहितो देवमायया।
भक्तितत्वं यदा प्राप्तं तदा विष्णुमय जगत् ॥२४
इन्द्राद्यैरमृतं प्राप्तं मुखार्थे शृण सुन्दरि!।
तथापि दुखितास्ते वै भक्त्या विष्णोर्यथा विना ॥२५
भक्तिमेवाऽमृतप्राप्य पुनर्दुःखं न जायते।
वैकुण्ठाख्यं पद प्राप्य मोदते विष्णुसन्निधौ ॥२६
वारि त्यक्त्वा यथा हंसः पयः पिबति नित्यशः।
एवं धर्मान्परित्यज्य विष्णुभक्तिं समाश्रयेत्।
तोयं बद्ध्वातुवस्त्रेण कृतंकार्यंकथंभवेत् ॥२८

यह परम प्रभु समृद्ध धन से नहीं प्राप्त होते हैं और बहुत अधिक विद्या से भी इनकी प्राप्ति नहीं हुआ करती हैं केवल एक मात्र भक्ति के ही योग से यह क्षण मात्र में ही समीप में दिखलाई दिया करते हैं।२२। यह अपने सान्निध्य में ही सर्वदा स्थित रहते हुए नेत्रों में अंजन की भाँति दूर ही रहा करते हैं अर्थात् जैसे नेत्रगत अंजन दिखलाई

नहीं दिया करता है वैसे ही यह दिखलाई नहीं देते हैं। यह सनातन प्रभु तो भक्तों के द्वारा भक्ति के ही योग से दिखलाई दिया करते हैं।२३। यह तत्व है—यह तत्व है—इस तरह से देवमाया से यह समस्त लोक मोह में आवद्ध हो रहा है। जब भक्ति का तत्व होता है तब यह सम्पूर्ण जगत् ही विष्णुमय दिखलाई दिया करता है। भक्ति के द्वारा तो ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भी पदार्थ या स्थल ऐसा है ही नहीं जो विष्णु से शून्य हो—सर्वत्र वही व्यापक एवं विराजमान हैं।२४। हे सुन्दरि! सुनो, इन्द्र आदि देवों ने सुख के लिए ही अमृत की प्राप्ति की थी जो भी उनको उस अमृत से सुख नहीं मिला और वे दुःखित ही हुये थे जिस तरह से बिना विष्णु की भक्ति से हुआ करते हैं।२५। वस्तुतः यह विष्णु की भक्ति ही अमृत है। इसकी प्राप्ति करके फिर दुःख कभी भी उत्पन्न ही नहीं हुआ करता है। भक्ति वाला पुरुष तो वैकुण्ठ नाम वाले पद को प्राप्त करके विष्णु की सन्निधि में सदा आनन्द प्राप्त करता रहता है।२६। जिस तरह से जल से मिश्रित दूध को सामने रखने पर भी हम जल का त्याग करके केवल दूध का ही पान किया करता है। इसी प्रकार से अन्य समस्त धर्मों का त्याग करके केवल एक भगवान् विष्णु की भक्ति का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए।२७। अन्य सब की भक्ति का समाश्रय लेना चाहिए। वस्त्र में जल को बाँधकर मनुष्य कैसे सफल हो सकता! अर्थात् विष्णु के अतिरिक्त अन्य की भक्ति में मन लगा।। वस्त्र में जल के बाँधने के समान निष्फल होता है।१८।

प्राप्य देहं विना भक्ति क्रियते स वथाश्रमः।
विष्णुभक्ति दिनाधर्मानुदिशन्तियेजनाः ।।
ये पतन्ति सदा घोरे नरके नाऽत्रसंशयः ।।२९
बाहुभ्यां सागरं यपु यद्वन्मूर्खोऽभिवाञ्छति ।
संसारसागरं तद्वद्विष्णु भक्ति विना नरः ।।३०
विष्णु भक्ति च रक्षन्ति कर्मणा पात्यये यदि ।
अकिञ्चनः स्पृहायुक्तो मरीचिस्त्यथास्पृहाम् ।।३१

तव भक्तौ तथा देव मयां हि क्रियतेस्पृहा ।
जन्मान्तरे हि सा भक्तिर्मामिकीयत्करोतिहि ॥३२
वह्निर्यथेह स्वल्पोऽपि दहते विविधं वनम् ।
तद्वदेव सा भक्तिरणुमात्रा कृता मया ॥३३
शतैश्च श्रूयपे भक्तिः सहस्रै रपि बुध्यते ।
तेषां मध्ये तु देवेशि भक्तो ह्येकः प्रजायते ॥३४
बुद्धि परेषां दास्यन्ति लोके बहुविधा जनाः ।
स्वयमाचरते सोऽपि नरः कोटिषुदृश्यते ॥३५

इस मानव शरीर की प्राप्ति करके भक्ति के बिना हो जो कुछ भी किया जाता है वह श्रम व्यर्थ ही होता है अर्थात् उसका कोई भी सुख प्रद परिणाम नहीं होता है। जो मनुष्य भगवान् विष्णु की भक्ति के बिना ही धर्मों का उपदेश दिया करते हैं वे सदा परम घोर नरक में गिरा करते हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।२९। जिस तरह से कोई मनुष्य बाहुओं के बल से तैरकर सागर को पार करना चाहता हैं ठीक उसी तरह मनुष्य मूर्खता वश विष्णु की मुक्ति के बिना इस संसार रूपी सागर से पार होने की इच्छा किया करता है। जैसे बाहुओं से समुद्र में तैर कर पार होना सम्भव नहीं है वैसे ही संसार से पार होना भी बिना श्री विष्णु की भक्ति के नितान्त असम्भव है ।३०। यदि कर्म से पालन किया जाता हैं तो विष्णु की भक्ति की रक्षा किया करते हैं। जिस तरह से कोई अकिञ्चन स्पृहा से संयुक्त होकर मेरु में अपनी स्पृहा को धारण किया करता है।३१। हे देव ! आपकी भक्ति में मेरे द्वारा स्पृहा की जाती हैं। जन्मान्तर में वह मेरी भक्ति यह किया करती है ।३२। जिस प्रकार से थोड़ी सी भी अग्नि अनेक विस्तृत विशाल वन को जला दिया करती है उसी तरह से वह मैंने अणुमात्र ही भक्ति की थी ।३३। इस भक्ति का श्रवण तो सैकड़ों ही किया करते हैं और सहस्रों की संख्या वाले इस भक्ति को जानते है किन्तु हे देवेशि ! उन सबके मध्य में कोई एक ही भक्त समुत्पन्न होता है ।३४। लोक में बहुत से मनुष्य दूसरों को बुद्धि दिया करते हैं। जो

स्वयं भी वैसा ही समाचरण करे ऐसा मनुष्य तो कोई एक ही करोड़ों में दिखलाई दिया करता है ३५।

पूजया हस्यते भक्तिर्जपेन परिहस्यते ।
एवं भावो हि देवेशे भक्तिस्तेनैव गृह्यते ॥३६
सागरे च यथा पोतः कूपे द्रोणोपवेशनम् ।
यस्य भावो तद्वच्च भक्तिः सा तेनगृह्यते ॥३७
मूले सिक्तस्य वृक्षस्य पत्रं शाखासु दृश्यते ।
भजनादेव भो देवि फलमग्रे प्रतिष्ठितम् ॥३८
पानीयहारिणा यद्वद्घटे चित्तं प्रधीयते ।
तद्वद्देवे हरौ चित्त धृत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥३९
शैशवे च यथा माता गुडं स्तोक ददाति वै ।
पुनर्याचति वै बालो गुडं वै लोभकारणात् ॥४०
नीरे नीरं यथा क्षिप्तं दुग्धं घृते घृतम् ।
तद्वद्भेदं न पश्यन्ति विष्णुभक्तिप्रसादतः ॥४१
भानुः सर्वगतो यद्वद्वह्निः सर्वगतो यथा ।
भक्तिः स्थितस्तथा भक्त कर्मभिर्नैव बाध्यते ॥४२

पूजा के द्वारा भक्ति की हँसी उड़ाई जाती है तथा जाप के द्वारा भी भक्ति का मजाक बनाया जाता है । देवेश में इस प्रकार का जाप ही भक्ति है और उसी से वह ग्रहण किये जाया करते हैं ।३६। सागर में जैसे जहाज और कूप में द्रोणोपवेशन होता है, जिसका भाव उसी के समान होता है वह भक्ति उसी के द्वारा ग्रहण की जाया करती हैं ।३७। वृक्ष के मूल में यदि सिंचाई की जाती है तो वह पत्तों और शाखाओं में स्पष्ट दिखलाई देता है । हे देवि ! भगवान् के भजन से ही आगे फल प्रतिष्ठित हुआ करता है ।३८। जो जल लेकर आता है वह मस्तक पर रखे हुए घट में जैसे अपना मन लगाकर रखता है उसी भाँति देव हरि में चित्त लगाकर ही मानव मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ।३९। बचपन में माता जैसे थोड़ा सा गुड़ दे दिया करती है फिर वही बालक लोभ के कारण से गुड़ की याचना किया

करता है।४०। नीर में नीर का और दूध में प्राक्षिप्त किये हुये दूध का तथा घृत में प्रक्षिप्त घृत का कोई भी भेद नहीं होता है, उसी तरह विष्णु भक्ति के प्रासाद का यही प्रभाव है कि कोई भी भेद-भाव नहीं देखा करते हैं। तात्पर्य यह है कि विष्णु भक्त सभी भक्तों को समान भाव से ही देखता है और कुछ भी भेद-भाव नहीं समझा करता है।४१। सूर्य सर्वत्र गमन करता है, धर्मनिष्ठ-श्री सम्पन्न पुरुष की भाँति ही वह चाण्डाल के घर में भी समान रूप से किरणों का प्रसार किया करता है। इसी तरह वह्नि भी सर्वगत है। जिसमें भक्ति का भाव है वही भक्त है और वह कर्म्मों से बाध्य नहीं हुआ करता चाहे कोई कुछ भी कर्म करने वाला हो, भक्ति के होने से वह भक्त है, सब भक्तों से अभिन्न होता है।४२।

अजामिलः स्वधर्मं च त्यक्त्वा पापं समाचरन्।
पुत्रं नारायणं स्मत्वा मुक्तिं वै प्राप्तवान्ध्रुवम्।।४३
दिवारात्रौ च ये भक्ता नाममात्रोपजीविनः।
वैकुण्ठवासिनस्ते वै तत्र वेदा हि साक्षिणः।।४४
अश्वमेधादितज्ञानां फलं स्वर्गेऽपि दृश्यते।
तत्फलं तु समग्रं वै भुक्त्वा वै सम्पतन्तिच।।४५
विष्णुभक्तास्तथा देवि भुक्त्वा भोगाननेकणः।
वैकुण्ठं प्राप्य वा तेषां पुनरागमनंकदा।।४६
विष्णुभक्तिः कृता येन विष्णु लोके वसत्ययौ।
दृष्टान्तं पश्य देवेशि विष्णुभक्तिप्रसादतः।।४७
ग्रावाणो जलमध्यस्थाः शतशस्तेन तारिताः।
विना जल सोमकान्तो विष्णुभक्तस्यमानसम्।।४८
दर्दुरो वसते नीरे षट्पदो हि वनान्तरे।
गन्धं वेत्ति कुमुद्वत्या भक्तो भक्तौ तथा हरेः।।४९

यह एक ऐतिहासिक और परम प्रसिद्ध आख्यान है कि अजामिल ने अपने धर्म को त्याग कर पाप कर्मों को दिल खोलकर खून किया था किन्तु अपने सबसे छोटे पुत्र नारायण के नाम का अन्तिम समयमें स्मरण

किया था । इस नाम के स्मरण और समुच्चारण करने का ही यह महान् फल उसे प्राप्त हुआ कि वह निश्चय ही मुक्ति को प्राप्त करने वाला हो गया था ।४३। पुत्र की भावना से ही भगवान् के नारायण नाम के उच्चारण मात्र का अन्त समय में जब ऐसा फल हुआ तो जो रात दिन भक्त-गण भगवान् के नाम का स्मरण से उपजीवी रहते हैं वे तो वैकुण्ठ के वास करने वाले निश्चय ही हुआ करते हैं—इसके साक्षी वेद हैं ।४४। जो अश्वमेध आदि यज्ञ किया करते हैं—उनका फल स्वर्ग में भी दिख-लाई दिया करता है। वहाँ पर स्वर्ग में उनके समग्र पुण्य-फल को भोगकर जब वहाँ समाप्त हो जाता है तो फिर यहाँ पर पतन किया करते हैं ।४५। हे देवि ! विष्णु के भक्त उसी भाँति अनेक भोगों का सुख प्राप्त करके अन्त में वैकुण्ठ लोक को प्राप्त करते हैं उनका फिर यहाँ आगमन कब होता है ? अर्थात् वे फिर यहाँ नहीं आया करते हैं ।४६ जिसने विष्णु की भक्ति की है वह विष्णु के लोक में निवास किया करत हैं। हे देवेशि ! विष्णु की भक्ति प्रसाद से होने वाले दृष्टान्ति को देख लो ।४७। जल के मध्य से स्थित सैकड़ों ही पत्थरों को जिसने तार दिया है। जल के विना सोमकान्त मणि विष्णु के भक्त का मानस है ।४८। दर्दुर (मैंढ़क) जल में निवास किया करता है और षट्पद (भौंरा) वनान्तर में रहता है। वह कुमुद्वती के गन्ध को जानता है, उसी भाँति हरि की भक्ति में भक्त हुआ करता है ।४९।

गङ्गातटे वसन्त्येक एके शतयोजनम् ।
कश्चिद्गंगाफलं वेत्ति विष्णुभक्तिपरस्तथा ।।५०
कर्पूरागुरुभार हि उष्ट्रो बहयि नित्यशः ।
मध्यगन्धं न जानाति तथा विष्णुम्बहिर्मुखाः ।।५१
मृगाः शालं हि जिघ्रन्ति कस्तूरोगन्धमच्छवः ।
स्वनाभिस्थं न जानन्ति तथा विष्णुं बहिर्मुखाः ।।५२
उपदेशो हि मूर्खाणां वृथा वै नगनन्दिनि ।
तथैव विष्णुभक्तेहि उपदेशो बहिर्मुखे ।।५३

अहिना च पयः पीतं तत्पयो हि विषायते ।
तथा वै चान्यभक्तानां विष्णुभक्तिर्विषायते ॥५४

चक्षुर्विना यथा दीपं दृष्ट्वा दर्पणमेव च ।
समीपस्था न पश्यन्ति तथा विष्णुं बहिर्मुखाः ॥५५

पावको हि यथा धूमैरादर्शोऽपि मलेन च ।
यथोल्वेनावृतो गर्भो देहे कृष्णस्तथावृतः ॥५६

एक तो गङ्गा के तट पर निवास किया करते हैं और एक सौ योजन की दूरी पर रहते हैं। कोई ही गङ्गा के फल को जानता है उसी भाँति श्री विष्णु भगवान् की भक्ति में जो परायण होता है वही उस भक्ति का ज्ञान रखता है।५०। कपूर और अगुरु के भार को अपने ऊपर लदा कर ऊँट नित्य ही वहन किया करता है किन्तु उनके मध्य में रहने वाली विशेष गन्ध का ज्ञान उसे नहीं हुआ करता है। उसी तरह से जो लोग विष्णु की भक्ति के बहिर्मुख होते हैं उनको भी उसका महत्व का किञ्चिनमात्र भी ज्ञान नहीं होता है।५१। मृग शाल को सूँघा करते हैं और कस्तूरी के गन्ध की इच्छा वाले होते हैं किन्तु अपनी ही नाभि में अन्दर रहने वाली उस कस्तूरी का ज्ञान नहीं हुआ करता है। उसी तरह से जो विष्णु की भक्ति से वहिर्मुख मानव होते हैं वे भी उस अन्तर्यामी प्रभु विष्णु का ज्ञान नहीं रखते हैं।५२। हे नग नन्दिनि! जो मूर्ख मनुष्य होते हैं उनको उपदेश दिया जाता है तो वह व्यर्थ ही हुआ करता है। उसी तरह से विष्णु की भक्ति से जो वहिर्मुख मनुष्य है उसको भक्ति का ज्ञानोपदेश करना भी सर्वथा निष्फल ही हुआ करता है।५३। सर्प के द्वारा दूध जैसे उत्तम पदार्थ पिया जाता है किन्तु वही दूध विष वन जाया करता है वैसे ही जो अन्य की भक्ति के करने वाले मानव होते हैं उनके लिए भी सर्वोत्तम विष्णु की भक्ति भी विष की तरह हो जाया करती है।५४। यदि नेत्र ही नहीं हैं जिनसे देखा जाया करता है तो समीप में स्थित होते हुए भी वे चक्षुहीन पुरुष दीपक को और दर्पण को नहीं देखा करते हैं। ठीक उसी तरह से जो बहिर्मुख प्राणी होते हैं, वे भगवान् विष्णु को भी नहीं पहिचान सकते हैं

भले ही विष्णु उनके हृदय में अन्तर्यामी स्वरूप से क्यों न विराजमान रहता हो ।५५। पावक (अग्नि) धूम से और दर्पण मल से समावृत रहता है और गर्भ जैसे उल्व से ढका हुआ रहा करता है उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण भी मानव के देह में आवृत रहा करते हैं और स्पष्ट उनका दर्शन नहीं हुआ करता है ।५६।

दुग्धे सर्पिः स्थितं यद्वत्तिले तलं तु सर्वदा ।
चराचरे तथा विष्णुर्दृश्यतेनगन्दिनि ।।५७
एकसूत्रे मणिगणा धार्यन्ते बहवो यथा ।
एवं ब्रह्मादिभिर्विश्वं सप्रोतं ब्रह्मचिन्मये ।।५८
यथाकाष्ठे स्थितो वह्निर्मथनादेव दृश्यते ।
एवं सर्वगतो विष्णुर्ध्यानादेव प्रदृश्यते ।।५९
आदिरेको भवेद्दीपस्तस्माज्जाताः सहस्रशः ।
एवमेकः स्थितो विष्णुः सर्वं व्याप्य प्रतिष्ठते ।।६०
यथा सूर्योदये ज्योतिः पुष्करे तिष्ठते सदा ।
दृश्यते बहुधा नीरे लोके विष्णुस्तथा हि सः ।।६१
मारुतः प्रकृतिस्थोऽपिनागन्धवहः सदा ।
ईश्वरःसर्वजीवस्थोभुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।।६२
शर्कराविषसंयोगान्नीरभवति यादृशम् ।
स भूत्वा सदृशो ह्यात्मा कर्मणःफलमश्नुते ।।६३

दूध में घृत अवश्य ही विद्यमान रहता है और उसी भाँति तिलों में तैल भी वर्तमान सर्वदा ही रहा करता है उसी तरह से हे नग नन्दिनि! भगवान् विष्णु चर और अचर सब में दिखलाई दिया करते हैं अर्थात् व्यापक रूप से वर्तमान रहा करते हैं किन्तु उनका वैसे ज्ञान नहीं हुआ करता है ।५७। जिस तरह से एक ही सूत्र में बहुत से मणिगण धारण किये जाया करते हैं । इसी प्रकार से ब्रह्म चिन्मय में ब्रह्मादि के द्वारा वह विश्व सम्प्रोत होता है ।५८। जैसे काष्ठ में वह्नि स्थित रहा करता है किन्तु वैसे स्पष्ट उसका दर्शन नहीं हुआ करता है, जब मंथन किया जाता है तभी वह प्रकट होकर दिखलाई दिया करता है । दी॰

उसी तसी तरह से सर्वव्यापक विष्णु का भी भक्तिभाव के साथ जब ध्यान किया जाता है कभी उनका दर्शन प्राप्त होता है ।५६। सब के आदि में एक ही दीपक प्रज्वलित होता है और फिर उसी एक दीपक से सहस्रों दीपक प्रज्वलित हो जाया करते हैं इसी रीति से एक ही स्थित भगवान् विष्णु सब में व्यापक होकर अवस्थित रहा करते हैं ।६०। जिस प्रकार से सूर्य के उदय हो जाने पर उसकी ज्योति पुष्कर म सदा स्थित रहती है और जल में वह बहुत से रूपों में दिखलाई देती है वैसे ही वह भगवान् विष्णु लाक में दिखाई दिया करते हैं ।६१। प्रकृति में स्थित रहने वाला भी मारुत सदा अनेक प्रकार के गन्ध का वहन करने वाला सदा रहता है वैसे ही समस्त जीवों में स्थित ईश्वर भी प्रकृति के समुत्पन्न गुणों का ही उपभोग किया करते हैं ।६२ जल जिस तरह से शर्करा और विष के संयोग से स्वाद और गुण वाला हो जाया करता है उसी तरह से वह आत्मा भी सदृश होकर कर्मों फल को भोग करता है ।६३।

उर्वी च नीरसंयोगान्नानावृक्षाप्रजायते ।
प्रकृतेर्गुणसंयोगान्नायोनिषु जायते ।।६४
गजे वै मशके चैव देवे वा मानुषेऽपिवा ।
नाधिको न च न्यूनो वै निष्ठोदेहेसनिश्चलः ।।६५
ब्रह्मादिस्तम्भपर्यन्ता ये चात्र भुवि मानवाः ।
देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाः निन्नरादयः ।।६६
तेषु सर्वषु दृश्यन्ते जले चन्द्रमसो यथा ।
ससच्चिदानन्दशिवः स महेशो हि दृश्यते ।।६७
स वै विष्णुस्तथा प्रोक्तः सोऽयं सर्वगतो हरिः ।
वेदान्तवेद्यः सर्वेशः कालातीतो ह्यनामयः ।।६८
एवं तं वेत्ति यो देवि स भक्तो नात्रसंशयः ।
एको हि वहुधाज्ञेयो बहुधाप्येक एवसः ।।६९
नामरूपविभेदेन जल्प्यते वहुधा भुवि ।
चक्षुषा न रवेर्ज्योतिर्भानुना चक्षुरेधते ।।७०

यह भूमि जब इसके साथ जल का संयोग हो जाता है तो यह विविध भाँति के वृक्षादिक के उत्पन्न कर देने वाली हो जाया करती है उसी भांति प्रकृति के गुणों के संयोग से यह आत्मा भी नाना भाँति की योनियों में जन्म ग्रहण किया करता है ।६४। गज में, मशक में, देव में या मानुष में किसी भी योनि में यह आत्मा जन्मधारण करे उसमें न तो कोई विशेषता या अधिकता होती है और न कुछ न्यूनता ही होती हैं। वह तो निश्चल होकर देह में निष्ठित रहा करता है ।६५। ब्रह्मा से आदि लेकर स्तम्ब पर्यन्त जो भी भूलोक में मानव हैं—देव – यक्ष — नाग-किन्नर और गन्धर्व आदि हैं उन सभी में चन्द्रमा की भाँति वही सच्चिदानन्द शिव महेश ही दिखलाई दिया करते हैं अर्थात् सब में शिव ही विराजमान रहते हैं ।६६-६७। वह भगवान् विष्णु भी उसी प्रकार से कहे गये हैं। वह यह भगवान् श्रीहरि सर्वगत हैं अर्थात् अन्तर्यामी स्वरूप से सब में विद्यमान रहा करते हैं। यह श्रीहरि वेदान्त के ज्ञान के द्वारा ही जानने के योग्य होते हैं यह सभी चराचर विश्व के ईश हैं काल से भी परे और इनका स्वरूप अनामय है ।६८। हे देवि ! इसी तरह से भगवान् विष्णु का जो ज्ञान प्राप्त किया करता है वही विष्णु का सच्चा भक्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। वह एक भी बहुत रूपों में स्थित जानने के योग्य होता हैं और अनेक रूपों में रहने पर भी वह एक ही जानने के योग्य होता है। उसी के अनेक रूप हैं और अनेक रूपों में भी वह एक ही रहा करता है। इसी कारण से उसे अनेक या एक ही कहा करते हैं ।६९। भिन्न २ नाम और विभिन्न रूपों में वह इस भूमण्डल में कहा जाया करता है। चक्षु के द्वारा रवि की ज्योति नहीं, किन्तु भानु के द्वारा ही चक्षु एधमान होता है ।७०।

परमात्मा तथाचात्मा प्रतिदेहे तु सर्वदा।
घटेघटे यथाकाशस्तस्मिन्भग्ने यथास्थितः ।।७१
रूपे रूपे तथा त्वं हि भग्ने तस्मिन्सुनिश्चलः।
यथाकाशमय रूपं पतते प्रभुणा विना ।।७२

क्रिमिमेदोमयो देहः पतते चात्मना विना ।
हेम्नो भवन्ति वर्णाश्च वह्निन्ननायान्तिपूर्ववत् ।।७३
तद्वज्जीवाः प्रपद्यन्ते भक्ता वै पूर्वरूपताम् ।
स्वघनेनावृतं सूर्यं मढ़ाः पश्यन्तिनिष्प्रभम् ।।७४
तथाऽज्ञानधियो मूढा न जानन्ति तमीश्वरम् ।
निर्विकल्पं निराकारं वेदान्तैः परिपठ्यते ।।७५
निराकाराच्च साकारं स्वेच्छया च प्रकाशते ।
तस्मात्संजातमाकाशं निः शब्दं गुणवर्जितम् ।।७६
आकाशान्मारुतो जातः सशब्दं च तदाऽभवत् ।
धातादजात ज्योतिर्ज्योतिषश्चाभवज्जलम् ।।७७

इस संसार में प्रत्येक देह में सर्वदा आत्मा और परमात्मा स्थित रहा करते हैं । जैसे घट घट में आकाश है और जब घट का भङ्ग हो जाता है तब भी वह व्यापक नित्य आकाश का नाश नहीं होता है । वह तो घट के विनष्ट होने पर भी विद्यमान रहा करता है । वह आकाश जो पहिले घट गत था अव घट के विनष्ट होने पर वहाँ महाकाश में मिल कर वर्तमान है ।७१। उसी तरह से आप रूप-रूप में विद्यमान है । उस रूप के अर्थात् आश्रय के भग्न हो जाने पर भी आप सुनिश्चल ही रहते हैं जैसे घट के आकाश का घट के नाश होने पर भी कभी विनाश नहीं हुआ करता है । जिस तरह काष्ठमय रूप प्रभु के विना गिर जाया करता है ।७२। कृमि और मेद से परिपूर्ण यह देह आत्मा के बिना पतन होने वाला हो जाया करता है । वर्ण तो हेम के ही हुआ करते हैं, वह्नि के सयोग से वे पूर्व की भाँति ही हो जाया करते हैं अर्थात् हेम को जब अग्नि में तपाया जाता है तो उसमें स्वाभाविक प्रभा दिखाई देने लगा करती है ।७३। उसी तरह से जीव भी भक्त होकर पूर्व रूपता को प्राप्त हो जाया करते हैं । भक्ति के ही संयोग का यह प्रभाव हुआ करता है कि जीव का सच्चा रूप निखर आता है मेघों से समावृत सूर्य को मूढ़ लोग ही प्रभासे हीन समझ लिया करते हैं।७४।अज्ञानपूर्ण बुद्धि वाले मनुष्य जो महामूढ़ होते हैं उस ईश्वर के सच्चे स्वरूप को नहीं पहिचाना करते

है। वह तो वेदान्तों के द्वारा सदा सर्वदा निर्विकल्प और निराकार ही पढ़ा जाया करता है।७५। उसका स्वरूप तो बिना आकार वाला ही है किन्तु जब भी उसकी इच्छा होती है तभी स्वेच्छा से उसी अपने निराकार रूप से वह साकारता को प्राप्त कर लिया करता है और सर्वत्र प्रकाशित हो जाता है। उससे आकाश समुत्पन्न हुआ जो शब्द रहित और गुणों से वर्जित है।७६। आकाश से वायु हुआ। उस समय में वह शब्द के सहित हुआ था। वायु में ज्योति की उत्पत्ति हुई थी और ज्योति से जल समुत्पन्न हुआ था।७७।

तज्जलेरुक्मगर्भश्च विराड् वै विश्वरूपधृत्।
तस्य नाभिसरोजे च ब्रह्माण्डानांच कोटयः ।।७८
प्रकृतिःपुरुषस्तस्मान्निर्मित त्रिधा जगत्।
तयोर्द्वयोश्च संयोगात्तत्वयोगोऽभ्यजायत ।।७९
सात्विकी विष्णुसंभूतिर्ब्रह्मा वै राक्षसः स्मृतः।
शिवस्तु तामसः प्रोक्तएभिः सर्वं प्रवर्त्तितम् ।।८०
एका ब्राह्मी स्थितिर्लोके कर्मबीजनुसारतः।
तथा संहरते विष्णुः सर्वलोकानुशेषतः ।।८१
तिष्ठत्यसौ तदा तत्र भगवान्विष्णुरव्ययः।
एवं सर्वंगतो विष्णुरादिमध्यान्त एव च ।।८२
अविद्यया न जानन्ति लोका वै कर्मनिश्चिताः।
वर्णोचितानि कर्माणि यः कालेषु प्रकारयेत् ।।८३
यत्कर्मं विष्णुर्दवत्यं न हि गर्भस्य कारणम्।
वेदान्तशास्त्रे मुनिभिः सर्वंदैव विचार्यते ।।८४

उस जल में विश्व रूप का धारण करने वाला विराट् रुक्मगर्भ हुए थे। उसकी नाभि में स्थित सरोज में करोड़ों ब्रह्मांड हैं।७८। उससे प्रकृति और पुरुष हुए जिनसे यह तीन प्रकार का जगत् निर्मित हुआ है। उन दोनों के संयोग से तत्व भोग उत्पन्न हुआ था।७९। विष्णु से समुत्पत्ति सात्विकी है। ब्रह्मा राजस समुद्भव है। शिव तामस कहा गया है—इन्हीं से सब की प्रवृत्ति हुई है।८०। कर्म बीज के

अनुसार लोक में एक ब्राह्मी स्थित है। उसी से भगवान् विष्णु सब लोकों का संहार किया करते हैं।८१। वहाँ पर उस समय में अव्यय भगवान् विष्णु स्थित रहते हैं। इस प्रकार से सर्वगत विष्णु आदि-मध्य और अन्त ही होता है।८२। कर्मनिश्चित लोक अविद्या से नहीं जानते हैं। कर्म वर्णोचित हैं जो कालों में प्रकार युक्त होता है।८३। जो कर्म विष्णु दैवत्य है वह गर्भ का कारण नहीं है। वेदान्त शास्त्र से मुनियों के द्वारा सर्वदा ही विचार किया जाता है।८४।

ब्रह्मज्ञानमिद देहे तदह परिकीर्त्तये।
शुभाशुभस्य कार्य्यं च कारणं मन एव हि ॥८५
मनसा शुध्यते सर्व तदा ब्रह्म सनातनम्।
मनएवसदा बन्धुर्मनएव सदा रिपुः ॥८६
मनसा तारिताः केचिन्मतसा पतिताश्चके।
मध्ये सर्वपरित्यागो बाह्ये कर्म तथाचरन् ॥८७
एवमेवकृतं कर्मं कुर्वन्नपि न लिप्यते।
पद्मपत्रं यथानीरलेशैरपि न लिप्यते ॥८८
अग्निरनग्नौ यथा क्षिप्तो भक्त्या च किं प्रयोजनम्।
यदाभक्तिरसो ज्ञातो न मुक्ती रोचते तदा ॥८९
योगैरष्टविधैर्विष्णुर्न प्राप्यश्चेह जन्मनि।
भक्त्या वा प्राप्यते विष्णुः सर्वदा सुलभो भवेत् ॥९०
वेदान्तैः प्राप्यते ज्ञानं ज्ञानेन ज्ञेयमेव च।
तत्तु ज्ञेयं यदा प्राप्तं तदा शून्यमिदं जगत् ॥९१

यह देह में ब्रह्मज्ञान है उसे मैं अब परिकीर्तित करता हूँ। शुभ और अशुभ का कार्य और कारण मन ही होता है।८५। उस समय में सब सनातन ब्रह्म मन से शुद्ध किया जाता है। यह मन ही सदा बन्धु होता है और मन ही सदा शत्रु हुआ करता है।८६। कुछ लोग मन से ही तारित हो जाते हैं और कुछ लोग मन से ही पतित हो जाया करते हैं। मध्य में सबका परित्याग और बाह्य में उस प्रकार से कर्म का समाचरण करते हैं।८७। इस प्रकार से किया हुआ कर्म करते हुए भी

लिप्त नहीं होता है जिस प्रकार से नीर के लेशों से भी पद्म का पत्र लिप्त नहीं हुआ करता है ।८७। जिस तरह अग्नि में अग्नि का क्षेप होता है और भक्ति से क्या प्रयोजन है । जब भक्ति का रस ज्ञात हो गया है तो उस समय में उसे मुक्ति नहीं रुचा करती है ।८६। इस जन्म में आठ प्रकार के योग के साधनों के द्वारा विष्णु प्राप्त करने के योग्य नहीं होते हैं । भक्ति के द्वारा विष्णु प्राप्त किये जाते हैं और भक्त से वह सर्वदा सुलभ भी होते हैं ।९०। वेदान्तों के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है और ज्ञान के द्वारा ज्ञेय की प्राप्ति होती है । जिस समय वह ज्ञेय प्राप्त हो जाता है, उस समय में यह सम्पूर्ण जगन शून्य होता है ।९१।

बलेन प्राप्यते विष्णुर्योनैरष्टविधैश्च किम् ।
सर्वेषामेव भावानां भावशुद्धिः प्रशस्यते ।।९२
आलिङ्ग्यते तथा कान्ता यथा भावस्तथा फलम् ।
उपानद्यक्तपादो हि वेत्ति चर्ममयी महीम् ।।९३
बुद्धिर्यथा विधा यस्य तद्वत्स मन्यते जगत् ।
दुग्धेन सिक्तो निम्बोऽपि कटुभावं न तु त्यजेत् ।।९४
प्रकृतिं यान्ति भूतानि उपदेशो निरर्थकः ।
छित्वा वै सहकारं च फलं पत्रंकथलभेत् ।।९५
इन्द्रियाणां सुखार्थेन वृथा जन्मकथं नयेत् ।
स्थाल्यां वडूर्यंमय्यतेचौषधंयथा ।।९६
दह्यते चागदस्तद्वद्वृथा जन्मकथं भवेत् ।
निधानं च गृहे क्षिप्त्वा शुभः सेवांकथंचरेत् ।।९७
त्यक्त्वा वैकुण्ठनाथं तमन्यमार्गे कथं रमेद् ।
भक्तिहीनैश्चतुर्वेदै, पठितैः किं प्रयोजनम् ।।९८

भगवान् विष्णु बल के द्वारा ही प्राप्त किये जाते हैं । इन आठ प्रकार वाले योग के साधनों से क्या प्रयोजन है । सभी भावों में भाव की जो शुद्धि होती है वही प्रशंसित की जाया करती है ।९२। जिस तरह से कान्ता का आलिङ्गन किया जाता है । जैसा ही भाव होता है

वैसा ही फल भी हुआ करता है। जो पुरुष जूतों से युक्त चरणों वाला होता है वह तो सम्पूर्ण भूमि को ही चमड़े से मढ़ी हुए समझा करता है।९३। जिसकी बुद्धि जिस प्रकार की होती है हे वत्स ! उसे जग वैसा मानता है। दूध से सींचा हुआ भी नीम का वृक्ष अपने कटुता के स्वाद के भाव का कभी भी त्याग नहीं किया करता है।९४। सभी प्राणी अपनी प्रकृति का ही अनुसरण किया करते हैं उनको किसी प्रकार का उपदेश देना सर्वथा निरर्थक हुआ करता है अर्थात् उसका उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं होता है। जब साकार (आम्र) के वृक्ष का छेदन ही कर दिया जाता है तो उसके फल और पत्र कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं।९५। इन्द्रियों के भोग के सुख के लिए इस अमूल्य मानव जीवन को वृथा ही क्यों लगाया जावे यह तो सर्वथा इसी भाँति है जैसे कोई वैडूर्यमयी स्थाली में किसी ओषध का पाचन करे क्योंकि ऐसी उत्तम मणि से निर्मित स्थाली में औषध के पाचन कर्म के योग्य कभी भी नहीं होती है। अगद दग्ध किया जाता है तो जन्म वृथा कैसे होता है ? घर में निधान को प्रक्षिप्त करके शुभ सेवा को कैसे समाचरित करे।९६-९७। उन वैकुण्ठ के नाश का त्याग करके अन्य मार्ग में कैसे रमण करे। जो भक्ति से हीन हों ऐसे चारों वेदों के भी पठन से क्या प्रयोजन होता है ? अर्थात् भक्ति के बिना वेदों का पढ़ना भी व्यर्थ ही है।९८।

श्वपचो भक्तियुक्तस्तु त्रिदशैरपि पूज्यते।
त्वकरेकङ्कणं बद्ध्वा दर्पणैः किंप्रयोजनम् ॥९९
ब्रह्मरुद्रादिभिर्देवैस्तैश्वर्याश्च सेवकाः।
अर्पितं नैव गृह्णन्ति प्रभोश्च व तु किञ्चन ॥१००
अकिञ्चनाय भक्ताय दातुं नालं गतो वरम्।
निःशरीरस्य कृष्णस्य तत्र ध्यानं कथं भवेत् ॥१०१
साकारं बहवो दृष्ट्वा गता भक्त्या च तत्पदम्।
पूजाभक्तिः कथं शून्ये साकारे कथ्यते बुधैः ॥१०२
शून्यमार्गे कथं याति अधारेण विना नरः।
साकारो यः स्वयं स्वामी निराकारः स वै प्रभुः ॥१०३

साकारो हि सुखनैव निराकारो न दृश्यते ।
सेवारसश्च साकारे निराकारेण वै रसः ।।१०४
साकारेण निराकारो ज्ञायते स्वयमेव हि ।
हरिस्मृति प्रसादेन रोमाञ्चिततनुर्यदा ।।१०५

चाहे कोई श्वसन भी हो किन्तु वह यदि भक्ति भाव से युक्त और विष्णु भगवान् का परम भक्त है तो देवगणों के द्वारा भी उसकी सर्वदा पूजा की जाया करती है । अपने कर में कंकण को जब बद्ध कर लिया जाता है यो उसको देखने के लिए दर्पण की आवश्यकता नहीं हुआ करता है ।९९। प्रभु के सेवकगण ब्रह्मा रुद्र आदि देवों के द्वारा दत्तैश्वर्य्य भी किये जावें तो भी वे कुछ भी अर्पित को ग्रहण नहीं किया करते ।१००। जो भक्त अकिंचन होता हैं उसको वरदान देना भी पर्याप्त नहीं होता है क्योंकि बिना शरीर वाले भगवान कृष्ण का ध्यान कैसे होगा ।१०१। बहुत से लोग साकार का दर्शन करके भक्ति के द्वारा उनके पद को प्राप्त हो गये हैं । बुध पुरुषों के द्वारा साकार प्रभु के विषय में तो पूजा और भक्ति का कथन किया जाता है किन्तु वही पूजा और भक्ति की क्रिया शून्य अर्थात् निराकार में कैसे हो सकती है ।१०२। मनुष्य बिना आधार के शून्य मार्ग में कैसे गमन कर सकता है । जो स्वामी साकार है वही स्वयं निराकार भी होता है अर्थात् प्रभु के दोनों साकार और निराकार स्वरूप हुआ करते हैं और दोनों ही की उपासना भी की जाया करती है ।१०३। साकार प्रभु की उपासना तो बड़े ही सुख से की जा सकती है किन्तु जो निराकार है वह तो आधार के अभाव में दिखलाई ही नहीं दिया करता है । साकार की उपासना में उनकी सेवा करने का रस विद्यमान रहा करता है और निराकार के द्वारा तो केवल रस ही उत्पन्न होता है ।१०४ साकार की उपासना करने वाले भक्त के द्वारा वह उस प्रभु की निराकारता तो स्वयमेव ही ज्ञात हो जाया करती हैं । जिस समय में श्री हरि की स्मृति का प्रसाद होता है, उससे भक्त का शरीर रोमाञ्चित हो जाया करता है ।१०५।

नयनान्दसलिलं मुक्तिर्दासो भवेत्तदा ।
बाल्ये च यत्कृत पापं तत्कथं न विनश्यति ।।१०६
पूजादानव्रतैस्तीर्थैर्जपहोमस्त्वदर्पितैः ।
निजधर्मं परित्यज्य तपोघोरं कथं चरेत् ।।१०७
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावह ।
विधि सन्त्यज्य शास्त्रीयं तपोघोरं कथ चरेत् ।।१०८
आश्रमेण विना मूढो नैव सिद्धिमवाप्नुयात् ।
ब्रह्मणा निर्मिता वर्णाः स्वे धर्मे नियोजिताः ।।१०९
स्वधर्णेणागतं द्रव्यं शुकलद्रव्य तदुच्यते ।
शुक्लद्रव्येण यद्दानं दीयते श्रद्धयान्वितम् ।।११०
स्वल्पेनाऽपि मसापुण्यं तस्य संखचया न विद्यते ।
नीचसङ्गेन मद्द्रव्यमानीतं गृहकर्मसु ।।१११
तेन द्रव्येण यद्दान कृत वै मनुजादिभिः ।
तत्फलं न भवेत्ते वै नैव तत्फलभागिनः ।।११२

भक्त के शरीर के पुलकायमान होने पर उसके नयनों से आनन्दाश्रुओं का पात होने लगता है उस समय में मुक्ति तो उस भगवद्भक्त की दासी हो जाया करती है। बचपन में जो भी कुछ पाप कर्म किये हैं वे कैसे विनष्ट नहीं हो जाते हैं अर्थात् अवश्य ही सब का नाश हो जाता है ।१०६। आपके श्री चरणों में अर्पित किये पूजा दान--व्रत--तीर्थ--जप-होमों के द्वारा निज धर्म का परित्याग करके घोर तपश्चर्या क्यों समाचरित करे ।१०७। अपने धर्म का सदा पालन करना चाहिए, यदि अपने धर्म के परिपालन करने में मृत्यु भी हो जावे तो भी श्रेय का सम्पादन करने वाली ही हुआ करती है। परधर्म तो सदा हो भय को देने वाला ही होता है अर्थात् कैसी दशा क्यों न हो पराया धर्म कभी भी ग्रहण नहीं करना चाहिये। शास्त्रोक्त विधान का परित्याग करके घोर तप का क्यों समाचरण किया जावे ? ।१०८। सर्वदा आश्रम में रह कर ही उपासना करनी चाहिए। बिना आश्रम के की गई उपासना से मूढ़ मनुष्य कभी भी सिद्धि को प्राप्त नहीं किया करता है। ब्रह्माजी

के द्वारा ही ये सब वर्णों की रचना की गई है और उन सभी वर्ण वालों को उन्होंने ही अपने-अपने धर्म में भी नियोजित किया है ।१०९। अपने धर्म के पूर्ण पालन करते हुए जो भी द्रव्य प्राप्त होता है अर्थात धर्मार्जित जो धन होता है वह धन शुक्ल धन में नाम के कहा जाया करता है । उसी शुक्ल दान से जो श्रद्धा से समन्वित दान दिया जाया करता है । ऐसे बहुत ही थोड़े से भी दान से महान् पुण्य अपरिमित एवं जिसकी कोई संख्या ही नहीं होती है अर्थात् वह पुण्य अपरिमित एवं असंख्य ही हुआ करता है । नीच के सङ्ग से जो द्रव्य गृह कर्मों में लाया गया है और उस धन से जो मनुष्य आदि के द्वारा दान किया जाता है उसका कुछ भी फल नहीं होता है और दान के दाता लोग उस फल के भागी भी नहीं हुआ करते हैं ।११०-११२।

यादृश कुरुते कर्म इन्द्रियाणां सुखेच्छया ।
तादृशीं योनिमाप्नोति मूढो हि ज्ञातदुर्बलः ॥११३
इह यत्कुरुते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते ।
पुण्यमाचरतः पुंसो यदि दुःखं प्रजायते ॥११४
तदा तापो न कर्त्तव्यस्तत्कर्म पूर्वदेदजम् ।
पापम्माचरतः पुंसो जायते सुखमेव च ॥११५
न कर्त्तव्यस्तदा हर्षः सुखे तत्र सुरेश्वरि ।
रज्जुबद्धाश्च पशवः प्रभुणास्वेच्छया यथा ॥११६
नीयन्ते कर्मबन्धेन मनुजा अपि भूतले ।
शाखामृगो वनचरी नृत्यते च गृहेगृवे ॥११७
एवं च कर्मणा जीवा नीयन्ते सर्वयोनिषु ।
क्रीडताकन्दुको यद्वत्प्रेर्यंते प्रभुणेच्छया ॥११८
कर्मणा वा तथा जन्तुर्नीयते सुखदुःखयोः ।
प्राणी स्वकर्मभिर्बद्धो न शक्तो बन्धनिग्रहे ॥११९

अपनी इन्द्रियों के सुख की इच्छा से जैसा भी कर्म किया जाता है उसी के अनुसार ज्ञान से दुर्बल मूढ़ मनुष्य उसी प्रकार की योनि को प्राप्त किया करता है ।११३। यहाँ पर संसार में जो भी बुरा भला

कर्म मनुष्य किया करता है उसका तदनुसार फल वह परलोक में जाकर अवश्य ही भोगा करता है। पुण्य कर्म के करने वाले पुरुष को भी यदि कोई दुःख उत्पन्न होता है तो उस दुःख के पाने के समय में किसी भी प्रकार का संताप नहीं करना चाहिये क्योंकि वह दुःख तो उसको पूर्वजन्म के देह के द्वारा किये हुए कर्म के कारण ही उत्पन्न हुआ है। इसी भाँति पापों का आचरण करने वाले पुरुष को भी यहाँ संसार में सुख की समुत्पत्ति हुआ करती है। उस सुख से उसे कोई हर्ष भी नहीं करना चाहिए अर्थात् पाप का कर्म का कुछ भी बुरा फल नहीं हुआ करता है इस भ्रम में पड़कर हर्ष में फूल नहीं जाना चाहिए। हे सुरेश्वरि! जिस तरह से स्वामी के द्वारा स्वेच्छा से रज्जु के द्वारा पशुगण बद्ध किये जाते हैं उसी तरह मनुष्य भी कर्मों के बन्धन के द्वारा ही इस भूतल में प्राप्त किये जाया करते हं। शाखाओं पर विचरण करने वाला वानर वनचर होता है किन्तु घर-घर में नृत्य किया करता है। ।११४-११७। इसी प्रकार से कर्म क द्वारा ही ये सब जीव भी सब योनियों में जाया करते हैं। जिस प्रकार से क्रीड़ा करने वाले स्वामी के द्वारा कन्दुक (गेंद) चाहे जिस ओर प्रेरित की जाया करती है उसी तरह से यह जन्तु भी कर्म के द्वारा ही सुख और दुःख में पहुँचाया जाया करता है। यह प्राणी अपने ही किये हुए कर्मों से बद्ध होता है और वह कर्म द्वारा प्राप्त बन्धन के निग्रह करने में समर्थ नहीं होता है।११८-११९।

देवा वै कर्मभिर्बद्धा ऋषयश्च तथा परे।
कैलासे रुद्रदेहस्था भुजया विषभोजिनः ॥१२०
असमर्थाः सूधां भोक्तुं कर्मयोनिर्वलीयसी।
नीरोगदेहदाता यो बुधै सूर्यो हि कथ्यते ॥१२१
तद्रथे सारथिः पङ्गुःकर्मयोनिर्बलीयसी।
इन्द्रद्युम्नो हि राजर्षिगजत्वं कर्मणाः गत ॥१२२
समर्थस्वामिना तस्मिन्कर्मयोनिर्वृथा कृता।
रुद्रब्रह्मादयो देवा मानवाश्चसुराश्च ये ॥१२३

ते सर्वे कर्मबद्धाश्च विचरन्ति महीतले ।
कर्माधीनं जगत्सर्वं विष्णुना निर्मित पुरा ॥१२४
तत्कर्म केशवाधीनं रामनाम्ना विनश्यति ।
सर्वत्राऽपि स्थितं तोयं मुक्तिदं तु सितासिते ॥१२५
एवमाचरता कर्म मुक्तिदं केशवार्चनम् ।
इन्द्रियाणां सुखार्थाय यः कर्म मनसा चरेत् ॥१२६
अहं कृतेन मन्येत केवलं देहमेव हि ।
मनसा संस्मरञ्जन्तुः प्रायश्चित्तं समाचरेत ॥१२७

देवगण भी कर्मों से बँधे हुये हैं और ऋषि लोग तथा दूसरे भी सभी कर्म के बन्धन में रहते हैं। कैलास में रुद्र के देह में स्थित विष-भोजी भुजङ्ग हैं ।१२०। वे लोग सुधा के भोगने में भी असमर्थ होते हैं। यह कर्म योनि बहुत बलवती हुआ करती है। नीरोग (स्वस्थ) देह का देने वाला जो है यह बुध पुरुषों के द्वारा सूर्य कहा जाया करता है ।१२१। उसी स्वास्थ्यप्रद देवता के रथ का जो सारथि है वह पंगु है। कर्मों द्वारा प्राप्त होने वाली योनि बहुत अधिक बलशालिनी होती है इन्द्रद्युम्न नाम वाला राजर्षि कर्म के प्रभाव से ही गज की योनि को प्राप्त हुआ था । समर्थ स्वामी ने उसमें कर्मयोनि को वृथा कर दिया था। रुद्र और ब्रह्मा आदि देवगण मानव और असुर वे सभी कर्मों के पाश से सुबद्ध होकर ही इस महीतल में विचरण किया करते हैं। भगवान विष्णु ने इस सम्पूर्ण जगत को पहिले ही से कर्मों के अधीन ही निर्मित किया है ।१२२-१२४। वह कर्म भी केशव के अधीन होता है जो राम के राम से विनाश को प्राप्त हो जाया करता है। सर्वत्र भी स्थित जल मुक्ति का प्रदान करने वाला है। सित और असित में इस प्रकार से आचरण करने वालों का कर्म केशवार्चन मुक्ति का प्रदान करने वाला होता है। इन्द्रियों के सुख के लिये जो कोई मनुष्य मन से ही कर्मका समाचरण करता है अहं कृत से केवल देह ही को मानता है ऐसा मन से संस्मरण करता हुआ जो जन्तु होता है, उसे प्रायश्चित्त करना चाहिए ।१२५-१२७।

स पूर्वकर्मभोक्ता च अग्रे कर्म न वर्धते ।
प्रशंसन्ति ग्रहान्केचित्केचित्प्रेतपिशाचकान् ॥१२८
केचिद्देवान्प्रशंसन्ति ह्मोषधीः केचिद्चिरे ।
केचिन्मन्त्रं च सिद्धिं च केचिद्बुद्धिं पराक्रमम् ॥१२९
उद्यमं साहसं धैर्यं केचिन्नीतिं बलं तथा ।
अहं कर्म प्रशंसामि सर्वे कर्मानुवर्तिनः ॥१३०
इति मे निश्चिता बुद्धिः कथ्ययते पूर्वसूरिभिः ।
यदा पुण्यमयो जन्तुः पापं किञ्चिन्न विद्यते ॥१३१
ज्ञानं हि द्विविधं च व तदा पुण्यं सुख भवेत् ।
पापं पुण्यं समंयस्य तदा कमसु विद्यते ॥१२२
समं योगं यदा द्वन्द्वं तदानन्दपदं व्रजेत् ।
बाह्ये सर्वपरित्यागी मनसा संस्पृही भवेत् ॥१३३

वह पूर्व किये हुये कर्मों का भोक्ता है और आगे कर्मवर्धित नहीं होता है। कुछ लोग तो ग्रहों की प्रशंसा किया करते हैं और प्रेत तथा पिशाचों की तारीफ करते हैं। कुछ देवों की प्रशंसा करने वाले हैं तो कुछ लोग औषधियों की प्रशंसा का वखान करते हैं—कुमन्त्र की कुछ सिद्धि की—कुछ लोग बुद्धि की तो कुछ पराक्रम की तारीफ किया करते हैं।१२८-१२९। उद्यम--साहस—धैर्य—नीति और बल के विषय में कुछ-कुछ प्रशंसा के पुल बाँधते हैं—ऐसा भिन्न-भिन्न दिमागों का विचार भी विभिन्न होता है किन्तु मैं तो सर्वोपरि विराजमान एक कर्म की ही प्रशंसा करता हूँ कि सभी कर्मों के अनुवर्ती हुआ करते हैं।१३०। मेरी तो यही बुद्धि निश्चित हुई है और पूर्व में न होने वाले विद्वानों के द्वारा भी यही कहा जाता है। जिस समय में यह जन्तु पुण्यमय होता है तो उसमें कुछ भी पाप विद्यमान नहीं रहा करता है। यह ज्ञान भी दो प्रकार का है उसी समय में पुण्य सुख होता है। पाप और पुण्य जिसका समान है उस समय में कर्मों में विद्यमान रहता है। जिस समय में यह द्वन्द्व सम होता हैं उस समय में यह आनन्द के पद को जाया करता है।

बाह्य में तो सब का परित्याग करने वाला है और मन से जो संस्पृहा रखने वाला होता है ।१३१-१३३।

तद्वृ्थाचरितं तस्य तेन तत्पापभोगिनः ।
बाह्ये करोति कर्माणि मनसा निःस्पृहो भवेत् ।।१३४
त्यागोऽसौ मध्य मो ज्ञेयो न तु पुर्णफलं लभेत् ।
बाह्यमध्ये परित्यज्य बुद्धचाशून्यावलम्बनम् ।।१३५
त्यागः स उत्तमो ज्ञेयो योगिनामपि दुर्लभः ।
क्रोधात्सर्वं त्यजन्त्येके केचिद्वाप्रभावतः ।।१३६
कष्टात्सर्वं त्यजन्त्येके त्यागाः सर्वे तु मध्यमाः ।
सुबद्धचा श्रद्धया युक्तो न क्रोधादिवशं गतः ।।१३७
कर्मणा ह्यवलिप्तोऽपि सुगतिं याति मानवः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे धीमतां योगिनामपि ।।१३८
योगाद्भ्रष्टस्तु जायेत कुले वै द्विजपूर्वके ।
स्वल्पेनैव तु कालेन पूर्णयोगं च विन्दति ।।१३९
चिदानन्दपदं गच्छेद्योगभक्तिप्रसादतः ।
पङ्केवैवयथापङ्कं रुधिरं रुधिरेण वै ।।१४०
हिंसया कर्मणा कर्म कथं क्षालयितुं क्षमः ।
हिंसाकर्ममयो यज्ञः कथं कर्मक्षये क्षमः ।।१४१

यह उसका जो समाचरण है वह वृथा ही होता है क्योंकि उससे वे पापों के भोगी ही होते हैं। जो बाहिर में कर्मों को किया करता है किन्तु अपने में स्पृहा से रहित रहा करता है—यह त्याग तो है किन्तु वह मध्यम श्रेणी का ही कहा जाता है। त्याग का पूर्ण फल जो होता है वह उसे कभी भी प्राप्त नहीं करता है। वाह्य मध्य में परित्याग करके बुद्धि से शून्य का अवलम्बन है। उसी को उत्तम प्रकार का त्याग समझना चाहिये जो कि बड़े-बड़े योगिजनों को भी दुर्लभ होता है। कुछ लोग क्रोध के आवेश के कारण से सभी कुछ का त्याग किया करते हैं और दूसरे ऐसे भी लोग होते हैं जो वाद के प्रभाव से ही त्याग करते हैं। कुछ लोग कष्टातिरेक के अनुभव के कारण से ही सब का

त्याग कर देते हैं किन्तु ये सभी प्रकार के जो त्याग हैं वे मध्यम श्रेणी के ही त्याग कहे जाते हैं। सुन्दर बुद्धि से और श्रद्धा से युक्त होता हुआ तथा क्रोध आदि मनोविकारों के वशीभूत न होने वाला जो त्याग किया करता है वही त्याग उत्तम है। कर्मों से अवलिप्त भी मानव सुगति को प्राप्त किया करता है। वह पवित्र-श्रीमान--श्रीधाम और योगियों के घर में होता है। जो योग से भ्रष्ट हो जाता है। वह किसी द्विज के कुल में जाता है और फिर बहुत स्वल्प काल में ही पूर्ण योग को प्राप्त किया करता है।१३४-१३६। फिर वह योग और भक्ति के प्रभाव से चिदानन्द की पदवी को चला जाया करता है। पंक से ही एक (कीच) को तथा रुधिर से रुधिर को और हिंसा के कर्म से कर्म को कैसे कोई क्षालन करने में समर्थ हो सकता है? कदापि नहीं हो सकता है। यज्ञ जो होता है वह भी हिंसा के कर्म से परिपूर्ण ही हुआ करता है। वह इस प्रकार का यज्ञ कर्मों के क्षय करने में किस तरह समर्थ हो सकता है। जिस कर्म में ही हिंसा भरी हुई है। यह असम्भव ही है।१४०-१४१।

स्वर्गकामकृता यज्ञाः स्वर्गे चाल्पसौख्यदाः।
अनित्यानि तुसौख्यानि भवन्ति च बहून्यपि ॥४२
नित्यं सौख्यं न तेष्वस्ति विना भक्त्या हरेः क्वचित्ः
सार्वभौमसुख राज्यं स्वर्गे चाऽपि तथा सुखम् ॥१४३
अन्यत्किञ्चिन्न वाञ्छामि गर्भवासाद्बिभेम्यहम्।
ग्रावा वै भिद्यते लोहैर्माणिक्यं नैव भिद्यते ॥१४४
नानाकाममयी वुद्धया विष्णुभक्तिर्नभिद्यते।
वकोजलचरान्भुङ्क्तेमण्डूकादींश्च वर्जयेत् ॥१४५
तथा यमः सर्वहन्ता वर्जयेत्कृष्णसेवकान्।
यो रक्षति स हर्ता च स वै पालकउच्यते ॥१४६
अपराधशतैर्युक्तं स्वस्थाने नय मामितः।

यथाकृतापराधस्य कृष्णस्तस्य कृपाकरः ॥१४७

यज्ञों का फल ही यह होता है कि वे स्वर्ग की कामना को करने वाले हुआ करते हैं और वे भी स्वर्ग बहुत ही स्वल्प सौख्य के प्रदान करने वाले हुआ करते हैं। बहुत से सुख भी अनित्य ही हुआ करते हैं जो चिरस्थायी ही नहीं होते हैं ।१४२। बिना श्री हरि की भक्ति के कहीं पर भी उनमें नित्य सौख्य नहीं हुआ करता है। राज्य सार्वभौम सुख वाला होता है और स्वर्ग में भी उसी प्रकार का सुख होता है। ।१४३। मैं अन्य कुछ भी नहीं चाहता हूँ मुझे तो निरन्तर एक के पश्चात् दूसरे जीवन धारण करने में जो गर्भ में निवास करना पड़ता है उस महान उत्पीड़न से बड़ा भय होता है। ग्रावा का ही लौह से भेदन किया जाता है किन्तु माणिक्य मार्ग का कभी नहीं विद्यमान हुआ करता है ।१४२।१४४। अनेक प्रकार की कामनाओं से परिपूर्ण बुद्धि से विष्णु भक्ति का भेदन नहीं हुआ करता है। बगुला जो पक्षी होता है वह जल निवासी जलचरों को खाता है उसी तरह से यद्यपि यमराज भी सभी का हनन करने वाला होता है किन्तु वह भी श्रीकृष्ण की उपासना करने वाले सेवकों को वर्जित कर देता है। जो रक्षा किया करता है वही हर्त्ता और वही पालक कहा जाता है ।१४५।१४६। सैकड़ों अपराधों से युक्त भी मुझको यहाँ से अपने स्थान पर ले चलो जिससे कि अपराध करने वाले उसके ऊपर श्रीकृष्ण कृपा के करने वाले होते हैं ।१४७।

फलं च लभते वाद्यरक्षकः किङ्किरोति चेत् ।
एवमात्मा चदेहेऽस्मिन्परबम्यकृपाकरः ।।१४८
प्राप्तो न पारःशनकैर्मल्लैर्युक्तानत्रापिता ।
व्याधस्य भुक्तिदाताचकुब्जकातारितास्वयम् ।।१४९
ब्रह्माद्यैर्दुर्लभः स्वप्ने सुलभो गोपमन्दिरे ।
गोपोच्छिष्टं यदा भुक्तं तदा ते तारिताःस्वयम् ।।१५०
योगिभिर्गीयते नित्यं परमात्मा जनार्दनः ।
अव्ययः पुरुषः श्रीमान्दृष्ट्वा तैर्देवि विस्मये ।।१५१
एतत्स्मरणकं दिव्यं ये पठन्ति दिनेदिने ।
सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम् ।।१५२

अनयाभावबुद्धया च पठनं विष्णुसन्निधौ ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा परं पदमवाप्नुयात् ।।१५३

जो वाद्य का रक्षक किंकर होता है वह भी फल की प्राप्ति किया करता है । इसी प्रकार से यह आत्मा इस देह में परवश्य कृपा कर है। पार प्राप्त नहीं हुआ है । शन के मल्लों के द्वारा अनवापिता युक्त हैं । जो स्वयं ही व्याघ्र को मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है और कुब्जा को जिसने तार दिया है । वह ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा भी दुर्लभ होता है । तथा गोपों के घर में अनायास ही सुलभ होता है । जिस समय में गोपों का उच्छिष्ट खाया या तब वे स्वयं ही तारित हो गये थे ।१४८-१४९। परमात्मा जनार्दन का योगियों के द्वारा नित्य गान किया जाता है अव्यय श्रीमान पुरुष है हे देवि ! देखकर उनको भी विस्मय में पड़ना होता है । यह स्मरण जो परम दिव्य है इसको जो भी आये दिन पढ़ा करते हैं वे सब पापों से विनिर्मुक्त होकर विष्णु के परम पद की प्राप्ति किया करते हैं । इस भावभरी बुद्धि में इसका पठन विष्णु की सन्निधि में करे तो इस लोक में सुख भोग कर अन्त में परम पद की प्राप्ति किया करता है ।१५०-१५३।

———

।। क्रियायोगसार पीठिका वर्णन ।।

लक्ष्मीनाथपदारविन्दयुगलं ब्रह्मेश्वराद्यामर।
श्रेणीनम्रशिरोलिमालममल वन्दामहे सन्ततम् ।।१
भक्त्या योगिमनस्तडागसुषमासन्दोहपुष्यत्तम्।
गङ्गाम्भोमकरन्दबिन्दु संसारदुःखापहम् ।।२
वेदेभ्य उद्धृत्य समस्तधर्मान्योऽयं पुराणेषु जगाद देवः।
व्यासस्वरूपेण जगद्धिताय वन्दे तमेतं कमलासमेतम् ।।३
एकदा मुनयः सर्वे सर्व लोकहितैषिणः।
सुरम्ये नैमिषारण्ये गोष्ठीं चक्रुर्मनोरमाम् ।।४
तत्रान्तरे महातेजाव्यासशिष्यो महायशाः।
सूतः शिष्यगणैर्युक्तः समायातो हरिस्मरन् ।।५
तमायान्तंसमालोक्य सूतं शास्त्रार्थपारगम्।
नेमु सर्वेसमुत्थाय शौनकाद्यास्तपोधनाः ।।६
सोऽपि तान्सहसाभक्त्या मुनीन्परमवैष्णवान्।
ननाम दण्डवद्भूमौसर्वधर्मविदाम्वरः ।।७
तत्रोपविष्टं तं सूतं शौनको मुनिसत्तमः।
वद्धाञ्जलिरिमां वाचमुवाच विनयान्वितः ।।८

सर्व प्रथम इस खण्ड के आरम्भ में मङ्गलाचरण किया जाता है—भगवान श्री लक्ष्मी के नाथ के दोनों चरण कमलों की निरन्तर हम वन्दना करते हैं जो भगवच्चरण युगल सर्वदा निर्मल और ब्रह्मा-शिव आदि देव वृन्द के शिरों द्वारा विनम्र भाव से समर्चित हुआ करते हैं। जिस समय में देवगण उनके चरणों में अपना मस्तक टेकते हैं तो उनके शिरों में पहिनी हुई माला में लिपटे हुये भ्रमर भी उनके चरणों में झुके हुये दिखलाई दिया करते हैं।१। भगवान के चरण इस सांसारिक दुखों के समूह का अपहरण करने वाले हैं। भक्ति भाव से योगि जन के मन रूपी तालाब की अत्यन्त शोभा के सन्दोह से परिपुष्ट है तथा गङ्गा के जल के मकरन्द-विन्दुओं के समुदाय वाले हैं। क्योंकि गङ्गा का उद्गम

श्री भगवच्चरण के जल से हुआ है ।२। वेदों से उद्धृत करके समस्त धर्मों का जिस देव ने पुराणों में वर्णन कर दिया है जो व्यास श्रीकृष्ण द्वैपायन के स्वरूप से इस जगत के हितों का सम्पादन करने के लिये अवतीर्ण हुये हैं उन कमला के सहित देव की वन्दना करते हैं ।३। एक समय की बात है कि सम्पूर्ण लोकों के हित करने की इच्छा वाले समस्त मुनिगण परम सुन्दर नैमिषारण्य में मिलकर अत्यन्त मनोहर गोष्ठी कर रहे थे ।४। उसी बीच में वहाँ पर महान तेज के धारण करने वाले एवं परम विशाल यश से सुसम्पन्न व्यासजी के शिष्य श्री सूतजी अपने शिष्यगण से संयुक्त होकर श्रीहरि के गुण गण स्मरण करते हुये वहाँ पर आ गये थे ।५। समस्त शास्त्रों के अर्थों का तात्विक ज्ञान रखने वाले उन सूतजी को वहाँ पर समागत देख कर शौनक प्रभृति जो परम तपस्वी थे वे सभी मुनिगण अपने अपने आसनों से उठकर खड़े हो गये थे और सब ने बहुत ही आदर पूर्वक उनको प्रणामाभिवादन किया था ।६। सूत जी ने भी उन सब परम वैष्णव मुनियों को भक्ति पूर्वक सहसा भूमि पर एक दण्ड की भाँति पड़ कर प्रणाम किया था क्योंकि सूतजी तो सम्पूर्ण धर्मों के वेत्ता विद्वानों में परम श्रेष्ठ मनीषी थे ।७। जिस समय में श्री सूतजी ने वहाँ पर आसन ग्रहण कर लिया तो मुनियों में श्रेष्ठ शौनक ने अपने हाथ जोड़कर अति विनम्र भाव से युक्त होकर सूतजी से यह वाणी कही थी ।८।

महर्षे सूत सर्वज्ञ ! कलिकाले समागते ।
केनोपायेन भगवन्भूरिभक्तिर्भवेन्नृणाम् ।।९
कलौ सर्वे भविष्यन्ति पापकर्मरता जनाः ।
वेदविद्याविहीनाश्च तेषां श्रेयः कथं भवेत् ।।१०
कलावन्नगताः प्राणा लोकाः स्वल्पायुषस्तथा ।
निर्धनाश्च भवि यन्ति नानादुःखप्रपीडिताः ।।११
प्रयाससाध्यसुकृतं शास्त्रेषुक्रियतेद्विज ! ।
तस्मात्केऽपिकरिष्यन्ति कलौनसुकृतंजनाः ।।१२

सुकृतेषु विनष्टेषु प्रवृत्ते पापकर्मणि ।
सवंशाः प्रलयं सर्वे गमिष्यन्ति दुराशयाः ॥१३
स्वल्पश्रमैरल्पवित्तैरल्पकालेश्च सत्तम ! ।
यथा भवेन्महापुण्यं तद्वै कथय सूत नः ॥१४

शौनक मुनि ने कहा—हे महर्षि प्रवर ! हे सूत जी आप तो सर्वज्ञ हैं । अव आप यह बताइये कि इस महान घोर कलि काल के आ जाने पर ऐसा कौन उपाय है जिसके द्वारा मनुष्यों को भगवान की विशेष रूप से भक्ति हो जावे ।६। इस घोर कलियुग का तो प्रभाव ही ऐसा है कि इसमें सभी मनुष्य पापयुक्त कर्मों में रति रखने वाले होते हैं और वेदों की विद्या से रहित हुआ करेंगे । अव आप यही बतलाने की कृपा करें कि ऐसे पुरुषों का कल्याण कैसे होगा ।२०। इस कलियुग में एक मात्र अन्न में ही प्राण रहा करेंगे और लोग बहुत ही स्वल्प आयु वाले हो जायेंगे । मनुष्यों के पास कलियुग में धन का अभाव रहेगा तथा अनेक प्रकार के दुःखों से उत्पीड़ित रहा करेंगे ।११। हे द्विज ! शास्त्रों में जो भी सुकृत कर्म बतलाया गया है वह बहुत ही कठिन प्रयासों से साध्य होता है । इसी कारण से इस कलियुग में कोई भी मनुष्य ऐसा कोई सुकृत कर्म नहीं किया करेंगे ।१२। जब इस तरह सुकृतों का विनाश हो जायगा तो पाप कर्मों की प्रवृत्ति बढ़ जायगी और फिर सभी दुष्ट आशय वाले मनुष्य वंशों के सहित प्रलय को प्राप्त हो जाएँगे ।१३। हे सूतजी ! आप तो परम श्रेष्ठ पुरुष हैं । अब ऐसा कोई महान् पुण्य-कर्म हमको बतलाइए जिससे बहुत ही थोड़े श्रम से—थोड़े धन से और थोड़े ही समय में लोगों का कल्याण हो जावे ।१४।

धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ ! त्वमेव वैष्णवाग्रणीः ।
यतः समस्तलोकानां हितं वाञ्छसि सर्वदा ॥१५
शृणु शौनक ! वक्ष्मामियत्त्वयाश्रोतुमिच्छितम् ।
सर्व लोकहितार्थाय वैष्णवानांविशेषतः ॥१६
पृष्टो जैमिनिनां सर्वं यदुवाच शृणुष्व तत् ।
महर्षिजैमिनिर्नाम योगाभ्यासरतः सदा ॥१७

प्रणम्य शिरसा व्यासं पप्रच्छ मुनिसत्तमः ॥१८
भगवन्सर्वधर्मज्ञव्यास ! सत्यवतीसुत ! ।
कलौ कस्माद्भवेन्मोक्षस्तन्ममाऽऽचक्ष्वमूलतः ॥१९
जैमिनेर्वचनं श्रुत्वा व्यासः सन्तुष्टमानसः ।
प्रारेभे मुनिशार्दूल ! कथां मङ्गलसंयुताम् ॥२०

श्री सूतजी ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठ । आप परम धन्य हैं और सब वैष्णवों के शिरोभूषण हैं क्योंकि आप सर्वदा समस्त लोकों के हित कर्म के जानने की इच्छा किया करते हैं ।१५। हे शौनक ! जो आप इस समय में मुझ से, श्रवण करना चाहते हैं उसे मैं आपको बतलाता हूँ आप समाहित होकर सुनिये । मैं ऐसा ही उपाय बतलाता हूँ जो सभी लोगों के हित के लिए होगा तथा विशेष रूप से वैष्णवों के हित के करने वाला होगा ।१६। एक महर्षि जैमिनि नाम वाले थे जो सर्वदा योग के अभ्यास करने में ही रति रक्खा करते थे । उन जैमिनि मुनि ने पूछा था और उनसे जो भी कुछ कहा था वही अब आप श्रवण करें । मुनि श्रेष्ठ ने प्रणाम करके श्री वेद व्यास देव से पूछा था १७-१८। जैमिनि मुनि ने कहा था—हे भगवन् ! आप तो व्यास देव समस्त धर्मों के ज्ञाता हैं । हे सत्यवती के पुत्र ! इस महान दारुण घोर कलियुग में ऐसा कौन सा उपाय है जिससे मानवों का मोक्ष हो जावे ? अब आप कृपा कर उसी उपाय को मुझे मूल सहित बतलाइये ।१९। श्री सूतजी ने कहा—जैमिनि मुनि के इस वचन को सुनकर व्यास जी का मन परम सन्तुष्ट हो गया था । हे मुनि शार्दूल ! फिर व्यास जी ने परम मङ्गल से समन्वित कथा के कहने का प्रारम्भ किया था ।२०।

जैमिने ! मुनिशार्दूल धन्योऽसि त्व महामते ! ।
नारायणकथां श्रोतुं यतोवाञ्छसिसर्वदा ॥२१
सत्कथाश्रवणे बुद्धिर्यस्वयस्य प्रवर्तते ।
तस्य तस्य भवेज्ज्ञानं मोक्षप्रदं विदुः ॥२२
न वैष्णवकथां यस्मै रोचते पापिने भुवि ।
वृथैव सृष्ट्वा विधिना भूमिभारवती कृता ॥२३

कथा यैजगवीवक्तुं श्लाध्यते वैष्णवैर्जनैः।
तांमिथ्यामिव यो वक्ति सज्ञेयःपापिनांवरः ॥२४
यस्मिन्दिने मनिश्रेष्ठश्रूयते न हरेः कथा।
तद्दिनं दुर्दिनं मन्ये घनच्छन्नं न दुर्दिनम् ॥२५
यत्र यत्र महीभागे वैष्णवी वर्तते कथा।
सान्निध्यं तत्र भगवान्न जहाति कदाचन ॥२६
श्रृण्वतां लोकसंघनां पापव्याधिविनाशनी।
नारायणकथा यत्र वर्तंने प्रतिवासरम् ॥२७
मुने क्रियायोगसारं वह्त्वर्थं पात्पनाशनम्।
नारायणकथोपेतं सेतिहासं निशामय ॥२८

श्री महर्षि व्यास देव ने कहा—हे जैमिने ! आप तो समस्त मुनियों में शार्दूल के समान हैं। हे महान मति वाले ! आप तो परम धन्य हैं क्योंकि आप सर्वदा भगवान नारायण की कथा के श्रवण करने की इच्छा किया करते हैं। ।२१। इस समय ससार में जिस-जिस पुरुष की बुद्धि सत्कथाओं के श्रवण करने में प्रवृत्त होती है उस-उसको मोक्ष प्रदान करने वाला ज्ञान हो जाया करता है—ऐसा जान लेना चाहिए ।२२। इस भूमण्डल में जो महापापी होता है। उसी को वैष्णवों की कथा में रुचि नहीं होती है। ऐसे पुरुषों की सृष्टि विधाता ने व्यर्थ ही की है जिन से यह भूमि भार वाली बना दी ।२३। जिस कथा के कथन को इस जगत में वैष्णव जनों के द्वारा श्लाघायुक्त किया जाता है उसी कथा को जो एक मिथ्यावाद कह कर पुकारता हं उसे पापियों में शिरोमणि ही जामना चाहिये ।२४। हे मुनि श्रेष्ठ ! जिस दिन में भगवान श्री हरि की कथा का श्रवण नहीं किया जाता है उस दिन को बड़ा ही दुर्दिन मैं समझता हूँ जैसा कि मेघों से समाच्छन्न हुआ करता है ।२५। वस वही भाग पर जहाँ जहाँ पर भी वैष्णव कथा हुआ करती है वहाँ पर भगवान किसी समय में सान्निध्य का त्याग नहीं किया करते हैं ।२६। जो लोगों का समुदाय वैष्णवी कथा का श्रवण किया करते हैं उसके सम्पूर्ण पापों की व्याधियों का नाश करने वाली होती है। नारायण की कथा जहाँ

पर प्रतिदिन हुआ करती है वहाँ पाप नहीं रहते हैं ।२७। हे मुने ! यह क्रिया योग सार बहुत अर्थों से परिपूर्ण है और पापों के नाश करने वाला है नारायण की कथा से युक्त इतिहास समेत इसका ही अब आप श्रवण क ाइये ।२८।

॥ सृष्टिकरण और मधुकैटभ वध ॥

सृष्टेरादौमहाविष्णुः सिसृक्षुः सकलं जगत् ।
स्रष्टापाताच संहर्ता त्रिमूर्तिरभवत्स्वयम् ॥१
सृष्टयर्थमस्य जगतः ससर्ज ब्रह्मसञ्ज्ञक ।
दक्षिणाङ्गतआत्मानमात्मना श्रेष्ठपुरुषः ॥२
ततस्तु पालनार्थाय जगतौ जगतोपतिः ।
विष्णुः ससर्ज बायाशान्निजांशं केशवे मुने ! ॥३
अथ संहरणार्थाय जगतो रुद्रमव्ययम् ।
मुने ससर्ज मध्याङ्गात्कृतपद्मालयः प्रभुः ॥४
रजः सत्वंतमश्चेति पुरुषं त्रिगुणात्मकम् ।
वदन्तिकेचिद्ब्रह्माणं विष्णु केचिच्चशङ्करम् ॥५
एको विष्णुस्त्रिधा भूत्वा सृजत्यत्ति च पाति च ।
तस्माद्भेदो न कर्त्तव्यस्त्रिषु लोकेषु सत्तमैः ॥६

श्रीकृष्ण द्वैपायन महर्षि व्यास देव ने कहा—इस विश्व की सृष्टि के आदि में भगवान महा विष्णु ने जब इस सम्पूर्ण जगत के सृजन करने की इच्छा की थी तो उस समय में स्वयं ही भगवान तीन रूपों वाले हो गये थे। एक रूप सृजन करने वाला था—दूसरा पालन पोषण करने वाला था और तीसरा संहार करने वाला था ।१। इस जगत की सृष्टि के लिये ब्रह्मा नाम वाले देव की रचना की थी। श्रेष्ठ पुरुष ने अपने ही दक्षिण अङ्ग से अपने आपको रचा था जिसका कि 'ब्रह्मा'—यह नाम हुआ था। फिर सृजित जगत के पालन पोषण करने के लिए जगत के स्वामी प्रभु ने हे मुने ! अपना ही एक अंश केशव को जिसका नाम

विष्णु है अपने बामाङ्ग से सृजन किया था ।२-३। इसके अनन्तर इस जगतीतल का संहार करने के लिये हे मुनिवर ! पद्मालय प्रभु ने अपने मध्यभाग से अव्यय स्वरूप रुद्रदेव की रचना की थी ।४। परम पुरुष प्रभु रजः, सत्व और यम इन तीनों गुणों का समुदाय स्वरूप ही है। प्रभु लोग उसको ब्रह्मा तो कुछ विष्णु एवं कुछ उसी को शंकर कहा करते हैं ।५। वस्तुतः वह एक ही भगवान विष्णु हैं जो तीन स्वरूपों में अवस्थित होकर इस जगत का सृजन-पालन एव संहरण किया करते हैं । अतएव श्रेष्ठ पुरुषों को इन तीनों में कुछ भी भेद-भाव नहीं करना चाहिये क्योंकि वास्तव में तीनों एक ही के विभिन्न रूप होते हैं ।६।

आद्या प्रकृतिरेतस्य महाविष्णोः परात्मनः ।
निदान भूतपिश्वस्य विद्याविद्येति गीयते ।।७
भावाभावस्वरूपासा जगद्धेतुःसनातनी ।
ब्राह्मीलक्ष्मीवम्बिकेति त्रिमूर्त्तिःसहसाऽभवत् ।।८
सृष्टिस्थितिविनाशेषु यां नियोज्यततो मुने !
आद्यां चैवाऽऽद्यपुरुषस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ।।९
यस्याऽऽज्ञयाततो ब्रह्मा मतभूतान्सर्जह ।
पृथिव्याकाशवाय्वबुवह्नीन्पञ्चसमाधिना ।।१०
भूर्भुवःस्वस्तथा चैव महाश्चैव जनस्तथा ।
तपश्च सत्यमित्यादीन्सृष्टवान्कमलासनः ।।११
अतलं सृष्टवान्ब्रह्मा ततोऽधो वितलं द्विज ! ।
ततोऽधः सुतलं चैव ततोघश्च तलातलम् ।।१२
महातलमधस्तस्मात्ततोऽधश्च रसातलम् ।
तस्मादघश्च पातालं लोकांनेद्यं यथाक्रमम् ।।१३
देवतानां निवासार्थं रत्नसानुं महागिरम् ।
सृष्टवान्पृथिवीमध्ये जाम्बूनदसमुज्ज्वलम् ।।१४

इन महाविष्णु परमात्मा की जो आद्या प्रकृति है वही इस भूत विश्व की निदान अर्थात मूल कारण है । वह विद्या और अविद्या इन नामों से गायी जाया करती है । वह इस जगत की सनातनी (सर्वदा

से चली आने वाली) भावाभाव स्वरूप वाली है। वह ही ब्राह्मी-लक्ष्मी और अम्बिका इन तीनों मूर्त्तियों वाली सहसा हो गई थी।८। हे मुने! इस जगत के सृजन-स्थिति और विनाश के कार्यों में जिस आद्य की नियुक्ति करके वह आद्य पुरुष फिर वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गये थे।९। जिसकी आज्ञा से फिर ब्रह्मा ने सर्व प्रथम महाभूनों का सृजन किया था। समाधि से वे पञ्च महा भूतों के नाम ये हैं—पृथिवी-आकाश—वायु—जल — और अग्नि।१०। कमलासन ब्रह्मा ने सात लोकों का सृजन किया जो ऊपर वताये जाते हैं भूर्लोक — भुवलोक-स्वर्लोक-महर्लोक-जन लोक—तपो लोक और सत्यलोक।११। इसके अनन्तर फिर इस भूमण्डल के नीचे वाले सात लोकों का सृजन किया था। उनके नाम निम्न हैं—अतल—वितल—सुतल-तलातल--महातल-रसातल—पाताल। ये सातों लोक एक एक के नीचे वाले इसी क्रम से हैं जैसे-अतल के नीचे वितल और इसी क्रम से अन्य सभी लोक हैं। सबके नीचे पाताल लोक हैं।१२-१३। इसके उपरान्त फिर ब्रह्माजी ने देवगण के निवास करने के लिए एक रत्न सानु महान पर्वत का सृजन किया था जो कि इस पृथ्वी मण्डल के मध्य भाग में स्थित है और सुवर्ण के समान भास्वर एवं समुज्ज्वल है।१४।

मन्दरं चरमं चैव त्रिकूटमुदयाचलम्।
अन्यांश्च पर्वतांश्चैव सृष्टवान्विविधानपि ॥१५

लोकालोकस्ततश्चैव तन्मध्ये सप्त सागराः।
सप्तद्वीपाश्च विवेन्द्र! परमेशस्वयम्भुवा ॥१६

जम्बूद्वीपो द्विजश्रेष्ट! द्वीपश्चप्लक्षसंज्ञितः।
विज्ञेयोद्विगुणस्तस्माच्छाल्मलोद्विगुणस्ततः ॥१७

ते च प्लक्षादयो द्वीपाः सर्वभागसमन्विताः।
समस्तगुणसंयुक्ता देवदेवर्षिभूपिताः ॥१८

सप्तद्वीपा इमे विप्र सप्तसागरवेष्टिताः।
तेषां नामानि वक्ष्यामि सागराणां निशामय ॥१९

वैष्णव समझ लेना चाहिए ।१०१। अब पुनः पूर्व की ही भाँति स्थिति रखने वाला सम्पूर्ण जगत् का सृजन करो—इतना कहकर वह परमेश्वर देव वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे ।१०२। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने पहिले ही के समान समस्त जगत का सृजन किया था। क्रिया के योगों के द्वारा श्री हरि का यजन करके फिर वह परम पद को प्राप्त हो गये थे ।१०३। इस अध्याय का जो लोग भक्तिपूर्वक भगवान् नारायण के सम्मुख पाठ किया करते हैं वे सभी पापों से छुटकारा पाकर अन्त में श्री हरि के परम पद को प्राप्त हो जाया करते हैं ।१०४।

※ माघादि मासों में विष्णुपूजा विधान ※

इदानीं श्रोतुमिच्छामि विष्णुपूजाफलं गुरो ।।१
शृणु लक्ष्मीपतेर्वत्स ! सपर्याफलमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा मानवाः सर्वे लभन्ते ज्ञानमुत्तमम् ।।२
विभ द्वादशमासेषु माघादिषु सनातनः ।
पूजितव्यो विधानैर्य शृणु तानि वदाम्यहम् ।।३
माघेमासि समायाते सर्वमासोत्तमे शुभे ।
आमिषं मैथुनं चैव सन्त्यजेद्वैष्णवोत्तमः ।।४
प्रातः स्नायी भवेन्नित्यं तैलान्यपिचवर्जयेत् ।
द्विर्भोजन परान्नंच माघेमासिपरित्यजेत् ।।५
प्रातः शुक्लाम्बरधरः कृतपञ्चमहाध्वरः ।
सपर्यामारभेद्विष्णोः स्थिरचित्तो हि मानवः ।।६
ईषदुष्णजलैः शुद्धैः स्नापयेद्विष्णुमव्ययम् ।
अतिश्लथेश्चन्दनैश्चविष्णोरङ्गानिः लेपयेत् ।।७

जैमिनी मुनि ने कहा—हे गुरुवर ! इस समय में भगवान विष्णु की पूजा का क्या फल होता है—यही मैं श्रवण करने की इच्छा करता हूँ। व्यास जी ने कहा—हे वत्स ! अब भगवान श्री लक्ष्मी के स्वामी की पूजा का जो उत्तम फल होता है उसी के विषय में श्रवण करो।

जिसका श्रवण करके सभी मानव उत्तम ज्ञान का लाभ किया करते हैं ।१-२। हे विप्रवर ! बारह मासों में माघ आदि जो मास हैं उनमें सनातन प्रभु जिन विधि-विधानों के द्वारा पूजना चाहिये उसे ही अब मैं बतलाता हूँ उसे तुम श्रवण करो ।३। माघ मास के आने पर जो समस्त मासों में उत्तम एवं शुभ मास हैं, उसमें उत्तम वैष्णव मनुष्य को आमिष तथा मैथुन इन दोनों का त्याग कर देना चाहिये ।४। नित्य प्रति बहुत ही सुबह स्नान करने वाला होवे और तेल आदि का भी त्याग कर देवे । दिन रात में दो बार भोजन करना तथा किसी अन्य के अन्न का भोजन करने का भी माघ में त्याग कर देवे ।५। माघ मास में प्रातःकाल में शुक्ल वस्त्र धारण करके सर्व प्रथम पंच यज्ञ जो नैत्यिक परमावश्यक कर्म हैं उन्हें समाप्त करे और फिर स्थिर चित्त वाला होकर मनुष्य को भगवान् श्री विष्णु का पूजन प्रारम्भ कर देना चाहिये ।६। थोड़ा सा उष्ण जल लेकर उसी से अविनाशी भगवान विष्णु का स्नपन करावे । फिर अत्यन्त श्लक्ष्ण (पतले) चन्दन से विष्णु के अङ्गों पर विलेपन करे ।७।

पूजयेज्जगदीशस्य देवदेवस्य चक्रिणः ।
प्रक्षालितानि पात्राणि जलहीनानि कारयेत् ।।८
स्नापयित्वा जगन्नाथमीषदुष्णेन वारिणा ।
प्राक्षितव्यं तच्छरीर दिव्यवस्त्रेण यत्नतः ।।९
सलिलैरीषदुष्णैश्च प्रस्नापयति केशवम् ।
माघे मासि द्विजश्रेष्ठ ! फल तस्य ममोच्यते ।।१०
विमुक्तः पातकैः सर्वेर्जन्मान्तरार्जितैः ।
इह भुक्त्वा सुखं सर्वशेषे याति हरेर्गृहम् ।।११
यत्नात्प्रक्षाल्य पात्राणि कृत्वा शुद्धानिवारिभिः ।
यः पूजयेज्जगन्नाथ तस्यपुण्यं निशामय ।।१२
इह भुक्त्वाऽखिलान्कामान्सर्व व्याधिविवर्जितः ।
अन्ते युगसहस्राणि तिष्ठेत्केशवमन्दिरे ।।१३

फिर देवों के भी देव चक्रधारी भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिये। ईश्वर के पूजन में आने वाले जितने भी पात्र हों उनको जल से प्रक्षालित करे तथा जलसे हीन कर दे।८। थोड़े गर्म जल से जगन्नाथ प्रभु को स्नान कराकर फिर उनके सम्पूर्ण अङ्गों का प्रोक्षण करना चाहिये जो कि एक वहुत ही दिव्य वस्त्र से यत्नपूर्वक करे।९। हे द्विज श्रेष्ठ! ईषद् उष्ण जल से भगवान केशव का माघ मास में स्नपन कराता है उसका वहुत महान् फल होता है जिसे मैं अभी तुमको वतलाना हूँ।१०। वह मनुष्य सम्पूर्ण पातकों से विमुक्त हो जाता है जो कि पहले अनेक जन्मों में उसने अर्जित किये हैं। इस संसार में वह पूर्ण सुखों का उपभोग किया करता है और अन्त में श्री हरि के परम पद को प्राप्त हो जाया करता है।११। यत्न पूर्वक समस्त पूजन के पात्रों का प्रक्षालन करे और जल से उन्हें पूर्णतया शुद्ध कर लेवे। जो पुरुष भगवान् जगत के नाथ का पूजन किया करता है अब उसका जो पुण्य-फल होता है उसे श्रवण कराता हूँ।१२। वह मनुष्य इस संसार में सम्पूर्ण अपने अभीष्ट मनोरथों का उपभोग करके समस्त व्याधियों से रहित होकर अन्त में सहस्रों युगों तक भगवान् के मन्दिर मे उन्हीं के सान्निध्य में स्थित रहा करता है।१३।

प्रभाते विश्वसन्ध्यायां पुरतश्चक्रपाणिनः।
ज्वलन्तं स्थापयेद्वह्निं निर्द्धूमं वैष्णवोजनः ॥१४
शीतस्य वारणार्थाय सायं प्रातश्चवैष्णवः।
माघेविष्णवग्रतो वह्निज्वालयेत्तत्फलंशृणु ॥१५
इह भुक्त्वाऽखिलान्कामान्पुत्रपौत्रसमन्वितः।
अन्ते विष्णुपुर याति दैवतैरपिदुर्लभम् ॥१६
यथैवाऽत्मा तथा विष्णुः सन्देहो नाऽऽत्रविद्यते।
स्वपञ्चदेवदेवस्य पर्यङ्के केशवस्यनु। १७
यथात्मनस्तथा मर्त्यःकुर्याच्छीतनिवारणम्।
क्षीरेणस्नापयेद्यस्तु माघे मासिजनार्दनम् ॥१८

तस्मैदेवोत्तमोविष्णु: सन्तुष्टोन ददातिकिम् ।
तथाशीतक्षयं कुर्याद्दिव्यवस्त्रणचक्रिण: ।।१९
य पूजयेत्सकृन्माघेस्नापयित्वा चतुर्भुजम् ।
नालिकेरोदकंदुग्धै: फलं तस्यवदाम्यहम् ।।२०
नरकाब्धो मज्जमानान्दुस्तरेस्वेनकर्मणा ।
उद्धृत्य कोटिपुरुषान्स याति चक्रिण: पदम् ।।२१

प्रभात समय मे विश्व सन्ध्या में भगवान् चक्रपाणि के समक्ष में वैष्णव जन को निर्धूम जलती हुई अग्नि की स्थापना करनी चाहिये ।१४। शीत की बाधा के निवारण करने के लिये सायकाल में और प्रात: काल में वैष्णव को माघ मास में भगवान् के वह्नि को जलाना चाहिए। इससे बड़ा महान् पुण्य होता है उसे सुनो ।१५। इस अग्नि को जलाकर भगवान् को शीतकाल में ताप पहुँचान का ऐसा फल होता है कि वह मनुष्य इस ससार मे सम्पूर्ण भोगों का उपभोग करके और सभी कामना का फल प्राप्त करके अपने पुत्र पौत्रादि समस्त परिवार से सयुत होकर अन्त में उस भगवान् के विष्णुपद की प्राप्ति किया करता है जो कि देवगण को भी अत्यन्त दुर्लभ होता है ।१६। जैसी यह अपनी आत्मा है वैसा ही भगवान् विष्णु की आत्मा है—इस विषय में तनिक भी सन्देह नहीं है। शयन करते हुए देवों के देव भगवान् केशव के पर्यंक में जिस तरह मनुष्य अपने आपका शीत निवारण किया करता है उसी भाँति शीत के निवारणार्थ क्रिया करनी चाहिए। माघ मास में यदि कोई भक्त वैष्णव भगवान जनार्दन का क्षीर से स्नान कराता है उस पर समस्त देवों में शिरोमणि भगवान् अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ करते हैं और उस अतीव प्रसन्नता से अपने भक्त को क्या-क्या नहीं दे दिया करते हैं अर्थात् सभी कुछ प्रदान कर देते हैं। अतएव उस प्रकार से दिव्य वस्त्रों के द्वारा भगवान के शीत का क्षय करना चाहिए ।१७-१९। माघ मास में जो कोई भक्त वैष्णवजन एक बार भी भगवान चतुर्भुज को स्नपन भी नारियल के जल तथा दुग्ध से कराया करता है उसका पुण्य-फल जो होता है वह अब मैं आपके सामने बतलाता हूँ ।२०। अपने किये हुए

दुस्तर खोटे कर्मों के कारण से नरकों से उद्धार करके स्वयं श्री भगवान् के परम पद की प्राप्ति किया करता है ।२१।

माघे मासे च शुक्लायां पञ्चम्यां द्विजसत्तम ।
एकादश्यां च सप्तम्यां हरिपूजाविशेषतः ॥२२
दातव्यो देवदेवाय सपद्माय मुरारये ।
पायसो धूपसहितो माघे मासि दिनेदिने ॥२३
सधूपपायसं यस्तु माघे यच्छति चक्रिणे ।
तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये शृणु वैष्णव जैमिने ॥२४
अन्ते विष्णुपुरं गत्वा मन्वन्तरचतुष्टयम् ।
भुंक्ते मनोरमान्भोगान्प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥२५
पुनरागत्य धरणीं चक्रवर्ती नृपोभवेत् ।
भुंक्ते च भोगं सुचिरं मृतो याति हरेर्गृहम् ॥२६
पञ्चम्यां वाऽपि सप्तम्यामेकादश्याञ्च जैमिने ।
अशक्तो वैष्णवो दद्यात्परमान्नं मुरारये ॥२७
कृष्णपक्षाद्द्विजश्रेष्ठ ! शुक्लपक्षे विशेषतः ।
शुक्लपक्षे तिथिष्वेषु दद्यादन्नं मुरारये ॥२८

हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! माघ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी एकादशी तथा सप्तमी तिथि में विशेष रूप से श्री हरि की पूजा करनी चाहिये ।२२। देवों के देव पद्म सहित भगवान मुरारी के लिये माघ मास में दिन प्रतिदिन धूप के सहित पायस समर्पित करना चाहिए ।२३। जो कोई पुरुष माघ मास में भगवान् की सेवा से धूप के सहित पायस समर्पित किया करता है, हे जैमिने ! उसका पुण्य एवं फल मैं बतलाता हूँ, आप श्रवण करें ।२४। वह मनुष्य अन्त समय में श्री विष्णु के पुर को जाकर जब तक चार मन्वन्तर का समय व्यतीत होता है तब तक अर्थात् उतने लम्बे समय पर्यन्त वह वैष्णव भक्त वहाँ पर परम मनोरम भोगों का उपभोग भगवान् के प्रसाद से किया करता है ।२५। इतने लम्बे समय तक वहाँ सुखों का भोग करके फिर वह अन्त में पुनः इस भू-मण्डल में आकर जन्म ग्रहण किया करता है और वहाँ यहाँ पर एक

चक्रवर्ती सम्राट हुआ करता है। अधिक समय पर्यन्त यहाँ पर साम्राज्य के अनुपम भोगों को भोगकर अन्त में वह फिर श्रीहरि के परम पद को जाया करता है।२६। हे जैमिने ! माघ मास की पंचमी-सप्तमी तथा एकादशी के दिन जो कोई भक्त वैष्णव मुरारी भगवान की सेवा में परमात्मा समर्पित किया करता है, हे द्विज श्रेष्ठ ! कृष्ण पक्ष के विशेष रूप से शुक्ल पक्ष में और शुक्ल पक्ष की इन उक्त तिथियों में मुरारि प्रभु के लिये जो अन्न दिया जावे उसका महान पुण्य होता है।२७-२८।

एकाहमपि यो माघे विष्णवे दैत्यजिष्णवे ।
सापूपं पायसं दद्यान्न तस्य दुर्लभो हरिः ॥२९
यत्किञ्चिद्द्विजतुष्ट्यर्थं माघे मासि प्रदीयते ।
तदक्षयंभवेत्पुंसः कोऽपिनास्त्यत्रसंशयः ॥३०
माघे मासि कृतं कर्म शुभं वाऽशुभमेव वा ।
तस्यानास्तिक्षयं विप्र ! मन्वन्तरशतैरपि ॥३१
माघे चम्पकपुष्पेण योऽर्चयेत्कमलापतिम् ।
सगच्छेत्परमं धाम विमुक्तः सर्वपातकैः ॥३२
यावन्ति स्वर्णपुष्पाणि दीयन्ते चक्रपाणये ।
तावद्युगसहस्राणि स्थीयते विष्णुमन्दिरे ॥३३
मेरुतुल्यसुवर्णानि दत्वा भवति यत्फलम् ।
एकेनस्वर्ण पुष्पेण हरि संपूज्य तत्फलम् ॥३४
सुवर्णपुष्पं विप्रेन्द्र ! सर्वदा केशवप्रियम्
माघे मासि विशेषेण पवित्रं केशवप्रियम् । ३५
सुवर्णकुसुमैर्दिव्यैर्येन नाऽऽराधितो हरिः ।
रत्नैर्हीनः सुवर्णाद्यैः स भवेज्जन्मजन्मनि ॥३६

माघ मास में एक भी दिन दैत्यों पर विजय प्राप्त करने वाले भगवान विष्णु के लिये पूर्ण के सहित पायस को समर्पित करता है उसको भगवान श्री हरि का प्राप्त कर लेना दुर्लभ नहीं होता है।२९। जो कुछ भी द्विजों के सन्तोष के लिये माघ के महीने में प्रदान किया जाता है वह दान कभी भी क्षीण न होने वाला उस पुण्य का हो जाता

है—इस कथन में लेश-मात्र भी संशय नहीं है ।३०। माघ मास में किये हुये कर्म का चाहे वह कोई शुभ कर्म हो अथवा अशुभ हो, उसका क्षय हे विप्र ! सैकड़ों मन्वन्तरों में भी नहीं हुआ करता है ।३१। माघ मास में चम्पा के पुष्प के द्वारा जो कोई भी भक्त भगवान कमलापति का अर्चन किया करता है वह परम धाम में गमन कर जाता है और सभी पातकों से वह विमुक्त हो जाता है ।३२। जितने सुवर्ण पुष्प भगवान् चक्रपाणि के लिये समर्पित किये जाते हैं उतने ही युग सहस्र तक वह विष्णु के धाम में स्थित रहा करता है ।३३। मेरु गिरि के समान एक परम विशाल राशि सुवर्ण के दान का जो पुन्य फल प्राप्त होता है उतना ही पुण्य एक स्वर्ण पुष्प श्रीहरि का पूजन कर उनकी सेवा में समर्पित करने से हुआ करता है ।३४। हे विप्रेन्द्र ! सुवर्ण पुष्प सर्वदा भगवान् केशव को अत्यधिक प्रिय हुआ करता है और माघ मास में तो विशेष रूप से वह पवित्र एवं केशव का प्रिय हुआ करता है ।३५। सुवर्ण कुसुमों के द्वारा जो कि अत्यन्त दिव्य हैं जिस पुरुष ने भगवान् श्रीहरि की समाराधना नहीं की है वह पुरुष रत्न और सुवर्ण आदि से हीन होकर जन्म-जन्मों में रहा करता है ।३६।

॥ हरि पूजा विधि वर्णन ॥

जैमिने ऽ।वधिनायेन पजतव्यो हरिः सदा ।
तमहं वच्मि विप्रर्षे ! शृनुत्वस समाहितः ॥१
कल्यउत्थाय पर्यङ्काद्गृहीत्वापात्रमम्भसाम् ।
बहिर्देशं व्रजेत्प्राज्ञः शीर्षमाच्छाद्यवाससा ॥२
तत्रोदिच्यांदिशि मौनीयज्ञसूत्राणि कर्णयोः ।
कृत्वोपयिष्ठःप्राज्ञस्तु मलमूत्रं विसर्जयेत् ॥३
देवतायतने मार्गे गोष्टेषु चत्वरेषु च :
रथ्यायां कृष्टभूमौ च दर्भमूले तथाऽङ्गणं ॥४
तटिनीपुलिने चैत्यवृक्षमूले तथावने ।
तडागवापीगर्भेषु मलं मूत्रं च न त्यजेत् ॥५

रविं चन्द्रमसं चैव द्विजान्गाश्च दिशो दश ।
मलं मूत्रं त्यजेद्यावत्तावत्प्राज्ञो न पश्यति ॥६

खनितां मूषिकाद्यैश्च बिलाभ्यन्तरवर्तिनीम् ।
फालकृष्टां मृदञ्चैव न गृह्णीयाच्छौचहेतवे ॥७

श्रीकृष्ण द्वैपायन महर्षि व्यास देव ने कहा—हे जैमिने ! जिस विधि-विधान में सदा श्रीहरि का यजनार्चन करना चाहिये—मैं इस समय में उसी को आपके सामने बतलाता हूँ । हे विप्रर्षि वत्स ! उसका आप सावधान चित्त वाले होकर श्रवण करो ।१। प्रातःकाल में सूर्योदय से पूर्व अपने पर्यंक से उठकर जल का एक पात्र ग्रहण करे और प्राज्ञ पुरुष को वस्त्र से मस्तक को समाच्छादित करके ही बाहिर के भाग में चले जाना चाहिये ।२। वहाँ बाहिर जगल में उत्तर दिशा में मौन धारण करके अपने कानों पर यज्ञ सूत्र को चढ़ाकर उपविष्ट होवे और इस तरह शान्ति से अपने मलमूत्र का विसर्जन करना चाहिए ।३। अब उन उन स्थलों को बतलाया जाता है जहाँ पर मल-मूत्र का त्याग कभी भी नहीं करना चाहिये । किसी भी देवता के स्थान में या स्थान के समीप में—मार्ग के मध्य में—गौओं के बैठने के स्थानों में—चत्वर में—गली में—जुती हुई भूमि में—दर्भों के मूल में—आँगन में—किसी नदी के-पुलिन श्मशान में किसी भी वृक्ष के मूल में—वन में—तालाब तथा बावड़ी के मध्य में—इन स्थानों में मल-मूत्र के त्याग करने का बड़ा दोष बतलाया जाता है ।४-५। सूर्य—चन्द्र—द्विज-गौ और दशों दिशाएं जब तक न देख पावें तभी तक मल-मूत्र का त्याग प्राज्ञ पुरुष को कर देना चाहिये ।६। चूहों के द्वारा खोदी हुई तथा बिलों के अन्दर रहने वाली एव हल के द्वारा जो उखाड़ी गई है ऐसी मृत्तिका को शौच के कर्म का सम्पादन करने के लिए कभी भी ग्रहण नहीं करना चाहिए।७।

जलाज्जलं समानीय शौचं कुर्याद्विचक्षणः ।
पादं जलेषु वै दत्वा न शौचं कुरुते बुधः ॥८

दक्षिणाभिमुखो रात्रौ कुर्यात्प्राज्ञो बहिःक्रियाम् ।
शिरः प्रावृत्य वस्त्रेण ततः शौचं समाचरेत् ॥९

मृत्तिकैका प्रदातव्या लिङ्गे तिस्रस्तु वै गुदे ।
सप्त सव्ये करे प्राज्ञै र्हस्तयोरुभयादश ॥१०
पादयोः षट्प्रदातव्यमृत्तिकाच विचक्षणैः ।
कृतशौचक्रियः प्राज्ञः कुर्याद्दन्तस्यधावनम् ॥११
जिह्वापामार्जनञ्चैव दशनाच्छादनादिभिः ।
दक्षिणाभिमुखोभूत्वा पश्चिमाभिमुखस्तथा ॥१२
नदन्तधावनं कुर्यात्कुर्याच्चेन्नारकीभवेत् ।
मध्यमानाभिकाभ्यां च वृद्धांग्गुष्ठेनचद्विज ॥१३
दन्तस्य धावनं कुर्यान्न तर्जन्या कदाचन ।
अश्वन्थवटवृक्षाणां धात्र्यार्कैथिकया बुधः ॥१४
न दन्तधावनं कुर्यात्तथेन्द्रस्य सुरस्य च ।
नित्यं क्रियाफलं तस्य सर्वमेव विनश्यति ॥१५

जलाशय से जल ग्रहण करके विचक्षण पुरुष को शौच करना चाहिये । जल में पैर देकर कभी भी बुध पुरुष शौच नहीं किया करते हैं ।८। रात्रि का समय हो तो बुध पुरुष को चाहिये कि दक्षिण दिशा की ओर मुख करके ही बाहर की क्रिया को करे । सदा शौच करने के समय में वस्त्र के द्वारा शिर को प्रावृत रखना चाहिये । खुले मस्तक से मल-मूत्र त्याग करने का दोष होता है ।९। एक बार मृत्तिका गुदा में शुद्धि के लिए लगानी चाहिये—तीन बार लिंग में लगावे सात बार सव्य कर में तथा प्राज्ञ पुरुषों को दोनों हाथों को मिलाकर दश बार मिट्टी शुद्धि के लिये लगानी चाहिये ।१०। विचक्षण पुरुषों को ६ बार दोनों पैरों में मिट्टी लगानी चाहिये । इस प्रकार से जब शौच कर्म पूर्ण हो जावे तो प्राज्ञ पुरुष को फिर दाँतों की शुद्धि के लिये दाँतुन करनी चाहिये ।११। दक्षिण दिशा की ओर मुख करके अथवा पश्चिम दिशा की ओर अभिमुख होकर दशनाच्छादान आदि के सहित जिह्वा का भी अपामार्जन करना चाहिये ।११। जो दन्त धावन नहीं करता है या हे द्विज ! वृद्धागुष्ठ—मध्यमा एव अनामिका से जो दाँतों का मार्जन किया करते हैं वे नारकी होते हैं ।१३। दाँतों का धावन कभी भी तर्जनी अंगुली से नहीं करे । अश्वत्थ (पीपल)–वट (वड़)–धात्री

(आँवला) और कैथ की दांतुन से कभी दन्त धावन न करे। इन्द्र वृक्ष और सुर वृक्ष की दाँतुन से भी नहीं करे। यदि इन वृक्षों की दातुन से धावन करता है त। उस सम्पूर्ण नित्य का कर्मफल विनष्ट हो ज.या करता है।१४-१५।

य: स्नानसमये कुर्याज्जैमिने ! दन्तधावनम्।
निराशा: पितरो यान्ति तस्यदेवा: सुरषय: ॥१६
दन्तस्य धावनं कुर्याद्यो मध्याह्नापराह्णयो:।
तस्य पूजां न गृह्णन्ति देवता: पितरोजलम् ॥१७
स्नानकाले पुष्करिण्यां य: कुर्याद्दन्तधावनम्।
ततो ज्ञेय: स चाण्डालो यावद्गङ्गां न पश्यति ॥१८
भगवत्युदितेसूर्ये य: कुर्याद्दन्तधावनम्।
तद्दन्तकाष्ठं पितरो भुक्त्वा गच्छन्ति दु:खिन: ॥१९
उपवासदिने विप्र ! पितृश्राद्धदिने तथा।
न तत्फलमवाप्नोति दन्तधावनकृन्नर: ॥२०
प्रभाते मार्जयेद्दन्तान्वाससा रसनां तथा।
कुर्याद्द्वादश विप्रेन्द्र ! कल्लोलानि जलैर्बुध: ॥२१

हे जैमिने ! जो स्नान करने के समय में दन्तधावन किया करता है उसके पितृगण निराश होकर तथा देववृन्द और सुरर्षिगण भी निराश होते हुए चले जाया करते हैं। तात्पर्य-स्नान के समय में दन्तधावन का महान् दोष होता है। जो मध्याह्न और अपराह्न में दाँतों की शुद्धि किया करते हैं उस पुरुष की पूजा को देव तथा जल के पितर ग्रहण नहीं किया करते हैं।१६-१७। स्नान के काल में जो पुष्करिणी में ही स्थिर होकर दन्तमार्जन करते हैं वे उस समय तक एक चाण्डाल की कोटि में ही गणित होते हैं जब तक भागीरथी गङ्गा का दर्शन नहीं किया करते हैं।१८। भगवान भुवन भास्कर सूर्यदेव के उदित होने पर जो दन्तधावन किया करते हैं उस दाँतुन के काष्ठ को पितरगण खाकर अत्यन्त दु:खित होते हुये चले जाया करते हैं।१९। हे विप्र !

उपवास के दिन में तथा पिता के श्राद्ध के दिन में दन्तधावन करने वाला मनुष्य उस फल को प्राप्त नहीं किया करता है।२०। प्रभात काल में ही दाँतों का मार्जन करे और वाम से रसना (जीभ) का मार्जन करे। हे विप्रन्द्र! दाँतुन के पश्चात् बुध पुरुषको बारह कुल्ली करनी चाहिए।२१।

उपवासे पितृश्राद्धे विधिनाऽनेन जैमिने।
दन्तधावनकृन्मर्त्यः सम्पूर्ण लभते फलम् ॥२२
अनेन विधिना कृत्वा दीर्घदर्शीबहिष्क्रियाम्।
ततो निजगृहंगत्वारात्रिवस्त्रं परित्यजेत् ॥२३
ततो देवगृहद्वारे चोपविष्टो बुधः शुचिः।
स्मरेन्नारायण देवमनन्तं परमेश्वरम् ॥२४
राम ! श्यामतनो ! विष्णौ नारायण दयामय।
जनार्दन जगद्धाम पापं मे हर केशव ॥२५
पीताम्वरधरानन्तपद्मनाभ जगन्मय !।
वामन ! प्रणतस्येश ! विभो ! त्वं शरण भव ॥२६
दामोदर यदुश्रेष्ठ श्र कृष्ण करुणार्णव !
कमलेक्षण देवेन्द्र ! वासुदेव कृपां कुरु ॥२७
गरुड़ध्वज गोविन्द विश्वम्भर गदाधर !
शंखपाण चक्रपाणे पद्महस्त हराऽऽपदः ॥२८
लक्ष्मीविलास बैकुण्ठ हृषीकेश मुरोत्तम !।
पुरुषोत्तम ! कंसारे कैटभारे ! भयं हर ॥२९
श्रीपते श्रीधर विभो श्रीद श्रीकर माधव !।
परं ब्रह्म पर धाम शरणं मे भवाऽव्यय ! ॥३०

हे जैमिने ! उपवास में पितृश्राद्ध में इस विधि से दन्तधावन वाला मनुष्य सम्पूर्ण फल को प्राप्त करता है।२२। इस बताई हुई विधि से जो दीर्घदर्शी पुरुष होते हैं वे इस वहिष्क्रिया को किया करते हैं। इसके अनन्तर बाहिर से आकर अपने घर में जो भी रात्रि के धारण किये हुये वस्त्र होते हैं उनका त्याग कर देना चाहिये।२३। इसके उपरान्त किसी देवगृह के द्वार पर शुचि होकर बुध पुरुष

को अनन्त परमेश्वर देव भगवान् नारायण का स्मरण करना चाहिये। नारायण से निम्न नामों का उच्चारण करते हुये विनम्र प्रार्थना करे— हे राम ! श्यामतनो ! हे विष्णो ! नारायण ! दयामय ! हे जनार्दन ! हे जगद्धाम ! हे केशव ! आप कृपा करके मेरे समस्त कृत एवं पूर्व सचित पापों का हरण कर दीजिये।२५। आप तो पीताम्बर के धारण करने वाले प्रभु हैं—आपका स्वरूप एवं नाम अनन्त हैं। हे पद्मनाम ! यह सम्पूर्ण जगत भी आप ही का स्वरूप है। हे वामन ! आप प्रणत भक्तों के नाम हैं। हे विभो ! आप ही मेरे इस समय रक्षा करने वाले हो जावें।१६। हे दामोदर ! हे यदुश्रेष्ठ ! हे श्रीकृष्ण ! आप तो करुणा के सागर हैं। हे कमल के समान नेत्रों वाले ! हे देवों के भी स्वामिन् वासुदेव भगवान अब आप मेरे ऊपर कृपा करें।२७। हे गरुड़ध्वज ! गोविन्द ! विश्वम्भर ! गदाधर ! हे शखापाणे ! चक्रपाणि में रहने वाले ! हे पद्म हस्त ! अब आप हमारी समस्त आपदाओं का हरण कर दीजिये।२८। आप तो लक्ष्मी के साथ विलास करने वाले हैं। हे वैकुण्ठ हृषीकेश ! आप समस्त सुरों के शिरोमणि देव हैं। हे पुरुषोत्तम ! हे कंस का निहनन करने वाले ! हे कैटभ के वध करने वाले। अब आप हमारा भय दूर कीजिये।२९। हे श्रीपते ! श्रीधर ! विभो ! श्री के प्रदान करने वाले ! हे श्रीकर माधव ! आप परम ब्रह्म हैं और आपका धाम सर्वोपरि है—आप अविनाशी हैं अब मेरे रक्षक होइये।३०।

इत्थं कृत्वा द्विजश्रेष्ठ ! श्रीविष्णुस्मरणं बुधः।
बद्धाञ्जलिरिति ब्रूते प्रविष्य निलय गतः ॥३१
ईश्वर श्रीपते कृष्ण देवकीनन्दनप्रभो।
निद्रां मुञ्च जनन्नाथ प्रभातसमयोऽभवत् ॥३२
अथोत्स्थितमिवप्राज्ञः पर्यङ्के देवकीसुतम्।
निद्रा त्यक्त्वा सलक्ष्मीक चिन्तयेन्निजचेतसा ॥३३
ततः कृतजलं दिव्य पात्रं च जलपूरितम्।
मुखप्रक्षालनार्थाय दद्यात्कृष्णाय वैष्णवः ॥३४

ईश्वरं वर्तनार्थाय सेवन्ते सेवका यथा ।
तथैव मतिमन्तोऽपि सेवन्ते परमेश्वरम् ॥३५

हे द्विज श्रेष्ठ ! इस तरह से बुध-पुरुष को भगवान् के कतिपय उपरिनिर्दिष्ट शुभ नामों को पुकारते हुये उनका स्मरण करना चाहिये । दोनों हाथों को जोड़कर इस तरह से बोले और फिर देव मन्दिर में प्रवेश करे ।३१। वहाँ प्रवेश करके पुनः प्रार्थना करे – हे ईश्वर ! हे श्रीपते ! कृष्ण ! देवकी नन्दन ! प्रभो ! अब आप अपनी निद्रा का त्याग करिये । आप तो इस सम्पूर्ण जगत के नाथ हैं । अब तो प्रभात की वेला हो गई है अर्थात् निद्रा त्याग का समय हो गया है ।३२। इसके अनन्तर प्राज्ञ पुरुष को भगवान् के पर्यंक के निकट नीचे की ओर स्थित होते हुये ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि भगवान देवकी सुत निद्रा का त्याग करके इस समय लक्ष्मी के सहित लेटे हुये हैं—इस तरह से अपने हृदय में ध्यान करके फिर एक ढके हुये दिव्य पात्र को जल से परिपूर्ण करके उपासक वैष्णव को भगवान के मुख प्रक्षालन के लिये कृष्ण की सेवा में समर्पित करना चाहिये ।३३-३४। जिस तरह से अपनी रोजी के लिये मनुष्य अपने स्वामी का सेवक होकर सेवा किया करते हैं उसी भाँति जो मतिमान पुरुष होते हैं वे परमेश्वर की सेवा किया करते हैं और सेवक की भाँति सर्वदा संलग्न रहते हैं ।३५।

यस्तु सेवकरूपेण सेवते जगदीश्वरम् ।
अचिरेणैव विप्रर्षे ! तस्य सिध्यति वांछितम् ॥३६
यथेश्वरस्य सभयाः सेवां कुर्वन्ति चेटकाः ।
प्राज्ञास्तथैव सेवन्ते सर्वदैव हरिं प्रभुम् ॥३७
निजेच्छयाऽनयाविष्णुं निर्भय पूजयेन्नरः ।
कुसेवकः सएवास्ति तदा नहि भवेद्द्विज ॥३८
अतएव द्विजश्रेष्ठ ! त्वरया कमलापतेः ।
कर्त्तव्या सर्वदा सेवा पुंसा कैवल्यमिच्छता ॥३९
निर्माल्यं रात्रिवस्त्रं च गन्ध पर्युषितं तथा ।
हरेरस्तारयेद्धीमान् ... ॥४०

ततो देवालये तस्मिन्स्वयमेव हि मार्जयेत् ।
कुर्याच्छनैः शनैः प्राज्ञः सम्मार्जन्या परिष्क्रियाम् ।।४१
यावन्तो निलवात्तस्माद्गच्छन्तिं रेणवो बहिः ।
तावन्मन्वन्तशतं तिष्ठेद्विष्णुगृहे नरः ।।४२

जो पुरुष एक सेवक रूप से जगदीश्वर प्रभु की सेवा किया करता है हे विप्रर्षे ! वह शीघ्र ही अपने अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि को प्राप्त कर लिया करता है ।३६। जिस तरह से चेटक गण अपने स्वामी की सेवा कार्य करने में भय युक्त रहते हुए कि कहीं स्वामी नाराज न हो जावें, उसी तरह से प्राज्ञ पुरुष सर्वदा श्री हरि प्रभु की सेवा किया करते हैं और कोई भी प्रभु का अपराध न बन जाये—इसका भय भी रखते हैं ।३७। इसी अपनी इच्छा से निर्भय होकर मनुष्य को भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए । वही कुसेवक है जो भगवान की संवा ही नहीं किया करता है ।३८। अतएव हे द्विजश्रेष्ठ ! त्वरा पूर्वक भगवान कमलापति की सेवा का आरम्भ कर देना चाहिए और सर्वदा ही उसे करते रहना चाहिये जो कि पुरुष अपनी कैवल्य की इच्छा किया करता है उसका यह प्रभु की सेवा किया करना परमावश्यक एकान्त कर्त्तव्य होता है ।३९। जो वैष्णव उपासक भक्तजन है उसे भगवान का निर्मालय तथा रात्रि के धारण कराये हुये वस्त्रगन्ध जो कि पर्युषित हो गय हैं, श्रीहरि के अङ्ग से उतार लेने चाहिये । जब कि प्रभात में प्रभु की सेवा करने को प्रस्तुत होवे ।४०। फिर उस देवालय में स्वयं ही मार्जन आदि करे । प्राज्ञ पुरुष को शनैः २ देवायतन की सम्मार्जनी से परिष्क्रिया करनी चाहिये ।४१। उस देवायतन से जितने भी रज के रेणु बाहिर जाया करते हैं उतने ही शत मन्वन्तर तक वह सेवा करने वाला वैष्णव भगवान विष्णु के धाम में स्थित रहा करता है ।४२।

यस्तु सम्मार्जनंकुर्याद्ब्रह्महाऽपि हरेर्गृहे ।

सोऽपि याति परं धाम किमन्यैर्बहुभाषितैः ।।४३

तथं पलेपनं कुर्याद्दूर्णकैर्गोमयैर्द्विज ! ।
तस्मिन्विष्णुगृहे प्राज्ञः स्मरेन्नारायणं प्रभुम् ।।४४
यस्तूपलेपनं कुर्यात्केशवस्य च मन्दिरे ।
तस्य पुण्यमहं वच्मि संक्षेपाच्छृणु जैमिने ।।४५
रजांसि तत्र यावन्ति विनश्यन्ति द्विजोत्तम ! ।
तावत्कल्पसहस्राणि तिष्ठेद्विष्णु गृहे सुखी ।।४६
सम्मार्जनं विष्णुगृहे जनः धृत्वोपलेपनम ।
लभते परम धाम किं पूजाफलवित्प्रभो ! ।।४७
देशकालविरोधेन न शक्नोति यदा स्वयम् ।
तदा विष्णुगृहेचाऽपि धर्मपत्नीनियोजयेत् ।।४८
अथवा तमयं भक्तं सूचरित्रं तथाऽऽत्मनः ।
भ्रातरं भगिनीं वाऽपि देवागारे नियोजयेत् ।।४९

जो भगवान् के मन्दिर का सम्मानर्ज किया करता है वह चाहे ब्रह्म हत्या का अपराधी भी क्यों न हो समस्त पातकों से छुटकारा पाकर अन्त में हरि मन्दिर के सम्मार्जन करने के पुण्य फल से परम धाम की प्राप्ति किया करता है। विशेष कथन करने की कोई की आवश्यकता नहीं है।४३। हे द्विज ! फिर ऊर्णक और गोमय से उप लेपन करे उस विष्णु ग्रह मे उप लेपन करने के पश्चात् प्राज्ञ पुरुष को भगवान् प्रभु नारायण का स्मरण करना चाहिये।४४। जो भगवान् केशव के मन्दिर में उपलेपन किया करता है उसका जो महान पुण्य होता है उसे मैं संक्षेप से बतलाता हूँ हे जैमिने ! अब आप उसका श्रवण करिये।४५ हे द्विजोत्तम ! वहाँ पर जितने भी रज के कण विनष्ट होते हैं उतने ही सहस्र कल्प तक वह सुखी होकर भगवान विष्णु के घर में स्थित रहा करता है।४६। भगवान विष्णु घर में भक्त समार्जन करके उपलेपन करता है वह प्रभु की पूजा के फल को प्राप्त करने वाला अन्त में परम धाम की प्राप्ति का लाभ लेता है।४७। किसी समय में यदि देश और काल के विरोध से स्वय भगवान की सेवा का कार्य न कर सके तो उस समय विष्णु के मन्दिर में समार्जन आदि के कर्म में

अपनी धर्मपत्नी की नियुक्ति कर देनी चाहिए।४८। यदि धर्म पत्नी भी किसी कारणवश असमर्थ हो तो भक्त अपने पुत्र को जो कि सुन्दर चरित्र वाला हो अथवा भाई को अथवा भगिनी को सेवा के कार्य में देवागार में नियोजित कर देना चाहिये।४६

हरेः सपर्यावस्तूनि सप्तधा शुद्धवारिभिः।
प्रक्षालयेत्त्रिधा वाऽपिस्वयमेवाऽतियत्नतः ॥५०
अम्लेन ताम्रपात्राणि कांस्यपात्राणि भस्मना।
वह्निना लोहपात्राणि शुध्यन्ति नाऽत्रसंशयः ॥५१
धनाढ्यो लोहपात्रस्थैयंः स्नापयति वारिभिः।
नारायणं जगन्नाथंतस्य तुष्टो न केशवः ॥५२
अज्ञानाद्वाऽपि चेतर्हि गङ्गास्नानेन शुद्धयति।
सम्पदि ब्राह्मणश्रेष्ठ ! कर्त्तव्योनियमः सदा ॥५३
विपत्यां नियमो नास्ति शास्त्रेष्विति विनिश्चयः।
यत्नात्प्रक्षालितः शखो यदां भूमिस्पृशेत्पुनः ॥५४
तदा स शखो विप्रेन्द्र ! शतधौतेन शुध्यति।
इत्थं प्रक्षाल्य यत्नेन पूजाद्रव्याणिचक्रिण ॥५५
गृहीत्वा स्नानवस्तूनि स्नानार्थं सरसीं व्रजेत्।
अकृत्वास्नानकर्माणिगृहमायातियः पुनः ॥५६

भगवान् की सपर्या की जो भी वस्तुएं हों उन्हें स्वयं शुद्ध जल से सात वार अथवा तीन वार अति यत्न के साथ प्रक्षालित करना चाहिये।५०। जो ताम्र के पात्र हों उन्हें खटाई से, और जो काँसे के पात्र हों उन्हें भस्म से और जो लोहे के पात्र हों उन्हें अग्नि से शुद्ध करे क्योंकि ये इन्हीं प्रकारों से शुद्ध हुआ करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।५१। धन से सम्पन्न पुरुष भी लोहे के पात्र में स्थित जल से जो भगवान नारायण जगन्नाथ का स्नपन कराता है उससे केशव तुष्ट नहीं होते हैं।५२। यदि कोई अज्ञान वश ऐसा भी करता है तो वह गंगा के स्नान से शुद्ध हो जाया करता है। सम्पत्ति रहने की दशा में सदा नियम का पालन करना ही चाहिये यह शास्त्रों का निश्चय है। ... में

नियम के पालन न करने से वड़ा दोष रहता है जो क्षम्य नहीं है। विपत्ति की दशा में ऐसा शास्त्र का कथन है कि उसमें कोई भी नियम नहीं होता है। यत्न पूर्वक यदि शंख प्रक्षालन भी किया जावे और जिस समय में भी वह भूमि से स्पर्श प्राप्त कर लेवे तो हे विप्रेन्द्र ! वह शंख सौबार धोने से शुद्धि को प्राप्त हुआ करता है इस प्रकार से वड़े भी यत्न के साथ भगवान चक्री के पूजा के द्रव्यों को प्रक्षालित करे।५३-५५। फिर स्नान के समस्त उपकरणों को ग्रहण करके स्नान करने के लिये किसी भी सरोवर पर जावे। जो कोई वहाँ पहुँच कर भी स्नान के कर्मों को न करके ही पुनः घर में आ जाता है तो इसका महान दोष होता है।५६।

तस्मिन्दिने पितृगणस्तस्य नाप्नोति तर्पणम् ।
स्नानार्थभोजनार्थंत्रागच्छतोविघ्नकृद्भवेत् ॥५७
यस्तु मोहाद्द्विजश्रेष्ठ ! स नूनं नारकीभवेत् ।
स्नानार्थं सरसींगत्वासलमूत्रं करोति यः ॥५८
पितरस्तस्य विण्मूत्रभोजिनः स्युर्न संशयः ।
ततः कृत्वाविधानेनस्नानंन तर्पणादिकम् ॥५९
स्वकीयं गृहमागच्छंत्स्मरन्नारायण बुधः ।
ततश्च प्राङ्गणे विप्र ! प्रक्षाल्य चरणद्वयम् ॥६०
प्रविशेद्देवतागारं शुचिर्ब्राह्मणसत्तम ! ।
अप्रक्षालितपादो यः प्रविशेन्निलयं जनः ॥६१
सम्वत्तरकृतं पुण्यं तस्य नश्यति तत्क्षणात् ।
स्नानं कृत्वा समागत्य प्रागणेषु विचक्षणः ॥६२
तस्मात्प्रक्षालय चरणौ प्रविशेद्देवतागृहम् ।
उपविश्य पादयुग्मं वुधः सव्येन पाणिना ॥६३
यत्नात्पक्षालयेद्द्विज ! तथा पाणिद्वयम्पुनः ।
पादेन पादं विप्रेन्द्र ! तथा दक्षिणपाणिना ॥६४

उस दिन में उस पुरुष के पितृगण उसके तर्पण का लाभ नहीं प्राप्त किया करते हैं। स्नान करने के कर्म में तथा भोजन के लिए गमन करते

हुए जो कोई भी विघ्न करने वाला बनता है वह द्विज श्रेष्ठ ! महान् अपराधी बनता है और ऐसा मनुष्य निश्चय ही नरकगामी मोह के कारण हुआ करता है। स्नान करने के लिए जो कोई भी सरोवर पर जाकर मूल मन्त्र का जाप किया करता है उसका भी दोष होता है। ।५७।५८। उसके पितृगण विण्मूत्र का भोजन करने वाले होते हैं—इसमें संशय नहीं है। इसके अनन्तर विधान के साथ ही स्नान और पुन: तर्पण आदि कर्तव्य कर्मों को करना चाहिए ।५९। बुध पुरुष को चाहिए यह सब कर्त्तव्य कृत्य समाप्त करके भगवान नारायण का स्मरण करते हुए फिर अपने घर पर आ जाना चाहिए इसके अनन्तर प्रांगण से हे विप्र ! अपने दोनों चरणों का प्रक्षालन करे ।६०। हे ब्राह्मणों में परम श्रेष्ठ ! पूर्णतया शुचि होकर फिर भगवान् देव के मन्दिर में प्रवेश करना चाहिए। जो अपने दोनों चरणों को बिना धोये ही भगवान् के मंदिर में प्रवेश किया करता है उसका भी महान् दोष होता है ।६१। एक वर्ष भर का किया हुआ सम्पूर्ण कर्म उसका उसी समय से विनष्ट हो जाया करता है जो बिना पद प्रक्षालन किये मन्दिर में प्रवेश कर लेता है। इसलिये विचक्षण पुरुष का यह परमावश्यक प्रथम कर्त्तव्य है कि स्नान करके जैसे ही अपने घर के प्रांगण में पहुँचे वैसे ही पद प्रक्षालन कर लेना चाहिए ।६२। इसलिये चरणों का प्रक्षालन करके देव गृह में प्रवेश करना चाहिए। आँगन में शान्ति से बैठकर अपने सव्य हाथ से बुध—पुरुष को दोनों पदों का प्रक्षालन भली-भाँति करना चाहिए। हे विप्र ! यत्नपूर्वक फिर अपने दोनों ही हाथों को भी धो डाले। हे विप्रेन्द्र ! पाद से पाद का और दक्षिण पाणि से प्रक्षालन जो कोई भी करे ।६३।६४।

यश्च प्रक्षालयेन्मूढस्तं लक्ष्मीस्त्यजति ध्रुवम् ।
अथोपविष्टोमतिमान्केशवाचनमारभेत् ।।६५
अनन्यमानसो भूत्वा सर्वकामफलप्रदम् ।
[illegible] ।।६६

वस्त्रासने केवले च तथा कुशमयासने ।
पुष्पासने चोपविष्टा पूजयेत्कमलापतिम् ॥६७
काष्ठासने द्विजो विद्वान्न कुर्याद्विष्णुपूजनम् ।
विष्णुना त्वं धृता पृथ्वि ! सर्वे लोकास्त्वया धृताः ॥६८
अतः सर्वं सहे देहि वस्तुं मे स्थानमुत्तमम् ।
इत्युक्त्वासनमास्तीर्य वसेन्नारायणर्चकः ॥६९
दक्षिणाभिमुखोभूत्वा न कुर्याद्विष्णुपूजनम् ।
शङ्खेकृत्वतुपानीयमन्त्रपूतंसुवासितम् ॥७०

किन्तु ऐसा करने का महान् दोष है। जो मूढ़ पद से पद का तथा दक्षिण हाथ से प्रक्षालन किया करता है वह निश्चय ही अपनी लक्ष्मी का त्याग कर देता है अर्थात् लक्ष्मी स्वयं ही उसे छोड़ दिया करती है। इसके उपरान्त बैठ कर मतिमान पुरुष को भगवान् केशव का समर्चन करना चाहिए।६५। भगवदर्चन के समय में उपासक वैष्णव को अपना बिल्कुल स्थिर करके ही उसे अनन्य मन से करना चाहिए। मन को इधर उधर किसी भी अन्य विचार या विषय की ओर नहीं डुलावे। तभी पूजन समस्त कामनाओं के फलों को प्रदान करने वाला होता है। उस समय में पूजक का जो आसन हो वह चाहे तो मृग चर्म शुद्ध हो या व्याघ्र चर्म शुद्ध होना चाहिए। अथवा ये दोनों ही आसन समुपलब्ध न हों तो केवल किसी शुद्ध वस्त्र का आसन हो या कुशों का आसन एवं पुष्प का आसन भी ग्राह्य है। उस पर उपविष्ट होकर ही भगवान् कमला के स्वामी श्री नारायण का अर्चन करना चाहिए।६६।६७। द्विज को केवल काष्ठ के आसन पर स्थित होकर कदापि भगवान् विष्णु का यजनार्चन नहीं करना चाहिए। पूजन के आरम्भ में निम्न प्रकार से प्रथम प्रार्थना करे—हे वसुन्धरे ! आपको भगवान् विष्णु ने धारण किया है और आपने हे देवि ! समस्त लोकों को धारण कर रक्खा है। इसलिये सभी कुछ सहन करता हूँ। अब मुझे आप बैठने के लिये कोई उत्तम स्थान प्रदान करिये। इतना कह कर फिर अपने आसन को फैला कर बिछावे और फिर नारायण भगवान् की अर्चना करने वाला

पुरुष: उस पर संस्थित होवे ।६८-६९। पूजन करने के समय में कभी भी दक्षिण दिशा की ओर मुख करके स्थित नहीं होना चाहिये—इसका बड़ा दोष शास्त्र में बताया है । शंख में जल करके रक्खें और मन्त्र के द्वारा पवित्र एवं अभिमंत्रित करले तथा सुगन्धित पदार्थों से सुवासित भी कर लेना चाहिए ।७०।

स्नापयेत्कमलाकान्तं कमलांसहितं प्रभम् ।
शङ्खेन स्नापयेद्यस्तु भगवन्तं जनार्दनम् ।।७१
तत्फलं तस्य वक्ष्यामि शृणु विप्रेन्द्र जमिने ! ।
विप्रगोस्त्रीभ्रूणहत्यासुरापानादिपातकैः ।।७२
विमुक्तोयाति वैकुण्ठ भुङ्क्ते हि सकलसुखम् ।
यद्दिदृष्ट्वा हृषीकेशं पूजयेन्मानवो द्विज ! ।।७३
लभते तत्तदेवाऽशु प्रसादात्कमलापतेः ।
शंखभावे तु विप्रेन्द्र ! सुगन्धितोयकं बुधः ।।७४
कृत्वा च तुलसी पात्रे स्नापयेत्केशव बुधः ।
ततो देवं स्नापयित्वा संस्थाप्यच बरासन ।।७५
सुगन्धैश्चन्दनैस्तस्य कुर्यात्सर्वाङ्गलेपनम् ।
तुलसीकाष्टपङ्केन चक्रिणो देहलेपनम् ।।७६
यः करोति जनस्तस्य प्रसन्नः सतत हरिः ।
तुलसीपत्रमालेयं निजगन्धसुखप्रदा ।।७७
दीयते ते जगन्नाथ ! सुप्रीतो भव सर्वदा ।
मन्त्रेणाऽनेन विप्रेन्द्र तुलसीपत्रमालया ।।७८

फिर भगवान श्री कमलापति प्रभु का कमला के सहित स्नान करावे ! भगवान का स्नान शख से ही कराना चाहिये – इसके द्वारा स्नापन करने का बड़ा पुण्य-फल होता है । जो भी कोई भगवान जनार्दन प्रभु का शंख के जल से स्नापन कराता है । उसका पुण्य हे जैमिने ! मैं अब तुमको बतलाता हूँ उसका श्रवण करो । ऐसा पुरुष चाहे कितना भी महान पातकी क्यों न हो और विप्र-गौ-स्त्री-भ्रूण आदि की हत्या का महान घोर पाप उसे हो अथवा सुरापान प्रभृति का महापातक हो-

इन सभी प्रकार के पातकों के शंख के द्वारा भगवान को स्नपन कराने वाला पुरुष छुटकारा पाकर वैकुण्ठ का निवास प्राप्त कर वहाँ पर सुखों का उपभोग किया करता है। यदि देखकर मानव हृषीकेश भगवान का पूजन किया करता है तो वह कमलापति के परम प्रसाद से उसी क्षण में अति शीघ्र ही लाभ प्राप्त कर लेता है।७१-७३। हे विप्रेन्द्र ! यदि शंख का अभाव हो तो वुद्ध का कर्त्तव्य है कि सुवासित जल को करके पात्र में तुलसी के दल छोड़कर भगवान केशव का स्नपन करावे। फिर देव का स्नान करा कर किसी श्रेष्ठ आसन पर उनको विराजमान करे।७४-७५। सुगन्ध से संयुत चन्दन से भगवान के सर्वाङ्गों का लेपन करे तुलसी के काष्ठ पङ्क से भगवान के अंगों का लेपन करना चाहिये।७६। इस तरह से जो भी भक्त वैष्णव किया करता है उस पर श्री हरि भगवान निरन्तर परम प्रसन्न रहा करते हैं। फिर भगवान से प्रार्थना करे—यह तुलसी के दलों की माला है जो अपनी ही गन्ध से सुख प्रदान करने वाली है, हे जगन्नाथ ! यह माला आपकी सेवा में समर्पित की जाती है, आप परम प्रसन्न होइये और सर्वदा अपनी प्रसन्नता हमारे ऊपर रखिये। हे विप्रेन्द्र ! इसी उपर्युक्त प्रार्थना मन्त्र के द्वारा तुलसी पत्रों की माला समर्पित करनी चाहिये।७७-७८।

अलङ्कृतो महाविष्णुः प्रसन्नो न ददाति किम्।
ततस्तुवैदिकर्मन्त्रैः कर्त्तव्य स्वस्तिवाचनम् ।।७९
दिग्बन्धनञ्चकर्त्तव्यं मन्त्रैःपौराणिकैर्बुधैः।
कृष्णो रक्षतु पर्वस्यामाग्नेय्यां देवकीसुतः ।।८०
याम्यां रक्षतु दैत्यारिर्नैऋत्यां मधुसूदनः।
त्रिदिक्षु रक्षतु श्रीमानूर्ध्व च श्रीधरः प्रभुः ।।८१
अधो रक्षतु विश्वात्माकूर्ममर्तिः कृपामयः।
से विघ्नकारकाः सर्वोपूजाकालेभवन्तिह ।।८२
दूरं गच्छन्तु ते सर्वेहरिनामास्त्रताडिताः।
इत्थंदिग्बन्धनं कृत्वा ततः प्रह्वः कृताञ्जलिः ।।८३

वक्ष्यमाणन मन्त्रेण संकल्प कुरुते दृढम् ।
मयाऽऽरब्धमिमां पूजांदेवदेव जनार्दन ! ।।८४
सिद्धि प्रापय निर्विघ्नां प्रसीद परमेश्वर ! ।
ततस्तु कृतसङ्कल्पो वैष्णवः सर्वं तत्वविद् ।।८५

तुलसी के दलों की माला से भली-भाँति अलंकृत होने पर महाविष्णु को अत्यधिक प्रसन्नता होती है और इस प्रसन्नता में वे अपने भक्त को क्या कुछ नहीं प्रदान कर दिया करते हैं अर्थात् सभी कुछ दे देते हैं। इसके अनन्तर वैदिक मन्त्रों के द्वारा स्वस्ति वाचन का पाठ करना चाहिये ।७६। बुध पुरुषों को चाहिए कि पौराणिक मन्त्रों के द्वारा दिशाओं का बन्धन करना चाहिए। दिग्बन्धन का विधान निम्न भाँति से है—पूर्व दिशा में श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करें—देवकी के सुत आग्नेयी दिशा में रक्षा करें। दैत्यारि प्रभु याम्या दिशा में रक्षा करें। मधुसूदन प्रभु नैऋत्य दिशा में रक्षा करें। विदिशाओं में श्रीमान् रक्षा करें। ऊर्ध्व भाग में श्रीधर प्रभु मेरी रक्षा करें ।८०।८१। कम का स्वरूप धारण करने वाले कृपामय विश्वात्मा नीचे के भाग में मेरी रक्षा करें। इस भगवान् की पूजा के समय में जो भी सब विघ्नों के करने वाले हैं वे सभी इस समय में श्री हरिनाम रूपी अस्त्र से प्रताड़ित होकर दूर चले जावें। इस प्रकार से दिशाओं का बन्धन करके फिर हाथों को जोड़ कर विनम्र भाव से स्थित हो जावे ।८२।८३। आगे बताये जाने वाले मन्त्र से दृढ़ संकल्प करे—हे देवों के भी देव ! मेरे द्वारा आरम्भ की हुई इस आपकी पूजा को हे जनार्दन ! सिद्धि के प्राप्त करने वाली बना दीजिए। हे परमेश्वर ! आप प्रसन्न होइये और इस मेरी पूजा को समस्त विघ्नों से रहित पूर्ण करा दीजिए । समस्त तत्वों का ज्ञाता वैष्णव इस प्रकार से अपना संकल्प करके ही आरम्भ करे ।८४।८५।

अङ्गन्यासादिकं कृत्वा ध्यायेन्नाराणं हृदा ।
नवीनमेघसङ्काशं पुण्डरीकनिभेक्षणन् ।।८६
पीताम्बरधरं देव स्मितचारुतराननम् ।

कदम्बपुष्पमालाभिर्भूषित्तं सुमहाभजम् ।।८७

वर्हिवर्हकृतापीडं निबद्धशिखण्डवृतकुण्डलम् ।
वशीमधुरनादेन मोहयन्त दिशो दश ॥८८
आवृतं गोपनारीभिश्चारुवृन्दावने स्थितम् ।
एवं सञ्चिन्त्य देवेश गोविन्द सर्वकामदम् ॥८६
ततश्चाऽऽवहनं कुर्याद्भक्तिभावेन वैष्णवः ।
आवाहिताय कृष्णाय चतुर्वर्गप्रदायिने ॥६०
पाद्यार्घ्याचमनीयानि तत्र दद्याद्विचक्षणः ।
कोमलैस्तुलसीपत्रै रम्यैर्वा कुसुमैर्बुधः ॥६१

इसके उपरान्त वैष्णव पूजक को अंगन्यास नादिकर ने चाहिए और हृदय में प्रभु नारायण का ध्यान करना चाहिए । ध्यान इस प्रकार करे नूतन मेघ के समान आपका सुन्दर श्याम वर्ण है । पुण्डरीक के तुल्य अत्यन्त मनोरम नेत्र हैं । पीतवर्ण का वस्त्र धारण करने वाले हैं । भगवान् के मुख पर अतीव सुन्दर मन्द मुस्कराहट खेल रही है जिससे मुख अत्यन्त सुन्दर दिखलाई दे रहा है कण्ठ में कदम्ब के पुष्पों की माला सुशोभित है । बड़ी-बड़ी लम्बी दोनों भुजाएँ हैं । मयूरों के पिच्छों से आपका शिरोभूषण मुकुट बना हुआ है । कानों में कुण्डल धारण किये हुए हैं । वशी के सुमधुर ध्वनि से दशों दिशाओं को मोहित करने वाले हैं ।८६-८८। चारों ओर गोपांगनाओं ने घेर कर उन्हें शोभित कर रखा है । वृन्दावन की परमसुन्दर विहार भूमि में आप संस्थित हैं । इस प्रकार से भगवान् के स्वरूप का हृदय में ध्यान करे जो भगवान् देवेश गोविन्द समस्त कामनाओं के पूर्ण करने वाले हैं ।८८। इसके अनन्तर भक्ति के भाव से वैष्णव को भगवान का आवाहन करना चाहिए । जब उनका आवाहन करके मन में यह विचार लेवे कि प्रभु साक्षात् मेरे सामने कृपा करके आकर विराजमान हो गये हैं तो फिर विद्वान् पूजक पुरुष को क्रम से पाद्य-अर्घ्य आचमनीय समर्पित करनी चाहिए । बुध पुरुष का कर्त्तव्य है कि कोमल तुलसी के दलों से अथवा परम सुन्दर पुष्पों के द्वारा पूजन करे ।६०।६१।

पूजयेत्सर्वदेशं श्रीकृष्णं देवकीसुतम् ।
नमो मत्स्याय कूर्माय वराहाय नमोनमः ॥९२
नमोऽस्तु हरये तुभ्य वामनाय नमोनमः ।
नमो रामाय रामाय रामाय बलिने नमः ॥९३
नमो बुद्धाय शुद्धाय सकृपाय नमोनमः ।
नमोऽस्तु कल्किने तुभ्यं नमस्ते बहुमूर्तये ॥९४
नारायणाय कृष्णाय गोविन्दाय च शार्ङ्गिणे ।
दामोदराय देवाय देवदेवाय ते नमः ॥९५
हृषीकेशाय शान्ताय व्योमपादाय वै नमः ।
नमोऽस्तु पद्मपतये नमस्ते पद्मचक्षुषे ॥९६
अनन्ताय नमस्तुभ्यं गदाहस्ताय वै नमः ।
तार्क्ष्यध्वजाय वै तुभ्यं नमस्ते चक्रपाणये ॥९७
पद्महस्ताय वै तुभ्यमच्युताय नमोनमः ।
नमो दैत्यास्ये तुभ्यं सर्वकामप्रदायिने ॥९८

समस्त देवों के भी देव भगवान देवकी के पुत्र श्रीकृष्ण का अर्चन करना चाहिये । प्रार्थना निम्न प्रकार से करे मत्स्य रूपी भगवान के लिए नमस्कार हैं । कूर्म तथा वराह रूपी प्रभु को प्रणाम है । हरि के लिए तथा भगवान वामन रूपी के लिये वारम्वार नमस्कार है । श्रीराम —बलराम और परशुराम इन तीनों वलशाली रामावतारी प्रभुओं की सेवा में बारम्वार हमारा प्रणाम समर्पित है । बुद्ध के लिए नमस्कार है जो परम-शुद्ध स्वरूप वाले एवं कृपा से परिपूर्ण हैं । कल्कि का अवतार ग्रहण करने वाले प्रभु के लिये बार-बार नमस्कार हैं । बहुत मूर्तियों के रूप को धारण करने वाले प्रभु की सेवा मे मेरा नमस्कार समर्पित है । ।९२-९४। भगवान नारायण-कृष्ण-गोविन्द-शार्ङ्गकारी-दामोदर देवों के भी देव प्रभु के लिये मेरा नमस्कार समर्पित हैं ।९५। भगवान् हृषीकेश-शान्त स्वरूप वा - व्योम में चरण पहुँचाने वाले प्रभु की सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है । पद्मा के पति तथा पद्म के तुल्य नेत्रों वाले प्रभु के लिये नमस्कार है । अनन्त स्वरूप वाले एवं गदा हाथ में धारण

करने वाले प्रभु के लिये मेरा नमस्कार है। गरुड़ की ध्वजा रखने वाले तथा सुदर्शन चक्र धारण करने वाले प्रभु की सेवा में नमस्कार समर्पित है।९६-९७। पद्म को हाथ में धारण करने वाले तथा अच्युत प्रभु के लिये बारम्बार नमस्कार है। दैत्यों के विनाश करने वाले भगवान के लिये नमस्कार है। जो अपने परमभक्त के हृदय में रहने वाली समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले प्रभु हैं उनकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम समर्पित है।९८।

माधवाय सुरेशाय विष्णवे परमात्मने।
किरीटिने कुण्डलिने नमोऽस्तु हरये सदा ॥९९
नमो भगवते तुभ्यं वाहन गरुड़ःह्वयम्।
ॐनमोगरुड़ायेति मन्त्रैणैव विचक्षणः ॥१००
नमः शखाय चक्राय गदायै च नमोनमः।
नमः पद्माय खड्गाय नन्दकाय नमोनमः ॥१०१
इति सम्पूज्य देवेश सदारं च सवाहनम्।
सायुध च ततो मन्त्र जपेदष्टाक्षर बुधः ॥१०२
निजभक्त्या ततो जप्त्वा मन्त्रमष्टाक्षरं बुधः।
गोविन्दाय ततो दद्यान्नानानैवेद्यमुत्तमम् ॥१०३
धूपं दीपं च ताम्बूलं देवदेवाय विष्णवे।
अन्यान्यप्युपहाराणि प्रदद्याद्वैष्णवो जनः ॥१०४
यस्तु धूपं द्विजश्रेष्ठ ! चन्दनागरुवासितम्।
दद्यान्मुरारये तस्य द्रुतं सिध्यतिवाञ्छितम् ॥१०५

भगवान माधव—सुरेश-गदा हाथ में धारण करने वाले की सेवा में मेरा प्रणाम समर्पित है। भगवान विष्णु परमात्मा-गिरधारी एव कुण्डल धारी हरि भगवान को सेवा में मेरा सदा प्रणाम सादर समर्पित होता है।९९। भगवान आपके लिये नमस्कार है। आपका गरुड़ नामक वाहन है "ॐ नमो गरुड़ाय"—इस मन्त्र का उच्चारण करके विचक्षण पुरुष को गरुड़ के लिए प्रणाम करना चाहिये।१००। इसी प्रकार से अन्य भगवान के आयुधों को भी उनके नाम से मन्त्रों का

उच्चारण करते हुए प्रणाम करना चाहिए। यथा–मन्त्र इस भाँति है- ओं नमः शंखाय, ओं नमश्चक्राय, ओं नमोगदायै, ओं नमः पद्माय, ओं नमः खड्गाय, ओं नमो नन्दकाय ।१०१। इस प्रकार से दारा और वाहनों के सहित देवेश प्रभुका यजन करे। आयुधों के सहित पूजन करने के पश्चात् बुध बुध पुरुषों को आठ अक्षरों वाला 'श्रीकृष्णः शरणं मम'– इस मन्त्र का जाप करना चाहिए ।१०२। अपने हृदय के भक्तिभाव से अष्टाक्षर मन्त्र का जप करके फिर बुध पुरुष भगवान् गोविन्द के लिए अनेक उत्तम नैवेद्य समर्पित करे ।१०३। वैष्णवजन का कर्त्तव्य है कि देवों के भी देव भगवान के लिए धूप दीप ताम्बूल तथा अन्य भी पूजा के आवश्यक उपहार समर्पित करे ।१०४। हे द्विज श्रेष्ठ ! भगवान् मुरारि के लिए जो भक्त चन्दन और अगरू से सुवासित धूप निवेदित करता है उसका मनोवांछित फल बहुत ही शीघ्र सिद्ध हो जाया करता है ।१०५।

धूप यच्छति यो विप्र ! हरये धृतवासितम ।
सगच्छेद्विष्णुभवनं विमुक्तः पापकोटिभि ।।१०६
नारायणाय यो धपं दद्याद्गुग्गुलुवासितम् ।
स याति परमं धाम दुर्लभं यत्सुररपि ।।१०७
धृतेन दीपं यो दद्यात्तिलतैलेन वा पुनः ।
निमेषात्सकमतस्य पापं हरति केशवः ।।१०८
कपूरवासितं यस्तु ताम्बूलं चक्रपाणये ।
दद्यात्तस्य द्विजश्रेष्ठ ! मुक्तिर्भवति जैमिने ! ।।१०९
यस्तुयच्छति ताम्दूलंघदिरेण समन्वितम् ।
इहभुक्त्वाऽखिलान्भोगानन्तेयातिहरेःपदम् ।।११०
षष्ठीमधुरिकायुक्तं तथा जातिफलादिभिः ।
ताम्बूलहरये दत्वा स्वर्गमाप्नोति मानवः ।।१११

हे विप्र ! जो कोई वैष्णव भक्तजन हरि की सेवा में घृत में वासित धूप निवेदित करता है वह करोड़ों पापों से मुक्त होकर विष्णु के भवन में गमन करता है ।१०६। जो नारायण प्रभु की सेवा में गूगल से

सुवासित धूप समर्पित करता है वह उस परात्पर परमधाम की प्राप्ति किया करता है जो सुरों को भी अत्यन्त दुर्लभ होता है।१०७। जो घृत का दीपक बना कर अथवा तिलों के तेल का दीपक बना कर भगवान् की सेवा में समर्पित किया करता है उसके सम्पूर्ण पापों के समूह को केशव भगवान एक निमेष मात्र के समय में ही तुरन्त हरण कर लेते हैं।१०८। जो कर्पूर से सुवासित ताम्बूल का बीड़ा चक्रपाणि भगवान् को निवेदित करता है हे द्विज श्रेष्ठ ! हे जैमिन ! उसकी अवश्य ही मुक्ति हो जाया करती है।१०९। जो खदिर से संयुत ताम्बूल की भेंट भगवान को किया करता है वह यहाँ पर समस्त प्रकार के सुखों का उपभोग करके अन्तकाल में सीधा श्रीहरि के निवास स्थान मन्दिर में प्राप्त होता है।११०। षष्ठी मधुरिका से युक्त तथा जाती फल आदि अन्य समुचित उपकरणों से समन्वित ताम्बूल की बीटिका भगवान् की सेवा में समर्पित किया करता है वह मानव सीधा स्वर्ग लोक का निवास प्राप्त करता है।१११।

शंखे कृत्वा तु पानीयं कुर्याद्विष्णुप्रदक्षिणम् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेणजैमिनेवैष्णवोजनः ॥११२
जनार्दनः जगद्वन्धो शरणागतपालकः ! ।
त्वद्दासदासदासत्वं दासस्य देहि मे प्रभो ! ॥११३
मन्त्रेणऽनेन यः कुर्यान्नारायणप्रदक्षिणम् ।
तस्य पुण्यफलवच्मि सक्षेपाच्छृणुजैमिन ॥११४
यावत्पादं नरो भक्त्या गच्छेद्विष्णुप्रदक्षिणे ।
तावत्कल्पसहस्रानि विष्णुनासह मोदते ॥११५
हरिप्रदक्षिणे यावत्पद गच्छेच्छनैः शनैः ।
पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥११६
प्रदक्षिणाकृत्य सर्वं संसारेयत्फलभवेत् ।
हरि प्रदक्षिणाकृत्य तस्मात्कोटिगुणंफलम् ॥११७
अङ्गप्रदक्षिणं कुर्याद्यस्तु नारायणव्रतः ।
सोऽपि तत्फलमाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥११८

शंख में जल भर कर भगवान विष्णु की परिक्रमा करे, हे जैमिने ! प्रदक्षिणा करने के समय में निम्न लिखित मन्त्र का उच्चारण वैष्णवजन को करते रहना चाहिये ।११२। वह मन्त्र यह है—'हे जनों के दुःखों का अर्दन करने वाले ! हे जगत के बन्धों ! आप तो अपनी शरणागति में आ जाने वाले प्राणी का पूर्ण रूप से पालन करने वाले हैं । मैं आपके दासों के दास जो है उनके भी दास होने का याचक हूँ सो हे प्रभो ! मुझ दास को आप यह प्रदान करने की कृपा कीजिये ।११३। इस मन्त्र का मुख से समुच्चारण करते हुए जो नारायण प्रभु की प्रदक्षिण करता है उसका वहुत अधिक पुण्य फल होता है । हे जैमिने ! मैं उसे अब बतलाता हूँ, तुम उसका संक्षेप में ही श्रवण करो ।११४। भक्तिभाव से मनुष्य भगवान विष्णु की परिक्रमा करने में धीरे-धीरे जितने भी कदम चलता है उसके एक-एक पद के चलने में मनुष्य एक-एक अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त किया करता है ।११५। जितने कदम प्रदक्षिणा करते हुए भक्त चलता है उतने ही सहस्र कल्पों तक भगवान विष्णु के धाम में उनके ही साथ प्रसन्नता से निवास प्राप्त किया करता है । ।११६। सम्पूर्ण संसार की प्रदक्षिणा करने में जो पुण्य फल प्राप्त होता है उससे भी करोड़ गुना अधिक श्रीहरि की प्रदक्षिण करने में फल प्राप्त हुआ करता है ।११७। जो नारायण के समक्ष में शङ्ख की प्रदक्षिणा करता है वह पुरुष भी उसी फल को प्राप्त किया करता है । अन्य अधिक भाषण करने से क्या लाभ है ।११८।

विधिहीनामपि श्रेष्ठां पूजां श्रीकमलापतेः ।
यः कुर्याद्भक्तिभावेनसोपिस्यात्केशवप्रियः ।।११९
विधिज्ञो विधिना विष्णुमभ्यर्च्य लभतेफलम् ।
यथोक्तविधिनाविप्रनैवेद्यैर्बहुभिःप्रभो ! ।।१२०
पूजितोऽपि न तुष्टः स्याद्यदि भक्तिर्नतिष्ठति ।
यस्य वै यावती भक्तिर्देवदेवे जनार्दनः ।।१२१
तावदेव फलावाप्तिस्तस्य नास्त्यत्र संशयः ।
अभक्त्या या हरेःपूजा क्रियते भुवि मानवैः ।।१२२

सा पूजा ब्राह्मणश्रेष्ठ ! पूजाकाले भवेत्किल ।
ज्ञानमूलं हरेर्भक्तिर्भक्तिमूलं जगत्पतेः ।।१२३
पूजःमोक्षद्रुमोत्पत्तौ मूलमाराधनं हरेः ।
अल्पमात्रमपि प्राज्ञ ! श्रद्धया कुरुते हि यत् ।।१२४
तदक्षयं भवेत्सर्वं श्रद्धायुक्ताखिलाक्रिया ।
भक्त्या यः पूजयेद्विष्णुमपि वा वारिमात्रतः ।
सस्थानं लभते विष्णोर्यतो भक्तवशो हरिः ।।१२५
असारमेतद्भुवनं समस्तं सारं हरेः पूजनमेव विप्र ! ।
तस्मान्मनुष्यो निजमङ्गलैषी
भक्त्या यजेत्कृष्णमनन्तमूर्तिम् ।।१२६

जो कोई भी पुरुष भगवान श्री कमला पति की परम श्रेष्ठ पूजा विधि से हीन भी भक्ति के भाव से किया करता है वह भी भगवान केशव का अभिप्राय होता है ।११९। विधि-विधान का ज्ञाता पुरुष भगवान् विष्णु का विधि से अभ्यर्चन करके हे प्रभो ! यथोक्त विधि से बहुत से नैवेद्यों को समर्पित करके फल की प्राप्ति करता है ।१२०। यदि मनुष्य के हृदय में भक्ति का भाव स्थित नहीं होता है तो चाहे कैसी भी पूजा क्यों न की जावे तो भी वे कभी प्रसन्न नहीं हो सकते । जिसकी भी हृदय में जितनी भी भक्ति का भाव होता है और देव देव में जनार्दन में जितनी हार्दिक निष्ठा होती है उसको उतनी फल की भी प्राप्ति हुआ करती है । इस विषय में कुछ भी संशय नहीं है । जो मनुष्यों के द्वारा विना भक्ति की भावना के इस भूमण्डल में पूजार्चना की जाती है हे ब्राह्मणों में परम श्रेष्ठ ! वह पूजा के ही काल में होती है । श्रीहरि भगवान की भक्ति ज्ञान के मूल वाली हुआ करती है और जगत्पति का मूल ही भक्ति होती है ।१२१-१२३। पूजा रूपी तथा मोक्ष रूपी द्रुम की उत्पत्ति में हरि भगवान का समाराधन करना ही मूल होता है । जब मूल ही नहीं है तो फिर कुछ भी नहीं है । हे प्राज्ञ ! चाहे बहुत ही थोड़ा सा भी किया जावे वह श्रद्धा के सहित ही होना चाहिये । बिना श्रद्धा के पूजा करने से कुछ भी लाभ

नहीं होता है। जो श्रद्धा समन्वित स्वल्प मात्र भी किया जाता है वह सब श्रद्धा युक्त क्रिया अक्षय हुआ करती है। चाहे कुछ भी अन्य पूजा के उपकरण एवं उपचार सुलभ न हों और हृदय में भक्ति का भाव सुदृढ़ हो उसके द्वारा जो भी विष्णु का पूजन केवल जल मात्र से भी करे तो उसका ऐसा महान् फल होता है कि वह विष्णु के संस्थान को प्राप्त किया करता है क्योंकि श्री हरि भगवान तो भक्त के सर्वदा वंश में रहा करते हैं।१२४।१२५। यह समस्त भुवन सार से शून्य है अर्थात् इसके सभी कर्म कोई भी ठोस कल्याण के प्रदान करने वाले नहीं है जिनसे यह आत्माका वास्तविक कल्याणहो। हे विप्र ! इसमें श्री हरि का समर्चन ही परम सार है। इसलिए जो मनुष्य अपने मगल की इच्छा रखने वाला है उसका कर्त्तव्य है कि भक्ति की भावना से अनन्त मूर्ति भगवान श्रीकृष्णका यजन करे।१२६।

विभिन्न महीनों में नाना पुष्पादि से हरिपूजा

ज्येष्ठे मासि द्विजश्रेष्ठ ! भगवन्तं जनार्दनम्।
पूजयेद्भक्तिभावेन जलैः संस्नाप्यशीतलैः। १
उद्वर्तनं च दातव्यं सुगन्ध्यामलकं तथा।
तैल सुगन्ध हरये ग्रीष्मकाले दिने दिने ।।२
सुवासिते शीतले च मन्दिरेऽतिमनोरमे।
प्रत्यह कमलाकान्तं स्थापयेज्जनमण्डपे ।।३
न रौद्रदेशे विप्रेन्द्र ! सधूमे रन्ध्रनालये।
न सूतिका गृहे चैव स्थापयेत्कमलापतिम् ।।४
चामरैर्वीजयेच्छ्वेतैः सुदीर्घैः कमलापतिम्।
ज्येष्ठे मासि द्विजश्रेष्ठ ! सुप्रीतः किं न यच्छति ।।५
मयूरपुच्छव्यजनैर्निदाघे वाजितो हरिः।
ददात्यभिमतं सर्वं मानिरेणैव सत्तम ! ।।६

तालवृन्तकवातेन पवित्राम्बरवायुना ।
यैर्ग्रीष्मे वीज्यते विष्णुस्ते सर्वे स्वर्गगामिनः ।।७

महा महर्षि श्री व्यास देव ने कहा हे द्विज श्रेष्ठ ! ज्येष्ठ ! मास में भगवान् जनार्दन प्रभु का शीतल जलों के द्वारा स्नान करा कर पूर्ण भक्ति के भाव से अभ्यर्चन करना चाहिए । श्री हरि के अङ्गों से परम सुगन्धित उद्वर्त्तन (उबटन) समर्पित करना चाहिए तथा आमलक (आँवला) फलों का उद्वर्त्तन लगावे । ग्रीष्म काल में प्रतिदिन श्रीहरि भगवान को लिये सुन्दर गन्ध से समन्वित तेल भी अर्पित करना चाहिए ।१।२। इत्रादि के द्वारा भली भाँति सुवास से समन्वित-शीतल और अत्यन्त मनोरम मन्दिर मे प्रतिदिन जन मण्डप में कमला कान्त प्रभु को संस्थापित करना चाहिए ३। हे विप्रेन्द्र ! कमल को स्वामी भगवान को किसी भी रौद्र भाग में, धुंआ से युक्त स्थल में, रन्धनालय (रसोई) में और बालप्रसव होने वाले गृहमें कभी भी स्थापित नहीं करना चाहिए ।४। सुदीर्घ और श्वेत वर्ण वाले चमरों कमलापति प्रभु को मस्तक पर वीजन करे अर्थात् चमर ढुरावे । हे द्विज श्रेष्ठ ! इस तरह से ज्येष्ठ मास में शीतल एव सुगन्धित सुरम्योपचारों द्वारा निषेवित प्रभु प्रसन्न होकर अपने सेवक भक्त जव को क्या नहीं दे दिया करते हैं अर्थात् सभी कुछ प्रदान कर देते हैं ।५। मोर पखों के व्यजनों से ग्रीष्म ऋतु में वीजित किये हुए श्री हरि सम्पूर्ण अभिमत पदार्थ वहुत ही शीघ्र प्रदान कर दिया करते हैं ।६। जो भक्तजन ग्रीष्म काल म ताल वन्तक की वायु द्वारा तथा पवित्राम्बर की वायु के द्वारा भगवान् का वीजन किया करते हं वे सभी भक्त स्वर्ग को गमन करने वाले होते हैं ।७।

यो गात्रलेपनं कुर्यात्सुगन्धीयैश्च कर्दमैः ।
ग्रीष्मे हरि चन्दनैश्च स विशेन्मावगींतनुम् ।।८
उष्मागमे द्विजश्रेष्ठ ! स मुक्तो नात्रसंशयः ।
प्रफुल्लकुसुमोद्याने तुलसीकानने तथा ।।९
सन्ध्यायां स्थापयेद्विष्णु देशे धीरसमीरणे ।

स्वामिः पादानुगानां ये विष्णुरपैकृत ।।१०

ज्येष्ठमासि स विज्ञ यो ह्यश्वमेधसहस्रकृत् ।
यस्तु मुक्तावलिं दद्याद्ग्रीष्मेवै श्रीपतेर्जनः ।।११
भूपशलत्वहरिस्तस्म तच्छेज्जन्मनिजन्मनि ।
यस्तुमण्डयति ग्रीष्मे श्रीकृष्ण मणिमालया ।।१२
तस्य पुण्यफलं विप्र ! वदतो मे निशामय ।
यावद्ब्रह्मा सृजन्येतज्जैमिने ! सकलं जगत् ।।१३
तिष्ठेद्विष्णुपुरे तावन्मणिमालाविभूषितः ।
सुवर्णाभरणर्यस्तु रजताभरणैस्तथा ।।१४

ग्रीष्म काल में सुन्दर गन्ध वाले कर्दमों के द्वारा श्री हरि भगवान का अंगलेपन जो कोई भी भक्त करता है और चन्दनों के द्वारा जो शास्त्रों का प्रलेपन करता है वह अन्त समय में भगवान माधव के तनु में ही प्रवेश प्राप्त कर लिया करता है। हे द्विज श्रेष्ठ ! उष्मा के समागम काल में ऐसी सेवा करने वाला भक्त मुक्त ही हो जाता है—इसमें लेश-मात्र भी संशय नहीं है। ग्रीष्म ऋतु में सन्ध्या के समय में किसी विक-सित पुष्पों वाले उत्तान में तथा तुलसी के सघन वन में मीर समीर से समन्वित देश में भगवान विष्णु की स्थापना करनी चाहिये। जिस भक्त ने ज्येष्ठ मास में पाटला के पुष्पों की मालाओं के द्वारा भगवान विष्णु को समलंकृत किया है उसको वही फल प्राप्त हुआ करता है जो एक सहस्र अश्वमेध यज्ञों के करने वाले का होता है। जो भक्तजन ग्रीष्म काल में भगवान श्रीपति की सेवा में मुक्तावलि समर्पित किया करता है उस अपने सेवक भक्तजन को हरि जन्म जन्म में भूपाल बनने का पद प्रदान किया करते हैं और जो श्रीकृष्ण भगवान को ग्रीष्म काल में मणियों की मालाओं के द्वारा मण्डित किया करता है हे विप्रवर ! उस को पुण्य फल होता है उसे मैं आपको बतलाता हूँ आप श्रवण करो। हे जैमिने ! जिस समय पर्यन्त ब्रह्मा इस सम्पूर्ण जगत का सृजन किया करते हैं तब तक वह मणियों की मालाओं से विभूषित होकर विष्णु-पुर में संस्थित रहा करता है। सुवर्ण के आभूषणों से तथा रजत के

आभरणों से जो श्रीकृष्ण का मण्डन करता है उसको भी वही पुण्यफल प्राप्त होता है ।८-१४।

कृष्णं मण्डयति ग्रीष्मे सोऽपि तत्फलमाप्नुयात् ।
विचित्रं यस्तु पर्यङ्कं सगण्डूकं प्रयच्छति ।।१५
हरये देवदेवाय न स दुःखी कदाचन ।
ग्रीष्मकाले न देयानि गुरूणि वसनानि च ।।१६
हरये ब्राह्मणश्रेष्ठ ! देयं तन्वंशुकं शुचि ।
यस्त्वच्युफलैर्दिव्यैः सुगन्धैः पूजयेद्धरिम् ।।१७
अन्ते शक्रपुरं गत्वा स पिबेदमृतं मुदा ।
प्रियालानां फलैर्दिव्यैर्योऽर्चयेत्कमलापतिम् ।।१८
सोऽपि तत्फलमाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितैः ।
निदाघे हरये यस्तु यवागूमतिशीतलाम् ।।१९
नानाव्यञ्जनसंयुक्तामर्पयेद्वैष्णवो जनः ।
आषाढेमासि विप्रेन्द्र ! देवदेवं जगद्गुरुम् ।।२०
दधिभिः स्नापयित्वा च पूजयेभ्दक्तितो बुधः ।
मातुः पयोधरपयः पुनस्तेन न पीयते ।।२१

ग्रीष्म काल में भूषणों से मण्डन करने का भी यह फल होता है कि वह विष्णुपुर में संस्थिति प्राप्त करता है जो भक्त गण्डूप के सहित विचित्र पर्यंक को भगवान् की सेवा में अर्पित करता है वह जो देवों के देव हरि के लिए पर्यंक देता है संसार में कभी दुःखित नहीं होता है। ग्रीष्म काल में भलकर भी भारी और मोटे वस्त्र भगवान् को अर्पित नहीं करने चाहिए ।१४।१६। ग्रीष्म ऋतु में तो श्री हरि के लिये हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! बहुत बारीक और शुचि वस्त्र समर्पित करना चाहिए। जो अच्युत दिव्य और सुगन्ध समन्वित फलों के द्वारा श्री हरि का पूजन करता है वह अन्त में इन्द्र के पुर में जाकर आनन्द पूर्वक अमृत का पान करता है। जो प्रियालों के दिव्य फलों के द्वारा कमला पति का समर्चन करता है वह भी उसी पुण्य फल की प्राप्ति किया करता है। बहुत अधिक अन्य भाषणों के करने से क्या लाभ है ? ग्रीष्म के समय में जो

वैष्णवजन नाना प्रकार के व्यञ्जनों से युक्त अति शीतल यवागू श्री हरि के अर्पित करता है उसको भी वैसा ही पुण्य का फल प्राप्त होता है। हे विप्रेन्द्र ! जो बुध भक्तजन आषाढ़ मास में देवों के भी देव जगत् के गुरु भगवान् का अतीव भक्ति की भावना से दधि से स्नपन कराकर पूजन किया करता है वह फिर दुबारा जन्म ग्रहण करके संसार में अपनी माता का स्तन का दूध नहीं पिया करता है।१७-२१।

घनागमे घनश्यामं कदम्बकुसुमैर्हरिम् ।
आराधयति विप्रर्षे ! परां गतिमवाप्नुयात् ॥२२
कदम्बपुष्पमालाभिर्मण्डप मण्डयेन्नरः ।
यस्तस्य ब्राह्मणश्रेष्ठ ! वाजिमेधफलं भवेत् ॥२३
सुगन्धैः केतकीपुष्पैः पूजितः कमलापतिः ।
सर्वं दुःखं हरत्येव मानवानां द्विजोत्तम ! ॥२४
पनसानां फलैर्दिव्यैः सुपक्वैर्घृतमिश्रितैः ।
पूजितो भगवान्विष्णुर्दद्यादैश्वर्यमुत्तमम् ॥२५
आषाढेमासि दध्यन्नं हरये प्रतिवासरम् ।
श्रद्धया वैष्णवो दद्यान्मुक्तिमिच्छन्द्विजोत्तम ॥२६
कृष्णाय नवनीत यो ददाति वैष्णवो जनः ।
विशुद्धः सकलैः पापैर्ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥२७
शेफालिकाप्रसूनैश्च यूथिकाकुसुमैस्तथा ।
योऽर्चयेत्परमात्मानं स गच्छत्परमं पदम् ॥२८

मेघों के समागम के समय में घनश्याम श्री हरि भगवान् की आराधना कदम्ब के कुसुमों से हे विप्रर्षिवर ! जो भी भक्त किया करता है वह परम श्रेष्ठ गति को प्राप्त किया करता है।२२। हे ब्राह्मणों में मण्डित करता है उस को वाजिमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है।२३। हे द्विजोत्तम ! परम सुगन्धित केतकी के पुष्पों से समर्चित कमला के पति मानवों के सभी प्रकार के दुःखों का निश्चय ही आहरण कर दिया करते हैं।२४। पनस के परम दिव्य-सुपक्व एवं घृत से

मिश्रित फलों के द्वारा पूजित हुए भगवान् विष्णु अपने सेवक भक्त को उत्तम ऐश्वर्य का प्रदान किया करते हैं ।२५। हे द्विजोत्तम ! आषाढ़ मास में प्रतिदिन मुक्ति की इच्छा रखने वाले वैष्णव को परम श्रद्धा के भाव से हरि को दधि और अन्न का समर्पण करना चाहिए ।२६। जो वैष्णव जन श्रीकृष्ण भगवान् की सेवा में नवनीत अर्पित करता है वह सब प्रकार के पापों से विशुद्ध होकर सीधा ब्रह्म लोक को चला जाया करता है ।२७। जो भक्त शेफालिका अथवा यूथिका के पुष्पों के द्वारा परमात्मा की अर्चना किया करता है वह परम पद को गमन किया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।२८।

प्रफुल्लमालतीपुष्पैः सुगन्धैर्योऽर्चयेद्धरिम् ।
तत्पुण्येन समं पुण्यं न किञ्चिद्भविता द्विज ! ।।२९
कदम्बपुष्पैर्बकुलैर्जगद्बन्धुं जनार्दनम् ।
अर्चयन्सकलं कामं प्राप्नोति भुवि मानवः ।।३०
महामहाप्रसूनैश्च तथा कुरुबकैर्हरिम् ।
प्रफुल्लैः पूजयेद्यस्तु तस्य तुष्टः सदा हरिः ।।३१
सरीयकैश्च यो विष्णुं प्रसू पुष्पैश्च योऽर्चयेत् ।
करवीरप्रसूनैश्च स याति हरिसान्निधिम् ।।३२
श्रावणे चैव यो दद्याल्लाजान्घृतसमन्वितान् ।
हरये तस्य विप्रर्षे ! गृहे श्रीः सर्वतोमुखी ।।३३
भाद्रे मासि द्विजश्रेष्ठ ! नारायणमनामयम् ।
श्रद्धया पूजयेत्प्राज्ञश्चतुर्वर्गप्रदायकम् ।।३४
निर्मिते नूतनागारे सर्वोपद्रववर्जिते ।
स्थापयेत्पुण्डरीकाक्षं भगवन्तं जनार्दनम् ।।३५

खिले हुए सुगन्धित मालती के पुष्पों से जो हरि का अभ्यर्चन करता है हे द्विज ! इस पुण्य के तुल्य अन्य कोई भी संसार में पुण्य होता ही नहीं है अर्थात् यह सबसे महान् पुण्य है ।२९। इस भूमण्डल में जगद्बन्धु जनार्दन की कदम्ब के तथा बकुल के कुसुमों से अर्चना करता हुआ मानव समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर लेता है ।३०। बड़े २

पुष्पों के द्वारा तथा कुरु वक के खिले हुए पुष्पों से जो श्रीहरि को पूजित करता है उससे श्री हरि सदा ही परम प्रसन्न हुआ करते हैं ।३१। जो सैरीयक पुष्प और करवीर के कुसुमों से श्री हरि का यजन करता है वह निश्चय हरि की सन्निधि को प्राप्त कर लेता है ।३२। हे विप्रर्षे ! श्रावण के मास में जो कोई श्री हरि के लिए घृत से सयुत लाजाओं (खीलों) को अर्पित करता हैं उसके घर में सदा सर्वतोमुखी श्री विद्यमान रहा करती है ।३३। भाद्रप्रद मास में हे द्विज श्रेष्ठ ! जो भी भक्त अनामय भगवान् नारायण की श्रद्धा से पूजा किया करता है उस प्राज्ञ पुरुष को चारों वर्ग का प्रदान करन वाला वह पूजन हुआ करता है अर्थात् धर्म अर्थ काम और मोक्ष सबकी प्राप्ति उसे हो जाती है ।३४। समस्त उपद्रवों से रहित निर्माण किये हुए नवीन मन्दिर या घर में भगवान् पुण्डरीकाक्ष जनार्दन की स्थापना करनी चाहिए ।३५।

दशंश्चमशकश्चाऽपि प्रकीर्णं मक्षिकादिभिः ।
हरिं पुरातनागारे स्थापयेन्नहि मानवः ।।३६
सकर्दमे पतद्द्वारे गलभ्दित्तौ गृहे तथा ।
हरिं न स्थापयेत्प्राज्ञो वर्षासु परमेश्वरम् ।।३७
विष्णवालयेद्विजश्रेष्ठग्रकुर्याद्यस्तुमानवः ।
चन्द्रातपंविचित्रंचचन्द्रलोकंसगच्छति ।।३८
रात्रौनानाविधैर्धूपैमंन्दिरेजगतीपतेः ।
दशांश्च मशकांश्चैव पूजाकाले निवारयेत् ।।३९
मसारिकाभिः प्रावृत्य मञ्चशायिनमच्युतम् ।
प्रावृषि स्थापयेद्विष्णुं निशायां दिव्यमन्दिरे ।।४०
कह्लारपत्रैर्देवेशं सुगन्धैर्नूतनैस्तथा ।
मुमुक्षुः पूजयेन्मर्त्यो भाद्रे मासि दिने दिने ।।४१
न भाद्रे केतकीपुष्पैः पूजितव्यो जनार्दनः ।
यतो भाद्रपदे मासि केतकीस्यात्सुरासमा ।४२

मशक और मक्खी आदि कीटों से प्रकीर्ण किसी भी पुरातन आगार में श्री हरि की स्थापना मनुष्य को कभी भी नहीं करनी चाहिए ।३६। वर्षा की ऋतु में प्राज्ञ पुरुष को ऐसे घर में परमात्मा श्री हरि को भूल कर भी कभी सस्थापित नहीं करना चाहिए जिसमें कीच आदि हो या गली हुई भीतों वाला और गिरने वाले दरवाजों से युक्त हो एवं जीर्ण-शीर्ण और पुराना हो ।३७। हे द्विजश्रेष्ठ ! जो मानव विष्णु के देवालय में विचित्र चन्द्रातप की रचना कराता है वह चन्द्रलोक में गमन किया करता है ।३८। पूजा के समय में रात्रि में जगत् के स्वामी भगवान् का मन्दिर में नाना प्रकार की धूपों से दश और मशकों को निवारित कर देना चाहिए ।३९। वर्षा के दिनों में मञ्च पर शयन करने वाले प्रभु विष्णु को मसारिका (मशहरी) से प्रावृत करके रात्रि के समय में दिव्य मन्दिर में संस्थापित कराकर फिर उनको शयन कराना चाहिये ।४०। भाद्र मास में प्रतिदिन मुक्ति की इच्छा वाले पुरुष को सुगन्धित एवं नूतन कह्लार के पत्रों से देवेश्वर का अर्चन करना चाहिए ।४१। भाद्रपद मास में भूलकर भी जनार्दन प्रभु की केतकी के पुष्पों से कभी पूजा नहीं करनी चाहिए क्योंकि भादों के महीने में केतकी को सुरा के समान कहा गया है ।४२।

पक्वैस्तालफलैर्दिव्यैर्योऽर्चयद्यदुनन्दनम् ।
गर्भवासमहादुःख स भूयो लभते न च ।।४३
संयुक्त घृतदुग्धाभ्यां पक्वतालं मुरारये ।
यो दद्याच्छ्रद्धया मर्त्यःस गच्छेन्मंदिरं हरेः ।।४४
भाद्रे मासि द्विजश्रेष्ठ ! हरये तालपिष्टकम् ।
सघृत वैष्णवो दद्यात्कैवल्यप्राप्तिहेतवे ।।४५
मासि भाद्रपदे विप्र ! न कुर्याच्छाकभक्षणम् ।
न रात्रौ भोजनं कुर्यान्मुमुक्षुर्वैष्णवोजनः ।।४६
आश्विनेमासि विप्रेन्द्र केशवं क्लेशनाशनम् ।

पूजयेन्मधुरैस्तोयैः पवित्रैश्चसुगन्धिभिः ।।४७

यत्तोयं दीयते विप्र ! पूर्वाह्णे हरये जनैः ।
पीयूषमिव तत्तोयं गृह्णाति कमलापतिः ॥४८

मध्याह्ने दीयते यच्च तोयं वै चक्रपाणये ।
तत्तोयमिव वेत्तव्यं तद्गृह्णाति द्विजोत्तम ॥४९

जो कोई भक्त पके हुए और दिव्य ताल के फलों से यदुनन्दन की अर्चना करता है वह पुरुष गर्भ वास के दुःख को दुबारा प्राप्त नहीं करता है ।४३। जो मनुष्य घृत और दुग्ध से संयुक्त पका हुआ ताल का फल भगवान् मुरारि की सेवा में समर्पित किया करता है और श्रद्धा पूर्वक भेट करता है वह मनुष्य सीधा हरि के मन्दिर में चला जाया करता है ।४४। हे द्विज श्रेष्ठ ! भादों के महीनों में जो वैष्णव ताल का पिष्टक घृत के सहित हरि को समर्पित करता है उससे कैवल्य की प्राप्ति होती है । भाद्रपद मास में हे विप्र ! शाक का भक्षण नहीं करे और मुमुक्षु वैष्णवजन है उसे रात्रि में भोजन भी न करे ।४५-४६। हे विप्रेन्द्र ! आश्विन मास में पवित्र सुगन्धित और मधुर जलों से क्लेशों के नाश करने वाले केशव का पूजन करना चाहिए ।४७। हे विप्र ! पूर्वाह्न में भक्तों के द्वारा जो जल हरि को अर्पित किया जाता है उसको कमलापति अमृत के समान ग्रहण किया करते हैं और जो मध्याह्न के समय में जल चक्रपाणि को दिया जाता है उसको प्रभु जल की ही भाँति ग्रहण किया करते हैं - ऐसा ही समझना चाहिए ।४८-४९।

अपराह्णे च यत्तोय गोविन्दाय प्रदीयते ।
तत्तोयं रक्ततुल्यं स्यान्न गृह्णाति ततो हरिः ॥५०

अतएव द्विजश्रेष्ठ ! पूर्वाह्णे हरिमर्चयत् ।
समस्त लभते काम केशवस्याऽनुकम्पया ॥५१

एकवस्त्रेण विप्रेन्द्र ! न कुर्यात्पूजनं हरेः ।
कुर्याद्वाऽपि तथा पूजां न गृह्णाति च केशवः ॥५२

अधौतेन च वस्त्रेण यः पूजां कुरुते हरेः ।
सफला सा च पूजा स्यान्न च विष्णुः प्रसीदति ॥५३

यैस्त्वबद्धशिखैः पूजा क्रियते चक्रिणो जनैः ।
पूजाफलं नाऽऽनुवन्ति बलिग्राह्या च सा भवेत् ॥५४
असंस्कृतगृहे पूजा क्रियते जगतीपतेः ।
सा पूजा ब्राह्मणश्रेष्ठ ! बलिग्राह्या भवेत्खलु ।५५
स्नानं देवार्चनं चैव दानं च पितृपूजनम् ।
तिलकेन विना विप्र ! कुरुते न विचक्षणः ॥५६

अपराह्न काल में जो जल गोविन्द के लिये प्रदत्त किया जाता है वह जल रक्त के समान ही होता है अतएव उसे श्रीहरि भगवान कभी भी ग्रहण नहीं किया करते हैं ।५०। अतएव हे द्विजश्रेष्ठ ! पूर्वाह्न में ही श्री हरि का पूजन करना चाहिए । इसका फल यह होता है कि वह पूजन भक्त केशव प्रभु की कृपा से समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लिया करता है ।५१ हे विप्रेन्द्र ! एक वस्त्र धारण करके कभी भी श्रीहरि का पूजन नहीं करना चाहिए । यदि कोई एक ही वस्त्र से अर्चन किया भी करता है तो उस पूजा को भगवान् केशव कभी ग्रहण नहीं किया करते हैं ।५२। विना धुले हुए वस्त्र को धारण करके जो श्रीहरि का यजन किया करता है वह उसकी पूजा विफल ही होती है और उससे भगवान् विष्णु कभी प्रसन्न नहीं हुआ करते हैं ।५३। जो जन अपनी शिखा को बद्ध न करके ी भगवान् की पूजा किया करते हैं वे कभी भी पूजा करने का फल प्राप्त नहीं करते है और वह पूजा बली ग्राह्य होती है ।५४। हे विप्र श्रेष्ठ ! बिना संस्कार किये हुए घर में यदि जगती के स्वामी की पूजा की जाती है तो वह पूजा भी बली ग्राह्य होती है ।५५। स्नान-देवों का अभ्यर्चन-दान और पितृगणों का तर्पण-पूजन आदि ये सदनुष्ठान हे विप्र ! विना तिलक किये हुए ही कोई भी विचक्षण पुरुष नहीं किया करते हैं ।५६।

तिलकान्यगृहीत्वा यत्पुण्यकर्म विधीयते ।
भस्मीभवति तत्सर्वं कर्ता च नारकीभवेत् ॥५७
शंखचक्रगदापद्मैरङ्कितं यस्य दृश्यते ।
शरीरं ब्राह्मणश्रेष्ठ ! विज्ञेयः सोऽच्युतः स्वयम् ॥५८

यो लिखेद्दक्षिणेबाहौ शंखपद्मे च वैष्णवः ।
सव्ये चक्रं गदां चैव सविष्णुर्नाऽन्नसशयः ।।५९
पङ्कजं दक्षिणे बाहौ शंखस्योपरि यो लिखेत् ।
पातकं सकल तस्य क्षणादेव तु नश्यति ।।६०
चक्रोपरि गदाँ यस्तु लिखेत्सव्ये भुजे द्विज ! ।
तंवन्दन्तेद्विजश्रेष्ठ ! शक्राद्याअपिनिर्जरा: ।।६१
मुरारिपादयुग्मं च स्वललाटे लिखेद्बुधः ।
पापात्माऽपि च तंदृष्ट्वामुक्तोभवति पातकात् ।।६२
अष्टाक्षरं महामन्त्रं मत्स्यं कूर्मं च यो हृदि ।
लिखेत्स वैष्णवश्रेष्ठः पुनाति भुवनत्रयम् ।।६३

मस्तक पर तिलक न लगाकर ही जो कुछ भी पुण्य कर्म किया जाता है वह सभी कर्मानुष्ठान भस्मीभूत हो जाया करता है और करने वाला पुरुष नरकगामी हो जाता है। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! जिसका शरीर शख-चक्र-गदा और पद्मों से अंकित दिखलाई देता है अर्थात् चन्दनादि से चिन्हित होता है उसे साक्षात् विष्णु का ही स्वरूप समझना चाहिए ।५७-५८। जो वैष्णव जन दक्षिण बाहु पर शंख और पद्मों को अंकित किया करते हैं और सव्य (बाम) बाहु पर चक्र तथा गदा का चिन्ह लिखा करते हैं वह विष्णु ही समझना चाहिए इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ।५९। जो दाहिनी बाहु पर शंख के ऊपर पंकज को लिखता है उसके सम्पूर्ण पातक एक ही क्षण में तुरन्त नष्ट हो जाया करते हैं ।६०। हे द्विज ! जो सव्य बाहु पर चक्र के ऊपर गदा का चिन्ह बनाया करता है उसकी वन्दना तो इन्द्रादि देवगण भी किया करते हैं ।६१। जो भक्तजन भगवान् मुरारि के दोनों चरणों को अपने ललाट पर लिखता है उसका दर्शन करके पापात्मा पुरुष भी अपने किये हुए पापों से मुक्त हो जाया करते हैं ।६२। जो अष्टाक्षर महामन्त्र को तथा मत्स्य और कूर्म को अपने हृदय पर लिखता है वह वैष्णवों में परम श्रेष्ठ तीनों भुवनों को पवित्र कर दिया करता है ।६३।

कृष्णायुधांकित तस्य शरीरं स्याद्दिने दिने ।
तस्य कृष्णोजगन्नाथो ददाति परमम्पदम् ॥६४
कृष्णायुधांकिततनुर्यत्कर्म कुरुते नरः ।
शुभं वाऽप्यशुभं वाऽपि तत्सर्वमक्षयं भवेत् ॥६५
दानवा राक्षसाश्चैव भूतवेतालकास्तथा ।
पिशाचाः पन्नगाश्चाऽपियक्षविद्याधरास्तथा ॥६६
किन्नरा गुह्यकाश्चैव ग्रहा बालग्रहास्तथा ।
कूष्माण्डाश्चैव डाकिन्यस्तथाऽन्ये विघ्नकारकाः ॥६७
सर्वेमीत्मा पलायन्ते दृष्ट्वा कृष्णायुधांकितम् ।
द्वीपाश्चद्वीपिनश्चैवतथाऽन्ये वनवासिनः ॥६८
दृष्टैव प्रपलायन्ते भयात्कृष्णायुधांकितम् ।
कामलाद्या महारोगा देहदेहावपातिनः ॥६९
कृष्णयुधांकिततनु भक्त्या पश्यति यो जनः ।
कृष्णादर्शनतुल्यं तु फलप्राप्नोति मानवः ॥७०

प्रतिदिन जिसका शरीर श्रीकृष्ण भगवान् के आयुधों से अंकित रहा करता है उसको जगत् के स्वामी श्रीकृष्ण परमपद प्रदान कर दिया करते हैं। श्रीकृष्ण के आयुधों से अंकित शरीर वाला मानव जो भी शुभ या अशुभ कर्म एवं अनुष्ठान किया करता है वह सभी अक्षय हो जाता है ।६४-६५। श्रीकृष्ण के आयुधों से अंकित शरीर वाले वैष्णव भक्त को देखकर दानव राक्षस-भूत-वेताल-पिशाच-पन्नग-यक्ष-विद्याधर-किन्नर-गुह्यक-ग्रह-वाल ग्रह-कूष्माण्ड-डाकिनी आदि अन्य जो भी विघ्न करने वाले हैं वे सभी भयभूत होकर शीघ्र ही पलायन कर जाया करते हैं । द्वीप-द्वीपी तथा अन्य वन के निवास करने वाले जो भी बाधाएँ पहुँचाने वाले हैं वे सभी श्रीकृष्ण के आयुधांकित पुरुष को देखने के साथ ही तुरन्त भय से दूर भाग जाया करते हैं। कामला आदि देहों के अवपातन कर देने वाले जो महान् रोग हैं वे सब भी श्री कृष्णायुधांकित पुरुष के दर्शन मात्र से ही शीघ्र भाग जाते हैं। जो पुरुष श्रीकृष्ण के आयुधों से चिह्नित शरीर वाले वैष्णव भक्त का दर्शन

कर लेता है वह मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण के ही साक्षात् दर्शन प्राप्त कर लेने का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है।६६-७०।

त्रिपदीकृतदूर्वाभिराश्विने योऽर्चयेद्धरिम् ।
दूर्वावत्सन्ततिस्तस्य अविच्छिन्ना प्रवर्तते ।।७१
आश्विने मासि यो दद्याद्धरये कर्कटीफलम् ।
शोको न जायतेतस्यकदाचिद्धृदये द्विज ! ।।७२
कार्त्तिके च समायाते सर्वमासोत्तमे शुभे ।
दामोदर देवदेवं भक्त्या प्राज्ञः प्रपूजनेत् ।।७३
कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र ! विष्णुप्रीथनहेतवे ।
यथोक्तविधिना प्राज्ञः प्रातःस्नानंसमाचरेत् ।।७४
आमिषं मैथुनं चैव कार्त्तिके मासि यस्त्यजेत् ।
जन्मान्तरार्जितैः पापैर्मुक्तो याति परां गतिम् ।।७५
तुलाराशिगते सूर्ये प्रातःस्नानं द्विजोत्तम ! ।
हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ।।७६
आमिषं मैथुनं चैव कार्तिके मासि सेवते ।
जन्मजन्म निविप्रेन्द्र ! स भवेद्ग्रामसूकरः ।।७७

आश्विन मास में जो पुरुष त्रिपदीकृत दूर्वाओं से श्रीहरि का अभ्यर्चन किया करता है दूर्वा की भाँति ही उसकी सन्तति अविच्छिन्न रहा करती है।७१। हे द्विज ! आश्विन महीने में जो कोई पुरुष भगवान् हरि को कर्कटी के फल समर्पित करता है उसके हृदय में कभी भी कोई शोक समुत्पन्न नहीं हुआ करता है।७२। समस्त मासों में परम उत्तम और शुभ कार्त्तिक मास के समायात होने पर प्राज्ञ पुरुष का कर्त्तव्य है कि देवों के देव दामोदर का पूजन करना चाहिए हे विप्रेन्द्र ! भगवान् विष्णु की प्रीति प्राप्त करने के लिए कार्त्तिक मास में प्राज्ञ पुरुष को प्रातःकाल में स्नान करना चाहिये।७३-७४। जो पुरुष कार्त्तिक मास में विशेष नियम ग्रहण करके मास भक्षण और मैथुन का त्याग कर देता है वह पहिले जन्म-जन्मान्तरों में किये हुए पापों से विमुक्त होकर अन्त में परमगति की प्राप्ति किया करता है।७५। हे द्विजोत्तम ! जिस समय

में सूर्य तुला राशि पर आ जाते हैं अर्थात् तुला की सङ्क्रान्ति में सूर्योदय से पूर्व प्रातःकाल में स्नानहविष्य पदार्थों का भोजन और ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्णतया पालन करना महान् से महान् पातकों के विनाश करने वाले हुआ करते हैं। जो पुरुष शास्त्रों के विधानों की अवहेलना करके कार्तिक मास जैसे शुभ मास में भी अमिष का सेवन और मैथुन को किया करता है, हे विप्रेन्द्र ! वह पुरुष अपने प्रत्येक जन्म में ग्राम सूकर की योनि प्राप्त किया करता है ।७६-७७।

द्विर्भोजन परान्नं च तैलं च वैष्णवोजनः ।
आयाते कार्त्तिकेमासि यत्नादपिपरित्यजेत् ।।७८
दामोदराह नभसि दीपं यस्तु प्रयच्छति ।
फलं तस्य प्रवक्ष्यामि समासेन शृणु द्विज ! ।।७९
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्विमुक्तः क्लेशदायकैः ।
दामोदरपुरं गत्वा तिष्ठेत्कोटियुगावधि ।८०
दीपं ज्वलन्त नभसि त्रिदशा वासवादयः ।
विलोक्य हर्षिताः सर्वे वदन्तीतिपरस्परम ।.८१
असौ पुण्यात्मनां श्रेष्ठः केशवाचनतत्परः ।
प्रदीपं कार्तिके मासि यतो यच्छति चक्रिणे ।८२
कार्तिके मासि विप्रेन्द्र ! तस्य तुष्टः सदा हरिः ।
दद्यादक्षयद्वीपं यः कार्त्तिके हरिमन्दिरे ।।८३
दिनेदिनेश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
तुलसीदललक्षैर्यः कार्तिके पूजयेद्धरिम् ।।८४

वैष्णवजन का कर्त्तव्य है कि कार्तिक मास के आगत हो जाने पर दो बार भोजन करना—पराये अन्न का उपयोग करना और तेल का सेवन करना आदि का यत्न पूर्वक परित्याग कर देना चाहिए ।७८। हे द्विज ! भगवान् दामोदर के निमित्त जो आकाश में दीप का अर्पण किया करता है उसका जो पुण्य फल होता है उसका वर्णन संक्षेप से करता हूँ आप उसका श्रवण करो ।७९। परम क्लेशों के देने वाले ब्रह्महत्या आदि जो पाप हैं उन सब से वह दीप दान करने वाला मनुष्य वियुक्त

होकर करोड़ों युगों की अवधि पर्यन्त दामोदर पुर में जाकर संस्थित रहा करता है ।८०। आकाश में कार्तिक से दीप को प्रज्वलित देख कर महेन्द्र आदि देवगण परम हर्षित होते हुए सब परस्पर में यह कहा करते हैं कि यह भक्त पुण्यात्माओं में परम श्रेष्ठ है जो कि केशव प्रभु की अर्चना में सदा तत्पर रहकर कात्तिक मास में भगवान् के निमित्त दीप का दान किया करता ।८१-८२। हे विप्रेन्द्र ! कात्तिक में हरि के मन्दिर में जो अक्षय दीप का अर्पण करता है उससे श्री हरि भगवान् सदा तुष्ट एव परम प्रसन्न रहा करते हैं ।८३। जो पुरुष कात्तिक में एक लक्ष तुलसी के दलों से श्री हरि का अर्चन करता है वह प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ।८४।

लक्षैकवाजिमेधस्य मानवो लभते फलम् ।
विल्वस्य दललक्षेण योऽचयद्विष्णुमव्ययम् ।।८५
परमं मोक्षमाप्नोति प्रसादाज्जगतीपते ।
यत्किञ्चित्कार्तिके मासि विष्णुमुद्दिश्य दीयते ।।८६
यदक्षयं भवेत्सर्वं सत्यमेतन्मयोच्यते ।
धृताक्तं सुरपत्रं यः कार्तिके मासि विष्णवे ।।८७
दद्याद्दिनेदिने विप्र ! तस्य विष्णोः पुरे स्थितिः ।
प्रफुल्लपद्मपत्रेण सितेनाऽप्यसितेन वा ।।८८
योऽर्चयेत्कमलाकान्तं तस्यकिंभुविदुर्लभम् ।
द्विजाग्रयःकार्तिकेमासि हरये येन पंकजम् ।।८९
न दत्तं तेन किं विप्र ! विष्णवे दैत्यजिष्णवे ।
एकमेवाऽम्बुज हृत्वा ददाति कैटभारये ।।९०
तस्मै किं भगवान्विष्णुर्नददातिश्रियः पतिः ।
कमलैःकार्तिकेमासियेननाऽऽराधितोहरिः ।।९१

जो विल्व के एक लाख दलों से अव्यय स्वरूप विष्णु भगवान् का अर्चन करता है वह मनुष्य एक लाख ही अश्वमेध करने का फल प्राप्त किया करता है । कार्तिक मास में तो विष्णु भगवान् का उद्देश्य ग्रहण करके जो कुछ भी थोड़ा-बहुत दान किया जाता है वह दान दाता भक्त

जगत् के स्वामी प्रभु के प्रसाद से परम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त करता है ।८५-८६। जो कुछ भी कार्त्तिक में भगवान् के निमित्त दिया जाता है वह सब अक्षय होता है—यह मैं सत्य वतलाता हूँ । जो कार्त्तिक में घृत से अक्त किया हुआ सुरपत्र विष्णु के लिये दिया जाता है और यदि प्रतिदिन ही यह दिया जावे तो हे विप्र ! उसकी संस्थिति भगवान् विष्णु के पुर में हुआ करती है। विकसित पद्म के दलों से चाहे वह सित हो या असित होवें जो कमला के कान्त प्रभु का समर्चन करता है उसके लिये इस भूमण्डल में कुछ भी दुर्लभ नहीं है । जो द्विजों में श्रेष्ठ पुरुष है उसने श्री हरि के लिये कार्त्तिक में पंकज का अर्पण नहीं दिया उसने दैत्यों के विजेता विष्णु के लिये फिर क्या दिया है अर्थात् कुछ भी अर्पण नहीं कर सका है । यदि एक भी कमल का आहरण करके कोई कैटभ के हनन करने वाले को देता है तो श्री के स्वामी भगवान् विष्णु उसे क्या नहीं प्रदान कर देते हैं अर्थात् वे प्रसन्न होकर सभी कुछ प्रदान कर दिया करते हैं । कार्त्तिक में कमलों के द्वारा समाराधन करने का वड़ा पुण्यफल होता है ।८७-९१।

जन्मजन्मनि तद्गेहे कमला नहि तिष्ठति ।
पद्मबीजानि यो दद्यात्केशवाय महात्मने ।।९२
स जायते विप्रकुले शुद्धे च प्रतिजन्मनि ।
ब्राह्मणस्य कुले जातश्चतुर्वेदसुहृद्भवेत् ।।९३
धनवान्बहुपुत्रश्च कुटुम्बानाँ च पोषकः ।
नास्ति पद्मसम पुष्प जैमिने ! सत्यमुच्यते ।।९४
येन सम्पूज्य गोविन्दं पापात्माऽपिच मोक्षभाक् ।
पद्मपुष्पस्य माहात्म्यं विशेषादुच्यते मया ।।९५
ऐतिहासं द्विजश्रेष्ठ ! सावधानं निशामय ।
आसादेकः प्रजानाम ब्राह्मणःसर्वशास्त्रवित् ।।९६
हरिपादाम्बुजे यस्य मनोभृङ्गसदास्थितिः ।
देवानां ब्राह्मणानाञ्च गुरूणाञ्चैव सर्वदा ।।९७

कृता पूजा द्विजश्रेष्ठ ! त्यक्त्वा कार्यशतान्यपि ।
परद्रव्य विषंतस्य परस्त्रीच स्वमातृवत् ।।९८

कार्त्तिक में जो कोई कमल के पुष्पों से हरि का समाराधन नहीं करता है उसका फल यह होता है कि जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त उसके घर में श्री का निवास नहीं हुआ करता है । जो जो कोई भक्त महात्मा केशव के लिये पद्म के बीजों का समर्पण किया करता है और ब्राह्मण के कुल में समुत्पन्न होकर चारों वेदों का ज्ञाता हुआ करता है ।९१-९३। वह धनवान्—बहुत से पुत्रों वाला और कुटुम्बियों का पोषण करने वाला हुआ करता है । हे जैमिने ! पद्म सर्वोत्तम पुष्प है और इसकी समानता करने वाला हरि की आराधना में अन्य कोई भी पुष्प नहीं है यह मैं परम सत्य कहता हूँ । जिस पद्म के पुष्प के द्वारा गोविन्द प्रभु का भली-भाँति पूजन करके महान् पापात्मा पुरुष भी मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है । अब इस पद्म पुष्प का विशेष महात्म्य विशेष रूप से मेरे द्वारा वर्णन किया जाता है ।९४-९५। हे द्विज श्रेष्ठ ! तुम अब सावधान होकर इतिहास के सहित इसके महात्म्य का श्रवण करो । पहिले एक प्रजा नाम वाला सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता ब्राह्मण था जिसके मन रूपी भ्रमर की सर्वदा भगवान् के चरण रूपी कमलों मे स्थिति रहा करती थी । इसी भाँति देवों के—ब्राह्मणों के और गुरु वर्गों के चरणों में भी वह अपने मन रूपी भ्रमर को सदा लगाये रहा करता था । हे द्विज श्रेष्ठ ! वह सैकड़ों कार्यों का त्याग करके भी पूजा किया करता था । पराया द्रव्य उसके लिये विष के समान था और पराई स्त्री को वह अपनी माता के तुल्य ही समझा करता था ।९६-९८।

अभूच्चमानसं तस्य नमं मित्रे च शात्रवे ।
आयान्तमतिथि दृष्ट्वा स विप्रः परमार्थवित् ।।९९
प्रशमानन्दमाप्नोति याजकश्च द्विजोत्तम ।

सर्वयज्ञाः कृतास्तेन व्रतानि सकलानि च ।।१००

संसारसागरं घोरमपार च तितीर्षुणा ।
एकदा स द्विजश्रेष्ठो हरिभक्तिपरायणः ॥१०१
स्वमृत्युं च निजां जाति चिन्तयामास चेतसा ।
अहं पव स्थितः को वा कि वा कर्म कृतं पुरा ॥१०२
कथम्वा जन्मसम्प्राप्तगमिष्यामि क्व वा पुनः ।
इतिसञ्चिन्त्यविप्रोऽसौनिःश्वस्यचपुनःपुनः ॥१०३

उसका मन मित्र और शत्रु के विषय में एक समान रहता था । यदि कोई भी अतिथि उसके पास आता था तो वह विप्र परमार्थ का ज्ञाता आये हुए उस अतिथि को देखकर तथा द्विजोत्तम याचक को देखकर वह अत्यन्त आनन्द को प्राप्त किया करता था । उसने सम्पूर्ण यज्ञ किये थे और समस्त व्रत भी समाचरित किये थे । क्योंकि वह इस परम घोर एवं अपार संसार रूपी सागर का सन्तरण करने की इच्छा वाला था । एक समय की बात है कि हरि की भक्ति परायण उस द्विज श्रेष्ठ ने अपने चित्त में कुछ विचार किया था । उसने चित्त से अपनी मृत्यु-निज की जाति आदि के विषय में चिन्तन किया था कि मैं पहिले क्या रूप में स्थित था और मैंने क्या कर्म किया था । मैंने यह जन्म कैसे प्राप्त किया है । और अब भविष्य में कहाँ पर जाऊँगा—यह इस प्रकार का उस विप्र ने मन में चिन्तन किया था और बारम्बार वह लम्बी-लम्बी श्वासें लेने लगा था ।९९-१०३।

भगवत पूजा महात्म्य

मार्गशीर्षे द्विजश्रेष्ठ ! महालक्ष्म्या समन्वितम् ।
पूजयेदव्ययं विष्णुं भक्तिभावेन वैष्णवः ॥१
म्लेच्छदेशे च विप्रेन्द्र ! तथैव पतितालये ।
दुर्गन्धैश्च परिव्याप्ते स्थाने विष्णुन पूजयेत् ॥२
पाखण्डानां समीपेच महापातकिनां तथा ।
असत्यभाषिणां चैव न कुर्याद्विष्णुपूजनम् ॥३

क्रन्दतां सन्निधौ चाऽपि कलहानपि कुर्वताम् ।
तथोपहसतां स्थाने न कूर्यात्पूजनहरेः ।।४
प्रतिग्रहरतानाञ्च स्थाने विष्णुं न पूजयेत् ।
कृपणानां गृहे न्चैव परवित्ताभिलाषिणाम् ।।५
तथा कपटवृत्तीनां न कुर्याद्विष्णुपूजनम् ।
नारायणर्चने विप्र ! परं भक्तिपरायण: ।।६
अन्यचित्तं परित्यज्य हरिध्यानहरो भवेत् ।
हाहाकारं च निःश्वास विस्मयं च द्विजोत्तम ।।७

महामहर्षि व्यास देवजी ने कहा - हे द्विज श्रेष्ठ ! मार्गशीर्ष मास में वैष्णव को भक्ति की भावना से समन्वित होकर महालक्ष्मी के सहित भगवान् अविनाशी विष्णु का पूजन करना चाहिए । हे विप्रेन्द्र ! किसी भी म्लेच्छों के देश में—पतित पुरुषों के आलय में और दुर्गन्धों से परि-व्याप्त स्थान में भगवान् विष्णु का अर्चन नहीं करना चाहिए ।१।२। जहाँ पर पाखण्डी लोग निवास करते हों उनके समीप में—महान् घोर पातकों के करने वाले जहाँ पर हों उनके निकट में और असत्य भाषण करने वालों की सन्निधि में कभी भी विष्णु का पूजन नहीं करना चाहिए ।३। जिस स्थान पर क्रन्दन करने वाले हों तथा कलह करने वाले रहते हों उनकी समीपता में और जो उपहास कर रहे हों उनके स्थान में भी श्री हरि का पूजन नहीं करे ।४। जो पुरुष सदा प्रतिग्रह लेने की ही रति रखते हों उनके स्थान में भी विष्णु देव का अभ्यर्चन नहीं करना चाहिए । जो पराकृपण (कंजूस) हों अथवा दूसरों के धन प्राप्त करने की अभिलाषा मन में सर्वदा रखते हों उनके घर में भी विष्णु-पूजन न करे । जो सदा कपट का ही व्यवहार रखने वाले हों उनके भी भगवान् की अर्चना नहीं करनी चाहिए । नारायण के अर्चन में हे विप्र ! परम भक्ति में तत्पर होकर तथा अन्य विषयों की ओर से चित्त को हटाकर केवल हरि के ही ध्यान में परायण होना चाहिए । हे द्विजोत्तम ! हरि पूजा में परायण पुरुष को हाहाकार-लम्बी श्वासें छोड़ना और विस्मय आदि कभी नहीं करना चाहिए ।६।७।

पाखण्डजनसम्भाषं न कुर्याद्धरिपूजने ।
अनन्यमानसो भूत्वा भक्त्या विष्णुं यजेद्बुधः ।।८
भ्रान्तचित्तेन यत्कर्म क्रियते तच्चनिष्फलम् ।
सर्वं कर्म मनोऽधीनं मनोऽधीनंजगत्त्रयम् ।।९
तस्मान्मनो दृढीकृत्य पूजयेत्कमलापतिम् ।
पूजान्यत्रमना यत्र भवेद्यस्य द्विजोत्तम ! ।।१०
न च तस्यफलंतत्कार्यं कल्पकोटिशतैरपि ।
यत्नाद्विहितशौचोऽपि विष्णुपूजापरोऽपिच ।।११
मनःशुद्धिविहीनश्चेच्चाण्डाल इव स स्मृतः ।
अभक्त्या यत्तपस्तप्तं सुचिरंविधिनाद्विज ! ।।१२
भवेन्निरर्थकं सर्वं केवल कायशोधनम् ।
मेरुप्रमाणकस्वर्णं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।।१३
अभक्त्यायत्तमप्यर्थंनाशायेव तु कथलम् ।
तस्मादेकमना भूत्वा भक्तिश्रद्धासमन्वितः ।।१४

श्रीहरि के पूजन के समय में पाखण्डी लोगों के साथ किसी भी प्रकार का भाषण नहीं करना चाहिये । बुध पुरुष का कर्त्तव्य है कि अनन्य मन वाला होकर भक्ति की एकान्त निष्ठ भावना से विष्णु का यजन करना चाहिये ।८। भ्रान्ति से युक्त चित्त से जो भी कोई कर्म किया जाता है वह सभी फल से रहित हुआ करता है । संसार में सभी कर्मों का अनुष्ठान इस मन के ही अधीन होता है और तीनों जगत् भी इन मन के ही अधीन हैं । अतएव मन को सुदृढ़ बना कर कमलापति प्रभु का पूजन करना चाहिये । हे द्विजोत्तम ! जिसका मन तो कहीं अन्य विषय में लगा हो और हरि की पूजा बिना ही मन के ध्यान के की जावे तो सैकड़ों करोड़ों कल्पों में भी उसका कुछ भी नही होगा । यत्न पूर्वक शुद्धि करने वाला भी हो और विष्णु पूजा में परायण भी रहे किन्तु मन की शुद्धि और एक निष्ठता से रहित हो तो वह एक चाण्डाल के ही समान कहा गया है । हे द्विज ! विधि के सहित और चिर-काल पर्यन्त भी [illegible] की जाती है वह सब

कुछ करना निरर्थक ही होता है। उससे तो केवल अपनी काया का ही विशोधन हुआ करता है। मेरु के प्रमाण वाला स्वर्ण कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये दान दिया जावे किन्तु वह बिना ही भक्ति की भावना से दिया गया हो तो वह दिया हुआ इतना बड़ा दान भी फल से शून्य ही हुआ करता है और उसके करने से अर्थ का ही विनाश होता है। इसी कारण से एक मन वाला होकर तथा श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर ही दान करना चाहिए जो कि पुण्य-फल के प्रदान करने वाला होवे ।९-१४।

सवास्तुकादिशाकम्वा दद्यात्सदसि वैष्णवे ।
नारङ्गस्य फलं दिव्यं सुपक्व यस्तु यच्छति ।।१५
केशवाय द्विजश्रेष्ठ ! सोऽस्माभिरभिपूज्यते ।
यत्नेन नूतनं वस्तु प्रियं भगवतो हरेः ।।१६
तदेवाऽऽग्रयणेमा स भक्त्या दद्यान्मुरारये ।
पौषे मासि समायाते श्रीकृष्णं वरदप्रभुम् ।।१७
देवमिक्षुरसैर्दिव्यैः स्नापयेद्वैष्णवो जनः ।
यः स्नापयति विप्रेन्द्र ! विष्णुमिक्षुरसः प्रभुम् ।।१८
इह भुङ्क्तेसुख सर्वं मृनो यातीक्षुसागरम् ।
यो दद्यादिक्षुनैवेद्यं देवदेवाय विष्णवे ।।१९
सोऽपि तत्फलमाप्नोतिकिमन्यौ बंहुभाषितैः ।
सुदुग्धपृथुक पौषे दधिभिर्वा समन्वितम् ।।२०
दत्वा मुरारये मर्त्यः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
सर्वं पुरातनं वस्त्रं दूरीकृत्य मुरारये ।।२१
शीतस्य वारणार्थाय दद्याद्वस्त्रं च नूतनम् ।
पौषसंक्रमणे विप्र ! सलक्ष्मीकाय विष्णवे ।।२२

भक्ति और श्रद्धा से समान्वित होकर वास्तुक आदि शाक, सभा में वैष्णव को देना चाहिये और जो कोई नारङ्गी का भली-भाँति से पका हुआ दिव्य फल, का दान किया करता है और केशव भगवान के निमित्त जो समर्पित करता है वह हमारे द्वारा अभिपूजित किया जाता है। यत्न-पूर्वक नूतन ही वस्तु भगवान् की सेवा में समर्पित करनी चाहिए क्योंकि

नवीन वस्तु ही भगवान् हरि की प्रिय हुआ करती है ।१५-१६। वह नवीन ही वस्तु मार्गशीर्ष मास में मुरारि की सेवा में भक्ति भाव से समर्पित करे । पौष मास के समागन होने पर वरदान प्रदान करने वाले प्रभु श्रीकृष्ण देव का वैष्णव भक्त को दिव्य ईख के रस से स्नपन कराना चाहिए । हे विप्रेन्द्र ! जो भी कोई भक्त प्रभु विष्णु को ईख के रसों से स्नान कराता है वह इस संसार में सम्पूर्ण प्रकार के सुखों का उपभोग किया करता है और अन्त में मृत्युगत होकर इक्षुओं के सागर में गमन किया करता है जो ईख का नवेद्य देवों के देव विष्णु भगवान् को अर्पित करता है वह भी वह फल प्राप्त करता है । इस विषय में विशेष भाषण करने से क्या लाभ है । पौष मास में दुग्ध के सहित पृथुक अथवा दधि ने समन्वित पृथुक भगवान् को समर्पित करके मनुष्य समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है । समस्त पुराने वस्त्रों को दूर अपसारित करके हे विप्र ! पौष मास की संक्रान्ति में लक्ष्मी के सहित विष्णु भगवान् के लिये शीत के निवारण करने के लिए नवीन वस्त्र धारण कराने चाहिये ।१७-२२।

दद्यान्मुमुक्षुनुजो दशवर्ण च पीठकम् ।
यस्तु शंखध्वनिं कुर्यात्सम्पूज्य कमलापतिम् ।।२३
तस्य पुण्यफलं वच्मि शृणु वत्स ! समाहितः ।
अगम्यागमनाद्यैश्च विमुक्तः सर्वपातकैः ।।२४
अन्ते विष्णुपुरं गत्वा विष्णुना सह मोदते ।
वैनतेयाङ्किता घण्टां यस्तु वादयते हरेः ।।२५
पूजाकाले द्विजश्रेष्ठ ! तस्यपुण्यं वदाम्यहम् ।
अभक्ष्यभक्षणाद्यैश्च विमुक्तः सर्वपातकैः ।।२६
प्रयाति मन्दिरं विष्णोरथमारुह्य शोभनम् ।
तत्र भुक्त्वाऽखिलान्कामान्कल्पकोटिशतावधि ।।२८
पुनरागत्य धरणौ चतुर्वेदी द्विजोत्तमः ।

तत्र भुक्त्वाऽखिलान्कामान्कल्पकोटिशतावधि ।।२८

पुनर्विष्णुपुरं गत्वा मोक्षं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।
वीणां वादतते यस्तु पूजाकाले जगत्पतेः ।।२९

मुक्ति की इच्छा रखने वाले मनुष्य को भगवान् की सेवा में दश वर्ण पीठक अर्पित करनी चाहिए। जो कमला के स्वामी भगवान् की भली-भाँति पूजा करके फिर शंख की ध्वनि किया करता है हे वत्स! उस ध्वनि करनेका जो पुण्यफल होता है उसे मैं बतलाताहूँ, तुम सावधान होकर उसका श्रवण करो शङ्ख ध्वनि करने वाला पुरुष गमन न करने के योग्य स्त्री का गमन आदि महापातकों से विमुक्त हो जाता है और अन्त में विष्णुपुर में जाकर भगवान् विष्णु के साथ आनन्द का लाभ किया करता है। जो वैनतेय से अंकित घण्टा को हरि के समक्ष में पूजा के समय में वादन किया करता है उसका जो पुण्य होता है उसे हे द्विज श्रेष्ठ! मैं आपको बतलाता हूँ। घण्टा वादन करने वाला पुरुष अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण करने आदि समस्त पातकों से छुटकारा पाकर एक शोभा से सम्पन्न विमान पर समारोहण करके अन्त में भगवान् विष्णु के मन्दिर में गमन किया करता है और वहाँ सैकड़ों करोड़ कल्पों की अवधि तब तक कामनाओं का उपभोग करके फिर वह द्विजोत्तम चारों वेदों का ज्ञाता होकर धरणी पर जन्म ग्रहण किया करता है। वहाँ पर भी सैकड़ों करोड कल्पों की अवधि पर्यन्त सब कामनाओं का उपभोग करता है और पुनः विष्णुपुर में गमन करके उत्तम मोक्ष की प्राप्ति किया करता है। जो जगत् पान भगवान् की पूजा के समय में वीणा का वादन करता है उसका भी महान् पुण्य होता है।२३-२९।

पण्डितानामग्रणोः स्यात्स मर्त्यःप्रतिजन्मनि ।
मृदङ्गवाद्यकृद्यस्तु पूजायां कैटभद्विषः ।।३०
तस्य प्रसन्नो भगवान्ददात्यभिमतं फलम् ।
डमरुं डिण्डमं चैव झर्झरीं मधुरीं तथा ।।३१
पटहं दुन्दुभिं चैव काहलं सिन्धुवारकम् ।
कांस्यं च करतालं च वेणुं वादयते तु यः ।।३२

पूजाकाले महाविष्णोस्तस्य पुण्य निशामय।
स्तेयाद्यैः पातकैर्मुक्तो मन्दिर याति चक्रिणः ॥३३
परमं ज्ञानमासाद्य तत्रैव परिमुच्यते।
कलशब्दं च यः कुर्तात्पूजाकाले जगद्गुरोः ॥३४
मुखवाद्यं च विप्रेन्द्र ! तस्य पुण्यं मयोच्यते।
कोटिकोटिकुलैर्युक्तः प्रयाति मन्दिरहरेः ॥३५

वीणा का वादन करने वाला भक्त प्रत्येक जन्म में पण्डितों में अग्रणी होकर रहा करता है। जो कैटआदि प्रभु की पूजा के समय में मृदङ्ग का वादन करता है उस पर भगवान् अत्यधिक प्रसन्न हो जाते हैं और उसको जो भी कुछ अभीष्ट फल होता है उस सब को दे दिया क ते हैं ! जो कोई विष्णु की पूजा के समय में डमरू डिण्डिम—झर्झरी—मधुरी—पटह दुन्दुभि—काहल —सिन्धु वारक—काँस्य—करताल और वेणु का वादन किया करता है उसके पुण्य-फल का भी श्रवण कर लो। उपर्युक्त वाद्यों के वादन करने वाला पुरुष स्तेय कर्म आदि सम्पूर्ण पातकों से छुटकारा पाकर अन्त में विष्णु भगवान् के मन्दिर में गमन किया करता है।३०-३३। वहाँ पर वह परम ज्ञान की प्राप्ति करके वहीं पर मुक्ति पाने का लाभ लिया करता है। भगवान् जगद्गुरु की पूजा के समय म जो कोई मधुर ध्वनि किया करता है और हे विप्रेन्द्र ? मुख के वाद्य को जो करता है अब मेरे द्वारा उसका पुण्य-फल बतलाया जाता है और वह यह हैं कि वह भक्त करोड़ों-करोड़ों कुलों से युक्त होकर अन्त में श्रीहरि के मन्दिर में प्रवेश प्राप्त किया करता है।३४-३५।

———

॥युगधर्म निरूपण एवं पुराण माहात्म्य॥

कलौयुगेमहाभाग ! समायातेसुदारुणे।
भविष्यन्ति जनाः सर्वेकीदृशास्तद्वदस्व मे ॥१
आद्यं सत्ययुगं प्राहुस्तत्रविप्रादयोजनाः।
नारायणपरास्सर्वे ... ॥२

सत्योक्तिभाषिणः सर्वेंसदयादोर्घजीविनः ।
धनधान्यादिसम्पन्न हिंसादम्भविवर्जिताः ॥३
परोपकरणश्चैव सर्वशास्त्रविदस्तथा ।
एवंविधाः सम्ययुगेसर्वेलोका द्विजोत्तम ! ॥४
राजधर्मग्राहिणश्चभूपालाजनपालनाः ।
अहोसत्ययुगस्यास्तिकोव्याख्यातुं गुण क्षमः ॥५
अधर्मोच्चारणं यत्र जनाःकेऽपिनकुर्वते ।
त्रेतायुगेसमावाते धर्मः पादोनतांगतः ॥६
अल्पशोकान्वितालोकाःकेचित्केचिदचाश्रयाः ।
विष्णुध्यानरतालोकायज्ञदानपरायणाः ॥७

जैमिनि मुनि ने कहा—हे महाभाग ! इस अतिशय सुदारुण कलियुग के आ जाने पर यह समस्त मानव किस प्रकार की मनोवृत्ति वाले हो जायेंगे—इसका वर्णन आप कृपा करके हमारे समक्ष में कीजिए इससे बड़ा कल्याण होगा ।१। श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास महर्षि ने कहा —सब से प्रथम युग तो सत्ययुग था । उसमें सभी विप्र आदि लोग भगवान् नारायण की सेवा परायण रहने वाले होते थे तथा इसका प्रभाव भी यह था कि शोक तथा समस्त व्याधियों से मुक्त रहा करते थे ।२। उस युग में सभी पुरुष सत्य वचनों का ही भाषण किया करते थे और सब के हृदय में दया पूर्ण रूप से विद्यमान रहती थी तथा सभी दीर्घ जीवन ने हुआ करते थे । समस्त मानव धनधान्य आदि से ससम्पन्न होते थे। ...लो में भी उस युग में हिंसा तथा दम्भ के दूषित भाव लेश मात्र भी नहीं होते थे । सबके हृदय में दूसरों की भलाई करने की भावना रहती थी तथा सभी लोग समस्त शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान रखते थे । हे द्विजोत्तम ! इसी प्रकार के सभी लोग सत्ययुग में होते थे ।३-४। जो उस युग में राजा लोग होते थे सभी राजा के धर्मों का निर्वाह करने वाले तथा प्रजाजनों के पालन करने वाले थे । ओ हो ! सत्ययुग की गुणगरिमा की कौन व्याख्या करने में समर्थ हो सकता है अर्थात् किसी में भी इतनी क्षमता नहीं है कि सत्ययुग के गुणों का गौरव का वर्णन कर

सके। उस युग में कोई भी मनुष्य अधर्म का कर्म करना तो दूर रहा, अधर्म का कोई उच्चारण भी नहीं किया करता था। इसके अनन्तर त्रेता-युग आता है। इसके आते ही धर्म जो सत्ययुग में चारों पादों से संयुक्त था वह एक पाद से रहित हो गया था। लोगों में थोड़ा सा शोक का भाव होता था और कुछ ऐसे भी लोग त्रेतायुग में थे कि वे अघों के भी आश्रय हुआ करते थे। सभी लोग विष्णु भगवान् के ध्यान में रति रखने वाले होते थे तथा यज्ञ करना और दान देना—इनमें भी परायण रहते थे।५-७।

वर्णाश्रमाचाररताः सुखिनः स्वस्थचेतसः।
क्षेत्रभमिकृतः शूद्रः सर्वे ब्राह्मणसेविनः ॥८
ब्राह्मणाश्चमहात्मानोवेदाङ्गपारगाः।
प्रतिग्रहनिवृत्ताश्च सत्यसन्धाजितेन्द्रियाः ॥९
तपोव्रतरतानित्यं दातारो विष्णुसेविनः।
त्रेतायुगस्याऽवसानेद्वापरेयुगआगते ॥१०
द्विपादहीनोधर्मःस्यात्सुखदुःखान्वितानराः।
केचित्केचित्पापरताःकेचित्केचिद्धर्मिणः ॥११
केचित्केचिद्गुणैर्हीनाःकेचित्केचिन्महागुणः।
अत्यन्तदुःखिनःकेचित्केचिच्चसुखिनस्तथा ॥१२
प्रतिग्रहे ब्राह्मणश्च कदाचित्कुरुतेस्पृहाम्।
भूभुजर्धनलोभेनकदाचित्पीडयते प्रजा ॥१३
विष्णुपूजारताविप्राः शूद्राश्च द्विजसेविनः।
युगेयुगेयदाधर्मोययौपादोनतांद्विज ! ॥१४

त्रेतायुग में वर्णों और आश्रमों के जो भी शास्त्रों में बताये हुये आचार हैं उनमें सब लोग रत रहते थे। सभी सुख एवं स्वरूप चित्त वाले होते थे। क्षेत्रभूमि के करने वाले होते थे और सब शूद्र ब्राह्मणों की सेवा करने वाले थे।८। सभी ब्राह्मण महान् आत्मा वाले तथा वेदों के अङ्ग शास्त्रों के पारगामी विद्वान् हुआ करते थे। ब्राह्मणों में प्रतिग्रह लेने की प्रवृत्ति उस समय में नहीं होती थी। सब ब्राह्मण सच्ची

प्रतिज्ञा करने वाले तथा अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाले थे ।६। सब लोक तपस्या के व्रत में रत रहते थे । नित्य ही सब दान दिया करते थे तथा भगवान् विष्णु की सेवा करने वाले थे । त्रेतायुग जब समाप्त होता है तो फिर इसके पश्चात् द्वापर युग का समय आया करता इस युग में मनुष्य सुख-दुःख दोनों से ही समन्वित हुआ करते हैं । कुछ-कुछ ऐसे भी लोग द्वापर में होते हैं जो पाप कर्मों में रति रखा करते हैं । कुछ-कुछ ऐसे होते हैं जो धार्मिक वृत्ति रखा करते हैं ।११। कुछ लोग गुणों से हीन होते हैं तथा कुछ ऐसे भी महापुरुष द्वापर युग में होते हैं जिनमें महान् से महान् गुण हुआ करते हैं । कुछ अत्यन्त दुःखों से परिपूर्ण होते हैं तो कुछ ऐसे भी इस युग में होते हैं जो परम सुख सौभाग्य से सम्पन्न हुआ करते हैं ।१२। कोई-कोई ब्राह्मण किसी समय में प्रतिग्रह लेने की इच्छा रखा करते थे । राजा लोगों के द्वारा धन के लोभ से किसी समय में प्रजाजनों का पीड़ित भी किया जाता था । ब्राह्मण लोग विष्णु भगवान् की पूजा में परायण रहा करते थे और शूद्र लोग द्विजों की सेवा किया करते थे । हे द्विज ! इसी प्रकार से एक-एक युग के बदलने पर धर्म भी एक-एक पाद से हीन होता गया था ।१३-१४।

तदा व्यासो विष्णुरूपीवेदभागंचकारह ।
तलौयुगेचविप्रेन्द्र ? सर्वपापैकमन्दिरे ।।१५
एकपादोभवेद्धर्मः सर्वपापरताजनाः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः शूद्राः पापपरायणः ।।१६
अत्यन्तकामिनः क्रूराभविष्यन्तिकलौयुगे ।
वेदनिन्दाकराश्चैव द्यूतचौर्यकरास्तथा ।।१७
विधवासङ्गलुब्धाश्चभविष्यन्तिकलौयुगे ।
वृत्यर्थं ब्राह्मणाः केचिन्हाकमपटधर्मिणः ।।१८
सर्वे स्त्रैणा भविष्यन्ति श्राद्धकद्वलसेविनः ।

सदा स्त्रीयोनिनिरताः परद्रव्यंहरन्ति च ।।१९

परान्नलोलुपा नित्य तपोव्रतपराङ्मुखाः ।
पाखण्डसङ्गवद्धाश्च भविष्यन्ति कलौ युगे ॥२०
रक्ताम्बराभविष्यन्तिब्राह्मणाःशूद्रधर्मिणः ।
कलौयास्यन्तिवृ त्ताउत्तमाअयिनीचताम् ॥
नीचाश्च धनसम्पन्ना यास्यन्त्युच्चपदं प्रति ॥२१

जव ऐसा क्रम धर्म का चलता आया तो उस समय में विष्णु के स्वरूप वाले कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास महर्षि ने वेदों के विभाग किये थे। हे विप्रेन्द्र ! समस्त पापों के घर इस ओर कलियुग में धर्म का केवल एक ही पाद अवशिष्ट रह गया था क्योंकि सभी मनुष्य प्रायः पाप कर्मों में रत हो गये थे। चाहे कोई ब्राह्मण वर्ण वाला हो या क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्र हो सभी वर्ण वाले पाप कर्मों में ही परायण हो रहे थे।१५-१३। इस महान् दारुण कलियुग में मनुष्य अत्यन्त कामी तथा क्रूर हृदय वाले, वेद शास्त्रों की निन्दा करने वाले, जूआ एवं चोरी करने के स्वभाव वाले हो जायेंगे।१७। कलियुग में विधवा नारियों के संग के लालची पुरुष होंगे। वृत्ति के चलाने के लिये कुछ ब्राह्मण तो महान् कपट के धर्म वाले वन जाएंगे।१८। सभी मनुष्य स्त्रैण अर्थात् स्त्रियों के सङ्ग में रति रखने वाले एव मादक मदिरा आदि पदार्थों के सेवन करने म प्रवृत्त होंये। सर्वदा नारियों में रति रख कर पराये धन का अपहरण करने वाले होंगे ।१९। पराये अन्न के खाने में बहुत लोलुपता रक्खेंगे तथा नित्य ही तपश्चर्या और धार्मिक व्रत आदि से विमुख होंगे। पाखड करने वालों के हो साथ में बँधे हुये रहा करेंगे। यह कलियुग का ऐसा ही सभी पर प्रभाव छा जायगा। शूद्रों जैसे व्यवहार करने वाले ब्राह्मण लाल वस्त्रों का धारण करके इस कलियुग में बहुत उत्तम जन भी अत्यन्त नीच कर्मों में तत्पर रहते हुये निवृत्त हो जायेंगे। नीच लोग ही इस कलियुग में धन से सम्पन्न होकर उच्च पद को प्राप्त करेंगे। ।२०-२१।

प्रदास्यन्त्युपकारिभ्यो दानानि सकला जनाः ।
यस्मादपिचनेष्यन्तिसूक्लविप्रलंनम् ॥२२

मित्रस्नेहाद्वदिष्यन्ति कूटसाक्ष्यं कलौ जनाः ।
अधमबुद्धिलपना धर्मबुद्धिविलासिनः ।।२३
परोक्षनिन्दाकाःक्रूराः सम्मुखेप्रियवादिनः ।
साध्वीवादंवदिष्यन्तिभर्तारं पुंश्चलीस्त्रियः ।।२४
परस्त्रीहिंसकाश्चैवगोत्रविक्रयिणोद्विजा ।
कन्याविक्रयिणश्चैवभविष्यन्ति कलोयुगे ।।२५
स्त्रीजिताः पुरुषाःसर्वेस्त्रियोऽप्यत्यन्तचञ्चलाः ।
कलोयुगेभविष्यन्तिकलौमर्त्यादुराशयाः ।।२६
अल्पसस्यावसुमतीमेघाःस्वल्पोदकास्तथा ।
अकालवर्षिणश्चाऽपिभविष्यन्तिकलौयुगे ।।२७
कलौविड्भोजिनोगावः स्वल्पक्षीराजैमिने ।
घृतहीनं च तत्क्षीरं भविष्यतिनसंशय ।।२८

जिनसे अपना कुछ उपकार होने की आशा होगी । इस युग में सभी पुरुष यदि कुछ दान भी लेने की प्रवृत्ति रखेंगे तो वह दान उन्हीं को देंगे । शूद्र लोग यत्नपूर्वक विप्रों जैसा बरताव किया करेंगे ।२१। कलियुग में मनुष्य मित्रों के स्नेह से झूठी गवाही दिया करेंगे । सर्वदा अधर्म की बुद्धि से बातचीत करने वाल तथा धर्म का विलास करने वाले लोग हो जाएँगे ।२३। परोक्ष में आँखों के ओझल होने पर लोग परस्पर में सभी एक दूसरे की निन्दा किया करेंगे अत्यन्त निर्दयी-क्रूर और मुख के सामने मीठी तथा प्यारी बातें बनाने वाले लोग हो जायेंगे । जो स्त्रियाँ अत्यन्त दूषित चरित्र वाली होंगी वे अपने स्वामी के सम्मुख अत्यन्त साध्वी-सती स्त्रियों जैसा वाद किया करेंगी ।२४। द्विज लोग पराई स्त्रियों के प्रेमी-हिंसक और गोत्र में ही विक्रय कर्म करने वाले तथा कन्याओं का विक्रय करने वाले हो जायेंगे—यह कलियुग का दारुण प्रभाव है ।२५। सभी पुरुष स्त्रियों के द्वारा जीत लिये जावेंगे अर्थात् स्त्रियों के ही वश में रहने लगेंगे और स्त्रियाँ इस युग में अत्यन्त चचल स्वभाव वाली हो जायेंगी । यह इस कलियुग का प्रभाव ही ऐसा है इसमें सभी मनुष्यों के भाव एवं विचार बुरे तथा दूषित हो जायेंगे

। २६ । इस भूमि में भी उपज बहुत थोड़ी हुआ करेगी और मेघ भी बहुत ही कम जल बरसाने वाले होंगे। अकाल में जब कि वर्षा का समय नहीं होगा उस काल में वृष्टि हुआ करेगी जिससे लाभ के बदले में हानि ही हुआ करेगी ।२७। कलियुग में गौऐं मल को खाने वाली हुआ करेंगी। हे जैमिने ! इस युग में गौओं के नीचे बहुत ही कम दूध होगा और वह दूध भी ऐसा होगा जिसमें घृत का अभाव रहेगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।२८।

आत्मस्तुतिपरा लोकाः परनिन्दापरायणाः ।
भविष्यन्तिचखर्वाङ्गावालाबह्वन्नभोजनाः ।।२९
पितृयज्ञं करिष्यन्ति दम्भार्थंब्राह्मणाःकलौ ।
सर्वेत्रचःस्नेहिनःस्युर्यावत्कार्यंनसिध्यति ।।३०
नरान्धर्मपरान्दृष्ट्वा सर्वे चापहसन्ति वै ।।३१
बनन्तेऽधर्मतो लोकास्तस्मात्पापरता जनाः ।
दशद्वादशवर्षेच समूलोऽप्येति सक्षयम् ।।३२
जलस्येव भविष्यन्ति यथा वर्षासुवृद्धयः ।
ततोलोका भविष्यन्ति कलौगलितयौवनाः ।।३३
पञ्चमेवाऽपि षष्ठे वा वर्षे स्त्रीगर्भधारिणी ।
बह्वपत्याश्च पुरुषा भविष्यन्त्यतिदुःखिनः ।।३४
नेतुकामाश्चसर्वेऽपिदातुकामानकेऽपिच ।
कलौम्लेच्छाभविष्यन्तिराजानःपापतत्पराः ।।३५
एकवर्णा भविष्यन्तिविषयार्थकलौजनाः ।
कलेःप्रथमसन्ध्यायांहरिंनिन्दन्ति मानवाः ।।३६

कलि में सभी लोग अपने ही प्रशंसा करने वालें और दूसरों की सर्वदा निन्दा किया करेंगे। प्रायः बहुत ही छोटे आकार वाले तथा अधिक अन्न के खाने वाले बालकपन से ही लोग हुआ करेंगे।२९। कलियुग में ब्राह्मण लोग केवल दम्भ के लिये ही पितृयज्ञ किया करेंगे सभी लोग केवल वचनों में ही स्नेह प्रकट करने वाले होंगे और हृदय में उनके बिल्कुल भी स्नेह नहीं होगा वचन का स्नेह भी तभी तक रहेगा

जब तक उनका कार्य नहीं बनता है काम निकल जाने पर वह जी नहीं रहेगा।३०। जो मनुष्य कभी धर्म्म के कार्य में प्रवृत्त भी होंगे तो साधारणतया सभी लोग उनका उपहास उड़ाया करेंगे।३१। अधर्म करने ही से लोकों की अभिवृद्धि होती दिखाई देगी। इसीलिये लोग पाप कर्मों में रत रहने वाले हो जायेंगे। किन्तु जो धन अधर्म से अर्जित करेंगे वह दश वर्ष या बारह वर्ष में मूल सहित नष्ट हो जायगा करेगा किन्तु इस संक्षय को देखते हुए भी कभी कोई कुछ उपदेश ग्रहण नहीं करेगा।३२। वर्षा ऋतु में जल की भाँति वृद्धियाँ कुछ ही समय तक स्थिर रहने वाली हुआ करेंगी। इसके पश्चात् लोग कलियुग में गलित यौवन वाले हो जायेंगे अर्थात् यौवन अधिक समय तक कुछ भी प्रभाव नहीं रक्खेगा।३३। पाँचवें अथवा छटवें वर्ष में ही स्त्री गर्भ धारण करने वाली हो जायगी। पुरुषों के अत्यन्त अधिक सन्तान होगी जिनके कारण वे अत्यन्त दुःखित हुआ करेंगे।३४। सभी लोग लेने की ही इच्छा रक्खेंगे और देने की इच्छा कभी नहीं करेंगे। इस कलियुग में राजा लोग पाप कर्मों में तत्पर होने वाले म्लेच्छ हो जायेंगे।३५। कलियुग में विषयों में लुप्त होकर एक ही वर्ण वाले हो जांयगे अर्थात् कोई वर्ण भेद दिखलाई नहीं देगा। कलि की प्रथम सन्ध्या ही मनुष्य भगवान् श्री हरि की निन्दा करने वाले हो जाया करते हैं।३६।

कलेमध्ये न पश्यन्ति हरेर्नामानि केवलम्।
ब्राह्मणाःक्षत्रियावश्यावृषलाश्चकृयौयुगे ॥३७
एकवर्णा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वारएव च।
यदायदा द्विजश्रेष्ठ! हानिःसुकृतिनांभवेत् ॥३८
वृद्धिश्च पापिनां नृणां च यावृद्धिस्तदा कलौ।
यद्यप्ययंकलिर्घोरोमयाप्रोक्तोद्विजोत्तम ॥३९
तथाप्यस्ति महानस्यगुणो गुणवताम्वर!
सत्ये द्वादशभिर्वर्षैर्भवेत्पुण्यस्य साधनम् ॥४०
तदर्धेन च त्रेतायां मासेन द्वापरे भवेत्।
अहोरात्रेण वै विप्र! भवेतच्चकलौयुगे ॥४१

तस्मात्कलियुगेननृणांदिनेनैवोत्तमागतिः ।
द्वादशाब्दैयु गेऽन्यस्मिन्हरिमभ्यर्च्यफलम् ।।४२
तत्फलं लभते मर्त्यो हरिमुच्चार्य वै कलौ ।
हरेर्नामैकमप्यत्र कलौ वदति यो नरः ।।
कलिनं वाधते तं च सत्यं सत्य न संशयः ।।४३

जिस समय में कलियुग का मध्य काल होगा उसमें तो मनुष्य केवल हरि के नामों को नहीं देखेंगे इस कलियुग में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सभी लोग एकही वर्ण जैसे हो जायेंगे क्योंकि चारों वर्णों के जो पृथक् २ धर्म-कर्म हैं उन्हें सभी छोड़कर समान ही व्यवहार करने वाले हो जाँयगे अत: कोई भी भेद न रहेगा। हे द्विजश्रेष्ठ ! जब-जब भी सुकृत करने वालों की हानियाँ होंगी तथा पापी मनुष्यों वृद्धि होगी उसी समय में समझ लेना चाहिये कि कलि की वृद्धि हो जायगी या हो रही है। हे द्विजोत्तम ? यद्यपि मैंने इस कलियुग को अत्यन्त घोर बतलाया है तो भी हे गुण वालों में परम श्रेष्ठ ! इसका एक महान् गुण भी है। सत्युग में बारह वर्षों में धर्म्म का साधन सम्पन्न हुआ करता था। उसने आधे समय में त्रेता युग में पुण्य-धर्म का साधन सम्पन्न होता है। द्वापर में एक मास में होता है। किन्तु हे विप्र ! इस कलियुग में केवब एक ही अहोरात्र में पुण्य का साधन सम्पन्न हो जाया करता है।३७-४१। इसलिए इस कलियुग का चाहे वह कितना ही दारुण है, बड़ा भारी महत्व है कि मनुष्यों की इसमें एक ही दिन में उत्तम गति हो जाया करती है जो कि अन्य किसी भी युग में बारह वर्ष पर्यन्त श्री हरि की अभ्यर्चना करने पर फल प्राप्त होता है।४२। वही फल कलिकाल में मानव श्री हरि के शुभ नाम का मुख से उच्चारण करके ही प्राप्त कर लिया करता है। जो मनुष्य इस कलियुग में केवल एक श्री हरि के नाम की उच्चारण किया करता है उसे कलियुग कोई भी बाधा नहीं पहुँचाता है—यह सत्य है और ध्रुव सत्य है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है।४३।

मनः शुद्धिविहीनत्वात्समस्तं कर्म निष्फलम् ।
इतिपूर्वंत्वया प्रोक्तं मनोविस्मयदं मम ।।४४
कलौ सर्वे भविष्यन्ति मनःशुद्धिविर्वजिताः ।
तेषां यथा भवेत्कर्मसंकलं ब्रूहि तद्गुरो ।।४५
यत्किंचित्कुरुटे कर्म मर्त्यो धर्मं कलौयुगे ।
तदर्पयेन्महाविष्णौ भक्तिभावसमन्वितः ।।४६
विष्णौ समर्पित कर्म सर्वमेवाऽक्षयं भवेत् ।।४७
इतिते कथितं सर्वं वृत्तं ब्राह्मणसत्तम ! ।
यच्छ्रुत्वा भक्तिभावेन नरो मोक्षमवाप्नुयात् ।।४८

जैमिनी महर्षि ने कहा-जब तक मन की शुद्धि नहीं होती है तब तक सभी कर्म्म निष्फल होते हैं । कर्मों की सफलता प्राप्त करने के लिए मन का शुद्ध होना नितान्त आवश्यक होता है मेरे मन को विस्मय प्रदान करने वाली यह बात पहिले ही आपने कही थी ।४४। कलियुग में प्रायः सभी लोग मन की शुद्धि से रहित हुआ करते हैं । ऐसे मन की विशुद्धि से वर्जित पुरुषों का समस्त कर्म जैसा होता है वही इस समय में आप कृपा करके मुझ से कहिए ।४५। श्री व्यास देव ने कहा—इस कलियुग में मनुष्य जो भी कर्म तथा क्रिया करता है वह सभी भगवान् महाविष्णु की सेवा में भक्ति की भावना से संयुत होकर समर्पित कर देवे ।४६। भगवान् श्रीमहाविष्णु की सेवा में समर्पित किया हुआ सभी कर्म तथा धर्म कृत्य निश्चय ही अक्षय हो जाया करता है ।४४। व्यास-देव ने कहा—हे ब्राह्मणों के समाज में परमश्रेष्ठ ! मैंने तुमको यह सभी वृत्त कह कर सुना दिया है । इस सम्पूर्ण वृत्त के श्रवण करने की भी बड़ी महिमा है, जो पुरुष भक्ति भाव से इसका श्रवण किया करता है वह इस संसार के जन्म-मरण के निरन्तर आवागमन से छुटकारा पाकर मोक्ष पद की प्राप्ति किया करता है ।४८।

एवंप्रबोधितस्तेन जैमिनिः परमात्मना ।
क्रियायोगसमोभूत्वा जगामैरमनंदम् ।।४६

इमंक्रियायोगसारंव्यासेनोक्तं महात्मना ।
ये पठन्ति जनाभक्त्या शृण्वन्ति च मुमुक्षवः ।।५०
तेसर्वेपातकैर्घोरैर्बहुन्मार्जितैरपि ।
विमुक्ताः परमां मुक्ति लभन्ते नाऽत्रसंशयः ।।५१
यद्यदिष्टं पठन्त्येतच्छृण्वन्ति च मुमुक्षवः ।
लभंते तत्तदेवाऽऽशुप्रसादात्कमलापतेः ।।५२
श्लोकार्धं श्लोकमेकंवाश्लोकपादमथापिवा ।
नरः पठित्वाश्रुत्वाच लभतेवाञ्छितंफलम् ।।५३
लिखित्वालेखयित्वावा यःशास्त्रमिदमर्चयेत् ।
सविष्णुपूजनस्यैव फलं प्राप्नोतिमानवः ।।५४
इदमतिशयगुह्यं निःसृतं व्यासवक्त्राद्ः ।
रुचितरपुराणं प्रीतिदं वैष्णवानाम् ।।५५
चिरममरवराद्यैर्वन्दिताङ्घ्रेर्मुरारेः ।
सकलभुवनभर्त्तुश्चक्रिणःप्रीतयेऽस्तु ।।५६
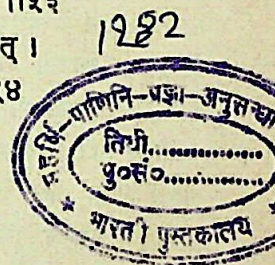
सूतजी ने कहा - परमात्मा के द्वारा इस प्रकार से प्रवोधन दिया हुआ महर्षि जैमिनि फिर क्रिया योग में रत होकर परम पद को प्राप्त हो गये थे ।४९। इस क्रिया योग के सार को महान् आत्मा वाले व्यासदेव ने वर्णन किया था । जो जन इसको पढ़ते हैं या इसका श्रवण किया करते हैं और मुक्ति के प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं वे बहुत से पूर्व जन्मों में अर्जित किये हुए भी महान् घोर पातकों से विमुक्त हो जाया करते हैं फिर वे सभी परम पुरुषार्थ जो मुक्ति है उसका लाभ अवश्य ही प्राप्त किया करते हैं—इसमें क्रिञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं है ।५०-५१। जो मोक्ष के इच्छुक पुरुष अपने हृदय में अपना अभीष्ट मनोरथ किया करते हैं वे सभी मनोरथ इसके पठन एवं श्रवण करने से पूर्ण हो जाया करते हैं । भगवान कमला के स्वामी उस पर परम प्रसन्न हो जाते हैं ।-उन्हीं के प्रसाद से वे सम्पूर्ण कामनाऐं बहुत शीघ्र सफल हो जाया करती है ।५२। यदि इस क्रिया योग सार का सम्पूर्ण भाग कोई पठन या श्रवण करने का सुअवसर

किसी भी कारण वश न पा सके तो इसका एक श्लोक, या आधा ही श्लोक अथवा श्लोक का चौथा भाग भी पठन कर लेवे तो उसका भी महत्व होता है कि उसके सभी वाँच्छित फल प्राप्त हो जाया करते हैं। ।५३। इसको स्वयं लिख कर या किसी योग्य विद्वान् से लिखवाकर जो इस शास्त्र की समर्चना नित्य किया करता है। वह मानव निश्चय ही भगवान् विष्णु के पूजन करने का पूर्ण फल प्राप्त कर लिया करता है।५४। यह विषय अत्यन्त ही गोपनीय है अर्थात् सर्व साधारण के सामने बताने के योग्य नहीं है किन्तु श्री महर्नि कृष्ण द्वैपायन व्यास जी के मुख से कितनी तरह से निकल गया है। यह पद्म सुन्दर पुराण है और वैष्णवजनों की प्रीति का प्रदान करने वाला है। यह देवों में परम श्रेष्ठों के द्वारा चिरकाल पर्यन्त वन्दनीय भगवान् श्री मुरारि के लिये प्रीति प्रदान करने वाला होवे जो सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले तथा इस सम्पूर्ण भुवन मण्डल के स्वामी हैं।५५-५६।

॥श्री पद्मपुराण द्वितीय खण्ड समाप्त ॥

पुराणों का वृहद् प्रकाशन

सरल हिन्दी अनुवाद सहित

१—शिव पुराण	२ खण्ड	...	
२—विष्णु पुराण	२ खण्ड	...	
३—मार्कण्डेय पुराण	२ खण्ड	...	
४—अग्नि पुराण	२ खण्ड	...	
५—गरुड़ पुराण	२ खण्ड	...	
६—हरिवंश पुराण	२ खण्ड	—	
७—देवी भागवत पुराण	२ खण्ड	...	२१)
८—भविष्य पुराण	२ खण्ड	...	२०)
९—लिंग पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१०—पद्म पुराण	२ खण्ड	...	२१)
११—वामन पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१२—कूर्म पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१३—ब्रह्मवैवर्त पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१४—मत्स्य पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१५—स्कन्द पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१६—ब्रह्म पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१७—नारद पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१८—कालिका पुराण	२ खण्ड	..	२०)
१९—वाराह पुराण	२ खण्ड	...	२०)
२०—कल्कि पुराण		...	५)७५
२१—सूर्य पुराण		...	१०)
२२—महाभारत (भाषा)		...	८)
२३—श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा		...	१४)

प्रकाशक : संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर
बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)